१. वैदिक प्रार्थना— ५८७
२. श्रद्धा का सन्देश—श्री प्रो० रामनाथ जी वेदालङ्कार ५८६
३. आर्य समाज का कर्तव्य पथ—श्री० स्वा० ब्रह्ममुनि जी महाराज ५६२
४. हमारी साहित्यिक आवश्यकताएँ—श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० ५६६
५. काशी विद्वन्मण्डली की महत्त्वपूर्ण घोषणा— ५६६
६. देश के प्रति मुस्लिम मनोवृत्ति—श्री० डा० सूर्यदेव जी शर्मा एम० ए० .... ६०५
७. मुस्लिम धार्मिक दृष्टिकोण से हिन्दुओं की स्थिति—श्री मेधातिथि जी नागपुर ६०६
८. बन्धन खोलो ! (कविता)—श्री कविकमल जी साहित्यालङ्कार ६१७
६. वर्णव्यवस्था और जाति सूचक उपनाम—श्री गङ्गाप्रसाद जी एम० ए० .... ६१६
१०. कन्याओं का यज्ञोपवीताधिकार विवेचन—श्री शिवपूजनसिंह जी 'पथिक' साहित्यालङ्कार ६२३
११. हमारा भारत (कविता)—विद्यावारिधि श्री रुद्रमित्र जी शास्त्री .. ६३०
१२. हमारी राष्ट्रभाषा—श्री प्रो० रघुवीर जी एम० ए०, पी० एच० डी० .... ६३१
१३. आर्य जगत् ६-६
१४. साहित्य समीक्षा ६३६
१५. सम्पादकीय ६४१

॥ ओ३म् ॥

सार्वदेशिक

* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष २७ | जनवरी १९४७ ई०] पौष २००४ दयानन्दाब्द १२२ | अङ्क ११

* वैदिक प्रार्थना

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् त्वं न इन्द्राभर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे।
आवीरं पृतनासहम् ॥ समावेदम्. ४०५

शब्दार्थः —

हे (शतक्रतो इन्द्र) सर्वशक्तिमन् परमेश्वर (त्वम्) तू (नः) हमारे में (ओजः) आत्मिक शक्ति को (आ भर) धारण करा (विचर्षणे) हे सर्वज्ञ प्रभो! हम में (नृम्णम्) शारीरिक बल और ज्ञानादि धन को और (पृतनासहम्) विरोधियों की सेनाओं को परास्त करने वाले (वीरम्) वीर गण को (आ) चारों ओर से प्राप्त करा।

विनयः—

हे सारी शक्ति और ज्ञान के भण्डार प्रभो! हम तुम्हारे पुत्र तुम्हारी शरण में आते और विनय पूर्वक यह प्रार्थना करते हैं कि हमें आत्मिक और शारीरिक बल तथा आध्यात्मिक और भौतिक ऐश्वर्य की आप की कृपा से प्राप्ति हो तथा हमारे राष्ट्र में ऐसे वीर बहुत बड़ी संख्या में हों जो सब दुष्टों को परास्त कर सकें।

वेदोपदेश

श्रद्धा का सन्देश

[ले०—प्रो० रामनाथ जी वेदालङ्कार, गुरुकुलकांगड़ी]

[श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को ऋग्वेद का श्रद्धासूक्त (१०.१५१) बहुत ही प्रिय था। वे प्रायः इसका पाठ किया करते थे। संभवतः इसी से प्रेरणा पाकर उन्होंने अपना नाम श्रद्धानन्द रक्खा था। नीचे इसी सूक्त पर मन्त्रक्रम से संक्षिप्त उद्गार लिखे जाते हैं।]

[१]

श्रद्धयाऽग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसाऽऽवेदयामसि ॥१॥

अर्थ—['अस्माभिः' श्रद्धया अग्निः समिध्यते] हम श्रद्धापूर्वक ही यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करते हैं (श्रद्धया हविः हूयते) और श्रद्धापूर्वक ही उसमें आहुति डालते हैं। हम (वचसा) अपने वचनों से (श्रद्धां) श्रद्धा को (भगस्य मूर्धनि) ऐश्वर्यों के शिखर पर (आवेदयामसि) बतलाते हैं।

भाइयो ! श्रद्धा एक बहुत बड़ा गुण है। श्रद्धा की अपार महिमा है। 'श्रद्धा' शब्द 'श्रत्' और 'धा' से मिल कर बना है। 'श्रत्' का अर्थ है 'सत्य' और 'धा' का अर्थ है 'धारण करना'। किसी बात को सत्य समझ कर उसे अपने जीवन में धारण कर लेने का नाम श्रद्धा है। 'श्रद्धा' में तर्क और विश्वास दोनों का समन्वय हो जाता है। इसीलिये अन्धविश्वास का नाम श्रद्धा नहीं है। सत्य पर विश्वास करके उसे अपने हृदय में दृढ़ता के साथ धारण करने को ही श्रद्धा कहते हैं। हम तो इस श्रद्धा के पीछे दीवाने हैं। हम प्रतिदिन प्रातः सायं श्रद्धा के साथ ही अग्निहोत्र की अग्नि को प्रज्वलित करते हैं, श्रद्धा के साथ ही उसमें घृत और सामग्री की आहुति डालते हैं। इस प्रकार अपने जीवन में अग्निहोत्र, सन्ध्योपासना, गुरुजनों की सेवा, अतिथि-पूजा, राष्ट्र सेवा आदि अनेक कर्मों को हम श्रद्धापूर्वक ही करते हैं। इस श्रद्धा से हमें असीम लाभ प्राप्त होता है। इसलिये हम तो इस श्रद्धा के गुण पर मुग्ध हुए २ हैं। जहाँ जाते है वहाँ श्रद्धा के गीत गाते हैं बातचीत में, व्याख्यानों में जहां अवसर मिलता है इस श्रद्धा की महिमा लोगों को बतलाते हैं, और कहते हैं कि भाइयो! श्रद्धा का ऐश्वर्य सब ऐश्वर्यों से ऊंचा ऐश्वर्य है, ऐश्वर्यों की श्रेणी में श्रद्धा शिखर पर स्थित हुई २ है। अतः हृदयों में श्रद्धा को धारण करो, श्रद्धा को धारण करो।

[२]

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥२॥

अर्थ—(श्रद्धे) हे श्रद्धे ! तू (ददतः प्रियं कृधि) दान देने वाले का प्रिय कर। हे श्रद्धे ! तू (दिदासतः प्रियं कृधि) मन में दान देने की इच्छा रखने वाले का प्रिय कर। (भोजेषु)

भूखों के लिये भोजन देने वालों के प्रति तथा (यज्वसु) यज्ञ करने वालों के प्रति (प्रियं कृधि) प्रिय कर। (इदं मे उदितं) इस मेरे कथन को (कृधि) पूर्ण कर।

हे श्रद्धे! हे मंगलमयी श्रद्धे! हम जानते हैं तू श्रद्धालु जनों का सदा ही प्रिय सम्पादन किया करती है। जो श्रद्धा के साथ सत्कर्मों में प्रवृत्त होते हैं उनका अवश्य ही कल्याण होता है। इसलिये हम चाहते हैं कि हमारे राष्ट्र में सब मनुष्य श्रद्धा के साथ ही शुभ कर्मों को किया करें। हमारे राष्ट्र में दानी लोग श्रद्धा के साथ दान करें, दान का संकल्प करने वाले लोग श्रद्धा के साथ दान संकल्प किया करें, श्रद्धा के साथ लोग भूखों को भोजन खिलाया करें, श्रद्धा के साथ लोग यज्ञ में तत्पर हुआ करें। इस प्रकार हम राष्ट्रवासियों का प्रत्येक शुभ कर्म श्रद्धा के साथ हुआ करे ताकि सब श्रद्धा के वरदान को प्राप्त करते रहें। हे श्रद्धे। हमारी इस मधुर आकांक्षा को पूर्ण कर, हमारे इस सुख-स्वप्न को पूर्ण कर।

[३]

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकं मुदितं कृधि ॥ ३॥

अर्थ– [यथा] जिस प्रकार [देवाः] देवजन [उग्रेषु असुरेषु] उग्र से उग्र असुरों के मन में [श्रद्धां चक्रिरे] श्रद्धा को उत्पन्न करते रहे हैं, [एवं] उसी प्रकार वे [भोजेषु] भूखों को भोजन कराने वालों के मनों में तथा [यज्वसु] यज्ञ करने वालों के मनों में (श्रद्धा को उत्पन्न कर दें) हे श्रद्धे! [अस्माकम् उदितं] हमारे इस कथन को (कृधि) तू पूर्ण कर।

जगत् में हर समय कुछ लोग ऐसे हुआ करते हैं जिनके अन्दर श्रद्धा का अभाव होता है। वे वेद-शास्त्र, धर्म-कर्म, सत्य-सदाचार किसी में श्रद्धा नहीं रखते। परन्तु हम देखते हैं कि समय आने पर, बड़े से बड़े घोर नास्तिक और अश्रद्धालु व्यक्ति भी श्रद्धालु देवजनों के जीवन से प्रभावित होकर श्रद्धामय बन जाते हैं। ऐसे उदाहरण हर समय उपलब्ध हो सकते हैं। श्रद्धा सम्पन्न देव पुरुषों के जीवन का ऐसा ही चामत्कारिक प्रभाव होता है कि वे उग्र से उग्र असुरों तक के मनों में श्रद्धा का संचार कर देते हैं। इसलिये हम चाहते हैं कि हमारे राष्ट्र के सब मनुष्य ऐसे श्रद्धामय देवपुरुषों के संसर्ग में आकर श्रद्धालु हृदय वाले बन जायें। वे भूखों को भोजन कराने, यज्ञ करने आदि शुभकर्मों को राज दण्ड लोकलज्जा, अपकीर्ति आदि के भय से न करें किन्तु श्रद्धा के साथ करें, ताकि श्रद्धा का वरद हस्त उनके ऊपर सदा बना रहे। हे श्रद्धे! हमारी यह शुभेच्छा पूर्ण हो।

[४]

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्ययाऽऽकूत्या, श्रद्धया विन्दते वसु ॥ ४॥

अर्थ–[यजमानाः] यज्ञ-पूजन करने वाले और [वायुगोपाः] प्राणायाम करने वाले [देवाः] देव पुरुष [श्रद्धाम् उपासते] श्रद्धा को अपनाते हैं, वे [हृदय्यया आकूत्या] हृदय के दृढ़ संकल्प के साथ [श्रद्धम् उपासते] श्रद्धा को अपनाते हैं। [श्रद्धया] श्रद्धा से मनुष्य [वसु विन्दते] ऐश्वर्य को पा लेता है।

आइयो, देखो, जगत के देवपुरुषों के चरित्र को देखो। उनका जीवन श्रद्धामय जीवन श्रद्धामय होता है। वे प्रभु का स्तुति-पूजन करते हैं, यज्ञ-याग करते हैं, प्राणायाम व योग का अभ्यास करते हैं, यह सब वे श्रद्धा के साथ ही करते हैं। उनके हृदय में उस २ कर्म के लिये अटूट श्रद्धा होती है। तभी तो वे क्षणिक असफलता को देख कर आतुर नहीं हो उठते और उस कर्म को छोड़ नहीं बैठते, किन्तु निरन्तर धैर्य के साथ उस कर्म में लगे रहते हैं। और श्रद्धा के साथ उन यज्ञ-पूजन, प्राणायाम आदि से लगे रहने का फल यह होता है कि अन्तोगत्वा उन्हें अपार सफलता प्राप्त होती है। उन २ कर्मों से प्राप्त होने वाला 'वसु' या ऐश्वर्य उन्हें मिल जाता है। यह बिल्कुल सच है कि श्रद्धा से मनुष्य अनुपम ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेता है—"श्रद्धया विन्दते वसु"।

[५]

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥५॥

अर्थः—

हम [प्रातः श्रद्धां हवामहे] प्रातः काल श्रद्धा का आह्वान करते हैं [मध्यन्दिनं परि] मध्याह्न काल में [श्रद्धां] श्रद्धा का 'आह्वान करते हैं'। [श्रद्धां] श्रद्धा का [सूर्यस्य निम्रुचि] सूर्य के अस्त होने के समय 'आह्वान करते हैं'। [श्रद्धे] हे श्रद्धे ! तू [इह] इस जीवन में [नः श्रद्धापय] हमें श्रद्धालु बना दे।

हमने देख लिया है और अच्छी तरह समझ लिया है कि श्रद्धालु मनुष्य का सदा कल्याण ही होता है। श्रद्धा एक माता की तरह अपने भक्त का परित्राण करती है। इसलिये हम प्रभात में श्रद्धा का आह्वान करते हैं, मध्याह्न में श्रद्धा का आह्वान करते हैं, सूर्यास्तकाल में श्रद्धा का का आह्वान करते हैं। हम चाहते हैं कि श्रद्धा के सन्देश को हम कभी न भूलें और जीवन में प्रत्येक कर्त्तव्य कर्म हम श्रद्धा के साथ करें। आ, श्रद्धे ! प्रतिक्षण हम तेरे स्वागत को तैयार खड़े हैं। आ, तू हमें पूर्ण रूप से श्रद्धालु बना दे।

आर्य समाज का कर्तव्य-पथ

[लेखक—श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी]

—:※※:—

कोई सुधारक व्यक्ति या समाज युग की गति विधि को जान कर अपना कर्त्तव्य-पथ निर्माण करता है। ऋषि दयानन्द सुधारक थे और आर्य समाज भी सुधारक है। आर्य समाज का प्राथमिक युग शास्त्रार्थ का था अतएव ऋषि दयानन्द ने अपने कार्य काल का अधिक भाग शास्त्रार्थ में लगा कर विद्वन्मण्डल और प्रतिष्ठित जन समुदाय को अपनी ओर आकर्षित किया। आर्यसमाज की स्थापना कर चुकने पर शास्त्रार्थ के साथ २ कुछ २ प्रचार कार्य भी आरम्भ कर दिया था परन्तु तब भी उनके कर्तव्यपथ में शास्त्रार्थ की प्रचुरता ही थी इस से ऋषि दयानन्द का कार्य काल शास्त्रार्थ का युग रहा। उन के पश्चात् स्वामी दर्शनानन्द जी, पण्डित गणपति शर्मा और पण्डित लेखराम के समय प्रथम प्रथम शास्त्रार्थ और प्रचार समान रूप में चलते रहे पुनः प्रचार कार्य की मात्रा बढ़ते २ आर्य समाज के कर्त्तव्यपथ का दूसरा युग प्रचार युग बन गया। इस युग में जन साधारण भी आर्यसमाज की ओर खिंच आए और आर्यसमाज दिन पर दिन वृद्धि को प्राप्त होता चला गया। इसी युग में प्रचार के साथ साथ संस्थाओं का भी जन्म होने लगा। स्वामी श्रद्धानन्द जी, महात्मा हंसराज जी, लाला देवराज जी, स्वामी दर्शनानन्द जी और महात्मा नारायण स्वामी जी संस्थाओं के प्रमुख जन्मदाता हैं पुनः संस्थाओं की वृद्धि होती चली गई और अभी होती जा रही है। यह युग संस्था युग हुआ। इस युग के प्रारम्भ में तो आर्य समाज उन्नत होता रहा पर संस्थाओं की अत्यधिकता से तथा उन में पदाधिकारिता अथवा अन्य स्वार्थ के वश आर्य समाज आगे जितना बढ़ना चाहिए था उतना न बढ़ सका। देश के विभाजन और भयङ्कर हत्याकाण्डों के कारण आर्य समाज और समस्त आर्य जाति की भारी जन धन क्षति हो जाने और भावी रक्षा को लक्ष्य में रखते हुए आर्य समाज के कर्त्तव्यपथ का युग आज संगठन का युग है। आज आर्यसमाज को तीन प्रकार के संगठन करने की भारी आवश्यकता है, वे तीन प्रकार के संगठन हैं:—

१- समस्त आर्य सामाजिक जगत् को एक सूत्र में बांधना।

२- समस्त आर्य जाति (हिन्दू जाति) को अपने साथ मिलाना।

३- भूले बिछुड़ों को फिर से गले लगाना।

यह है आर्य समाज का इस युग में कर्तव्य-पथ। इन में पहला कर्तव्य है आर्य समाज के लिए अपना संगठन करना। आर्य समाज अपेक्षा कृत कुछ संगठित तो है पर इस की लड़ियाँ अलग अलग हो रही हैं ये अलग २ लड़ियाँ न रहें किन्तु एक ही लड़ी में सभी आर्य समाजें प्रथित हो जावें। जब ऊपर की लड़ी को हिलाया जावे तो सारी लड़ी या समस्त आर्य समाजें हिल पड़ें। आर्य समाज भिन्न २

दलों (दल बन्दियों) में टुकड़े टुकड़े हुआ हुआ है परन्तु आज वह युग नहीं रहा कि भिन्न २ टुकड़ों में रह कर कोई समाज जीवित रह सकेगा। पदाधिकार के इच्छुक तथा अन्य स्वार्थ साधक महानुभाव यद्यपि अनेक युक्ति प्रयुक्तियाँ टुकड़े टुकड़े में रहने या इन दलबन्दियों के बने रहने में देंगे कि हमारी पार्टी की इतनी भारी सम्पत्ति है इतनी संस्थाएँ हैं उनकी तो थोड़ी हैं उनका भी इन पर अधिकार हो जावेगा अथवा अन्य कोई कारण बताकर अपने स्वार्थों की रक्षा करना चाहेंगे। परन्तु आज तो ऐसा युग आ गया कि यदि संगठित होकर एक सूत्र में बन्ध कर न रहे तो आप ही न रहेंगे फिर आपके स्वार्थ किस काम [आवेंगे जब स्वयं ही आर्यसमाज असंगठित रहेगा तो दूसरों को अपने साथ कैसे संगठित कर सकेगा? इस समय आर्यसमाज के तथा उन २ पार्टियों के नेताओं को चाहिये कि अब पंजाब में और राजस्थानों में तथा अन्य प्रान्तों में पार्टियों के भेदों को समाप्त कर दें। यद्यपि इस समय यह कार्य इन पार्टियों के पक्षपातियों को विषपान सा लगेगा परन्तु भविष्य में आर्य-समाज के लिए यह अमृत बन जायगा। यद्यपि आज आर्यसमाज में कोई सुप्रसिद्ध सर्वदलीय नेता नहीं प्रतीत होता तथा पि सार्वदेशिक सभा तो है इसे अपनाया जाए इसमें ही सब अपने अपने प्रतिनिधि भेज कर या अपनी शिरोमणि सभा समझ कर अपना नेता बनाया जाए। इस फूट रोग के सम्बन्ध में ऋषिदयानन्द ने बड़े दुःख के साथ लिखा है कि "विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने का कारण आपस की फूट और मतभेद है। जब आपस में भाई २ लड़ते हैं तभी तीसरी विदेशी आकर पंच बन बैठता है क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पांच सहस्र वर्ष पूर्व हुई थीं उनको भी भूल गये? आपस की फूट से कौरव-पाण्डव और यादवों का सत्यानाश होगया सो तो होगया परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है न जाने यह भयङ्कर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःख सागर में डुबा मारेगा उसी दुष्ट दुर्योधन गोहत्यारे स्वदेश-विनाशक नीच के फूट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो" [सत्यार्थ प्रकाश दशम समु०] अतः अब महर्षि दयानन्द के नाम पर आर्यसमाज के भविष्य को सोचकर और अपनी भावी संतानों पर दया करके इन दलबन्दियों [पार्टियों] को भस्मसात् कर दो। इस प्रकार आर्यसमाज एक होकर अपने को एक सूत्र में बान्धकर समस्त आर्य-जाति (हिन्दुजाति) को भी अपने साथ बान्धने में समर्थ और सफल हो सकेगा जो कि इसका कर्त्तव्य है।

दूसरा कर्त्तव्य है आर्यसमाज का समस्त आर्यजाति (हिन्दुजाति) को अपने साथ मिलाना इसका यह अर्थ नहीं है कि आर्यसमाज हिन्दु-समाज में गल जावे या अपने को हिन्दू बना डाले ऐसा करने से हिंदुओं का भी भला न होगा और आर्यसमाज भी समाप्त हो जावेगा। कारण कि हिन्दूजाति है रोगी उसमें भिन्न २ मतों के विसर्प फोड़े निकले हुए हैं। आर्यसमाज को करना है चिकित्सक (डाक्टर) का काम। अतः

आर्यसमाज को हिन्दू नहीं बनना चाहिए, रोगी को रोगी बनकर स्वस्थ नहीं किया जा सकता। गिरे हुए को गिर कर नहीं उठाया जा सकता। डाक्टर स्वयं रोगी बनकर रोगी को स्वस्थ नहीं कर सकता। जब आर्यसमाज स्वयं संगठित हो जावेगा एक सूत्र में बन्ध जावेगा तब उनसे कह सकता है कि "हम एक दृढ़ संगठन बनाना चाहते हैं हमने अपने सब दलों को एक कर लिया है अब आप लोग भी हमारे साथ संगठित हो जावें। संगठन के नाते आर्यसमाज में प्रविष्ट हो जायं और प्रतिसप्ताह अथवा अवसर २ के समासत्सङ्गों में आते रहें। जिससे परस्पर की संगठित शक्ति बढ़ती चली जावे।" इस प्रकार उनके आते रहने और आर्यसमाज के सभा-सत्सङ्गों में भाग लेते रहने से उनके विचारों में परिवर्तन होंगे। वे आर्यसमाज से प्रेम करेंगे और आर्यसमाज की ओर झुकते चले जावेंगे। इससे आर्यसमाज का संगठनबल भी बढ़ेगा और आर्यसमाज भी बढ़ेगा, आर्यजाति की रक्षा भी हो जावेगी।

तीसरा कर्तव्य है आर्यसमाज का भूले बिछुड़ों को फिर से गले लगाना अर्थात् वे लोग जो पहिले आर्यजाति के अङ्ग थे अज्ञान या भय आदि के कारण हमसे बिछुड़ गए मुसलमान ईसाई आदि हो गए उन्हें फिर से अपनी पुरातन आर्यजाति में आने का अवसर देना, उनको अपने धर्म में दीक्षित करने, फिर से अपनाने [शुद्ध करने] का कार्य करना। सो यह कार्य भी बड़ा भारी महत्त्वपूर्ण है और यह युग धर्म है। इस कार्य में जितना समय धन शक्ति लगे लगाया जावे परन्तु पूर्णरूप से उन्हें अपनाया जावे रोटी बेटी के प्रश्न का अवसर न उठे। उनकी विवाह योग्य कन्याओं को लिया जावे और उनके विवाह योग्य कुमारों की भी व्यवस्था की जावे। इस कार्य को हिन्दूसमाज के सहयोग से किया जावे। उन दीक्षित लोगों की आजीविका आदि का भी समुचित प्रबन्ध किया जावे।

इस प्रकार आर्यसमाज ने यदि ये तीनों कार्य साध लिए तो आर्यसमाज उठ जावेगा और राष्ट्रीय क्षेत्र में भी अपना पक्ष तथा अपनी अच्छी संख्या रख सकेगा। इस प्रकार त्रिविध संगठन के साथ एक और शास्त्रीय मर्यादा का भी आश्रय लेना आवश्यक है कि किसी पर अत्याचार न करें परन्तु अत्याचार सहें भी नहीं। संकट के अवसर पर अपनी रक्षा जिस भी प्रकार से हो सके करें "प्राणसंशये ब्राह्मणोऽपि शस्त्रमाददीत" प्राण जाने का प्रसङ्ग आ जावे तो ब्राह्मण को भी शस्त्र उठा लेना चाहिए। इस युग में क्षात्रबल से भी रक्षा करने की आवश्यकता है अतः अपने अन्दर क्षात्रबल अथवा क्षत्रियत्व को भी उपजाना और बढ़ाना चाहिए।

[आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक (जो पूर्वाश्रम में पं० प्रियरत्न जी आर्ष के नाम से प्रसिद्ध थे) का यह लेख अत्यन्त मननीय और है। कार्य रूप में परिणत करने योग्य है। निस्सन्देह यदि इस समय आर्यसमाज पूर्णतया संगठित होकर कार्य करे तो यह देश के भविष्य को बड़ा उज्ज्वल कर सकता और आर्य भाषा तथा आर्य संस्कृति की रक्षा में करने

समर्थ हो सकता है जिस के बिना केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता विशेष लाभदायिनी सिद्ध न होगी। शुद्धि, दलितोद्धार और संगठन के आन्दोलन इस समय नितान्त आवश्यक हैं किन्तु जातिभेद वा जात पात के मूल से छुटकारा पाये बिना उन में सफलता सर्वथा असम्भव है। अभी कुछ दिन पूर्व इन्दौर में एक आर्य सज्जन मुझे मिलने आए [illegible] उन्होंने एक उत्साही मूलतः ब्राह्मण कुलोत्पन्न राष्ट्रीय कार्यकर्ता की चर्चा की जो जन्म से मुसलमान हैं पर जिन का आचार व्यवहार बहुत अंशों में आर्य हिन्दुओं जैसा है। वे शुद्धि संस्कार द्वारा आर्य धर्म में दीक्षित होने को तैय्यार हैं यदि उनकी शिक्षित कन्याओं का अच्छे (यथा सम्भव ब्राह्मण) आर्य परिवार में सम्बन्ध कराया जाए। ऐसे ही अन्य अनेक उदाहरण हैं जहां इस शुद्धि कार्य में बाधा लोगों की संकुचित मनो वृत्ति अथवा जाति भेद की दल दल में फँसे होने के कारण होती है अतः हमारा समस्त आर्यों से अनुरोध है कि श्री मान्य स्वामी ब्रह्म मुनि जी के इस लेख में प्र[illegible]शित उत्तम [illegible] देकर वे [illegible] वद [illegible] भाषा (संस्कृतनिष्ठ हिन्दी) और देवनागरी लिपि को राष्ट्र भाषा और राष्ट्र लिपि स्वीकार करवाने तथा गोवध निषेध विधान बनवाने विषयक आन्दोलन भी निरन्तर जारी रखना चाहिये जब तक [illegible] इस [illegible] क्रियात्मक रूप न [illegible]।

—सम्पादक सा. दे.]

बच्चों की धर्म शिक्षा का प्रश्न—श्री रघु[illegible]

आर्य तथा हिन्दू बच्चों की धर्म-शिक्षा का प्रश्न [illegible] अनेक मत मतान्तरों और सम्प्रदायों के होते हुए [illegible] है कि समझ नहीं आता था कि धर्म के रूप में कैसा विचार सामग्री बच्चों के सामने रखी जावे, श्री प्रो. सुधाकर जी एम०ए० भूतपूर्व मन्त्री सार्वदेशिक सभा देहलीने इस प्रश्न को हल कर दिया है। उन्होंने वेद को आधार बनाकर बच्चों के नैतिक तथा धार्मिक शिक्षण के लिये "उपदेशामृत" नामी [illegible] पेश की है उनका कहना है कि जब एक मुसलमान बच्चे की [illegible] से शुरू होती है और एक ईसाई बच्चे की शिक्षा [illegible] आर्य बच्चे की धार्मिक शिक्षा क्यों न वेद के पाठ से शुरू की जावे। उनके इस संकल्प की पूर्ति "उपदेशामृत" के चारों भागों से होती है। जो शिक्षा उन चारों भागों के पाठ से मिलती है, वह आचरण तथा सदाचार के सब पहलुओं पर प्रकाश डालती है। "उपदेशामृत" का एक सैट मंगा कर पढ़ें। और उपयोगी मालूम होने पर बच्चों की पाठशालाओं में जारी करा दें। नमूने के सैट सार्वदेशिक सभा देहली तथा शारदा मंदिर बुक डिपो नई सड़क देहली को [illegible] कर मंगायें।

हमारी साहित्यिक आवश्यकतायें

[लेखक—श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० मन्त्री सार्वदेशिक सभा, देहली]

यदि किसी प्रकार आर्य समाज के नेताओं और सर्वसाधारण की मनोवृत्ति में एक परिवर्तन हो सकता तो देश और मानव जाति का बड़ा कल्याण होता। वह यह कि समस्त उन्नत आन्दोलनों और क्रान्तियों का मूलाधार किसी समाज के सिद्धान्त विषयक उच्च साहित्य है। केवल साहित्य ही किसी संघटन को जीवित रखता है। साहित्यशून्य संस्थायें आलात चक्र की भांति घोर परिवर्तन शील, अस्थायी, क्षणिक तथा अनिश्चित होती हैं। यही कारण है कि ऋषि दयानन्द ने अपने अन्तिम जीवन भरसक साहित्य निर्माण का काम किया और जो कुछ एक उच्च मनुष्य की सामर्थ्य में हो सकता था उसके अनुकूल आर्यों के लिये दिग्दर्शन मात्र सामग्री छोड़ गये। परन्तु आर्य नेताओं का जितना ध्यान संस्थानिर्माण, भवननिर्माण, सभानिर्माण, निर्वाचन-आन्दोलन, मत-संग्रह की ओर गया उसका सहस्रांश भी साहित्य निर्माण की ओर नहीं गया। मेरी इस प्रतिज्ञा की पुष्टि में वे अंक दिये जाते हैं जिन से यह पता चलेगा कि हमारा कितना धन, कितनी शक्ति अन्य कामों में लगी और कितनी साहित्य निर्माण में। व्यक्तियों द्वारा जो साहित्य थोड़ा बहुत बना उस के प्रोत्साहन के लिये किसी सभा या किसी नेता ने विशेष शक्ति व्यय नहीं की क्योंकि अन्य कामों से उनके पास पैसे और शक्ति बची ही नहीं उनका मस्तिष्क ही इधर नहीं लगा। इसकी मोटी सी कसौटी यह है:—

(१) किसी लेखक की उच्च कोटि की पुस्तकें यदि प्रकाशित भी हुई तो उनकी बिक्री नहीं हुई और हजार पांचसौ छपकर रह गई।

(२) किसी आर्य संस्था ने संसार की अन्य संस्थाओं की भांति अपने लेखकों का सम्मान नहीं किया।

(३) उच्च कोटि के नेताओं ने उच्चकोटि के साहित्य को न पढ़ा, न उसके निर्माण की आवश्यकता समझी।

(४) आर्य्य समाज के कर्णधारों से जाकर पूछिये कि आपके समाज में उच्च कोटि की कौनसी पुस्तकें निकली हैं तो वे बता नहीं सकेंगे। उनसे पूछिये किस प्रकार के साहित्य की आवश्यकता है तो वे कुछ निश्चित संकेत न कर सकेंगे।

(५) आर्य्य समाज के किसी लेखक ने यदि कुछ ख्याति प्राप्त की तो समाज के बाहर। समाज के भीतर से उस को कोई ख्याति नहीं मिली। हां समाज ने सुन लिया और कभी कभी उसका बिना कमाया हुआ श्रेय भी ले लिया।

(६) समाजों के पुस्तकालयों की रक्षा उनकी सम्पत्ति, उनके भवन, उनके अन्य कामों की अपेक्षा प्रायः शून्य से कुछ ही अधिक है।

(७) अनेक समाजों में जो पचास सौ या पचास रुपये पुस्तकालय के लिये वर्ष के आरम्भ में पास होता है उस का वर्ष के ११ मास तक कोई व्यय नहीं होता और १२ वें मास में प्रायः यह कह दिया जाता है कि धन बचा ही नहीं क्या किया जाय।

(८) संसार की अन्य संस्थाओं की ओर से जिस उच्च कोटि का जिस ढंग का साहित्य बनता है उस प्रकार का साहित्य बनाने के लिये समाज के कर्णधार कभी नहीं सोचते।

परन्तु इस का यह अर्थ नहीं कि समाज में साहित्य कार उत्पन्न नहीं हो सकते। बीज शक्ति है उसका संवर्धन और विकास कैसे किया जाय यह प्रश्न है।

मैं आर्य्य समाज के विद्वानों और साहित्य-कारों के समक्ष कुछ आवश्यकतायें रखना चाहता हूँ।

(१) एक आर्य्य-स्मृति की परम आवश्यकता है। जिस में आर्य्य समाज की आधुनिक आवश्यकतायें पूर्ण हो सकें।

(२) आर्य्य समाज ने बौद्धों के समान यज्ञों का तिरस्कार नहीं किया यद्यपि वह यज्ञ की वर्तमान पद्धति के विरुद्ध है। अतः एक निश्चित पद्धति गृह्यसूत्र आदि को शोध कर ऐसी बनानी चाहिये कि यज्ञों का आवश्यक भाग सुरक्षित रह जाय और पौराणिक, आक्षेपजनक अथवा अनावश्यक भाग बिल्कुल निकल जाय।

(३) वेदान्त आदि षट् शास्त्रों का ऐसा भाष्य होना चाहिये जिसके देखने से शास्त्रों का समन्वय हो सके और अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, आदि की छाप से सर्वथा मुक्त हो। इस विषय में अन्य ग्रन्थ भी आवश्यक हैं।

(४) आज तक राजनीति के विषय में कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं लिखा गया जिस से किसी का भी पथप्रदर्शन हो सके और जो देश या मानव जाति की, वर्तमान समस्याओं का समाधान कर सके।

(५) समाज वाद, साम्यवाद आदि पर पिछले पचास वर्षों में अत्यन्त गंभीर और उच्च कोटि का साहित्य बना है। आर्य्य समाज ने उसकी तुलना स्वरूप कुछ भी नहीं लिखा। आर्य्यसमाज में राजनीतिक प्रगतिशीलता के लिये बड़ी उग्र भावनायें हैं। परन्तु वे इतनी अनिश्चित और ऊपरी हैं कि ऐसा प्रतीत नहीं होता कि किसी ने उनपर गंभीरता से कभी विचार किया है। लोगों में प्रायः ऐसी धारणा है कि राजनीतिक वृक्ष की जड़ें गहरी नहीं जाती। वह गमलों में लगाने से भी बढ़ सकता है। उस के लिये गंभीर विचार या गंभीर अध्ययन की आवश्यकता नहीं। अतः परिणाम यह है कि हमारी आवाज किसी को अपील नहीं करती और दूसरे लोग बड़ी सुगमता में आर्य्य जनता को बहका सकते हैं।

इन की पूर्ति के लिये यदि भिन्न २ विद्वान् अलग २ अपने अनुकूल क्षेत्र को चुनकर परिश्रम करें तो कुछ हो सकता है। इस विषय में जनता और विद्वान् दोनों के कर्तव्य अलग २ हैं।

जनता तो केवल यही कर सकती है कि पुस्तकें पढ़ने में रुचि दिखावे और पुस्तकों को

पैसे देकर खरीदना दान के समान पुण्य कर्म समझें। इस से साहित्य प्रकाशकों और लेखकों को सब से अधिक प्रोत्साहन मिलेगा और वे अपना समय इधर देखकेंगे। धनाढ्य लोग अपना धन पुस्तकों को खरीद कर समाज के बाहर वितरण या भेंट करने में लगावें तो अच्छा होगा। समाज अपने पुस्तकालयों की वृद्धि का अच्छा प्रबन्ध करें।

सभाओं के नेताओं से मुझे कम आशा है और मैं उन की सेवा में कुछ कहने का साहस नहीं करता। उनकी अवस्था दयनीय है। मत-संग्रह (Vote Collection) से उनको अवकाश नहीं। पार्टी का प्रश्न मुक्ति के प्रश्न से भी अधिक गंभीर है। और उनका मस्तिष्क उसकी जटिलताओं से बाहर सोच ही नहीं सकता। वे न पढ़ सकते हैं, न उच्च कोटि के साहित्य का मूल्य आँक सकते हैं। न उन्हें अवकाश है। विद्वान लेखकों को उनसे आशा नहीं रखनी चाहिये। उनको कुछ साहस से काम लेना चाहिये:—

कुछ संकेत आवश्यक हैं:—

(१) लेखकों को कुछ साहस की आवश्यकता है। वे लकीर के फकीर न बनें। वे जनता के मत का परवाह न करें। उन्हें जनमत को चलाना है जनमत के पीछे नहीं चलना।

(२) हमारे प्राचीन ग्रन्थ इतने कूड़ा करकट से भरे हुये हैं कि साहस पूर्वक चलने की आवश्यकता है। जो कूड़ा मिले उसे विचार रूपी चलनी चाल कर साफ करदो।

(३) किसी धनाढ्य के सामने हाथ मत पसारो यदि वह तुमको कुछ सहायता दे सकता है तो उसे धन्यवाद पूर्वक स्वीकार करलो। परन्तु याद रक्खो कि ब्राह्मण दक्षिणा ले सकता है उसको भीख नहीं मांगनी चाहिये।

(४) यदि आपको प्रकाशक नहीं मिलते तो न सही। लिखते जाइये। पहले समय में कोई प्रकाशक नहीं था। हस्तलिखित पुस्तकों का भी मूल्य है। यदि आपके जीवन समय में नहीं तो मृत्युके पश्चात् वे उपयोगी हो सकें।

गंगाप्रसाद उपाध्याय

सार्वभौम हिन्दूधर्म के सम्बन्ध में—

काशी-विद्वन्मण्डल की महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ

प्रथम घोषणा

(१)

संसार के विभिन्न धर्मों के समान भारतीय आर्य धर्म अथवा हिन्दू धर्म भी अनेक सांप्रदायिक भेदों में विभक्त है, परन्तु हमारे हिन्दू धर्म की विशेषता यह है कि उक्त विभेद का आधार, साम्प्रदायिक असहिष्णुता, स्पर्द्धा या आग्रह न होकर, मनुष्य की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रवृत्ति भेद या रुचि भेद ही है। इस प्रकार हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय, मानवीय जीवन में समान रूप से महत्त्व का स्थान रखने वाले भक्ति, साधना, कर्मयोग, ज्ञान योग, अहिंसा, नैतिक विकास आदि उत्कृष्ट आदर्शों के सदा से पोषक रहे हैं। साथ ही उन सब पर भारतीयता की ऐसी छाप है जो स्पष्टतया उनकी मौलिक एकता को प्रकट करती है। इस लिये काशी का विद्वन्मण्डल घोषणा करता है कि भारतीय हिन्दू धर्म वास्तव में एक ही धर्म है और आशा करता है कि देश के विद्वान् और विचार शील व्यक्ति सभाओं तथा समाचार पत्रों के द्वारा ऐसा प्रयत्न करेंगे कि प्रत्येक हिन्दू, चाहे वह शैव, वैष्णव, शाक्त, सनातनी, आर्यसमाजी, जैन, बौद्ध, या सिख आदि हो, अनुभव और गर्व कर सके कि वह हिन्दू है और उसका सम्बन्ध एक ही हिन्दू धर्म से है।

(२)

भारतीय आर्य धर्म अथवा हिन्दू धर्म के दीर्घ कालीन इतिहास और विकाश को, उसके वैज्ञानिक आधार को, उसके शैव, वैष्णव और बौद्ध रूपों में लङ्का, जावा, सुमात्रा, इण्डोचाइना, चीन, जापान आदि आदि सुदूर देशों में विस्तार को, तथा।

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" (वेद)

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥"

(मनु)

इति श्रुति और स्मृति की आज्ञा को, एवं बुद्ध भगवान् के—"ऐ भिक्षुओ, मनुष्य तथा जीवों के कल्याण के लिये संसार के भिन्न-भिन्न देशों में फैल जाओ" इस उपदेश को ध्यान में रखते हुए काशी का विद्वन्मण्डल इस बात की घोषणा करता है कि "हिन्दू धर्म स्वभावतः सार्वभौम धर्म है और वह समय आ गया है कि हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय, अपनी अपनी मर्यादा को अक्षुण्ण रखते हुए, मनुष्य मात्र के कल्याण की कामना से न केवल समस्त भारत वर्ष या भारतीय उपनिवेशों में, किन्तु अन्य देशदेशान्तरों में भी, हिन्दू धर्म के सन्देश को पहुंचाने तथा प्रसार करने का पूर्ण विश्वास, उत्साह और सद्भावना से प्रयत्न प्रारम्भ कर दें।

(३)

पूर्वोक्त प्रथम प्रस्ताव को ध्यान में रखते

हुए काशी का यह विद्वन्मण्डल हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के नेताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित करता है कि वे मिलकर हिन्दू मात्र के लिए एक समान प्रार्थना बनाने का शीघ्र से शीघ्र प्रयत्न करें जिससे प्रत्येक नगर व ग्राम में विशिष्ट पर्वों पर हिन्दू मात्र एकत्रित होकर उस समान प्रार्थना के द्वारा अपनी मौलिक एकता की भावना को पुष्ट कर सकें।

(४)

हिन्दू धर्म के सार्वभौम प्रचार तथा हिन्दू-मात्र के संरक्षण के उद्देश्य से काशी का विद्वन्मण्डल हिन्दू समाज की समस्त धार्मिक संस्थाओं—जैसे सनातन धर्म सभा, आर्य समाज, वैष्णव सभा, सिंह सभा, अकाली सभा, जैन सभा, बौद्ध सभा, विभिन्न देव मन्दिर, साधुओं के अखाड़े, महन्तों के मठ, बोर्डिङ्गाउस, अनाथालय, पाठशाला आदि आदि से साग्रह अनुरोध करता है कि वे उपर्युक्त प्रस्तावों को सर्वत्र सभा करके स्वीकृत एवं प्रचारित करें कि उनका यह सन्देश देश के कोने कोने में पहुंच जाय साथ ही विभिन्न समाचार पत्रों से भी प्रार्थना करता है कि वे उक्त समाचार को प्रकाशित कर उसके प्रचार में सहायक हों।

* * *

दूसरी घोषणा

चिरकालीन दासता के कारण हिन्दू (अथवा भारतीय) धर्म केवल शान्ति-प्रधान है प्रायः ऐसी भावना लोगों में फैली हुई है। पर यह भावना मिथ्या है। "ओजोऽस्योजो मयि धेहि" (भगवन् आप ओजःस्वरूप हैं, हमको ओजस्वी बनाइये), "जयेम सं युधि स्पृधः"; (हम युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें) इस प्रकार के आदर्शों से ओतप्रोत हिन्दू-धर्म स्वभावतः ही ओजस्वी धर्म है। इसका इतिहास वीरों की गाथाओं से भरा पड़ा है, जिन्होंने अपने रक्त के सिञ्चन से भारत भूमि के प्रत्येक स्थल को पवित्र किया है। इस लिए काशी का यह विद्वन्मण्डल आवश्यक समझता है कि हिन्दू-धर्म के इस ओजस्वी रूप की ओर हिन्दू मात्र का ध्यान दिलाया जावे। हिन्दू धर्म के प्रायः सब देवता शस्त्र-धारी हैं। इसलिए प्रत्येक हिन्दू को उनकी पूजा तथा उपासना करते हुए अपने देवताओं के इस स्वरूप का विशेष रूप से ध्यान करना चाहिये।

तीसरी घोषणा

हिन्दू धर्म में उनकी स्वाभाविक ओजस्विता को पुनर्जीवित करने के लिए, जो कि हमारे देश, धर्म, जाति, संस्कृति तथा गौरव की रक्षा के लिए परम आवश्यक है, काशी का यह विद्वन्मण्डल नीचे दिखलाये हुए उपायों की मौलिक आवश्यकता समझता है, और आशा करता है कि शीघ्र से शीघ्र इनको कार्य रूप में परिणत करने का पूरा प्रयत्न किया जायगा। सरकार तथा प्रजा दोनों का यह कर्तव्य होना चाहिये। इसकी उपेक्षा आत्म-घातक होगी।

(क) शीघ्र से शीघ्र इसका प्रयत्न होना चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए अस्त्र-शस्त्रविद्या की शिक्षा अनिवार्य कर दी जावे।

(ख) प्रत्येक ग्राम तथा नगर में अखाड़े तथा व्यायाम शालायें खोली जावें, जिनमें कुश्ती, लाठी, तथा अन्य खेलों की शिक्षा के साथ-साथ, सरकारी अनुमति से, यथा-संभव अस्त्रशस्त्रों के प्रयोग की भी शिक्षा दी जावे।

(ग) विशेष पर्व तथा महान् पुरुषों की जयन्ती आदि के अवसर पर प्रत्येक ग्राम तथा नगर में 'हिन्दू-सम्मेलनों' को किया जावे, जिनमें हिन्दूमात्र प्रेमपूर्वक इकट्ठे हों और किसी एक प्रार्थना के पश्चात् हिन्दू धर्म, जाति, तथा भारत देश के महत्त्व की कथा, वार्ता तथा व्याख्यानों के द्वारा ओजस्वी हिन्दू धर्म का प्रचार किया जावे। इन सम्मेलनों में हिन्दू-संस्कृति का संसार में विस्तार, विशाल भारत का स्वरूप, इतिहास के विभिन्नकालों में आक्रमणकारी विदेशियों पर विजय प्राप्ति, तथा लाखों विदेशियों का हिन्दूकरण जैसे विषयों की व्याख्या भी की जानी चाहिये।

(घ) इस विद्वन्मण्डल के मत में समस्त हिन्दू जनता का कर्तव्य है कि वह रक्षाबन्धन (जिस रक्षाबन्धन के द्वारा विभिन्नवर्ग तथा व्यक्ति परस्पर रक्षा करने की प्रतिज्ञा करते हुए हिन्दू-संगठन के पवित्र लक्ष्य से मनावें), जन्माष्टमी, विजयादशमी, दीपावली, तथा होली (जो अश्लीलता से रहित हो वास्तव में इसको हिन्दू मात्र की सम्मिलनी के रूप में मनाना चाहिये), इन त्योहारों को, तथा महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्द-सिंह, रानी लक्ष्मीबाई, नेता जी सुभाषचन्द्र इन महान् व्यक्तियों की जयन्तियों को जातीय महोत्सवों के रूप में प्रति वर्ष उत्साह पूर्वक मनावे।

विद्वन्मण्डल को पूर्ण आशा है कि इस महान् जाति का प्रत्येक वर्ग तथा प्रत्येक व्यक्ति उक्त विचारों के प्रचार में तथा उनको कार्य का रूप देने में पूर्ण सहयोग देगा।

चौथी घोषणा

किसी जाति तथा व्यक्ति के सम्मान की रक्षा के लिए यह परम आवश्यक है कि वह अपनी स्त्री-जाति के सम्मान तथा गौरव की रक्षा कर सके। इसके बिना उस जाति तथा व्यक्ति का जीना ही व्यर्थ है। इसलिए काशीका यह विद्वन्मण्डल हिन्दू-जातिका ध्यान इस ओर दिलाता है कि वह अपनी स्त्री-जाति के सम्मान की रक्षा प्राणपण से करे। साथ ही इसको आवश्यकता है कि स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जावे कि जिससे वे आपत्ति आने पर न केवल अपनी ही रक्षा कर सकें, किन्तु वे अत्याचारीका भी संहार कर सकें। भारतीय इतिहास को दृष्टि में रखते हुए भारतीय नारी के लिए ऐसा कर सकना कोई नई बात नहीं होगी।

इसके साथ ही काशी का यह विद्वन्मण्डल

बलाद् दत्तं बलाद् भुक्तं बलाद् यच्चापि कारितम्।
सर्वान् बलकृतानर्थान् अकृतान् मनुरब्रवीत्॥

इत्यादि धर्मशास्त्रीय वचनों को ध्यानमें रखते हुए, स्पष्ट घोषणा करता है कि अत्याचार के कारण कोई भी स्त्री अपने समाजमें किञ्चिन्मात्र भी पतित नहीं समझी जा सकती। जिस देवीके साथ अत्याचार किया गया है, प्रत्येक दशामें उसको अपने परिवार तथा समाजका

पूर्ववत् पूरा सम्मान मिलना चाहिये। अत्यन्त आवश्यकता है कि इस घोषणाका प्रचार घर-घर में किया जावे और प्रत्येक देवी इससे परिचित हो। ऐसा हुए बिना गाय बकरीकी तरह हिन्दू जातिकी देवियों पर किये जाते हुए अत्याचार रुक नहीं सकते।

पांचवीं घोषणा

हिन्दू-धर्म स्वभावतः ही सार्वभौम धर्म है। हिन्दूजातिके इतिहासमें लाखों की संख्यामें विदेशियोंने हिन्दूधर्मको स्वीकार किया है। इसलिये सार्वभौम हिन्दू-धर्मके आदर्शोंमें विश्वास रखते हुए काशीका यह विद्वन्मण्डल बलपूर्वक यह घोषणा करता है कि अन्यधर्मावलम्बी किसी भी व्यक्तियोंके समूह को शुद्धि के द्वारा हिन्दूधर्म में प्रविष्ट किया जा सकता है। इस शुद्धिका प्रकार हिन्दूधर्मके विभिन्न संप्रदायों की अपनी अपनी पद्धतिके अनुसार होना चाहिये। इस प्रकार शुद्धिके द्वारा हिन्दू धर्ममें दीक्षित लोगोंकी जातिका निर्णय या तो उनकी अपनी अपनी जीविकाके अनुसार (जैसे जुलाहा, धुनिया, रंगरेजकी आजीविका करनेवाला अन्य-धर्मावलम्बी हिन्दू-धर्ममें प्रविष्ट होने पर हिन्दू जुलाहा धुनिया या रंगरेज ही कहा जा सकता है) अथवा शुद्धि करने वाले संप्रदायके बहुमतके अनुसार होना चाहिये। हिन्दू समाजका कर्तव्य होगा कि इस प्रकार हिन्दूधर्ममें दीक्षित लोगोंके साथ साथ सम्मान तथा प्रेमका व्यवहार करें।

विद्वन्मण्डल यह भी घोषणा करता है कि धर्मान्तरोंसे शुद्ध हुई स्त्रियोंके साथ अपने समाज अथवा वर्गकी अनुमतिसे विवाह किया जा सकता है।

छठी घोषणा

भारतीय-वर्णव्यवस्थाका प्रथमउद्देश्य समाज के विभिन्न वर्गोंमें पारस्परिक संघर्ष तथा स्पर्द्धाके स्थान में पारस्परिक सहयोग तथा सौहार्द की भावनाकी स्थापना द्वारा उनमें परस्पर अंगाङ्गिभावनाको [illegible] दृढ़ करना है। इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

यह श्रुति कहती है। इसी शास्त्रीय आदर्श को दृष्टिमें रखते हुये काशीका विद्वन्मण्डल हिन्दुमात्रसे पूर्ण आशा करता है कि वह हिन्दू-समाजके विभिन्न वर्गोंमें परस्पर, प्रेम, सहानुभूति तथा अङ्गाङ्गिभावके पुष्ट करने का हर प्रकार प्रयत्न करे और कोई ऐसा व्यवहार न करे जिससे किसीके आत्मसम्मानको भावनाको ठेस लगे। इसीलिये यह विद्वन्मण्डल किसी वर्गविशेष में उत्पन्न होनेके कारण किसीके प्रति अस्पृश्य, अछूत जैसे अपमानसूचक शब्दोंके व्यवहारको अनुचित समझता है।

सातवीं घोषणा

हमारे देशके दो खण्ड हो जाने पर और स्वतन्त्रता प्राप्तिके अनन्तर देशके नेता 'इण्डियन-यूनियन' के लिये ऐसे नामकी आवश्यकताका अनुभव कर रहे हैं, जो भारतीय परम्पराके अनुकूल हो और जो इस देशके इतिहास तथा महान् संस्कृतिका बोधक होनेके साथ-साथ साम्प्रदायिक भावना से भी रहित हो।

काशीका विद्वन्मण्डल, इस विषयमें विधान-परिषद् तथा देशके नेताओंके सम्मुख सुझाव

रखता है कि इस देशका नाम 'भारत' रखा जावे। यह नाम उपर्युक्त सभी आवश्यकताओं को पूरा करता है। यह भी पूर्ण आशा है कि इस महान देशके सब सम्प्रदायके लोग अपने को भारतीय कहने में गौरव का अनुभव करेंगे और वह समय शीघ्र ही आवेगा जब कि देश.का प्रत्येक निवासी अपनी एक जातीयता एवं एक संस्कृतिका अनुभव करते हुए उस पर गर्व कर सकेगा।

आठवीं घोषणा

भारतीय संस्कृतिने अत्यन्त प्राचीनकालसे ही यह अनुभव कर लिया था कि इस देशकी समृद्धि, स्वास्थ्य एवं आयुष्यके लिये गोरक्षा एक मौलिक साधन है। इसी भावनाके आधार पर गौके प्रति इस संस्कृतिमें सदासे पूज्य बुद्धि चली आ रही है और यहां तक कि गौ ऐहिक तथा पारलौकिक कल्याण का साधन मानी जाती है।

इस पवित्र भावना की उपेक्षासे देश आज जिस भीषण कष्टका अनुभव कर रहा है वह किसी से छिपा नहीं है।

इन कारणों को दृष्टि में रखते हुए काशी का विद्वन्मण्डल विधानपरिषद् तथा देशके नेताओं से यह अनुरोध करता है कि विधानतः गोवध को इस देश में शीघ्रातिशीघ्र बन्द कर दिया जाय।

नवीं घोषणा

देश की स्वतन्त्रता साथ-साथ देशकी राजकीय भाषा और लिपिका प्रश्न उपस्थित हो गया है। कतिपय विशिष्ट व्यक्ति अल्पसंख्यकों की सुविधा और सरलताके नामपर 'हिन्दुस्तानी' नाम की एक मिश्रित और शब्द-अर्थ-हीन भाषा को उक्त पदपर स्थापित करने का प्रबल प्रयत्न कर रहे हैं।

भारत ऐसे महान सांस्कृतिक देश में इस प्रश्न का उठना ही आश्चर्यजनक एवं भारतीयता के लिए परम घातक है।

भारतकी भाषा हिन्दी के साथ आर्यों की पुरातन संस्कृति, सभ्यता एवं गौरवमय इतिहास सम्बद्ध है। भारतीय-साहित्य के उच्चतम भावों को अभिव्यक्त करने के लिये संस्कृत-प्रसूत हिन्दी भाषा ही समर्थ हो सकती है। भाषा के शब्दों और उनके उच्चारण तक में उस जाति की संस्कृति और सभ्यता निहित रहती है। ऐसी स्थिति में हिन्दी भाषा की उपेक्षा करना भारत की महान् संस्कृति और गौरवपूर्ण इतिहास के साथ असह्य अन्याय होगा।

इसी प्रकार देवनागरी लिपि, जो भारतीय सभ्यता के विकाश का सजीव इतिहास है, उस का परित्याग भी अत्यन्त अनुचित प्रतीत होता है।

अतः काशी का यह विद्वन्मण्डल विधान-परिषद् एवं देशके नेताओं से अनुरोध करता है कि वे 'हिन्दुस्तानी' के प्रश्न को उठने का अवसर ही न दें और अविलम्ब हिन्दी को राष्ट्रभाषा तथा देवनागरी को राष्ट्र लिपि घोषित करें।

१. बालबोध मिश्र दर्शनाचार्य, (भू० पू० प्रोफेसर, गवर्नमेन्ट सं० कालेज)

२. महामहोपाध्याय चिन्नस्वामी शास्त्री (प्रिन्सिपल-धर्मविज्ञानविभाग, हिन्दू-विश्वविद्यालय)

३. महामहोपाध्याय नारायणशास्त्री खिस्ते (प्रधानाध्यापक-गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज)

४. सभापति उपाध्याय (प्रिन्सिपल, बिरला संस्कृत कालेज)

५. पूर्णचन्द्राचार्य (प्रिन्सिपल, रामानुज सं० कालेज)

६. ताराचरण भट्टाचार्य, (प्रिन्सिपल-टीकमाणी संस्कृत कालेज)

७. दाऊजी दीक्षित दैवज्ञशिरोमणि (सभापति—पण्डित सभा, काशी)

८. शिवदत्तमिश्र गौड़, न्यायाचार्य, (न्यायाध्यापक—गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज)

६. गोपालशास्त्री दर्शनकेशरी, (भू० पू० दर्शनाध्यापक—काशी विद्यापीठ, सभापति सार्वभौम सं० प्र० परिषद्, काशी)

१०. सीताराम झा दैवज्ञमार्तण्ड, (प्रिन्सिपल, संन्यासी संस्कृत कालेज)

११. ढुण्ढिराज शास्त्री, न्यायाचार्य, (प्रिन्सिपल, नित्यानन्द वेद विद्यालय)

१२. स्वामी रामानन्द मण्डलेश्वर, (काशी-देवी मठ)

१३. स्वामी शीलस्वरूपानन्द, (मङ्गलमठ)

१४. स्वामी शङ्करानन्द, [महन्त 'नारायण मठ'] काशी

१५. गिरिजाप्रसाद पाण्डेय, वेद-व्याकरण-मीमांसाचार्य, [रणवीरसंस्कृत पाठशाला हिन्दूविश्वविद्यालय]

तथा अन्य ५७ सदस्य।

—●—

देश के प्रति मुस्लिम मनोवृत्ति

[ले०—डा० सूर्यदेव जी शर्मा सिद्धान्त शास्त्री, साहित्यालङ्कार, एम. ए., डी-लिट्, अजमेर]

गत पन्द्रह अगस्त को भारत विभाजन हो जाने और पाकिस्तान बन जाने के बाद हिन्दुस्तान के लिये जहाँ और अनेक समस्यायें खड़ी हो गई हैं, वहां जो मुसलमान हिन्दुस्तान में रह गये हैं उनकी समस्या भी बड़ी विकट है। गत मासों में दिल्ली, यू.पी., बिहार, और मध्य-प्रांत के अनेक नगरों में मुसलमानों के पास से जो शस्त्र भंडार प्राप्त हुए हैं और कांग्रेसी सरकार को उलटने के जिन षडयन्त्रों का भंडाफोड़ हुआ है उनसे हिन्द वासियों का यह विश्वास और भी पक्का हो गया है कि दो राष्ट्रों के सिद्धान्त में विश्वास करने वाले मुसलमान कभी भारत भक्त नहीं हो सकते। महात्मा गांधी अपने दैनिक प्रार्थना-भाषणों में मुसलमानों की देशभक्ति का कितना ही गुणगान करें और यत्र तत्र हिन्द के मुस्लिम नेता सरकार की वफादारी का कितना ही दम भरें लेकिन भारत के राष्ट्रीय तिरंगे झंडे की वफादारी की शपथ लेकर भी चौधरी खली कुज्जमा जैसे मुस्लिम नेताओं के पाकिस्तान भाग जाने पर अब हिन्द वासियों को उन पर तब तक विश्वास करना कठिन है जब तक कि उनकी मनोवृत्ति ही न बदल जाये और दो राष्ट्रों के सिद्धान्त में उनका विश्वास समाप्त न हो जाये।

वह मुस्लिम मनोवृत्ति क्या है? वह है मुसलमानों का कट्टर इस्लाम प्रेम, जो उनको देश भक्त बनने में सबसे अधिक बाधक होता है। इस्लाम प्रेम के कारण अपने देश और सर्वस्व को भी बलिदान करने को उद्यत हो जाते हैं। इस्लाम की कट्टरता उनकी नस २ में समाई होती है। और तो और महात्मा गांधी जी के परम मित्र खिलाफत आन्दोलन के प्रमुख नेता मौलाना मोहमदअली तक ने सन् १६२१ में काबुल के अमीर अमानुल्ला के भारत पर चढ़ाई करने के षड्यन्त्र के सम्बन्ध में प्रयाग के "लीडर" पत्र के संवाददाता को स्पष्ट शब्दों में कहा था "I am Muslim first, every thing else afterwards. If Amir of Afganistan fights the egemies of Islam, he would have my entire support. If he fights the present Government of India, he has my entire sympathy" ("लीडर" १३-५-२१)

अर्थात् "मैं मुसलमान पहले हूँ, और कुछ बाद को। अगर अफगानिस्तान का अमीर इस्लाम के शत्रुओं से अथवा भारत की वर्तमान सरकार से लड़ेगा तो उसके साथ मेरी पूरी सहानुभूति और सहायता होगी।"

जिन चौ० रहमत अली के दिमाग की उपज का पाकिस्तानी विष वृक्ष अब इतना बड़ा हो चुका है, वे हिन्दुस्तान के मुसलमानों को क्या आदेश देते हैं, वह जानने योग्य है। "इण्डिया" को "दीनिया" बनाने का उनका

आन्दोलन बड़े वेग से चलता रहा है और अब भी चल रहा है (जिस का विस्तृत वर्णन मैंने अपने "पाकिस्तान" नाम के ग्रंथ में किया है)। गत कुछ वर्षों से उन्होंने "दीनिया" आन्दोलन के प्रधान के रूप में कई पुस्तकें कैम्ब्रिज (इंगलैंड) से प्रकाशित की हैं, जैसेः—

(1) India: The Continent of Dinia.

(2) The Millat and her Ten Nations.

(3) The Millat and her Minorities.

(4) The Millat of Islam and the Menace of Indianism.

(5) The Greatest Betrayal: How to redeem the Millat.

(6) The Millat and the Mission.

इनमें से चौथे नंबर की पुस्तक के पृष्ठ पांच पर चौधरी साहब क्या लिखते हैं, सुनिये,

"It is false in the name of History because India never was and never will be the Muslim Motherland...........Let them sever all ties with India to save the Millat from Indianism and to serve "Pak-Islamica" अर्थात् "इतिहास के नाम पर यह कहना गलत है। भारत कभी मुसलमानों की मातृभूमि नहीं रहा और न कभी रहेगा। मुसलमानों को भारत से सब सम्बन्ध तोड़ लेने चाहिये और भारतीयता से मिल्लत को बचाना चाहिये और पवित्र इस्लामी जगत् की सेवा करनी चाहिये।" यही नहीं, आगे चलकर उन्होंने लिखा है,

"Convert the Sub-continent of India into the continent of 'Dinia'. अर्थात् "भारत के उपमहाद्वीप को ही बदल कर "दीनिया" महाद्वीप बना डालो।" इस प्रकार भारतीय मुसलमानों को देश भक्ति की शिक्षा देना तो अलग, उनको हिन्दुस्तान से प्रेम न करने अथवा हिन्दुस्तान को "दीनिया" बना डालने की शिक्षा दी जा रही है।

इसी प्रकार मुस्लिम मनोवृत्ति का स्पष्ट वर्णन "Islam and Psychology" ग्रंथ के लेखक ने उसके पृष्ठ ६७ और ६८ पर इस प्रकार किया है "Fight the infidels untill there shall be none left ....there can be no peace with the infidels but when the Musalmans are not in sufficient force, there is no harm in their giving up the Jihad for a certain time. अर्थात् "काफिरों से लड़ो, यहां तक कि उनमें से कोई बच न जा सके। काफिरों से कोई संधि नहीं हो सकती। जब मुसलमान अधिक शक्तिशाली न हों तो थोड़े समय के लिये जिहाद (युद्ध) छोड़ देने में भी कोई हानि नहीं।" शायद इसी आदेश को ध्यान में रखते हुये हिन्द के मुसलमान अब अधिक संख्या में न होने के कारण हिन्द सरकार की वफादारी का कुछ समय के लिये दम भर रहे हैं। वैसे तो जब से देश में कांग्रेस की स्थापना हुई तभी से उनकी पृथक्तावादी नीति का आभास मिलना आरम्भ हो गया था। कांग्रेस की स्थापना के केवल २ वर्ष बाद ही २० दिसम्बर सन् १८८७ को लखनऊ में अपना ऐतिहासिक भाषण देते

हुये मुस्लिम नेता सर सैयद अहमद खां ने मुसलमानों से कांग्रेस का बहिष्कार करने की अपील की थी और सन १८८८ में एक वर्ष बाद उसी अपील को मेरठ में फिर दोहराया था। आगे चलकर उन्होंने तथा सर आगा खाँ जैसे मुस्लिम नेताओं ने जिस मुस्लिमलीग की पृथक्तावादी मनोवृत्ति को जिस प्रकार से उकसाया और चौधरी रहमत अली आदि ने उसको भड़काया उसका फल पाकिस्तान के रूप में आज हमारे सामने उपस्थित है। इसके निर्माण में हिन्दुओं को जो यातनायें सहनी पड़ी हैं वे सब के सामने हैं।

हमारे पूज्य महात्मा गांधी जी जो कि हिन्दू मुसलमानों में कोई भेद नहीं करते, बारबार कहते हैं कि वह जितने हिन्दू हैं उतने ही मुसलमान हैं उतने ही ईसाई हैं......। ता० ३० अक्टूबर १९२४ के "यंग इंडिया" में गांधी-शौकत अली संवाद में महात्मा जी ने कहा था "I am speaking to you as though I am a Musalman because I have cultivated that respect for Islam which you have for it." अर्थात् मैं मुसलमान की तरह आप से बात कर रहा हूँ क्योंकि मेरे हृदय में इस्लाम के प्रति उतना ही सम्मान है जितना कि उसके लिए आपके दिल में।"

आश्चर्य तो यह है कि जहाँ महात्मा जी इस्लाम के प्रति इतना आदर भाव रखते हैं, वहाँ मुसलमान हिन्दू धर्म के प्रति उसका शतांश भी नहीं रखते। उलटे वे तो भारत को और भारतीयता को धत्ता बताने के लिये हमेशा तैयार रहते हैं। मुसलमानों की इस मनोवृत्ति की तुलना में जरा हिन्दू मनोवृत्ति को देखिये, जिसके लिये अहरार नेता चौ० अफजलहक तक ने अपनी पुस्तक "Pakistan and Untouchability" के पृष्ठ १४ पर लिखा है "He (Hindu) will not kill an enemy; on the contrary he will be hospitable enough to offer milk to a serpent even that happens to make its appearenee in his house." अर्थात् हिन्दू अपने शत्रु को भी नहीं मारेगा। इसके विपरीत वह उस सांप को भी दूध पिलायेगा जो उसके घर में निकले।

इन दोनों मनोवृत्तियों को देखते हुये हमें कहना पड़ेगा कि उपर्युक्त मुस्लिम मनोवृत्ति के रहते हुये हिन्द के मुसलमान किसी प्रकार भी हिन्दुओं के समान सच्चे देशभक्त बन कर नहीं रह सकते, और यदि वे इस मनोवृत्ति को छोड़कर और देश भक्त बनकर हिन्द में नहीं रह सकते तो उनका पाकिस्तान चला जाना ही हमारे और उनके दोनों के लिये श्रेयस्कर है।

[यदि श्री पूज्य महात्मा गान्धी जी आदि नेता आर्य हिन्दू सिक्खों को प्रेम, उदारता और दयालुता का दिन रात उपदेश देने के स्थान पर मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या की इस संकुचित मनोवृत्ति को दूर करने का कोई उपाय कर सकें तो बड़ा लाभ हो सकता है। मौ० अब्दुल कलाम आजाद जैसे मुस्लिम विद्वानों का विशेष कर्तव्य इस असहिष्णुतापूर्ण मनोवृत्ति को परिवर्तित करना होना चाहिये। —सम्पादक सा० दे०]

मुस्लिम धार्मिक दृष्टिकोण से हिन्दुओं की स्थिति

[लेखक—श्री मेधातिथि जी नागपुर]

—:*:—

पिछले दिनों मित्रवर श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति ने बातों बातों में श्री महात्मा गांधी जी के प्रार्थना सभा में कहे गए एक वाक्य को दुहराते हुए एक प्रश्न उठाया। श्री महात्मा गांधी जी ने पिछले दिनों कहा था कि यद्यपि कुरआन में काफिरों के बारे में कुछ सख्त चीजें कही गई हैं परन्तु हिन्दुओं के बारे में नहीं हैं। मैं इन शब्दों के साथ ही यहां श्री महात्मा जी के एक और वाक्य को भी लिख देना उचित समझता हूं। ११।४। ४७ के "हरिजन" में महात्मा जी ने ये शब्द कहे हैं कि कलाम में तो सिर्फ भगवान की तारीफ की गई है और मुहम्मद साहिब को उस का पैगम्बर माना गया है। जिस तरह मैं बुद्ध, ईसा, जरतुश्त, को मानता हूँ उसी तरह मुझे खुदा की तारीफ करने और मुहम्मद साहिब को पैगम्बर मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती।

मैंने श्री महात्मा जी के दो वाक्यों को यहां नकल किया है चूंकि मुझे इन दोनों वाक्यों से जनता में कुछ भ्रम फैल जाने की सम्भावना है अतः मैं उचित समझता हूँ कि इस चीज पर अपने विचारों को प्रकट कर दूं।

इस से प्रथम कि मैं कुछ लिखूं मैं एक चीज को स्पष्ट कर देना भी उचित समझता हूँ। मैं श्री महात्मा गांधी जी को भारत की स्वतंत्रता का युद्ध लड़ने वाले वीरों का सेनापति मानता हूँ। और केवल मैं ही नहीं भारत का प्रत्येक व्यक्ति हृदय से इस स्वतन्त्रता संग्राम में विजय प्राप्त करने वाले महात्मा जी का आदर करता है। परन्तु इस का यह अर्थ नहीं हो सकता कि चूंकि अधिकतर श्री महात्मा जी के द्वारा भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है अतः प्रत्येक हिन्दू महात्मा जी के इशारों पर अपने धर्म को भी तिलाञ्जली देता हुआ महात्मा जी की हर ऐसी बात को भी सत्य मानता चला जाए जिसके असत्य होने में किसी भी प्रकार की कोई शङ्का नहीं है। अतः मेरी राय में यह आवश्यक नहीं है कि राजनीति का युद्ध जीतने वाले एक योद्धा को हम अपना धार्मिक नेता भी मानलें। अतः मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मुसलमानों की धार्मिक पुस्तकें कुरआन तथा हदीस श्री महात्मा जी के ऊपर के कहे हुए वाक्य का समर्थन नहीं करतीं।

कुरआन तथा अहादीस में काफिर तथा मुशरिक के बारे में जितने भी शब्द आए हैं वे हर उस मनुष्य के लिए हैं जो मुहम्मद साहिब को रसूल (ईश्वर का दूत) नहीं मानता। चूंकि हिन्दू मुहम्मद साहिब की रसालत का सबसे बड़ा मुन्किर [न मानने वाला] है अतः हिन्दू मुसलमानों की दृष्टि में सब से बड़ा काफिर है। कलमे के दो भाग हैं। प्रथम ईश्वर से सम्बन्धित है दूसरा मुहम्मद साहिब से सम्बन्धित। जहां तक "ला इलाह इल्लिल्लाह अर्थात् ईश्वर के बिना

कोई पूज्य नहीं" का सम्बन्ध है हमारा यवनों से कोई मत भेद नहीं। हम भी एक ईश्वर के बिना किसी को पूज्य नहीं मानते। परन्तु हमारा मुसलमानों के साथ मत भेद तो दूसरे वाक्य पर है वे कहते हैं। कि मुहम्मदुर् रसूलुल्लाह अर्थात् मुहम्मद ईश्वर का दूत है"। हम इसे नहीं मानते और मुझे स्पष्ट कह देना चाहिए कि हिन्दू इसे कभी भी सहन नहीं कर सकता कि वह इन शब्दों को मान ले। भारत का विभाजन इसी मत भेद पर हुआ। पश्चिमी पञ्जाब, सीमा प्रान्त, बिलोचिस्तान, सिन्ध, आदि में जो हिन्दुओं को भयङ्कर चोट सहन करनी पड़ी है और जिस के परिणाम स्वरूप आज चालीस लाख हिन्दू दर दर की ठोकरें खा रहे हैं केवल इसी मत भेद के कारण—यदि पाकिस्तान का हिन्दू और सिख अपनी जबान से कह देता कि हम मुहम्मद साहिब को ईश्वर का दूत मानते हैं, तो न इन बेचारों के मकान जलाए जाते, न ये चालीस लाख आज दर दर की ठोकरें खाने के लिए विवश होते और नहीं हमारे लाखों भाई पाकिस्तान में कतल कर दिए जाते जो हम में नहीं हैं। जब हम अपनी आंखों से देख रहे हैं कि यह इतना बड़ा नर-संहार तथा अत्याचार हिन्दुओं को केवल इस लिए सहन करना पड़ा है कि वे मुहम्मद साहिब को ईश्वर का दूत नहीं मानते तब महात्मा जी के उपर्युक्त कथन पर हम आश्चर्य प्रकट किए बिना नहीं रह सकते कि महात्मा जी ने ये शब्द जो किसी भी हालत में सत्य नहीं कहे जा सकते, क्यों कहे हैं।

श्री महात्मा जी के ऊपर के वाक्य में कुछ चीजें ऐसी आई हैं जिन को पढ़ कर मन में कुछ चुभन सी होने लगती है। मैं उन चीजों को कुआंन तथा हदीस की रोशनी में खोल देना उचित समझता हूँ।

सर्व प्रथम काफ़िर तथा मुस्लिम के शब्दार्थ को समझ लेना आवश्यक है।

काफ़िर कफ़र यक्फ़ुर, सुलासी मुजर्रद् के धातु से इस्मे फ़ाइल (कर्त्ता) बनता है। इस के अर्थ हैं इन्कार करने वाला अर्थात् न मानने वाला।

मुस्लिम बाबइफ़आल के वज़न पर अस्लाम युस्लिमु रुबाई मुजर्रद् के धातु से इस्मे फ़ाइल (कर्त्ता) बनता है और इस के अर्थ हैं मानने वाला तथा आज्ञा कारी।

मुसलमान=असल में मुस्लिमानी है और यह इस्मे फ़ाइल मुस्लिम् का द्विवचन है। परन्तु बोल चाल में मुसलमान का ही शब्द प्रचलित हो गया है। इस का बहुवचन मुस्लिमून है।

जङ्ग बदर के समय जब बद्र के मैदान में मुहम्मद साहिब को रसूल मानने तथा न मानने के प्रश्न पर युद्ध छिड़ा तब मुहम्मद साहिब की पार्टी आप को रसूल मान रही थी तथा अबु सुफ़ियान की पार्टी आप को रसूल नहीं मानती थी। अर्बी भाषानुसार मानने वालों को मुस्लिम तथा न मानने वालों को काफ़िर कहा गया और बाद में यही दो शब्द प्रचलित हो गए जो आज तक चले आ रहे हैं। मुसलमानों ने संसार में जितनी भी लड़ाइयां लड़ी हैं केवल इसी प्रश्न पर — स्वयं

मुहम्मद साहिब ने अपनी आयु में उन्नीस युद्ध किए जैसा कि हदीस में आया है।

आख़िरबर अब्दिल्लाहि यक़ूलु ग़ज़ोतु मअ्रसूलिल्लाहि तिसअ्अशरत ग़ज़वतन्।

मुस्लिम्।

अब्दुल्लाह के पुत्र जाबिर ने कहा कि मैंने मुहम्मद साहिब के साथ (सम्मिलित होकर)

उन्नीस युद्ध लड़े हैं।

इस अध्याय में जिस में यह हदीस नकल की गई है सात हदीसें आई हैं और वे सब ऊपर की हदीसका समर्थन करती हैं। हदीस मुस्लिम् की है जो सहाहसित्ताकी सबसे ऊंची दो किताबों में से एक है। अस्माउर्रिजाल के द्वारा किसी रावी को ज़ईफ़ [कमज़ोर] नहीं कहा जा सकता। तब प्रश्न उपस्थित होता है कि हम ऐसे मनुष्य को रसूल कैसे मान सकते हैं जिस मनुष्य ने स्वयं अपने आप को रसूल मनवाने के लिये न मानने वालों के साथ युद्ध करने के हेतु स्वयं ही उन्नीस बार तलवार उठाई हो, लाखों तथा करोड़ों मनुष्यों को तलवार की धार तथा तीरों की नोक के द्वारा मृत्युशय्या पर सुला दिया हो और खून खराबी इस लिए की कि संसार उस मनुष्य को रसूल मान ले।

इस्लाम के प्रचार में बल का किस प्रकार प्रयोग किया गया है इस के लिए मैं स्वयं अपनी ओर से कुछ भी न कहता हुआ केवल कुरान तथा हदीस के कुछ प्रमाणों को ही लिख देना उचित समझता हूँ—पाठक गण पूरी परिस्थिति पर स्वयं ही दृष्टिपात कर लेंगे।

१. मुहम्मद साहिब ने एक दिन कहा कि स्त्रियाँ यदि मस्जिद में आना चाहें तो उनको आने दिया करो। यह चीज़ जब एक आदमी ने सुनी तो कहा कि हम तो नहीं आने देंगे। इस पर एक मुसलमानने।

फ़ज़रब फ़ी सदरिही व क़ाल उहदिसुक अन रसूलिल्लाहि व तक़ूलु ला। मुस्लिम्

उसने उसकी छाती में [मुक्का] मारा और कहा कि मैं तुमको अल्लाह के रसूल की आज्ञा बताता हूँ और तू कहता है कि नहीं।

यहां मैं कुछ ऐसे हवाले देरहा हूँ जिस से जहाद (धार्मिक लड़ाई) के बारे में मुहम्मद साहिब के दृष्टिकोण का पता चल सकता है।

२. क़ाल रसूलुल्लाहि अल् हरबु ख़ुदअतुन्–मुस्लिम्—

मुहम्मद साहिब ने कहा कि युद्ध धोका है।

मुस्लिम ने इस हदीस पर एक अध्याय लिखा है जिस का नाम है जवाज़ुल् ख़ुदाअि फ़िल् हरबि=लड़ाई में धोका (करना) जायज़ है। नौवी ने इस हदीस के भाष्य में लिखाहै। कि

इत्तफ़क़ल् उलमाऊ अला जवाज़ि का ख़ुदाअिल् कुफ़्फ़ारि फ़िल् हरबि–

विद्वान् सहमत हैं कि काफ़िरों के साथ युद्ध में धोका जायज है।

आगे कहा है कि–

व क़द् सहह् फ़िलहदीसि जवाज़ुल् किज़बि फ़ी सलासत अश्याइन् अहदहा फ़िल् हरबि

और हदीस ने सही किया है (ठीक बताया है) तीन चीज़ों में झूठ बोलना–उन मे से एक लड़ाई में झूठ बोलना है।

आगे कहा है कि:—

क़ालत्तिबरीय्यु इन्नमा यजूज़ु मिनल किज़बि फ़िल् हरबि

तिबरी ने कहा है निश्चय पूर्वक लड़ाई में झूठ बोलना जायज है

मुस्लिम ने एक और अध्याय लिखा है जिस का नाम है "जवाज़ कतलिन्निसाइ वस्सिबियान" स्त्रियों तथा बच्चों का कतल किया जानाजायज है

अनिस्सअबिबनि जुसामत. काल सुइल रसूलुल्लाहि अनिद्दारि मिनल् मुश्रिकीन युबय्य-तून फयुसीबून मिन् निसाइहिम् व ज़रारीहिम् फ़क़ाल हुम् मिनहुम (मुस्लिम्)

जुसामा के बेटे सअब ने कहा कि मुहम्मद साहिब से (उस) मकान के बारे मे पूछा गया जहां वह [मुसलमान] रात को शबख़ून [छापा] मारते हैं और (वहां) काफिरों की स्त्रियां तथा बच्चे मिलते हैं तब [मुहम्मद साहिब ने] कहा कि वह [बच्चे तथा स्त्रियां] उन [काफ़िरों] में से हैं।

नौवी ने इस शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि

सुइल अन हुक्मि..... ...फ़िलकबलि फ़क़ाल हुम्मिन् आबाइहिम् ऐ ला बासबिक़तलिक।

[उन बच्चों तथा स्त्रियों के] कतल के बारे में सवाल किया गया तब [मुहम्मद साहिबने] कहा कि वे अपने बाप दादाओं में हैं अर्थात् इसमें [उन के कतल में] कोई हर्ज नहीं।

आगे कहा है कि:—

व क़तलु न्निसाइ वस्सिबियानि फ़िल् बयाति हुव मज़हबुना व मज़हबु मालिकिम् व अबि-हनीफः वल् जम्हूर।

शबखून में स्त्रियों तथा बच्चों का कतल यह हमारा धर्म है और मालिक, अबुहनीफः, तथा (विद्वानों के) समूह का धर्म है:—

मुस्लिम ने एक अध्याय लिखा है जिस का नाम है।

जवाज़ कतअ अश्जारिल कुफ़्फ़ारि व तहरीक़िहा।

काफिरों के वृक्षों को काटना और जला देना जायज है।

अनिब्नि उमर अन्न रसूलल्लाहि क़तअ नख़ल बनिन्नज़ीर व हर्रक मुस्लिम्

उमर के बेटे से [कहा] है कि यक़ीनन मुहम्मद साहिब ने बनिन्नज़ीरके खजूर के वृक्षों को काटा और जला दिया।

नोट– बनिन्नज़ीर काफिरों का कबीला था और मुहम्मद साहिब का इस लिए शत्रु बन गया था क्योंकि यह स्वयं को रसूल मनवाना चाहते थे।

मुस्लिम ने एक अध्याय लूट के माल के बारे में लिखा है। हदीस बहुत लम्बी होने के कारण छोड़ दी गई है केवल अध्याय का ही नाम लिखा जा रहा है।

तहलीलुल ग़नाइमि लिहाज़िहिल् उम्मति ख़ास्सतुम।

मुसलमान जाति की यह विशेषता है कि लूट का माल उन के लिए हलाल [जायज़] किया गया है।

यसअलूनक अनिल् अनफ़ालि कुलिल अनफ़ालु लिल्लाहि वर्रसूलि।

ये लोग लूट के माल के बारे में पूछते हैं कह दो कि लूट का माल अल्लाह और रसूल का है।

नोट–यह आयत कुर्आन में आई है मुस्लिम ने एक हदीस में इसे लिख दिया है।

उकातिलुन्नास हत्ता यकूलू ला इलाह इल्लल्लाह।

अल् हदीस

मैं उस समय तक लोगों से लड़ूंगा जब तक कि वे कलमा न पढ़ लें।

या अय्युहल्लज़ीन आमनू इन्नमल् मुश्रिकून नजसुन्। अल् कुर्आन

ऐ मुसलमानों निश्चित रूप से काफिर लोग महा अपवित्र होते हैं।

नोट– नजस शब्द नजिस मन्जुसु धातु से बना है और इस शब्द का प्रयोग अर्बी भाषा में उन चीजों पर होता है जो महा अपवित्र हों जैसे शौच इत्यादि। यहां इस शब्द के प्रयोग का उद्देश्य केवल यही है कि मुसलमानों के दिल को काफिर से दूर कर दिया जाए। ताकि दोनों में कभी मित्रता पैदा होने की सम्भावना ही न रहे।

कातिलुल्लज़ीन ला युअ्मिनून बिल्लाहि व ला बिल्यौ मिल् आख़िरि व ला युहर्रिमून मा हर्रमल्लाहु व रसूलुहू। अल् कुर्आन

उन लोगों के साथ लड़ो जो अल्लाह को (न)ही मानते और नहीं कयामत के दिन को मानते हैं और अल्लाह तथा मुहम्मद साहिब ने जो चीज़ हराम की है उन को हराम नहीं मानते।

व क़ातिलूहुम् हत्ता ला तकून फ़ितनतुन् व यकूनद्दीनु कुल्लहू लिल्लाहि अल् कुर्आन

और उन (काफिरों) के साथ कताल करो (मारो काटो) यहां तक कि फितनः न रहे और केवल एकही अल्लाह का दीन (इस्लाम) हर जगह हो जाए।

या अय्युहल्लज़ीन आमनू क़ातिलुल्लज़ीन यलूनकुम् मिनल्कुफ़्फ़ारि। अल् कुर्आन

ऐ मुसलमानो लड़ते जाओ उन काफिरों के साथ जो तुम्हारे निकट रहते हैं (अर्थात् जो पड़ोसी है।)

इस आयत पर मौलाना शब्बीर अहमद उस्मानी ने भाष्य करते हुए ये शब्द लिखे हैं:—

जहाद फ़र्ज किफ़ाया है जो तरतीबे तबई के मुवाफिक अव्वल उन कुफ़्फ़ार से होना चाहिए जो मुसलमानों से करीब तर हों (अर्थात् सर्व प्रथमधार्मिक युद्ध अपने पड़ोसियों से लड़ना चाहिए) इस के बाद उन के करीब रहने वालों से इसी तरह दरजा बदरजा धार्मिक युद्ध के घेरे को बढ़ाते चले जाना चाहिए।

नोट—यह शब्द लिखने वाले मौलाना आज कल पाकिस्तान में जिन्नाह के दायां बाजू हैं। और काश्मीर में लड़ने वाले मुसलमानों को सङ्गठित करने के लिये आज कल फतवे बांट रहे हैं।

इन्नल्लाह युहिब्बुल्लज़ीन युकातिलून फी सबीलिही सफ़्फ़न् कअन्नहुम् बुन्यानुम्मरसूस्। अल् कुर्आन

निश्चितरूप से अल्लाह उन लोगों के साथ प्रेम करता है जो उसके रास्ते में (इसके धर्म के प्रचार के लिए) [ऐसे ढङ्गसे] कतार बान्ध कर युद्ध करते हैं जैसे शीशा पिघला कर एक दीवार बना दी गई हो [अर्थात् युद्धस्थल में इनकी लाइन को शत्रु तोड़ न सके]

युद्ध की आज्ञाओंके साथही काफिरों के साथ सम्बन्ध विच्छेद की भी आज्ञाएं दी गई हैं। जैसे

लायत्तखिज़िलमुअमिनीनल काफिरीन औलिया अ मिन् दूनिल मुअमिनीन व मन्यफअल् ज़ालिक फलैसमिनल्लाहि फी शैइन ।अल कुर्आन्

मुसलमान मुसलमानों को छोड़ कर काफिरों को दोस्त न बनाएँ और जो कोई ऐसा करे तो इसका अल्लाह से कोई सम्बन्ध नहीं [अर्थात उस का बाईकाट कर दिया जाए]

या अय्युहल्लज़ीन आमनू ला तत्तखिज़ू आबाअकुम इखवानकुम् औलियाअ इनिस्त हब्बुल कुफ्र अलल ईमानि । अल कुर्आन

" ऐ मुसलमानो अपने पिता तथा भाइयों को भी मित्र मत बनाओ यदि वे कुफर को प्यारा समझते हैं और [मुहम्मद साहिब को] रसूल नहीं मानते ।

मुहम्मद साहिब ने इस प्रकार की बातों का प्रचार करके जब अरब में अपने पांव जमा लिये, मक्का फतह कर लिया गया, हुजाज का अधिक भाग मुहम्मद साहिब तथा उन के साथियों की तलवार की चोट को सहन न करते हुए मुसलमान हो गया तब आप ने एक अन्तिम चीज़ कही (जहां तक मुझे शक है यह चीज़ या तो खैबर की लड़ाई के समय कही गई है अथवा उस समय जब कि मुसैलमा के विरुद्ध फौजी तय्यारी हो रही थी ।)

मैं यहां कुछ मुसैलमा का भी परिचय दे देना उचित समझता हूँ ।

मुसैलमा ने भी मुहम्मद साहिब की देखा देखी स्वयं को रसूल कहलाना आरम्भ कर दिया था। एक लाख से ऊपर आदमी उस के चेले भी बन गए थे। इन ही दिनों एक और स्त्री ने भी स्वयं को रसूल कहा। लगभग चालीस हज़ार से ऊपर पुरुष उसके भी चेले बन गए थे। उस स्त्री ने मुसैलमा से शादी कर ली और इस तरह उस स्त्री की रसालत समाप्त हो गई। मुहम्मद साहिब ने जब मुसैलमा के बारे में सुना कि वह भी रसूल बन गया है तब एक बहुत बड़ी फौज भेज कर उस से युद्ध छेड़ दिया। छाती में एक हबशी की बरछी लगने पर मुसैलमा के साथ ही मुसैलमा रसालत भी समाप्त हो गई।

मुसैलमा ने भी एक कुर्आन बनाया था जो मुहम्मद साहिब की आज्ञा से फाड़ कर जला दिया गया।

इस जीत ने मुसलमानों के हौसले बहुत बढ़ा दिये। फौजों को आगे बढ़ने की आज्ञा दे दी गई। हीरः के मैदानों में मुसलमानों ने अपने मत के प्रचार के लिए बाहिर की दुनियां से पहिली लड़ाईयां लड़ीं वहां भी—

हर्रिरज़िल् मुअमिनीन अलल् किताल् अल् कुर्आन

मुसलमानों को लड़ाई के लिए भड़काओ।

कुर्आन् की इस आज्ञा द्वारा भड़काए हुए मुसलमानों की जीत हुई। उन के हौसले बढ़ गए और वह हौसले बढ़ते ही चले गए। परिणाम-स्वरूप संसार के एक बहुत बड़े भाग में यवनों ने अपने मत का प्रचार कर लिया।

अबुअबीदः, सअद् इबने वकास, अमर इबनल् आस्, खालिद् इबने वलीद इत्यादि ने शाम, फलस्तीन इत्यादि देशों में जो कतल किया वह इतिहास भुला नहीं सकता, अमर इबनेलाआस ने मिश्र में जो तबाही फैलाई संसार उसे भी नहीं भूल सकता तथा मुहम्मदि-

बले क़ासिम के बाद महमूद ग़ज़नवी तथा उसके बाद उस की जाति वालों ने जो कुछ भारत पर किया वह भी नहीं भुलाया जासकता। मुहम्मद साहिब ने मुसलमानों को आज्ञा दी थी कि वे जहां भी जाएं सर्व प्रथम इस्लाम को पेश करे यदि शत्रु मुहम्मद साहिब को रसूल मान कर मुसलमान हो जाए तो उसे कुछ न कहा जाए परन्तु यदि शत्रु न माने तो उस से जजिया (टैक्स) मांगा जाए। यदि शत्रु जजिया दे दे तो वह इस्लामी राज्य के अधीन गुलामी का जीवन व्यतीत करेगा परन्तु यदि उसे यह भी स्वीकार न हो तो उस शत्रु से युद्ध छेड़ दिया जाय।

यह था मुस्लिम दृष्टि कोण जिस के अधीन मुस्लिमजाति द्वारा सर्व संसार में एक भयङ्कर कत्ले आम हुआ। आज पाकिस्तान में जो कुछ हुआ है वह भी ऊपर की इन आज्ञाओं का पालन करते हुए ही हुआ है। पाकिस्तान में हिन्दुओं के घर बार इत्यादि इसी आज्ञा के अधीन जलाए गए, हिन्दुओं के बच्चों तथा स्त्रियों को ऊपर की हदीस की आज्ञानुसार ही कतल किया गया हिन्दुओं के सामान को लूट कर ऊपर की आज्ञानुसार ही मुसलमानों ने हजम कर लिया और हिन्दुओं की स्त्रियों को वहां मुसलमानों ने अपने घरों में डाल लिया है वह भी कुर्आन तथा हदीस की आज्ञानुसार क्योंकि मुहम्मद साहिब ने काफिरों की स्त्रियों को आपस में बांट कर बिना निकाह (शादी) लौन्डी बना कर घर में डाल लेने की आज्ञा दी है और यह सब कुछ हिन्दुओं के साथ केवल इस लिए हुआ कि मुसलमान हिन्दू को काफिर समझता है। फिर मैं नहीं समझ सका हूँ कि श्री महात्मा गान्धी जी ने यह कैसे कह दिया कि कुर्आन की ये आज्ञाएं हिन्दुओं के लिए नहीं हैं। मैं आशा करता हूँ कि श्री महात्मा जी अपने शब्दों पर एक बार पुनः विचार करेंगे।

मुसैलमा का नाम आ जाने पर मैं बहुत दूर चला गया हूँ। मैं फिर अपने शब्दों पर वापिस लौटना चाहता हूँ। मै कह रहा था कि मुहम्मद साहिब ने पर्याप्त शक्ति संग्रह कर लेने के पश्चात ऐलान किया कि :—

अन् जाबिरिबने अब्दिल्लाहि काल अख्ब-बरनी उमरुब्नुलख़त्ताबि इन्नहू समियरसूल-ल्लाहि यकूलु लउखरिजन्नलयहूद वन्नसार मिन जजीरतील् अरबि हत्ता ला अदअ फीहा इल्ला मुस्लिमन्। अलमिशकात्।

अब्दुल्लाह के बेटे जाबिर ने कहा (और) उसने हज़रत उमर से सुना कि मुहम्मद साहिब ने कहा कि मैं यहूदियों और ईसाइयों (काफ़िरों) को अवश्य अरब के जजीरे में से निकाल दूंगा यहां तक कि मैं केवल मुसलमानों को ही इस देश में देखना चाहता हूँ।

इसी के साथ मिशकात् में एक दूसरी हदीस भी नकल की गई है।

अनिबने अब्बास अन्न रसूलल्लाहि औसा बिसलासत कालअख़रिजुल मुशरिकीन मिन् जजीरतिल् अरबि। अलमिशकात्।

अब्बास के पुत्र से यह हदीस है कि मुहम्मद साहिब ने तीन वसीयतें की कहा कि [प्रथम] मुशरिकों [काफ़िरों] को अरब के जजीरे में से निकाल दो।

उमर [मुहम्मद साहिब की गद्दी का दूसरा बादशाह] ने इस हदीस पर अपने जमाने में अमल करते हुए अरब को काफ़िरों से साफ कर दिया।

पाकिस्तानमें भी इसी हदीसपर अमल हुआ है केवल जजीरतुल अरब के स्थान पर जजीर पाकिस्तान के शब्दों का प्रयोग किया गया है। जब महम्मद साहिब को अरब में स्वयं को रसूल मनवाने के लिए उन शब्दों के प्रयोग का अधिकार था तब जिन्नाह यदि पाकिस्तान में अपने राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिए उस हदीस में एक शब्द बदलने का अपना अधिकार समझे तो उन्हें इससे कौन रोक सकता है? (शेष अगले अङ्क में)

[शेख मक़बुल अहमद के रूप में रह कर १० वर्ष इन्होंने देवबन्द में क़ुरान आदि का गम्भीर अनुशालीन किया। सम्पादक सा० दे०]

— —

बन्धन खोलो !

[श्री कवि कमल जी साहित्यालङ्कार अ० भा० रेडियो देहली]

जग के बन्धन खोलो ! (ध्रुव)
हे कवि ! गायक ! हे जग नायक
विश्व वेणु के स्वर में स्वर भर
चढ़ कर शैल शिखर पर नित यह
महा मन्त्र मुख से बोलो
जग के बन्धन खोलो !

शब्द-शब्द में सांस सांस में, बात-बात में पात-पात में
मानव के प्रति इस दानव की, कटु से कटुतम बात-घात
रसना में रस यह घोलो !
जग के बन्धन खोलो !!

मुक्त करो मानव को मानव, दानव के कटु बन्धन तोड़ो
मानव के इस पुण्य कर्म से, कभी न रे मानव मुख मोड़ो
मानवता पर लगे हुए इस
बन्धन लांछन को धो लो !

बन्धन विहीन नील गगन है, अणु-अणु में नभमें कण-कण में
सर सरिता सागर गिरि वन में, चलता नित नव मुक्त पवन है
सिर की खातिर सिर की बोली
सरदारो हँस हँस बोलो !

इस बन्धन के अन्दर सुन्दर, ढकी हुई है उजियाली
नये चांद ,की नई चांदनी, नये जगत् की हरियाली
खोलो बन्धन अपने युग के
तुम ही निर्माणक हो लो !
जग के बन्धन खोलो ।

वर्ण-व्यवस्था और जाति सूचक उपनाम

(लेखक—श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी एम० ए० रिटायर्ड चीफ जज ज्वालापुर)

आर्य्य समाज में वार्षिकोत्सव वा सम्मेलन आदि के अवसरों पर बहुधा यह प्रश्न उठाया जाता है कि आर्य्यों को अपने नाम के साथ जाति सूचक उपनाम, शर्मा, वर्मा शुक्ल आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिये। कभी २ इस प्रश्न के सम्बन्ध में प्रस्ताव हो कर कुछ निश्चय भी हो जाते हैं। परन्तु उन पर कुछ अमल होता नहीं पाया गया। तो भी ऐसे निश्चयों की उपयोगिता वा उपादेयता पर विचार करना उचित है।

(२) उपनाम ३ प्रकार के हो सकते हैं। १ वर्णसूचक, २ वंशसूचक और ३ अन्य प्रकार के। वर्णसूचक उपनाम ४ ही हो सकते हैं क्योंकि वर्ण भी ४ ही हैं, अर्थात् १ शर्मा ब्राह्मण वर्ण के लिये, २ वर्मा क्षत्रियों के लिये, ३ गुप्त वैश्यों के लिये और दास शूद्रों के लिये। केवल जन्म के आधार पर ऐसे उपनामों का प्रयोग करना अवश्य आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विरुद्ध है यदि उस उपनाम के प्रयोग करने वाले व्यक्ति में उस वर्ण के गुण, कर्म व स्वभाव न पाये जायं क्योंकि आर्यसमाज गुण कर्मों के अनुसार वर्ण मानता है, जन्म के अनुसार नहीं।

(३) वंशसूचक उपनाम असंख्य हैं। उन में मुख्यतया प्रवर और गोत्र सूचक नाम हैं। प्रवर गोत्र का एक जटिल और विवादास्पद विषय है। प्रवरों की संख्या लगभग ४० हैं जिन में से कुछ मुख्य नाम दिये जाते हैं। भार्गव, शौनक, आंगिरस, वामदेव्य, औशनस, गार्ग्य, अम्बरीष, आत्रेय, विश्वामित्र। प्रवरों में बहुत से नाम ऐसे ऋषियों के हैं जो मन्त्र द्रष्टा अर्थात् मन्त्रों के ऋषि भी थे। कुछ विद्वानों का मत है कि पूर्व समय में ब्राह्मणों में प्रवर गुरु शिष्य परम्परा से होते थे। पीछे पिता पुत्र का सम्बन्ध मान लिया गया और क्षत्रिय और वैश्यों ने अपने गुरु (ब्राह्मणों) के प्रवरों को अपनाया।

(४) गोत्रों की संख्या लाखों हैं जो दस समूहों में विभक्त है। वे लगभग सब पिता पुत्र के सम्बन्ध के आधार पर थे। कुछ स्थानिक नाम भी हैं जैसे गान्धार, गांगी, गोदायन सैन्धव, पांचाल। कुछ व्यवसाय के आधार पर मालूम होते हैं, जैसे गायक, पाचक, राज सेवक, सोमयाजी। कुछ विद्वानों का मत है कि गोत्र भी पहले गुरु शिष्य परंपरा के सूचक थे पीछे पिता पुत्र का संबन्ध माना गया। इसमें यह बात भी विचार योग्य है कि संस्कृत में "गुरु" शब्द पिता व आचार्य्य दोनों के लिये आता है।

(५ गोत्रों में बहुत से नाम बड़े विचित्र और उपहास जनक भी पाये जाते हैं। जैसे अज, उलूक, उद्धाक्ष, ऋणी, कण्ड्, कपि, कपि-केश, पिंगाक्षि, वक, मयूर, मर्कट, गर्दभ, दास, हद्रोगी। कुछ अच्छे वा साधारण नाम ऐसे हैं, जैसे वेदभृत, शान्ति, श्रोत्रिय, सुरूप, होता,

हंस आदि। ("गोत्र प्रवर निबन्ध कदम्ब" पुस्तक से उद्धृत)।

(६) जाति सूचक उपनाम अधिकांश में गोत्रों के आधार पर हैं। कुछ स्थानों से संबन्ध रखते हैं। जैसे ब्राह्मणों में सारस्वत, गौड़, कान्यकुब्ज सरयूपारीण, गुजराती, महाराष्ट्र, काश्मीरी। वैश्य व कायस्थों में माथुर आदि।

महाराष्ट्रों में स्थानों के नाम में कर शब्द जोड़ कर बहुधा उपनाम बनते हैं। जैसे, केलकर, सातवलेकर, अम्बेदकर सावरकर, आदि। ऐसे उपनामो के प्रयोग में कोई आपत्ति का कारण नहीं।

कमायूं पर्वत के भागों में बहुत से ब्राह्मण उपजातियों के नाम ग्रामों के नाम से बने हैं, जैसे उनियाल उनीग्राम निवासी, अपल्याल अपला ग्राम निवासी,

७. अग्रवाल व रस्तोगी वैश्य जाति की दो प्रमुख उपजातियां हैं। अग्रवाल अपने को राजा अग्र की सन्तान मानते हैं। रस्तोगी (तथा रोहतगी व रुस्तगी जो रस्तोगियों की ही शाखा हैं) राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व की सन्तान अपने को बतलाते हैं। ये दोनों उपजातियां उपरोक्त आधार पर अपने को क्षत्रियवंशीय मानते हैं। महाभारत के नीचे लिखे श्लोक से पाया जाता है कि जब कर्ण दिग्विजय को गये तो उन्होंने मद्र और मालवगणों के सिवाय आग्रेय व रोहतक गण राज्यों पर भी विजय प्राप्त की थी।

भद्रान रोहितकांश्चैव आग्रेयान मालवानपि।
गणान् सर्वान् विनिर्जित्य नीतिकृत प्रहसन्निव ॥
[महाभारत, वनपर्व, अ० २५४, श्लोक २०]

महा भारत के समय और उसके पीछे भी इस प्रकार के बहुत से गणराज्य (Republics) भारत वर्ष में थे। ये दोनों गणराज्य रोहतक जिले में और उसके आस पास राज्य करते थे। रोहतक अब तक जिले का नाम है और अग्रोहा जो अग्रवालों का उत्पत्तिस्थान माना जाता है रोहतक के पास खंडहर के रूप में पाया जाता है। इस से पाया जाता है कि अग्रवालों व रस्तोगियों के पूर्वज रोहतक के पास दो गणरूप से राज्य करते थे। यदि इन उपजातियों के व्यक्ति अपने नाम के साथ अग्रवाल या रस्तोगी उपनाम लिखें तो यह वैदिक धर्म के विरुद्ध न होगा। परन्तु यह ठीक न होगा कि वे केवल अपने वंश के आधार पर वैश्य या क्षत्रिय वर्ण के ही माने जाएं। एक अग्रवाल बिरादरी का मनुष्य यदि वकील, या जज, या अध्यापक की वृत्ति करता है तो वह ब्राह्मण माना जाना चाहिये, यदि वह फौज, पुलिस, या शासन विभाग में काम करता है तो क्षत्रिय है। यदि जमींदारी, खेती या किसी प्रकार की तिजारत, या व्याज का काम करता है तो वैश्य है। इसी प्रकार रस्तोगी वंश का एक व्यक्ति अपनी वृत्ति और योग्यता के अनुसार किसी वर्ण में हो सकता है। वंश उस का रस्तोगी ही रहेगा।

[८] उपनिषदों से पाया जाता है कि प्राचीन समय में असली नाम के पीछे गोत्र या पिता का नाम रहता था। दृष्टान्त के लिये प्रश्नोपनिषद् में ६ मुनियों का वर्णन है जो ब्रह्मज्ञान

की खोज में पिप्पलाद ऋषि के पास गये थे और उन से ६ प्रश्न किये। उनके नाम इस प्रकार हैं:—

१. सुकेशा भारद्वाज अर्थात् भरद्वाज का पुत्र सुकेशा,
२. शैब्य सत्यकाम अर्थात् शिवि का पुत्र सत्यकाम,
३. सौर्य्यायणी गार्ग्य अर्थात् गर्ग-गोत्री सौर्य्यायणी,
४. कौसल्य आश्वलायन अर्थात् अश्वलायन का पुत्र कौसल्य,
५. भार्गवी वैदर्भि अर्थात् भृगु का पुत्र वैदर्भि,
६. कबन्धी कात्यायन अर्थात् कत का पोता कबन्धी। छान्दोग्य उपनिषद् में गोत्रों के उपनाम सहित जो नाम आते हैं, उन में से कुछ इस प्रकार हैं:—

१. आंगिरस घोर अर्थात् अंगिरा के पुत्र घोर,
२. देवकी पुत्र कृष्ण अर्थात् देवकी के पुत्र कृष्ण,
३. सत्यकाम जाबल अर्थात् जवाला के पुत्र सत्यकाम,
४. हारिद्रुमत गौतम अर्थात् गोतम का पुत्र हारिद्रुमत,
५. श्वेतकेतु आरुणेय अर्थात् अरुणि का पुत्र श्वेतकेतु।

बृहदारण्यक उपनिषद् में कुछ नाम इस प्रकार आये हैं।

१. दध्यङ् आथर्वण अर्थात् अथर्वण गोत्रोत्पन्न दध्यङ्,
२. उषस्त चाक्रायण अर्थात् चक्र के पुत्र उषस्त,
३. गार्गी वाचक्नवी अर्थात् वचक्नु की पुत्री गार्गी,
४. विदग्ध शाकल्य अर्थात् शकल्य का पुत्र विदग्ध।

ऊपर लिखे नाम पिता पुत्र के संबन्ध के प्रतीत होते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् के अध्याय २, ४, व ६ के अन्त में वंश ब्राह्मण दिये गये हैं। उन में स्पष्ट तया गुरु शिष्य परंपरा की सूची है। क्योंकि कोई कोई नाम दो दो बार आये हैं कहीं गुरु व शिष्य के नाम एक ही हैं।

६. दक्षिण में महाराष्ट्र व गुजराती प्रान्तों में अबतक यह प्रथा है कि व्यक्ति के निज नाम के पीछे उस के पिता का नाम जोड़ा जाता है, जैसे श्री महात्मा गान्धी जी का नाम 'मोहनदास कर्मचन्द गान्धी लिखा जाता' है इस में मोहनदास श्री महात्मा जी का निजी नाम है और कर्मचन्द उनके पिता का नाम है। इस प्रथा का आधार वह पुरानी प्रथा ही मालूम होती है जिनके कुछ उदाहरण उपनिषदों से ऊपर दिये गये हैं। इस लिये यह प्रथा अनुकरणीय प्रतीत होती है।

१० उत्तरी भारत में वर्तमान समय में यह प्रथा हो गई है कि व्यक्ति के असली नाम वा उस के दो भागों के प्रथम अङ्गरेजी अक्षर लिखकर उनके साथ उसके गोत्र वा उपजाति का पूरा नाम लिखा जाय। जैसे यदि कोई माथुर जाति का दुर्गाप्रसाद है तो वह अपना नाम D. P. mathur डी. पी. माथुर लिखेगा। यह प्रथा अङ्गरेजों की नकल है जो अपने असली नाम के प्रारम्भिक अक्षर [Initials] लिख कर बाद में अपना वंश का नाम [Family name] पूरा लिखते हैं, जैसे [F. Vames] में पहले २

अक्षर असली नाम के आरम्भिक अक्षर हैं और जेम्स [James] कुल वंश का नाम है। यह प्रथा विदेशियों की नकल होने से भी त्याज्य है और इस में यह बड़ा दोष भी है कि प्रथम अक्षरों से [बिना पूछ ताछ किए] असली नाम मालूम ही नहीं होता और हिन्दी अक्षरों में भी बहुधा अङ्गरेजी रीति की नकल करनी पड़ती है

[११] उप जातियों के नाम बहुत अंश में गोत्रों वा वंशों के आधार पर हैं। इस लिये उन का उपनाम केरूप से प्रयोग यदि वे वंश सूचक हों वर्ण व्यवस्था के सिद्धान्त का विरोधी नहीं, क्योंकि गुण कर्म के अनुसार वर्ण परिवर्तित हो सकता है, परन्तु वंश नहीं बदल सकता।

[१२] सारांश यही निकलता है कि केवल जन्म के आधार पर किसी आर्य्य समाजी को अपने नाम के साथ कोई वर्ण सूचक उपनाम [जो शर्मा, वर्मा, गुप्त, दास वा इसी प्रकार के स्पष्ट वर्ण सूचक नामों में से हो सकता है] प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि कोई वंश सूचक वा गोत्र सूचक उपनाम का प्रयोग करे तो उस से सिद्धान्त की हानि नहीं समझनी चाहिये। इस विषय पर यदि कोई प्रस्ताव किसी सम्मेलन आदि में रखे जावें तो वे भी इसी दृष्टि कोण से रखने चाहियें।

[१३] इस लेख में जो विचार प्रकट किये गये हैं वे मेरे निजी वा व्यक्तिगत विचार हैं। उन को जाति भेद निवारक आर्य परिवार संघ का मत [जिस से मेरा संबन्ध है] नहीं समझना चाहिये। मैं आशा करता हूँ कि आर्य समाज के अन्य विचार शील नेता व विद्वान भी इस विषय पर अपने विचार सार्वदेशिक वा अन्य पत्रों द्वारा लिख कर प्रकाश डालेंगे। मेरा यह भी निवेदन है कि श्री मंत्री सार्वदेशिक आ० प्र० सभा इस लेख की एक प्रति [जो उनके पास पहुंचेगी] उस को कृपया धर्मार्य्य सभा में इस आदेश के साथ भेज देंगे कि धर्मार्य सभा उस प्रश्न पर जो इस लेख में उठाया गया है विचार कर के सभा की सम्मति व्यवस्था रूप से देवे। क्योंकि प्रश्न ऐसा है जिस पर कुछ विवाद होता रहता है।

[इस विषयक हमारी टिप्पणी सम्पादकीय स्तम्भों में देखिये —सम्पादक सा० दे०]

कन्याओं का यज्ञोपवीताधिकार विवेचन

[लेखक—अनुसन्धानकर्ता श्री शिवपूजनसिंह जी 'पथिक' साहित्यालङ्कार 'सिद्धान्त-भास्कर' 'साहित्य शिरोमणि', कानपुर]

[वैदिक धर्म सार्वभौम धर्म है । वेद का उपदेश भगवान ने मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये सृष्टि के प्रारम्भ में दिया अतः वेदों के अध्ययन तथा वैदिक कर्म के अनुष्ठान का अधिकार प्रत्येक ऐसे स्त्री पुरुष को है जो अपने जीवन को पवित्र करना और ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। तथापि सायणादि पौराणिक भाष्यकारों ने इस आधार पर स्त्री शूद्रों के वेदाध्ययन के अधिकार का निषेध किया है कि उनका उपनयन नहीं होता। उदाहरणार्थ श्री सायणाचार्य ने ऋग्वेद भाष्य के उपोद् घात में लिखा है कि:—

"वेदे पूर्वोत्तरकाण्डयोः क्रमेण धर्मब्रह्मणी विषयौ तयोरनन्यलभ्यत्वात् ।………तदुभयज्ञानार्थी वेदेऽधिकारी। स च त्रैवर्णिकः पुरुषः। **स्त्रीशूद्रयोस्तु सत्यामपि ज्ञानापेक्षायाम् उपनयनाभावेन अध्ययनराहित्याद् वेदेऽधिकारः प्रतिषिद्धः।** धर्मब्रह्मज्ञानं तु पुराणादिमुखेन उत्पद्यते।"

(सायणीय वेद भाष्य भूमिका संग्रहः चौखम्बा प्रेस बनारस पृ० ४६)

अर्थात् वेद के पूर्व और उत्तरकाण्ड में धर्म और ब्रह्म ही विषय हैं क्योंकि उनका ज्ञान अन्य किसी के द्वारा नहीं हो सकता। उन दोनों का जो ज्ञान प्राप्त करना चाहता है वह वेद का अधिकारी है और शूद्रों को तो ज्ञान की इच्छा होने पर भी उपनयन न होने से अध्ययन रहित होने के कारण वेद में अधिकार का निषेध है। धर्म और ब्रह्म का ज्ञान उन्हें पुराणादि द्वारा हो जाएगा। यही बात सायणाचार्य ने तैत्तिरीय संहिता भाष्य की भूमिका में और अधिक विस्तारसे लिखी कि:—

अलौकिकोपायबोधको वेदः । स एवोपायो वेदस्य विषयः—नन्वेवं सति स्त्रीशूद्रसहिताः सर्वे वेदाधिकारिणः स्युः इष्टं मे स्यादनिष्टं मा भूदिति आशिषः सार्वजनीनत्वात्। मैवं, स्त्रीशूद्रयोः सत्युपाये बोधार्थित्वे हेत्वन्तरेण वेदाधिकारस्य प्रतिबद्धत्वात् । उपनीतस्यैवाध्ययनाधिकारं ब्रुवच्छास्त्रमनुपनीतयोः स्त्रीशूद्रयोर्वेदाध्ययनमनिष्टप्राप्तिहेतुरिति बोधयति । कथं तर्हि तदुपायावगमः। पुराणादिभिरिति ब्रूमः। अत एवोक्तम् स्त्रीशूद्र द्विज बन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा । इति भारतमाख्यानं, मुनिना कृपया कृतम्। (भागवत १) ४) २५) इति। तस्मादुपनीतैरेव त्रैवर्णिकैर्वेदस्य सम्बन्धः॥

(वेदभाष्य भूमिका संग्रहः ॥ पृ. २-३ ॥)

अर्थात् अलौकिक उपाय को बताने वाला वेद है और जो उपाय को जानने की इच्छा रखता है वह वेद का अधिकारी है। इस पर प्रश्न हो सकता है कि ऐसी अवस्था में स्त्री शूद्र सहित सभी वेद पढ़ने के अधिकारी हो जाएंगे

क्योंकि मेरा इष्ट हो, अनिष्ट न हो ऐसा सभी चाहते हैं। इस पर सायणाचार्य कहते हैं कि नहीं, ऐसा कहना ठीक नहीं। स्त्री शूद्रों के अन्दर ज्ञान की इच्छा होने पर भी, अन्यकारण से उनका वेदाधिकार निषिद्ध है। शास्त्र उपनयन सहित को ही वेदका अधिकार देता है और इस लिये उपनयन संस्कार या यज्ञोपवीत स्त्रियों और शूद्रों का वेदाध्ययन अनर्थ का कारण है ऐसा सूचित करता है। उनको (स्त्री शूद्रों को) धर्म और ब्रह्म के ज्ञान की प्राप्ति कैसे होगी? इस प्रश्न के उत्तर में हम कहते हैं कि पुराणादि के द्वारा। जैसे कि भागवत १-४-२५ में लिखा है कि स्त्री, शूद्र और नीच ब्राह्मण इन के लिये वेद का श्रवण निषिद्ध है इसलिये व्यास जी ने यह पुराण बनाया। इसलिये उपनयन संस्कार युक्त प्रथम तीनवर्णों के पुरुषों के साथ ही वेदका सम्बन्ध है।

ऐसे ही पौराणिक विचारों से पूर्ण लेख स्त्रियों के वेदाध्ययन और वैदिक कर्म काण्ड के अधिकार के विरुद्ध पं० दीना नाथ जी शास्त्री तथा अन्य कुछ कट्टर पन्थी पण्डित 'सिद्धान्त' इत्यादि काशीके पत्रों में निकाल रहे हैं। इस दृष्टि से हमारे स्वाध्याय शील मित्र श्री शिवपूजनसिंह जी कृत यह संग्रह बड़ा उपयोगी है। हमारे स्त्रियों के वेदाधिकार विषयक लेख पाठकों ने 'सार्वदेशिक' में पढ़े ही होंगे। पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि जनवरी १९५८ के प्रथम सप्ताह तक हमारी पुस्तक "स्त्रियों के वेदाधिकार" विषयक सार्वदेशिक सभा की ओर से प्रकाशित हो जायगी जिसमें इन विषयों पर वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, श्रौत सूत्र, गृह्यसूत्र, मीमांसा, स्मृति, इतिहास पुराणादि की दृष्टिसे शङ्कासमाधान सहित विचार किया गया है। तथापि हम "सार्वदेशिक" के पाठकों के लाभार्थ अपने स्वाध्याय शील मित्र श्री शिवपूजनसिंह जी का बड़े परिश्रम से लिखा यह लेख प्रकाशित कर रहे हैं जिससे महर्षि दयानन्द जी के इस विषयक मन्तव्य का पूर्ण समर्थन होता है। हमारा सब वैदिक धर्मप्रेमियों से अनुरोध है कि वे कन्याओं के भी यज्ञोपवीत संस्कार की प्राचीन विधि को अपने घरों में पुनः प्रचलित करके उन्हें वेदादि सत्य शास्त्रों की शिक्षा दिलाएं ताकि वैदिक संस्कृति का सच्चा प्रचार हो जिसकी बड़ी भारी आवश्यकता है।

धर्मदेव विद्यावाचस्पति

सम्पादक सा० दे०]

वर्तमान काल में पौराणिकों ने कन्याओं को यज्ञोपवीत से सर्वथा वञ्चित कर दिया है; परन्तु प्राचीन काल में यह बात नहीं थी। जिस प्रकार वेदमन्त्र द्रष्टा ऋषि हुए हैं उसी प्रकार ऋषिकाएं भी हुई हैं। पं० तडित्कान्त जी वेदालङ्कार अपने "वेद और स्त्रियां" शीर्षक लेख[1] में लिखते हैं:—

ऋग्वेद में स्त्री ऋषियों की सूची:—

गोधा घोषा विश्ववाराऽपालोपनिषन्निषत् ।
ब्रह्मजाया जुहूर्नामागस्त्यस्य स्वसाऽदितिः ॥१॥
इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी ।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती ॥२॥
श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा ।

१. देखो—मासिकपत्र "वैदिकधर्म" औंध, वर्ष १६ फरवरी १९३८ अङ्क २ पृष्ठ १४५ १४६

राञी सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः ॥३॥
बृहद् देवता

अर्थात् निम्न लिखित स्त्रियां ब्रह्मवादिनी हो गई हैं जिनको कि मन्त्रों का साक्षात्कार हुआ था। उनके नाम इस प्रकार हैं:—

(१) गोधा, (२) घोषा काक्षीवती (३) विश्ववारा, आत्रेयी, (४) अपाला, (५) उपनिषद् (६) ब्रह्मजाया जुहू, (७) अगस्त्य की स्वसा अदिति (८) इन्द्राणी [शची पौलोमी] (९) इन्द्रमाता, (१०) सरमा, (११) रोमशा, (१२) उर्वशी, (१३) लोपामुद्रा, [अगस्त्य की पत्नी], (१४) नद्यः, (१५) यमी (वैवस्वती) (१६) नारी शश्वती, (१७) श्रीः (१८) लाक्षा (१९) सार्पराज्ञी (२०) वाक् (२१) श्रद्धा (कामायनी) (२२) मेधा, (२३) दक्षिणा (२४) रात्री, (भारद्वाजी) (२५) सूर्या (सावित्री) (२६) ममता।

ममता उपर्युक्त श्लोक में नहीं है, पर ऋग्वेद की ऋषिकाओं में उसका उल्लेख है। इन स्त्री ऋषियों के मन्त्रसूक्तादि के पते निम्न लिखित हैं:—

नं०	स्त्री-ऋषियाँ	मण्डल	सूक्त	मंत्र	अष्टक	अध्याय	वर्ग
१.	रोमशा	१	१२६	७	२	१	११
२.	लोपामुद्रा	१	२७९	१-६	२	४	२१
३.	नद्यः	३	३३	४-६-८-१०	३	२	१२
४.	विश्ववारा	५	२८	१-६	४	१	२२
५.	ममता	६	१०	२	४	५	१२
६.	नारी शश्वती (अङ्गिरा की पत्नी)	८	१	३४	५	७	१०
७.	अपाला	८	९१	१-७	६	६	१४
८.	यमी	१०	१०	१-३-५	७	६	६
				७-११-१३	७	८	१५
९.	घोषा	१०	३९	१-१४	७	८	१८
			४०	१-१४			
१०,	अदिति (अगस्त्य की बहन)	१०	६०	६	८	१	२३
११.	सूर्या (सावित्री)	१०	८५	१-४७	८	३	२०
१२.	इन्द्राणी	१०	१४५	१-६	८	८	३
	शची (पौलोमी)	१०	१५९	१-६	८	८	१७
१३.	उर्वशी	१०	९५	४-१८	८	५	१
१४.	दक्षिणा	१०	१०७	१-११	८	६	३
१५.	सरमा	१०	१०८	०	८	६	५
१६.	ब्रह्मजाया जुहू	१०	१०९	१-७	८	६	७

नं०	स्त्री-ऋषियाँ	मण्डल	सूक्त	मंत्र	अष्टक	अध्याय	वर्ग
१७-	वाक्	१०	१२५	१-८	८	७	१०
१८.	रात्री (भारद्वाजी)	१०	१२७	१-८	८	७	१४
१९.	गोधा	१०	१३४	६-७	८	७	२२
२०.	श्रद्धा	१०	१५१	१-५	८	८	९
२१.	इन्द्रमाता	१०	१५३	१-५	८	८	११
२२.	सार्पराज्ञी	१०	१८९	१-३	८	८	४७
२३.	यमी	१०	१५४	१-५	८	८	१२

ऐसे ही उपर्युक्त प्रमाण अनेक विद्वानों ने अपने २ ग्रन्थों² में प्रदर्शित किया है। अब यहाँ वेद, शास्त्र पुराणादि के प्रमाण दिए जाते हैं जिससे स्पष्टतया ज्ञात हो जाय कि स्त्रियों का यज्ञोपवीत धारण करना शास्त्रानुकूल है। सर्व प्रथम वेद का प्रमाण देखियेः—

"देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः। भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्" [ऋ० मं० १० सूक्त १०९, मं० ४ तथा अथर्व० का० ५ सू० १७, मं० ६]

इस मंत्र का अर्थ भिन्न २ विद्वानों ने भिन्न २ रीतियों से किया है, परन्तु अधिकांश विद्वान् इस पक्ष में हैं कि यह मंत्र स्त्रियों को यज्ञोपवीत धारण का विधान ज्ञात कराता है।

श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ आचार्य श्री मदयानन्दोपदेशक विद्यालय, लाहौर अपनी पुस्तक³ में लिखते हैं:—

"(देवाः) दिव्य शक्तिसम्पन्न (पूर्वे) पूर्व नियमानुसार रचित (सप्त ऋषयः) सात ऋषिः आँख, नाक, कान, आदि इन्द्रियां (ये) जो (तपसे) तप ज्ञान के लिए (निषेदुः) निरन्तर गति करते रहते हैं। वे (एतस्यां) इस उपनीत ब्राह्मणी के विषय में मानों (अवदन्त) कह रही हैं, कि (ब्राह्मणस्य) वेदाध्येता की [जाया] जाया [उपनीता]

२. "बृहद्देवता ११। ४ 'आर्षानुक्रमणी' १०। १०२ पं० शिवशर्माकृत "धर्मशिक्षा" तृतीय भाग, द्वितीय संस्करण पृ० ५०, २६, पं० शिवशङ्कर शर्मा काव्यतीर्थ कृत "वैदिक इतिहासार्थ निर्णय" पृष्ठ ३५८, ६५६, पं० यशपाल सिद्धान्तालङ्कार कृत "वैदिक सिद्धान्त दर्पण" प्रथम संस्करण पृष्ठ ९७, पं० महाराणी शङ्कर अम्बाशङ्कर शर्मा कृत "कन्योपनयन विधि" प्रथमावृत्ति, पृष्ठ १४-३५, पं० मनसा राम जी आर्योपदेशक 'वैदिकतोप' कृत "पौराणिक पोल प्रकाश" प्रथम भाग, प्रथम संस्करण पृष्ठ ४७१, पं० राजाराम शास्त्री कृत "शास्त्र-रहस्य" प्रथम भाग पृष्ठ ८६-८७० आचार्य रामदेव जी कृत "भारत वर्ष का इतिहास" (वैदिक तथा आर्षपर्व) तृतीयावृत्ति, पृष्ठ १४१।

३. "वैदिक धर्म" प्रथम संस्करण, पृष्ठ १४३-१४४।

यज्ञोपवीत धारण करके [भीमा] भयङ्कर सबला बन जाती है और (दुर्धाम्) अन्य दुर्धार्ष्यों को भी अथवा दुष्ट प्रकृतिवालों को भी [परमे] उत्कृष्ट [व्योमन्] सुखमय अवस्था में [दधाति] धारण कर देती है।

पति सुशिक्षित हो पत्नी अशिक्षिता हो तो कलह ही रहता है। किन्तु स्त्री सुशिक्षिता हो तो दुष्ट से दुष्ट प्रकृति के पति को सुधार लेती है। सुशिक्षिता स्त्री पापी के लिये अत्यन्त भयङ्कर होती है। उसकी विद्या, सुशिक्षा का उसकी इन्द्रियें भी साक्ष्य देती हैं। यज्ञोपवीतिनी स्त्री का उठना, बैठना आदि सारी क्रियाएं अत्यन्त सुव्यवस्थित तथा प्रामाणिक होती हैं *

प्रतिष्ठित स्नातक पण्डितवर्य्य श्री धर्मदेवजी 'विद्यावाचस्पति' 'सिद्धान्तालङ्कार' तर्क-मनीषी 'संस्कृत-धुरीण' 'साहित्य-भूषण' देहली अपने एक लेख[४] में इसका अर्थ करते हैं:—

"ऋ० में भीमाजाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्" इस मन्त्र द्वारा ब्राह्मण स्त्री के लिए उपनीता विशेषण का प्रयोग स्पष्ट है। उपनयन वेदाधिकार का सूचक संस्कार है इसमें सन्देह नहीं हो सकता।"

विद्वद्वर्य पं० रामावतार जी 'तीर्थ चतुष्टय' ने इसका अर्थ[५] लिखाया है:—"भीमा पापा नाम भयङ्करी-पापियों को भय देने वाली [ब्राह्मणस्य] विद्वान् की [जाया] स्त्री का [उपनीता] उपनयन संस्कार हुआ है।"

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य निखिल-शास्त्रनिष्णात पं० स्वामी हरिप्रसाद जी वैदिक मुनि (उदासीन) अपनी पुस्तक[६] में लिखते हैं:—"ब्राह्मण की स्त्री जिसका उपनयन हुआ है, भयङ्कर होती है।"

पं० जगत् कुमार जी 'शास्त्री' लिखते हैं:—"दिव्य शक्ति-सम्पन्न एवं नियमानुसार रचित सात ऋषि यानी आँख, नाक, कान आदि इन्द्रिएँ जो तप अर्थात् ज्ञान के लिए निरन्तर गति करती हैं वह इस ब्राह्मणी के विषय में मानों कह रही हैं कि वेद अध्येता की पत्नी यज्ञोपवीत धारण करके भयङ्कर शीला बन जाती हैं और दुष्ट प्रकृति वालों को भी ऊँची सुखमय अवस्था में धारण कर देती हैं[७]।

विद्वद्वरेण्य आर्य पण्डित श्री उषर्बुध जी अपने एक पत्र[८] में लिखते हैं:—

---

* ऐसा ही अर्थ, शास्त्रार्थ महारथी पं० मनसाराम जी "वैदिक तोप" ने भी अपने ग्रन्थ पौराणिक पोल प्रकाश" प्रथम भाग, प्रथमा वृत्ति, पृष्ठ ४६१। में किया है।

४. मासिकपत्र "आर्य" लाहौर, भाग १४ सितम्बर १९३२ ई० अङ्क ५, पृष्ठ २१५ कालम १, "वेदाधिकार" शीर्षक लेख।

५. आपने उपर्युक्त अर्थ दिनाङ्क ११।११। १९४३ ई० में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के लाहौर के कार्यालय में लिखाया था—लेखक।

६. "स्वाध्याय संहिता" प्रथमावृत्ति, पृष्ठ १०५, अध्याय ६, कालम २।

७. "वैदिकडिप्लोमा" उर्दू प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३८, कालम २।

८. दिनाङ्क १८।५।४६ को वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर से लेखक के नाम पत्र।

"(ये, जो (सप्त ऋषयः) सात प्रकार के ऋषि पहले [illegible] (देवाः) विद्व[illegible] तपसे निषेदुः) [illegible]वयादि साधक हैं, वे [एतस्यां] इस विषय में ([illegible]वद[illegible]त) उपदेश करते हैं कि (ब्राह्मस्य [illegible] के इच्छुकों [illegible] (भीमा) बहुत शक्ति युक्त [illegible] शान (उपनाय) [illegible] करते हुए परमे-व्योमन उत्तम कार्यों में, सहायता देती हुई उन कार्यों को (अदुधा दधाति) सुगम कर देती है।"

स्वसिद्धान्तः—ऋ० १० । १० इत्यादि ऋचाओं पर श्री सायणाचार्य जी लिखते हैं:—

"इसमें विद्वान् इतिहास कहते हैं कि जुहू यह वाक् का नाम है। यह बृहस्पति की जाया हुई। दुर्भाग्य के कारण बृहस्पति ने इस पाप की आशङ्का कर इसको त्याग दिया। पश्चात् आदित्य आदि देव परस्पर विचार, इसको अपापा बना बृहस्पति को दे बोले कि यह जुहू निष्कलङ्का और अपापिनी है। आप उसको पुनः ग्रहण कीजिये और सर्व सन्देह त्यागिए। हम सब देव इसके साक्षी हैं, इत्यादि।"

परलोकगत श्री रमेशचन्द्र दत्त जी उसी अर्थ को दिखाकर अपने "बङ्गला ऋग्वेदभाष्य" पृष्ठ १३०१ (१३-१६ साल) में टिप्पणी लिखते हैं:—

"ए सूक्ते र मर्म ग्रहण करिते परिलामना। सूक्टी अपेक्षाकृत आधुनिक ताहार सन्देह नाई एवं अनेक आधुनिक सूक्तेर न्याय गूढ़भावे विजड़ित! इहाते जे ब्रह्मचारित्वेर कथा आछे। ऋग्वेदे प्रथम अंश समूहे से कथाय कोनओ क्लेश नाई। बृहस्पतिर स्त्रीर सतीत्व सम्बन्धे सन्देह जन्मई एइ सूक्तेर विषय!"

[illegible]—"इसका भावार्थ है कि मैंने इस सूक्त के [illegible] को न समझा। यदि बृहस्पति की स्त्री को चरि[illegible]ना ही दिखाना इस सूक्त का उद्देश्य है, तो यह सूक्त आधुनिक क[illegible] जायगा।"

वास्तव में श्री सायणाचार्य जी ने इसका अश्लील अर्थ करके वेद की महत्ता को घटाया है और अपनी कलुषित बुद्धि का परिचय दिया है।

इन्हीं की देखादेखी पाश्चात्य विद्वानों (ग्रीफिथ, मैक्समूलर प्रभृति) ने भी उस अश्लील कथा को लिखा है।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ऋ० के १० मण्डल पर भाष्य नहीं कर सके, अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि उनके मत में इस का क्या अर्थ होता? किन्तु जब इस सूक्त की ऋषिका ब्रह्मजाया * है तो मेरी सम्मति में

---

* ते ऽवदन् सप्तजुहू ब्रह्मजाया ब्राह्मो वा ऊर्ध्वनाभा सर्वाः। ६२।

तेऽवदन्निति सूक्तस्य ब्रह्मजाया जुहूर्मुनिः।

अथवोर्ध्वनाभा नाम ब्रह्मपुत्र ऋषिः स्मृतः। वृ०। आर्षा।'

'ते ऽवदन्' इत्यादि १०। १०९ वें सूक्त की ऋषिका ब्रह्मजाया जुहू अथवा ब्रह्मपुत्र ऊर्ध्वनाभ हैं। इससे सिद्ध है कि कात्यायन, शौनक की सम्मति के अनुसार पक्षान्तर में १०। १०९ वें सूक्त की ऋषिका एक स्त्री है। यह देवी किसकी जाया और कहाँ रहती थी, इसका पता नहीं किन्तु किसी ब्रह्मवित् पुरुष की पत्नी होने के कारण ब्रह्मजाया कहाती थी ("वैदिक इतिहासार्थ निर्णय" प्रथम भाग, पृ० ४५७-४५८)

इसका अर्थ कन्याओं के लिए यज्ञोपवीत ही परमोचित है। विद्वन्मण्डली इस सूक्त पर विचार करे कि वास्तविक अर्थ क्या है?

"प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयञ्जपेत् सोमोऽददद् गन्धर्वायेति"।

(गोभिल गृ० सू० प्र. २, खं. १, सू• १६-२२; जैमिनीय न्यायमाला विस्तर पृष्ठ ३०५, आनन्दाश्रम संस्करण)

अर्थः—'जो कन्या उत्तम वस्त्रादि (प्रावृत) आच्छादित और (यज्ञोपवीतिनीम्) यज्ञोपवीत धारण की हो, उस कन्या को विवाह शाला में लावें, और 'सोमोऽददद्' इत्यादि मन्त्रों को वर पढ़े।'

मन्त्र के अर्थ पर विचारः- कतिपय व्यक्ति 'यज्ञोपवीतिनी' का अर्थ "वस्त्र को यज्ञोपवीत की नाँई धारण की हुई" ऐसा करते हैं, परन्तु यह खींचातानी है। पुरुष को 'यज्ञोपवीती' कहने में जो अर्थ प्रकट होता है, वही स्त्री को 'यज्ञोपवीतिनी' कहने में होना चाहिए और यहां यही अर्थ अभि प्रेत है, यह इससे स्पष्ट है, कि यज्ञोपवीतिनी के साथ 'प्रावृतां' दुपट्टा ओढ़े हुई, अलग कहा है और इससे पूर्व सूत्र में समन्त्रक वस्त्र पहनाने का विधान है। देखिये—

अहतेन वसनेन पतिः परिदध्याद् या अकृन्तन्नित्येतयर्चा, परिधत्त धत्त वाससेति च" (गोभिल गृ० सू० २। १ १८)

(शेष अगले अङ्क में)

हमारा भारत

[लेखक—विद्या वारिधि रुद्रमित्र जी शास्त्री "कमलेश" सेनापति, संयुक्त प्रान्तीय आर्य वीर दल]

"आज हिमालय की चोटी से यह सन्देश हमारा है"

भारत भू पर वही रहेगा, जिसको भारत प्यारा है।
जिसको भारत प्यारा है और जो भारत का प्यारा है ॥
जिसका जन्म स्थान यहां है, जिसका वास स्थान यहां।
आदि सृष्टि से ले कर जिसने इस पर तन मन वारा है ॥
जो अपना सर्वस्व जानकर, जो इसको सर्वस्व मानकर।
जो इस पर सर्वस्व लुटाकर, सब दिन का रखवारा है ॥
भारत हित तनमन है धन है, जिसका जीवन और मरण है।
न्योछावर है प्राण अमर स्वासों का एक सहारा है ॥
जो अपनी ही चिता सजाकर, अरमानों के दीप जलाकर।
जो आरती उतारा है मां का बस वही दुलारा है ॥
इस पर जो "कमलेश" सदा निज आहुति दे बलिदान हुये।
जो शहीद हो अन्तिम क्षण तक जय जय कार उचारा है ॥
आवो जन-बन्धन को खोलें जननी की फिर जय जय बोलें।
हम सब मिल नर-नारी बोलें।
भारत वर्ष हमारा है यह भारत वर्ष हमारा है ॥

हमारी राष्ट्र भाषा

[लेखक—प्रो० रघुवीर जी एम. ए. पी. एच. डी.]

[भारत की राष्ट्र भाषा के प्रश्न पर हम अपने विचार 'सार्वदेशिक' के सम्पादकीय स्तम्भों में अनेक बार प्रकाशित कर चुके हैं। डा० रघुवीर जी एम० ए०, पी० एच० डी० आर्यावर्त के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त गम्भीर विद्वानों में से हैं जिन्होंने उत्तर-भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त दक्षिण भारत, श्याम, चीन आदि की भाषाओं का भी अनुशीलन किया हुआ है। महात्मा गांधी जी ने पिछले दिनों प्रार्थना-सभा के एक भाषण में फिर भाषा के प्रश्न पर अपने विचारप्रकट करते हुए उर्दू के विषयमें कहा कि वह भारतीय भाषा है क्योंकि उसकी उत्पत्ति भारत में हुई। डा० रघुवीर जी के लेख में इस विषय पर बड़ा उत्तम प्रकाश डालते हुए बताया गया है कि 'भौतिक दृष्टि से ये लोग (जिन्होंने उर्दू भाषा को जन्म दिया) भारत में ही जन्मे थे और भारत में ही इनका लालन पालन हुआ था, परन्तु अपनी शिक्षा दीक्षा और भावना तथा बुद्धि की दृष्टि से वे अरब और फारस के दास थे।' उनके लिए और उनके अनुयायियों के लिए भारत की प्रत्येक वस्तु निषिद्ध एवं गर्हित थी। उन्होंने भारतीय साहित्यिक परम्परा से विच्छेद कर लिया और उर्दू या हिन्दुस्तानी के नाम से एक नई भाषा और नये साहित्य को जन्म दिया।" इत्यादि। महात्मा गांधी जी से भी हमारा अनुरोध है कि वे डा० रघुवीर जी के इस लेख को ध्यान पूर्वक पढ़ने का कष्ट उठाएँ ताकि उर्दू विषयक उनके अशुद्ध विचार दूर हो सकें।

—सम्पादक सा० दे०]

संसार में ऐसे देश अनेक नहीं हैं, जिनकी आबादी और आकार भारत जितना हो और जहाँ केवल एक ही भाषा बोली जाती हो। चीन बहुत बड़ा देश है और यह दावा किया जाता है कि वहां एक सीमा से दूसरी सीमा तक एक ही भाषा का प्रभुत्व है। पर यह बात आंशिक रूप में ही सत्य है। चीन में उत्तर में बोली जाने वाली भाषा दक्षिण में बोली जाने वाली भाषा से अनेक अंशों में भिन्न है। उत्तर दक्षिण में केवल लिखी जाने वाली भाषा समान है। लिखित भाषा की समानता भी बड़ी चमत्कारिक घटना है। संसार के किसी और दो प्रदेशों में ऐसी बात नहीं मिलेगी। जिस तरह संसार की अन्य भाषाओं में होता है कि बोली जाने वाली ध्वनियां ही लिखित भाषा के रूप में अभिव्यक्त की जाती है, उसी प्रकार चीनी भाषा में नहीं होता। यह किस प्रकार सम्भव है--पाठकों को यह बात समझने में कठिनता होगी। उदाहरण के लिये मैं १, २, ३ के अङ्कों को लेता हूँ। यूरोपीय भाषाओं में लिखे जाने वाले अंक तो सब समान हैं परन्तु उनका उच्चारण भिन्न-भिन्न होता है। अंग्रेजी में एक को (One) कहते हैं, फ्रेंच में (un) और जर्मनी

में 'आइन' (Ein) इत्यादि। चीन में भाषा के प्रत्येक अन्तर के साथ ऐसा ही व्यवहार होता है। लगभग १ दर्जन मुख्य-मुख्य बोलियां हैं, जिनमें मुद्रित अक्षर को अपने ढंग से बोला जाता है। इस प्रकार बोली जाने वाली भाषा तो प्रति प्रान्त में बदलती जाती है, परन्तु लिखित भाषा सारे देश में एक ही है। पिछले दो सहस्र वर्ष से उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। दूसरा विस्तृत प्रदेश जिसमें एक भाषा बोली जाती है, रूस है सरकारी सूचनाओं के अनुसार सोवियत रूस के प्रजातन्त्र में लगभग ८० भाषायें बोली जाती हैं। परन्तु मुख्य भाषा रशियन भाषा का लादना एक राजनैतिक आवश्यकता है। परन्तु सोवियत रूस के सब प्रजातन्त्रों की कुल आबादी दस करोड़ है जब कि उसकी तुलना में हमारी आबादी पैंतीस करोड़ है।

भारतवर्ष में प्रान्तों को भौतिक बाधायें विच्छिन्न नहीं करती। उत्तर भारत और दक्षिण भारत की जनता के बीच में विन्ध्य बाधक नहीं बन सकता। अब से बहुत समय पहले रामायण के राम ने ही इस बाधा को पार कर लिया था। आर्य भाषायें उदाहरणार्थ मराठी विन्ध्य के पार भी बहुत दूर तक पहुंची हैं, जब कि सिंहली जो विशुद्ध रूप से आर्य भाषा है समुद्र के पार भी लंका तक पहुंची है। सांस्कृतिक दृष्टि से दक्षिण भारत की भाषाएँ अपनी भारत की अन्य बहनों से पृथक् नहीं हैं। अभी थोड़े समय पहले ही कतिपय प्रदेशों में उत्तर भारत विरोधी भावना को उकसाया गया है। किन्तु [illegible] भी केवल ऊपरी सतह पर है और वह शीघ्र ही समाप्त भी हो जायगी।

उत्तर भारत में मुख्यतः ७ भाषायें हैं पंजाबी, हिन्दी, बंगाली, आसामी, उड़िया, मराठी और गुजराती। इनका साहित्य एक सहस्र वर्ष पूर्व तक पहुंचता है। इनमें बहुमूल्य पद्य साहित्य है। गद्य साहित्य का विकास अपेक्षाकृत नवीन है पर उसमें भी लगातार उन्नति हो रही है। प्रत्येक भाषा को अपने साहित्य पर गर्व है और शक्ति एवं सौन्दर्य दृष्टि से उसे किसी के सामने हाथ फैलाने की आवश्यकता नहीं। इसके अतिरिक्त उस अपनी भाषा के प्रति प्रेम स्वाभाविक है और बद्धमूल है।

हिन्दी की स्थिति

उन सीमा-रेखाओं पर जहां दो या कभी-कभी तीन भाषायें मिलती हैं ऐसे सामान्य और उच्च सुसंस्कृत व्यक्ति मिल जायंगे जो दोनों या तीनों भाषाओं के बोलने वाले हों। हिन्दी की स्थिति केन्द्र की है और अहिन्दी लोग भी हिन्दी बोल, लिख और पढ़ सकते हैं। हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगाली और नेपाली से घिरी हुई है। इसके साथ ही ऐसे लोग बहुत कम हैं जो गुजराती और मराठी, उड़िया और बंगाली, नेपाली और आसामी को साथ-साथ बोल सकते हैं। आसाम और उड़ीसा में बंगाली का प्रभाव बहुत अधिक है। एक तरह से यह कहा जा सकता है बिहार प्रांत, संयुक्त प्रांत, पूर्वी पंजाब, मध्यप्रांत और राजपूताना की रियासतों को हिन्दी आच्छादित करती है। मराठी के दो प्रांत हैं। बंबई और मध्यप्रांत

[बरारके राष्ट्र] गुजराती बम्बई के प्रांत के स्वल्प प्रदेश को प्रावृत करती है। उड़िया बंगाली और आसामी क्रमशः अपने-अपने प्रांत की भाषायें कही जा सकती हैं। पंजाबी केवल पूर्वी पंजाब के कुछ हिस्से में है। इस तरह यह पता लग जाता है कि हिन्दी उत्तर भारत की भाषाओं के मध्य योजक शृंखला होने के साथ-साथ अधिकाधिक राजनैतिक इकाइयों की भी भाषा है। उसका अपना क्षेत्र भी बहुत बड़ा है। हिन्दी के बोलने वालों की संख्या लगभग २२ करोड़ २२ लाख है। यह उच्च संख्या बिहारी, राजस्थानी, अवधी और बुन्देलखण्डी और अन्य बोलियों को मिलाकर प्राप्त की गई है। यदि भौतिक बाधाएँ पृथक् कर सकती तो ये बोलियां ही पृथक् भाषायें बन जातीं। इन उपर्युक्त बोलियों को बोलने वाले साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिये परिष्कृत पश्चिमी हिन्दी का प्रयोग करते हैं। हिन्दी के पराजित होने की कोई सम्भावना नहीं है। नैपाल में भी जहां कि पृथक् भाषा स्पष्ट है, हिन्दी स्थान प्राप्त करती जा रही है, पूर्वी पंजाब में यह समस्त प्रदेश को विजय कर लेगी। दिल्ली से शिमला तक फैला अम्बाला डिवीजन तो पहले से ही हिन्दी भाषियों से ओत-प्रोत है।

'बंगाली' गुजराती और मराठी के लिए हिन्दी-भाषियों के मन में प्रेम की भावना है। इन भाषाओं की किसी भी अच्छी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद बाजार में सरलता से अपना स्थान बना लेता है। इसी प्रकार बंगाली, गुजराती और महाराष्ट्र के निवासी इसमें गर्व अनुभव करते हैं कि उन्हें हिन्दी का ज्ञान है। पुनरपि, यह स्वीकार किया जाता है कि बंगाल में कुछ-कुछ ऐसी भावना है कि हिन्दी स्थान-हरण कर रही है। अन्य प्रदेशों में भी कुछ इस तरह का भाव पाया जाता है। पर इससे हिन्दी की गति अवरुद्ध नहीं होगी।

हिन्दी के प्रतिद्वन्द्वी

यदि हिन्दी का कोई प्रतिद्वन्द्वी है तो वह हिन्दुस्तानी है। हिन्दुस्तानी क्या है? स्वर्गीय सर जार्ज ग्रियर्सन के अध्ययनपूर्ण पथ-प्रदर्शन में तैयार किये गये हिन्दुस्तानी की भाषाओं के मान चित्र में यदि कोई खोजे तो उसे हिन्दुस्तानी शब्द की चर्चा भी कहीं नहीं मिलेगी। हिन्दुस्तानी के संरक्षकों ने गंगा की घाटी में बोली जाने वाली, जनता की भाषा के रूप में इसकी परिभाषा की है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से गंगा की उपत्यका में बोली जाने वाली भाषा का नाम हिन्दी है और वह मुख्यतः दो शाखाओं में विभक्त है—पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी। मुसलमानों के शासन काल में फारसी अदालती भाषा थी, परन्तु मुगल शासक भी ब्रजभाषा और अवधी में कविता किया करते थे, क्योंकि उस मध्य युग में अपनी काव्य प्रतिभाकी अभिव्यक्ति के लिये ये ही परिष्कृत भाषायें व्यवहार में आती थीं। भारत के इतिहास में मुगल कालकी समाप्ति पर ही यह बात दृष्टिगोचर होती है कि हिन्दीपर अरबी और फारसी का शासन प्रारम्भ होता है। यह उन मुसलमानों ने प्रारम्भ किया था जो भारतीय साहित्य परम्परा के प्रति तीव्र घृणा और

अवहेलना की भावना से ओतप्रोत थे। व्यवस्थित रूप से उन्होंने जनता की भाषा से चुन-चुन कर एक-एक सुबोध शब्द को निकाल फेंका और उसके स्थान पर ठेठ अरबी-फारसी पराये और दुर्बोध शब्द एवं पद चुन कर रक्खे। भौतिक दृष्टि से ये लोग भारत में ही जन्मे थे और भारत में ही इनका लालन पालन हुआ था, परन्तु अपनी शिक्षा-दीक्षा और भावना तथा बुद्धि की दृष्टि से ये अरब और फारस के दास थे। उनके लिये और उनके अनुयायियों के लिते भारत की प्रत्येक वस्तु निषिद्ध एवं गर्हित थी। उन्होंने भारत-साहित्यिकपरम्परा से पूर्ण विच्छेद कर लिया और उर्दू या हिन्दुस्तानी के नाम से एक नई भाषा और नये साहित्य को जन्म दिया। सर जार्ज ग्रियर्सन ने एक बार मेरे सामने टिप्पणी की कि बाह्य दृष्टि से देखा जाय तो उर्दू या हिन्दुस्तानी एक भाषा सम्बन्धी कपोल कल्पना है। इस भाषा में इतनी तो पुस्तकें और पत्र पत्रिकायें हैं कहकर जब मैंने विरोध प्रदर्शित करनेका प्रयत्न किया तो उन्होंने अपने कंधे उचका लिये और कहा—'यही तो भाषा सम्बन्धी डकैती और ठगी है। सर जार्जका मन्तव्य यह था कि ऐसा कोई आधार है ही नहीं जिस पर उर्दू खड़ी हो सके। लाहौर, दिल्ली, लखनऊ और दक्षिण भारतमें हैदराबाद-ये ही उर्दू के मुख्य केन्द्र हैं। लाहौर की जनता की मातृभाषा पंजाबी है। फिर वहां उर्दू का प्रसार कैसे हो गया? सबसे अधिक समाचार पत्र-पत्रिकाएं और पुस्तकें लाहौर शहर में ही निकलती हैं। लाहौर में उर्दू का ऐसा एक भी लेखक नहीं है जिसकी मातृभाषा पंजाबी न हो। दोनों भाषाओं से उत्पन्न प्रतिभाओं में और प्रतिभाशाली व्यक्तियों में दो ध्रुवोंका-सा अन्तर है। उर्दू और उसमें लिखे गये साहित्यके विषयों में न लहजा, न बोलने का प्रकार, न साहित्य, न शारीरिक या मानसिक जीवन कुछ भी तो नहीं मिलता। उर्दू तो पंजाब की जनता पर निश्चय ही ऊपर से लादी गई है। देहली एक हिन्दू नगर है। जन-सामान्य की भाषा पश्चिमी हिन्दी है। फारसी और अरबी के वातावरण के साथ दिल्ली की जनता की क्या सहानुभूति हो सकती है? लखनऊ का सम्बन्ध अवधीके साथ है। उस अवधी के साथ जो तुलसी दास की अमर रामायण की भाषा है। लखनऊ के कुछ अमीर-उमराओं का निम्न कोटिका जीवन अवध की जनता को न तो पथ दिखा सकता है, न आदर्श बन सकता है। हैदराबाद में जनता की भाषा मराठी या तेलगू है। ज्यों ही रियासत की शासन-व्यवस्था में लोकतन्त्रात्मक सिद्धान्तों का प्रचलन होगा त्यों ही शासनतन्त्र और शिक्षा की भाषाओं के रूप में मराठी और तेलगू अपना उचित स्थान ग्रहण कर लेंगी। सर जार्ज ग्रियर्सन इसी तरह युक्तियां देते रहे और घंटों देते रहे। जार्ज ग्रियर्सन में यह साहस था कि जो कुछ देखते थे उसे मुख से भी कह सकते थे।

जब ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने शासन सूत्र सम्भाला तो देशके कई भागों में फारसी उर्दू को अदालती भाषा स्वीकार किया गया। कानून और व्यवस्था की भाषाको समुन्नत करने के लिये अरबी के विद्वान् नियुक्त किये गये। इस भाषा पर दृष्टिपात करने से ही पता लग जायगा कि उस में मनु, याज्ञवल्क्य, कौटिल्य कामन्दक, शुक्र, अशोक, चन्द्रगुप्त और हर्ष की पुरातन न्याय-प्रणाली का कहीं नाम निशान भी नहीं है। प्रत्युत अरबी और फारसी प्रणाली दृष्टिगोचर होगी और जिन प्रणालियों का उन देशों में प्रचलन नहीं था और वे उधार नहीं ली जा सकती थी वहां भी अरबी द्वारा नामकरण किये गये हैं।

अन्य भारतीय भाषाओं के साथ उर्दू का न तो कोई साहित्यिक सम्बन्ध है, न सांस्कृतिक और न धार्मिक। उर्दू सबसे अलग है और लगातार उनसे दूर ही होती जा रही है। उनमें प्रयुक्त उसे शब्दावली से घृणा है। इसके साहित्यिक उपादान सर्वथा भिन्न हैं और उनका सम्बन्ध उन देशों से है जो समुद्रों और पर्वतों के पार हैं। इसकी धार्मिक भावना उनके साथ नहीं मिलती। इसके शूरवीर नायक उनके देश के नहीं हैं। फल, फूल, नदी, पर्वत, जङ्गल कुछ भी हिन्दुस्तानी नहीं। उर्दू गद्य और पद्य में जिन विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति की जाती है वे भारतीय साहित्य में अभिव्यक्त भावनाओं से भिन्न हैं। यहां तक कि सामान्य प्रेम के विषय में भी उर्दू का कवि सुन्दर किशोरियों के स्थान पर किशोर लड़कों की ही चर्चा करेगा। हिन्दी और उत्तर भारत की अन्य भाषाओं तथा द्राविड़ भाषाओं का व्याकरण भी समान नहीं है, पर शब्दावली, धर्म और दर्शन आदि विषयों में उत्तर और दक्षिण एक ही सभ्यता को पोषित करते हैं। उनकी विभिन्नता में भी सम्भवतम एकता है। उत्तर और दक्षिण भारत के वासी एक साथ ही रामायण, महाभारत और पुराणों को पढ़ सकते हैं। भास, कालिदास और भवभूति उनके साहित्य को समान रूप से प्रेरणा देते हैं। कमल और चन्दन उनके कवित्वमय वर्णनों के समान विषय हैं। उनके जीवन और साहित्य दोनों को वेदान्त से दार्शनिक पृष्ठ भूमि प्राप्त होती है।

उर्दू में से अरबी और फारसी के शब्दों को निकालकर उनकी शुद्धि करने या उसमें भारतीय विषयों और संस्कृत शब्दों का समावेश करके उसको भारतीयकरण करने से उर्दू के हिमायती सन्तुष्ट नहीं किये जा सकते इस लिये उर्दू को हिन्दुस्तानी के रूप में जन सामान्य की भाषा बनाने का स्वप्न देखना केवल प्रमाद है।

अपने सरल रूप में भारत की जनता के लिये और अपने उच्च साहित्यिक संस्कृत-निष्ठ रूप में दक्षिण और उत्तर भारत में साहित्यिक व्यक्ति के लिए केवल हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो राष्ट्र भाषा का काम दे सकती है।

आर्य जगत्

"जातिभेद निवारक आर्य परिवार संघ" की आवश्यक सूचनाएं

१. देश में उत्पन्न हुई वर्तमान परिस्थिति से पीड़ित तथा शुद्धिशुदा परिवार अपने विवाह सम्बन्ध आदि के लिए संघ को अवश्य सूचित करें। इस सम्बन्ध में संघ उन की यथा शक्ति अवश्य सहायता करेगा।

२. संघ के सदस्य महानुभावों को अपना तथा अपने से सम्बद्ध वर कन्याओं के विवाह सम्बन्ध संघ द्वारा ही कराने चाहिएं। यदि किसी लाचारी अवस्था में स्वतन्त्र सम्बन्ध करना पड़े तो वे अन्तर्जातीय सम्बन्ध ही करें। कम से कम अपनी उपजाति को अवश्य ही तोड़ कर सम्बन्ध करें। और उस की सूचना संघ को अवश्य दें जिस से संघ को इस बात का पता हो कि अमुक कुमार कुमारी का सम्बन्ध हो चुका है।

३. जिन महानुभावों ने संघ के सदस्य बनाने के लिए फार्म आदि मंगाए हैं, वे कृपया फार्म भरवा कर वार्षिक चंदा सहित शीघ्र भिजवा दें। यदि किसी कारण वश सदस्य न बना सकें तो फार्म आदि वापस कार्यालय में शीघ्र भिजवाने की कृपा करें।

४. आर्यपुरुषों से निवेदन है कि वे बड़े २ नगरों में संघ की शाखाएं खोलकर संघ के कार्य को अधिक उन्नत तथा प्रगतिशील बनाने में संघ को अपना पूर्ण सहयोग देने की कृपा करें। सदस्यता फार्म तथा नियमादि कार्यालय से मंगा लें।

५. जो संघ के सदस्य महानुभाव अपना स्थान परिवर्तन करें, वे अपने स्थानान्तर का पता अवश्य भेजें।

६. जिन सदस्यों ने अपना प्रथम या द्वितीय वर्ष का चंदा अभी तक नहीं भेजा वे कृपया अपना चंदा शीघ्र संघ के कार्यालय में भिजवा दें।

७. भविष्य में पत्र व्यवहार में पत्र संख्या के साथ सदस्य संख्या भी लिखी रहेगी। अतः पत्र व्यवहार करते समय अपनी सदस्य संख्या अवश्य लिखा करें।

आचार्य्य भद्रसेन
संचालक
जातिभेद निवारक आर्य परिवार संघ, कार्यालय
अजमेर

काली सिंध के स्टेशन मास्टर द्वारा स्वेच्छा से आर्य धर्म स्वीकार

कालीसिंध [शाजापुर] जी. आई पी. रेलवे स्टेशन के स्टेशन मास्टर जो पिछले दिनों तक नूर मुहम्मद के नाम से पुकारे जाते थे उन्होंने अपनी अन्तः प्रेरणा से प्रेरित हो स्वेच्छा से आर्य धर्म स्वीकार करने की इच्छा प्रकट की और निमन्त्रण पत्र द्वारा सब को शुद्धि संस्कार में सम्मिलित होने का निमन्त्रण भेजा। निमन्त्रण आने पर दयानन्द वैदिक मिशन इन्दौर

के कार्यकर्ताओं ने पूर्ण सहयोग दिया। इन्दौर के प्रसिद्ध आर्य कार्यकर्ता श्री रामनारायण जी तथा लालारामजी ने संस्कार में भाग लिया और आर्य धर्म के महत्व पर प्रकाश डाला। शाजापुर आर्य समाज के प्रधान श्री भैरुसिंह जी वैद्य ने इस कार्य की सम्पन्नता के लिये जो प्रयत्न किया वह अन्यों के लिये अनुकरणीय है। श्री स्टेशन मास्टर साहब का संस्कार के बाद नारायणसिंह नाम रख दिया गया। हम श्री नारायण सिंहजी को आर्य धर्म स्वीकार करने पर बधाई देते हैं।

सोनपुर मेले के अवसर पर साधु सम्मेलन।

बिहार प्रान्तीय श्रीमद्दयानन्द वानप्रस्थ सन्यासी मण्डल की ओर से हरिहर क्षेत्र मेले के अवसर पर श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज के सभापतित्व में सर्व साधु सम्मेलन का आयोजन किया गया था इस सम्मेलन में श्री स्वामी जी महाराज तथा अन्यान्य साधु महात्मा और विद्वानों के प्रभाव शाली भाषण हुए। सम्मेलन में अनेक प्रस्ताव स्वीकृत हुए जिनमें मुख्य २ ये हैं स्वर्गीय पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज के निधन तथा अखण्ड भारत के खण्ड २ करने वाले विभागों में प्राणाहुतियां प्रदान करने वालों के लिये शोक, सहानुभूति एवं समवेदना प्रकट की गई।

भारत तथा प्रान्तीय सरकारों से यह अनुरोध किया गया कि वे गोहत्या बन्दी के कानून बनावें तथा नागरी लिपि को राष्ट्र लिपि एवं हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा होने की बढ़ती हुई जनता की मांग को स्वीकार कर उसके असन्तोष को दूर करें।

स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती

स० मन्त्री—

आर्य्य सम्मेलन स्थगित

कतिपय कारणों से जिन में दिल्ली का वातावरण तथा देश की परिस्थिति भी सम्मिलित हैं यह विचार किया गया है कि ३०, ३१ दिसम्बर १६४७ तथा १ जनवरी १६४८ को होने वाले आर्य सम्मेलन को फर्वरी १६४८ मास के लिए स्थगित किया जाय और इस बीच में सम्मेलन में पेश किए जाने वाले आर्य्य समाज के भावी कार्य-क्रम तथा नीति की रूप रेखा तय्यार की जाए जो सम्मेलन के विचार का आधार हो सके और जिस से आर्य जनता को निश्चित नेतृत्व प्राप्त हो सके। यह कार्य्य इतना महान् है कि इस पर गंभीर विचार के लिए समय चाहिए। प्रस्तावित सम्मेलन के विषय में आर्य जनता ने अपूर्व उत्साह का प्रदर्शन किया है। इस उत्साह से यथोचित लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि विचार धाराओं को निश्चित रूप दिया जा सके। आर्य्य जनता से प्रार्थना है कि वह निम्नलिखित बातों को नोट करें।

(अ) उपर्युक्त तारीखों में सम्मेलन न होगा।

(ब) फर्वरी ४८ में होने वाले सम्मेलन की निश्चित तिथियों तथा स्थान की घोषणा यथा समय कर दी जायगी।

(स) आर्य्य समाज के भावी कार्यक्रम तथा

नीति के सम्बन्ध में अपने विचार संक्षेप में लेख बद्ध करके भेजने की कृपा करें।

(विचार व्याख्यानों या वृहद् लेखों का रूप धारण न करें)।

गंगा प्रसाद उपाध्याय — ज्ञानचन्द्र बी० ए०
मंत्री सभा — संयोजक सम्मेलन

मडिकेरी में शुद्धि संस्कार

३-१२-१९४७ के बुधवार के दिन आर्य समाज मडिकेरी में कुछ वर्ष पहले मुसलमान मत में शामिल हुये हुए टि० ए० रहिमान नामक मुसलमान को सकुटुंब परम पवित्र वैदिक धर्म में दीक्षित किया। उक्त पुरुष का नाम "आर्य बन्धु" रखा गया है। इस शुद्धि संस्कार को आर्य समाज के प्रचारक श्री० पं० गोपाल जी, सिद्धान्त शास्त्री, साहित्यालंकार ने वैदिक रीति से सम्पन्न किया और अन्त में वैदिक-धर्म की विशेषताओं पर एक व्याख्यान दिया।

गोविन्द भंडारी
मन्त्री आर्य समाज मडिकेरी
जिला कुर्ग

साहित्य समीक्षा

वरुण की नौका—दूसरा भाग—लेखक श्री पं० प्रियव्रत जी वेद वाचस्पति आचार्य गुरुकुल कांगड़ी प्रकाशक-श्री मुख्याधिष्ठाताजी गुरुकुल कांगड़ी। मूल्य ३)

आचार्य प्रियव्रत जी वेद वाचस्पति आर्य-जगत् के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वानों में से हैं जिन की उत्तम कृति 'वरुण की नौका' प्रथम भाग की आलोचना हमने गत वर्ष प्रकाशित की थी। यह इसका २य भाग है। जिसमें ऋग्वेद के शेष ६ और अथर्व वेद के ५ वरुण सूक्तों की बड़ी उत्तम हृदय ग्राहिणी ललित व्याख्या की गई है। प्रत्येक मन्त्र के ऊपर शीर्षक देकर मन्त्र का शब्दार्थ दे दिया गया है और उसके प्रत्येक भाग को बड़ी विशद सरल भाषा में स्पष्ट किया गया है। उदाहरणार्थ 'वरुण की नौका' इस शीर्षक से 'आ यद् रुहाव वरुणश्च नावम्' इस सुन्दर मन्त्र की व्याख्या करते हुये सुयोग्य लेखक महोदय ने लिखा है:—

"जब तक मनुष्य को भगवान् के दर्शन नहीं हो जाते और उनकी पवित्र प्रेरणा में वह चलना नहीं सीखता तब तक उसे इस संसार समुद्र की तरंगों के थपेड़े खाने पड़ते हैं। वह उनकी बेहोश कर देने वाली मार के नीचे बुरी तरह आता है। उसे नहीं सूझता कि वह अपनी नौका को उस समुद्र के परले पार कैसे ले जावे। पर जब उसकी नौका पर भगवान् भी आ बैठते हैं—जब उसे भगवान् के दर्शन हो जाते हैं—और वह उनकी पवित्र प्रेरणा में अपनी किश्ती चलाने लगता है तब वह उस समुद्र की भयङ्कर से भयङ्कर तरङ्गों से भी नहीं घबराता। वह उनकी मार में नहीं आता। वह तो उन पर चढ़ कर-उन पर सवार होकर—खेलता और झूलता है। अब वह तरङ्गों की लपेट में नहीं आ सकता अब तो उसकी नैया पार निकल जाएगी।..................उसके निश्चिन्तता और प्रसन्नता रहती है जैसी एक झूला झूलने वाले के मन में रहा करती है।.......
! तू अपनी नौका पर भगवान् को बिठाने वाला बन! फिर तेरा कल्याण ही कल्याण है।" इत्यादि

पुस्तक अत्यन्त उत्तम और स्वाध्याय के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इससे शुद्ध भक्ति-भावना की वृद्धि में (जिसकी आर्यों में अत्यधिक आवश्यकता है) बड़ी सहायता मिलेगी। प्रत्येक वेद प्रेमी को इसकी १ प्रति अवश्य रखनी चाहिये। ऐसी उत्तम हृदयङ्गम व्याख्या के लिये आचार्य प्रियव्रत जी धन्यवाद के पात्र हैं। ध.दे.

सार्वदेशिक के ग्राहकों से

सार्वदेशिक पत्र सम्बन्धी पत्र-व्यवहार करते समय कृपया अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

शुद्धि आन्दोलन को तीव्र बनाइये

राजनैतिक वायु मण्डल के बदल जाने के कारण अब भारत वर्ष के उन मुसलमानों को जो वैदिक संस्कृति को अपनाने के लिये शुद्ध होना चाहते हैं कट्टर मुसलमानों के अत्याचार का भय नहीं रह गया है और हमें अनेक सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि बहुत से मुसलमान शुद्ध होना चाहते हैं परन्तु बहुत से लोग उन को शुद्ध करने का यह कह कर विरोध करते हैं कि मुसलमान विश्वास के योग्य नहीं हैं और वह धोखा देंगे।

प्रकार की भावनाएं शुद्धि के मार्ग में रुकावट डाल रही हैं। याद रखना चाहिये कि आर्य्य समाज की मनोवृत्ति साधारण सिक्खों और हिन्दुओं की मनोवृत्ति के विरुद्ध है। आर्य्य समाज सब का हित चिन्तक है और बिना कारण के किसी पर सन्देह नहीं करता। समाज की नीति यह है कि जो शुद्ध होना चाहे उसको अवश्य शुद्ध किया जाय। यह ठीक है कि सावधानी रखनी चाहिये परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि शुद्धि के काम को रोक दिया जाय, यह ऐसा अवसर है जब शुद्धि को अत्यन्त तीव्रता के साथ करना चाहिये। अतः आप से प्रार्थना है कि स्वयं आप अपने समाज के सभासदों में और अन्य जनता में प्रबल आन्दोलन करें कि शुद्ध होने वाले लोगों पर अकारण सन्देह न किया जाय और उनको शुद्ध होने के लिये प्रोत्साहन दिया जाय। आर्य्य समाज तो "कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्" का पाठ पढ़ता है। वह हिन्दु समाज के साथ शुद्धि के टाल मटोल में सहयोग नहीं दे सकता और न वह किसी मनुष्य समूह पर अत्याचार करने या उन को नष्ट करने की योजना बनाने में सहायक हो सकता है। आप अवश्य ही शुद्धि के लिये अनुकूल क्षेत्र बनावें। और जो लोग शुद्ध हों उनकी सूची सभा में भेज देवें।

गंगा प्रसाद उपाध्याय एम. ए.
मंत्री सार्वदेशिक सभा



स्व० देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी:—

देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी का गत ८ दिसम्बर को जालन्धर में लगभग ७३ वर्ष की आयु में देहावसान हो गया यह जानकर हमें अत्यन्त दुःख हुआ। स्व० भाई जी ने युवावस्था में आर्य समाज की जो सेवा भारत में रहते हुए और अफ्रीका, इङ्गलैन्ड, अमेरिका इत्यादि विदेशों में वैदिक प्रचार के रूप में की थी उसे कौन भुला सकता है? जीवन के पिछले वर्षों में यद्यपि उनका आर्य समाज से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न था तथापि आर्य समाज के साथ उनका प्रेम सदा बना रहा जिसका हम सब को तब विशेष रूप से अनुभव हुआ जब भाई जी ने सिन्ध सरकार के सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्दश समुल्लास के प्रकाशन विषयक प्रतिबन्ध के विरोध में स्थगित प्रस्ताव केन्द्रीय विधान सभा के ७ नवम्बर १९४४ के अधिवेशन में रक्खा। उस अवसर पर हमें भी उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अत्यन्त अस्वस्थ होते हुए और यह जानते हुए भी कि उनके पक्ष में ४, ५ से अधिक मत प्राप्त न होंगे (जैसे कि उन्होंने हमारे पूछने पर बताया) उन्होंने दृढ़ता के साथ अपने प्रस्ताव को रखा और यद्यपि कांग्रेस दल के उदासीन रहने से (जिसे समस्त स्वतन्त्रता प्रिय जनता ने अत्यन्त अनुचित समझा था) उनका प्रस्ताव स्वीकृत न हुआ तथापि उन्हें १५ समर्थक मिल गये और एक प्रकार से नैतिक विजय उन्हें प्राप्त हो गई। उनकी दृढ़ता को देखने का उस दिन हमें विशेष रूप से अवसर मिला था जो उनके पवित्र जीवन का मुख्य अङ्ग थी। अपने उग्र राजनैतिक विचारों के लिये उन्हें काले पानी का दण्ड मिला था जो विशेष यत्न करने पर आजीवन कारावास में परिणत किया गया यद्यपि अस्वस्थतादि के कारण उन्हें कुछ वर्ष पश्चात् ही अण्डेमन से मुक्त कर दिया गया। उसके पश्चात् वे राष्ट्रीय शिक्षा प्रसार, जातिभेद निवारक आन्दोलन तथा हिन्दू-संगठन इत्यादि कार्यों में दिन रात व्यस्त रहे। कांग्रेस के नेताओं से तीव्र मतभेद के कारण भाई पारमानन्द जी गत कई वर्षों से अधिक लोकप्रियता प्राप्त न कर सके थे किन्तु इस की उन्हें कोई चिन्ता न थी। वे अपने विचारों को स्पष्ट और प्रबल रूप से सदा प्रकट करते रहते थे। ऐसे एक उज्ज्वल देशभक्त, त्यागी, तपस्वी स्पष्टवक्ता तथा साहसी महानुभाव का देश से उठ जाना अत्यन्त दुःख जनक है। दिवंगत भाई जी के प्रति उन के त्याग, तपस्या, बलिदान

भावना, सत्यनिष्ठतादि गुणों के लिये श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए हम उनकी सद्गति के लिये भगवान् से प्रार्थना करते और उन के सब सम्बन्धियों और इष्ट मित्रों से हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

काशी विद्वन्मण्डली की महत्त्वपूर्ण घोषणाएं

इस अङ्क में अन्यत्र पाठक काशी विद्वन्मण्डल की कई महत्त्व पूर्ण घोषणाएं पढ़ चुके हैं। यह देखकर किस को प्रसन्नता न होगी कि जो काशी की विद्वन्मण्डली अपने अनुदार कट्टर विचारों के लिये कई वर्ष पूर्व तक अपख्याति प्रा कर चुकी थी उस की मनोवृत्ति में इतना आश्चर्य जनक परिवर्तन हुआ है। हमें तो इस सनीय परिवर्तन को देख कर बार २ वेद भगवान् के "ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥" इन दिव्य शब्दों का स्मरण हो आता है जिनमें कहा है कि सत्य का शब्द इतना तेजस्वी और प्रबल होता है कि बधिर के कानों में भी पड़ कर वह उसे प्रभावित कर देता है। महर्षि दयानन्द ने काशी में जो वैदिक नाद गुंजाया था वह आज फल ला रहा है इस में इन महत्त्वपूर्ण घोषणाओं को देखते हुए जो वहां के बड़े २ दिग्गज पण्डितों की ओर से की गई हैं अणु मात्र भी सन्देह नहीं हो सकता। इन घोषणाओं में अर्वाचीन हिन्दू शब्द का प्रयोग (जो वेदों, वेदाङ्गों, शास्त्रों, स्मृतियों तथा रामायण महाभारत आदि साहित्य में कहीं नहीं पाया जाता) यद्यपि हमें अखरता है तथापि यह प्रसन्नता की बात है कि उसके साथ २ प्रथम तथा २य घोषणा में आर्य धर्म के साथ अथवा के रूप में हिन्दू धर्म का प्रयोग किया गया है क्योंकि प्राचीन न होने पर भी वह प्रचलित हो गया है। उस आर्य धर्म की सार्वभौमता की 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" (वेद) तथा 'एतद्देशप्रसूतस्य (मनु)' इत्यादि के आधार पर काशी की विद्वन्मण्ली द्वारा घोषणा नितान्त अभिनन्दनीय है। इसको क्रियात्मक रूप देने के लिये जिस समान प्रार्थना की ओर विद्वन्मण्डल ने विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया है वह वेद के 'विश्वानि देव सवितदुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आसुव" " अग्ने नय सुपथा.राये अस्मान्" तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु" 'अभयं मित्रादभयममित्रात्.........सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु इत्यादि वेद मन्त्रों के आधार पर ही बनाई जा सकती है जिन में सब दुर्गुणों और दुःखों के दूर करने और उत्तम मार्ग पर चलने तथा मन में पवित्र भाव रखने, निर्भय होने आदि की प्रार्थना है जो निस्सन्देह सार्वभौम है। इन वेद मन्त्रों के साथ उनका आर्यभाषानुवाद गद्य व उत्तम पद्य रूप में कर दिया जाए तो वह सब के लिये उपयोगी हो सकता है।

काशी विद्वन्मण्डल की यह स्पष्ट घोषणा कि 'अन्यधर्मावलम्बी किसी भी व्यक्ति के समूह को शुद्धि के द्वारा हिन्दू धर्म में प्रविष्ट किया जा सकता है" अत्यन्त प्रशंसनीय है। हमें आशा है कि समस्त धर्म प्रेमी इस घोषणा का स्वागत करते हुए शुद्धि आन्दोलन को प्रबल बनाने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे। 'हिन्दू समाज का कर्तव्य होगा कि इस प्रकार हिन्दू धर्म में दीक्षित लोगों के साथ सन्मान तथा प्रेम का व्यवहार करें। विद्वन्मण्डल यह भी घोषणा

करता है कि धर्मान्तरों से शुद्ध हुई २ स्त्रियों के साथ अपने समाज तथा वर्ग की अनुमति से विवाह किया जा सकता है।" यह घोषणा भी प्रशंसनीय है किन्तु यह बात आवश्यक है कि यह प्रेम केवल बातों द्वारा नहीं क्रियात्मक व्यवहार द्वारा प्रकट होना चाहिये। कल्पित उच्च नीच भावना को सर्वथा दूर किये बिना इस शुद्धि आन्दोलन में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। यह विचारशील विद्वानों का कर्तव्य है कि वे रूढ़िप्रिय अविवेकी लोगों को उदार बनाने का पूर्ण प्रयत्न करें न कि उन के पीछे चल पड़ें। "समाज अथवा वर्ग की अनुमति से विवाह किया जा सकता है।" "इन शब्दों का प्रयोग यद्यपि सद्भावना और उदारता बुद्धि से किया गया है तथापि हमें भय है कि कहीं लोग समाज व वर्ग की अनुमति न मिलने की आड़ में इस प्रशंसनीय घोषणा को क्रियात्मक रूप न दें। इसी लिये उपर्युक्त शब्दों को लिखने की हमें आवश्यकता हुई है। 'समाज के भिन्न २ वर्गों में परस्पर प्रेम, सहानुभूति तथा अङ्गाङ्गिभाव के पुष्ट करने के प्रयत्न के लिये विद्वन्मण्डल की घोषणा भी

"सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमिवः।
अन्योअन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥"
"समानी व आ कूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥"

इत्यादि वैदिक आदेश के अनुकूल होने के कारण प्रशंसनीय है किन्तु इस को पूर्ण क्रियात्मक रूप देने पर ही समाज का भविष्य निर्भर है।

हमारे प्रिय देश के नाम के विषय में भारत इस नाम का विद्वन्मण्डल ने निर्देश किया है। हमें तो प्राचीन स्फूर्ति दायक 'आर्य्यावर्त' यह नाम ही अधिक प्रिय और सब दृष्टियों से अधिक उपयोगी प्रतीत होता है। आर्य शब्द का अर्थ उदारचरित, न्यायप्रिय, कर्तव्यपरायण, धर्मात्मा होता है। ऐसे सदाचारियों का देश आर्य्यावर्त कहाता है अतः इस प्राचीन नाम को ही प्रचलित करना हमें सर्वथा इष्ट है। आशा है काशी विद्वन्मण्डल भी अपने इस विषयक प्रस्ताव पर पुनर्विचार करेगा। हां, आर्यावर्त के साथ २ ऐतिहासिक दृष्टि से 'भारत' इस नाम का प्रयोग करने में हमें कोई आक्षेप नहीं प्रतीत होता। इन्डिया, हिन्दुस्तान व हिन्द की अपेक्षा 'भारत' यह नाम अधिक प्राचीन तथा अच्छा है इसमें सन्देह नहीं।

संस्कृत निष्ठ हिन्दी को राष्ट्र भाषा और देवनागरी लिपि को राष्ट्र लिपि के रूप में घोषित किया जाए। इस तथा आर्य धर्म की ओजस्विता आर्य पर्वों के सम्मिलित रूप में मिलाने इत्यादि विषयक घोषणाओं से हम पूर्णतया सहमत हैं पर्वों के रूप को विशुद्ध बनाने का विद्वन्मण्डल को विशेष प्रयत्न करना चाहिये। अन्त में जिन तपस्वी विद्वान् पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु प्रचार मन्त्री काशी विद्वन्मण्डलके प्रयत्न से विद्वन्मण्डल में इतनी अद्भुत जागृति हुई है उनका अभिनन्दन करते हुए हम इन महत्त्व पूर्ण घोषणाओं को करने वाले काशी के सब विद्वानों का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं कि समस्त देशवासी इन घोषणाओं को क्रियात्मक रूप दे कर समाज को उन्नत और प्रबल बना देंगे।

संयुक्त प्रान्तीय सरकार और गोवध निषेध—

हमें यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि संयुक्त प्रान्त की सरकार ने जिस ने हिन्दी को राज भाषा और देव नागरी लिपि को राजलिपि घोषित करके एक अत्यन्त प्रशंसनीय और अनुकरणीय कार्य किया था स्थानीय संस्थाओं (म्युनिसिपलिटी आदि) को इस बात की अनुमति दे दी है कि वे अपने २ क्षेत्रों में गोवध निषेध कर सकते हैं। यद्यपि इतनी अनुमति को ही हम पर्याप्त नहीं समझते तथापि यह प्रशंसनीय कार्य ही है। अब सब स्थानों की म्युनिसिपलिटियों का यह मुख्य कर्तव्य हो जाता है कि वे अनुकूल जनमत बना कर इस विषयक प्रस्ताव अपने २ क्षेत्रों में अवश्य स्वीकृत करालें और उसे अविलम्ब क्रियात्मक रूप दें। हमें तो तब तक सन्तोष न होगा जब तक भारतीय विधान परिषद् द्वारा गोवध निवारक विधान न स्वीकृत हो जाए। इस विषयक आन्दोलन सब आर्यसमाजों, आर्य कुमार सभाओं और अन्य सब सार्वजनिक संस्थाओं को निरन्तर जारी रखना चाहिये ताकि विधान परिषद् के आगामी अधिवेशन में यह विधान स्वीकृत हो जाए। यह सचमुच आश्चर्य और दुःख की बात है कि महात्मा गांधी जी अब तक इस विषयक विधान (कानून) का विरोध करते हुए कहते जा रहे हैं कि मुसलमानों की मैत्री द्वारा ही गोवध निषेध होना चाहिये। महात्मा जी की इस विषयक अपील का मुसलमानों पर कितना प्रभाव पड़ा है यह लाहौर के मुस्लिम पक्ष पाती प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्र Civil and Military Gazette द्वारा प्रसारित इस समाचार से ज्ञात हो सकता है कि 'पश्चिमी पंजाब में आजकल प्रतिदिन ५-७ हज़ार गाय भैंसों को कसाई खाने में वध किया जा रहा है।" इस पर सिविल मिलिटरी गज़टने ठीक ही लिखा है कि यदि एक वर्ष भी यह अवस्था जारी रही तो पाकिस्तान का पशुधन का स्रोत शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा।" ऐसी दशा में हमारा दृढ़ विश्वास है कि केवल मुसलमानों की मैत्री पर जनता के स्वास्थ्य तथा आर्थिक समृद्धि के साथ सम्बन्ध रखने वाले इस विषय को छोड़ना उचित नहीं है। इस विषयक विधान भारतीय विधान परिषत् को अविलम्ब बनाना ही चाहिये।

जाति सूचक उपनाम तथा गोत्रः—

इस अङ्क में पाठक श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी एम० ए० कार्य निवृत्त मुख्य न्यायाधीश का 'वर्णव्यवस्था और जाति सूचक उपनाम' इस शीर्षक लेख पढ़ चुके हैं। इस विषय में उन्हों ने अपने वैयक्तिक विचार उस लेख में स्पष्टता से प्रकट किये हैं और विचार शील विद्वानों को भी अपने विचारों से सूचित करने के लिये लिखा है। इस विषय में तो किसी आर्य विद्वान् का मत भेद हो ही नहीं सकता कि शर्मा, वर्मा, गुप्त, दास आदि वर्ण सूचक शब्दों का प्रयोग अपने नाम के अन्त में केवल वही सज्जन कर सकते हैं (यह वैकल्पिक वा ऐच्छिक है आवश्यक नहीं) जो इन वर्णों के धर्मों का पालन कर रहे हों। उदाहरणार्थ चतुर्वेद भाष्यकार श्री पं० जयदेव जी

विद्यालङ्कार का अपने नाम के पीछे 'शर्मा' का प्रयोग आर्य सिद्धान्त की दृष्टि से आक्षेप योग्य नहीं किन्तु वेदादि शास्त्रों के विद्वान् न होते हुवे और व्यापारादि कार्य करते हुए किसी का 'शर्मा' का केवल ब्राह्मण कुलोत्पन्न होने के कारण प्रयोग अत्यन्त अनुचित और आर्य-सिद्धान्त विरुद्ध है। जो आर्य होकर भी इस प्रकार के वर्ण सूचक शब्दों का अनुचित प्रयोग करते हैं उन्हें वह अवश्य बन्द कर देना चाहिये।

वंश या गोत्र सूचक उपनामों के प्रयोग के विषय में मान्य पण्डित जी ने अपना वैयक्तिक विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि "यदि कोई वंशसूचक या गोत्र सूचक उपनाम का प्रयोग करे तो उससे सिद्धान्त की हानि न समझनी चाहिये।"

इस विषय में मैं मान्य पण्डित जी से पूर्णतया सहमत नहीं हूं। गोत्रों के आधार पर भी इन उपनामों के प्रयोग को मैं उचित नहीं समझता। जैसे ४ वर्णों के स्थान पर आज सहस्रों जातियां और उपजातियां बन गई हैं वैसे ही मूलतः ४ गोत्रों के स्थान पर (जैसे कि महाभारत के निम्न लिखित श्लोक से स्पष्ट ज्ञात होता है) अरबों गोत्र बन गये हैं जिन का अब कोई विशेष प्रयोजन नहीं प्रतीत होता।

महाभारत शान्ति पर्व अ० २९७।१७-१८ में लिखा है:—

मूलगोत्राणि चत्वारि, समुत्पन्नानि पार्थिव।
अङ्गिराः कश्यपश्चैव, वशिष्ठो भृगुरेव च॥
कर्मतोऽन्यानि गोत्राणि, समुत्पन्नानि पार्थिव।
नामधेयानि तपसा, तानि च ग्रहणं सताम्॥

अर्थात् मूल गोत्र अङ्गिरा, कश्यप, वसिष्ठ भृगु इन ४ ऋषियों के नाम पर थे कर्म भेद के कारण अन्य गोत्र बन गये। पहले तो ४ गोत्रों के स्थान पर ८ गोत्र बन गये जैसे कि बौधायन श्रौत सूत्र प्रवराध्याय के निम्न वचनों से ज्ञात होता है:—

विश्वामित्रो जमदग्निः भरद्वाजोऽथ गौतमः। अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्त ऋषयः। तेषां सप्तर्षीणामगस्त्याष्टमानां यदपत्यं तद् गोत्रमित्युच्यते॥

यहां भृगु और अङ्गिरा का नाम नहीं है उन के स्थान पर विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम, अत्रि और अगस्त्य का नाम ले कर कहा है कि इनकी सन्तान को गोत्र नाम से कहा जाता है।

महाभाष्य में लिखा है कि तत्रागस्त्याष्टमैः ऋषिभिः प्रजनोऽभ्युपगतः। तत्र भवतां यदपत्यं तानि गोत्राणि अतोऽन्ये गोत्रावयवाः॥ ('गोत्रावयवात्' अ० ४-१-७८ के भाष्य में लेख)

इन गोत्रों की संख्या बढ़ते २ लाखों, करोड़ों नहीं प्रत्युत अरबों तक पहुँच गई जैसे कि बौधायन श्रौत सूत्र के निम्न वचन से ज्ञात होता है:—

"गोत्राणां तु सहस्राणि, प्रयुतान्यर्बुदानि च॥"

अर्थात् गोत्र हजारों, करोड़ों नहीं अरबों हैं अतः उनके प्रवरों की गणना की जाती है। उनकी संख्या "ऊन पञ्चाशदेवैषां, प्रवरा ऋषिदर्शनात्" आदि के द्वारा ४९ बताई गई है। प्रवर मञ्जरी में इन गोत्रों की संख्या के विषय में लिखा है कि 'गोत्राणां तु सहस्राणि

त्यनेन गोत्रसंख्यामाह तेषामतिदुष्ट यतां तारकाणा भूपांसूनामिव दर्शयितुम् ॥" अर्थात् तारों या रेत के कणों की तरह उन की संख्या का पता नहीं लगा सकते ।

'गोत्रप्रवर निबन्धकदम्ब' में इन गोत्रों की संख्या जिनका वर्णन अन्य ग्रन्थादि से ज्ञात हो सका है ३ हजार के लगभग दी है। इस सूची को देखने से मैं तो इस परिणाम पर पहुंचा हूँ कि प्राचीन समय में सुप्रसिद्ध ऋषियों के स्मरण कराने के लिये यदि कुछ गोत्रों और प्रवरों का उपयोग रहा भी हो वह कालान्तर में निष्प्रयोजन और उपहास जनक हो गया जैसे कि उस सूची में अजगन्धी, अजाश्व, अक्ष, उपेक्षी, उलूक, मत्स्य, उष्ट्राक्ष, ऋणी, कण्डू (खुजली), कपि मर्कट (बन्दर), कपिमुख, गर्दभ, (गधा), गर्दभीमुख, गोमूत्र, बक, शुक (तोता), मयूर (मोर), दुर्दिन, महोक्ष (बड़ा बैल), मांसगन्ध, खग (पक्षी), कासकृत (खांसीवाला) हृद्रोगी (दिल की बीमारी वाला), वाराहि (सुअर का बच्चा), वृक, शठ, वाक्य शठ, शाक, सूप (दाल) सुविद्यारि (अच्छी विद्या का शत्रु), मैथुनमति, सुकुलापकारी, रोष (क्रोध), कुपित, सांशयः, नारी, महावृश्चि, ऋक्ष (भालू), छागः (बकरा), कर्दम (कीचड़), जारमान्य (व्यभिचारियों को मान्य समझने वाले), कन्यकाः चाण्डालि इत्यदि नामों से प्रतीत होते है जो क्रोध व द्वेष वश रख दिये गये होंगे। कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि क्यों इन अपमान जनक नामों को जैसे अब भी कुक्कुड़, गिदड़. लुल्ले, इत्यादि रूप में उपजातियों में प्रचलित हैं जारी रखा जाए। अब जातिभेदजन्य भेद को हम स्वीकार नहीं करते तो अपने वंश को उच्चताद दिखाने के लिये वंशसूचक नामों का प्रयोग किया जाय ? मुझे तो ऐसे प्रतीत होता है कि इस गोत्र के नाम पर आजकल जातिभेद की भावना को पर्याप्त समर्थन मिल रहा है अतः मैं तो वैयक्तिक रूप में इन उपनामों के प्रयोग को चाहे वे कल्पित गोत्रों वा वंशों के नाम पर प्रचलित हों सर्वथा अनावश्यक और हानिकारक समझता हूँ। गोत्र, प्रवर विषयक विस्तृत विचार शास्त्रीय दृष्टि से 'सार्वदेशिक' के अगले अङ्कों में दूंगा।

मौलाना आज़ाद के भ्रान्त विचार;—

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि भारत के शिक्षा सचिव मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने पिछले दिनों पटना विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण देते हुए कई बड़े अशुद्ध विचारों को प्रकट किया जिन से राष्ट्रीय विचारों के देशभक्त तथा विचारक सहमत नहीं हो सकते। अभी ५ वर्ष तक अंग्रेजी राजभाषा के रूप में विद्यमान रहेगी और उस का इस रूप में रहना अभी वाञ्छनीय है उन के इस आशय के शब्द हमारे विचार में एक दास मनोवृत्ति के सूचक हैं। स्वयम् अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता न होते हुए भी उन का अंग्रेजी को इतनी महत्ता देना हमें अवश्य आक्षेप योग्य प्रतीत हुआ। राष्ट्रीय भाषा का स्थान हिन्दी ले सकती है इस स्पष्ट सत्य को भी शिक्षा सचिव अभी तक नहीं समझ सके क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है ?

जिन्हें इस विषय में सन्देह हो उन्हें इस अङ्क में प्रकाशित डा० रघुवीर जी एम. ए., पी. एच. डी. के उत्तम लेख के अतिरिक्त माननीय गोविन्द वल्लभ पन्त के हिन्दी साहित्य सम्मेलन बम्बई के उद्घाटनोत्सव पर दिये महत्त्वपूर्ण भाषण को ध्यान से पढ़ना चाहिये।

ध० दे०

श्री पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस" श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित

Regd. NO. L.218

सार्वदेशिक सभा पुस्तक भण्डार की उत्तमोत्तम पुस्तकें

नाम पुस्तक — लेखक व प्रकाशक — मूल्य

(१) वैदिक सिद्धान्त (सार्व० सभा) १)
(२) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर ,, १।)
(३) आर्य सिद्धान्त विमर्श ,, ॥।)
(४) सार्वदेशिक सभा का इतिहास ,, अ० २)
(५) आर्य डायरेक्टरी ,, अ० १।)
(६) आर्य विवाह ऐक्ट की व्याख्या ,, ।)
(७) आर्य पर्व पद्धति पं० भवानीप्रसाद जी १।)
(८) आर्यवीर दल शिक्षण शिविर 'ओमप्रकाशजी' ।)
(९) आर्य वीर दल बौद्धिक शिक्षण (पं० इन्द्रजी) ।=)
(१०) यम पितृ परिचय-पं० प्रियरत्न आर्य २)
(११) अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र , २)
(१२) वैदिक सूर्य विज्ञान ,, =)
(१३) वेद में असित शब्द ,, -)
(१४) ऋग्वेद में देवृकामा ,, -)
(१५) वेद में दो बड़ी वैज्ञानिक शक्तियां ,, १)
(१६) विमान शास्त्र ,, ।=)॥
(१७) नया संसार श्री पं० रघुनाथ प्रसाद पाठक =)
(१८) मातृत्व की ओर ,, ,, अ० १।)
(१९) कथा माला ,, ॥।)
(२०) आर्य जीवन गृहस्थ धर्म ,, ॥=)
(२१) आर्य शब्द का महत्व ,, -)
(२२) आत्म कथा श्री नारायण स्वामी जी २।)
(२३) श्री नारायण स्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ ५)
(२४) योग रहस्य श्री महात्मा नारायण स्वामी जी १)
(२५) विद्यार्थी जीवन रहस्य ,, ॥)
(२६) प्राणायाम विधि ,, =)
(२७) उपनिषद् ईश ।=) केन ॥) कठ ॥)
प्रश्न ।=) मुण्डक ।=) माण्डूक्य =), ऐतरेय ।)
तैत्तिरीय ॥)
(२८) श्री नारायण स्वामी जी की संक्षिप्त जीवनी -)

(२९) नारायण-सुधा संग्रह १॥)
(३०) शहीदी पत्रिका ।=)
(३१) आर्यसमाज मन्दिर चित्र ।)
(३२) हकीकत श्री ला० ज्ञानचन्द्रजी आर्य ॥।=)
(३३) बहिनों की बातें (पं० सिद्धगोपाल जी कविरत्न) १)
(३४) दयानन्द जन्म स्थान निर्णय
(पं० विजयशङ्कर मूलशङ्कर जी) ॥।)
(३५) भूमिका प्रकाश (श्री द्विजेन्द्रनाथ जी) १॥)
(३६) वेद और गोमेध श्री बा० श्यामसुन्दरलाल जी =)
(३७) सत्यार्थ प्रकाश आन्दोलन का इतिहास ।=) नेट
(३८) सत्यार्थ प्रकाश गान (पं० सत्यभूषण जी योगी) ।=)
(३९) हमारे घर (श्री निरंजनलाल जी गौतम) ॥=)
(४०) भारतवर्ष में जाति भेद ,, ।)
(४१) हमारी राष्ट्र भाषा (पं० धर्मदेव जी) =)
(४२) सत्यार्थ प्रकाश की सार्वभौमता -)
(४३) सत्यार्थप्रकाश और उसकी रक्षा -)
(४४) आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग का कार्य क्रम -)
(४५) सरल सन्ध्योपासना ।)
(४६) एशिया का वेनिस (स्व० स्वामी सदानन्द जी) ॥।)
(४७) आर्यसमाज के नियमोपनियम -)॥
(४८) वैदिक वीर गर्जना (श्री रामनाथ वेदालङ्कार) ॥=)
(४९) धर्मार्य सभा की घोषणानुसार दैनिक सन्ध्या हवन की विधि -)
(५०) वीरमाता का उपदेश
(प्रो० विश्वनाथ विद्यालङ्कार) ।)
(५१) महाराणा सांगा श्री हरविलास शारदा १)
(५२) सिन्धी सत्यार्थ प्रकाश ५।
(५३) वैदिक राष्ट्रीयता (स्वामी ब्रह्म मुनि) ।)
(५४) वैदिक ज्योतिष शास्त्र १॥)

॥ ओ३म् ॥

मासिक सार्वदेशिक पत्र



विश्ववन्द्य महात्मा गांधी जी

जिनका ३० जनवरी की सायम् अमर बलिदान हुआ।

फरवरी १९४८ ई०
माघ सं० २००४ वि०

सम्पादक—
श्री पं० धर्मदेव जी सिद्धान्तालङ्कार
विद्यावाचस्पति, साहित्यभूषण

वार्षिक मू० स्वदेश ५)
विदेश १० शि०
१ प्रति का ।।।)

विषय-सूची

१.	वैदिक प्रार्थना—	५८७
२.	अध्यात्म सुधा—	६४८
३.	आर्य समाज अब क्या करे ?—श्री सत्यकाम सिद्धान्त शास्त्री ...	६४९
४.	कन्याओं का यज्ञोपवीताधिकार विवेचन—श्री शिवपूजनसिंह जी 'पथिक' साहित्यालङ्कार	६५३
५.	भारत की हिन्दू-अहिन्दू समस्या—श्री प्रो० आत्मानन्द जी विद्यालङ्कार ...	६६०
६.	आर्यवीर दल का कार्य क्रम—श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ...	६७३
७.	राष्ट्र भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानी—श्री सुशीला देवीजी विद्यालंकृता ...	६७५
८.	बदनाम पर देश भक्त स्व० भाई परमानन्द—श्री बालमुकुन्द जी साहित्यालङ्कार	६७९
९.	आर्य कुमार जगत्	६३६
१०.	महात्मा गांधी जी के नाम एक आवश्यक पत्र—श्री पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति	६८५
११.	मुस्लिम धार्मिक दृष्टिकोण से हिन्दुओं की स्थिति—श्री मेधातिथि जी नागपुर	६८८
१२.	साहित्य समीक्षा	६९५
१३.	कुछ सूचनाएं—	६९७
१४.	सम्पादकीय	६९९
१५.	पूज्य राष्ट्र-पिता का अमर बलिदान- (कविता)	७०१
१६.	सार्वदेशिक सभा के प्रधान जी और मन्त्री जी के वक्तव्य	७०६

अत्यन्त आवश्यक

प्रत्येक आर्य समाज के अधिकारियों को आदेश दिया जाता है :

१. कि किसी आर्य समाज मन्दिर में या आर्य संस्थाओं के भवनों में किसी ऐसी संस्थाओं के कार्यालय या अधिवेशन या अन्य कार्यक्रम को स्थान न दें जो आर्य समाज के अन्तर्गत न हों।

२. इस आदेश पर तुरन्त कार्यवाही की जाय।

भवदीय—

गंगा प्रसाद उपाध्याय

मन्त्री सार्वदेशिक सभा, देहली।

॥ ओ३म् ॥

सार्वदेशिक

* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष २७ } फरवरी १६४८ ई०] माघ २००४ दयानन्दाब्द १२२ { अङ्क १२

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् भगभक्तस्य ते वयम् उदशेम तवावसा। मूर्धानं राय आरभे ॥ ऋ० १।२४।५

शब्दार्थः—हे परमेश्वर (वयम्) हम उपासक (भगभक्तस्य) भजनीय उत्तम ऐश्वर्य के बांटने वाले (तव) तेरी (अवसा) रक्षा द्वारा (रायः) ज्ञानादि ऐश्वर्य की (मूर्धानम्) चोटी को (उदशेम) उत्कृष्ट रीति से प्राप्त करें जिससे हम (आरभे) आरम्भ करने योग्य कार्यों में प्रवृत्त हो सकें।

विनयः—हे अज्ञान निवारक परमेश्वर! आप समस्त संसार के स्वामी और अनन्त ज्ञान के भण्डार हैं। आप हमारी योग्यतानुसार उस अपने अनन्त ऐश्वर्य में से ज्ञान तथा बल का प्रदान करने वाले हैं। आप हमें ऐसी शक्ति दीजिये कि हम ज्ञानादि ऐश्वर्य के शिखर पर पहुंच जाएं जिस से सदा शुभ कार्यों में ही हमारी प्रवृत्ति हो। हम सदा परोपकारपरायण सच्चे आर्य बनें॥

वैदिक अध्यात्म सुधा

—:[redacted]:—

ओ३म् आ यद् रुहाव वरुणश्च नावं
यत्समुद्रमीरयाव मध्यम् । अधि यदपां
स्नुभिश्चराव प्रप्रेङ्ख ईङ्खयाव शुभे कम् ॥

पाप निवारक परमेश्वर के
साथ नाव में चढ़ जाऊं।
वरुणदेव की उत्तम नौका
से भव सागर तर जाऊं।

सागर की लहरों के ऊपर
मैं सवार जब हो जाऊं।
झूलूं झूलूं मस्त बना मैं
साथी देव वरुण पाऊं ॥

उस झूले का मज़ा न वाणी
से वर्णित है हो सकता।
अनुभव ही का विषय मस्त मन
ही है उस को चख सकता।

वरुण देव हों मेरा साथी
यही कामना मेरी है।
शाश्वत सुख को पाने में अब
नहिं मेरे कुछ देरी है॥

वसिष्ठं हि वरुणो नाव्याधादृषिं चकार
स्वपा महोभिः। स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे
अह्नां याद् दिवासस्ततन्यादुषासः ॥

दिव्य गुणों में जो बसता है।
उस को देव सहारा दे।
अपनी नौका में बिठलाता
संकट सब उस के हर के।

अपने पुत्रों का वह पालक
सुत को देता अद्भुत शक्ति।
उसे बनाता तत्त्वज्ञानी
भर देता उस में शुभ शक्ति।

विस्तृत उसके दिव्य गुणों को
कर देता वह ज्ञानी तात।
जिस से मङ्गल दायक होते
उस के लिये सभी दिन रात।

मस्त बना तब भक्त देव के
गुण गण गाता जाता है।
उस के चरणों में वह अपने
तन मन धन सब लाता है॥

माता की गोदी में विचरे
निर्भय जन कल्याण करे।
उस का भक्त बना कर सब के
शोक पाप सन्ताप हरे।

वही प्रार्थना मुझ को भी तू
अपनी नौका में बिठला।
पाप निवारक परमेश्वर तू
मुझ को प्यारा पुत्र बना।

विचरूं तेरे सङ्ग सदा मैं
मस्त बना शुभ कर्म करूं।
तेरा मङ्गल कर हो सर पर
भव सागर को पार करूं॥

"ध्रुव"

आर्य समाज अब क्या करे ?

(लेखक—श्री सत्यकाम जी सिद्धान्तशास्त्री)

आर्य समाज अब क्या करे ? यह प्रश्न अब बहुतों की ओर से किया जा रहा है और इन प्रश्नकर्ताओं में प्रायः आर्य समाजी हैं। वे कहते हैं कि हिन्दी राज भाषा हो गई, अछूतोद्धार का प्रश्न भी निबटा, समाज सुधार भी देशी सरकार करेगी, गोरक्षा का प्रश्न भी शनैः२ हल हो जायगा, संस्कृत प्रचार भी राज द्वारा होगा आदि २। अब आर्य समाज को अपनी शिक्षा संस्थायें भी रखने की आवश्यकता नहीं क्योंकि राष्ट्रीय शिक्षा भी अब राज्य द्वारा होगी।

मैं कहता हूँ कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि आर्य समाज के मार्ग में कण्टक रूप से स्थित विदेशी शासन अवश्य हट गया किन्तु अब उसे अपने मार्ग पर तनिक तीव्र गति से चलने की नितान्त आवश्यकता है। वास्तविकता तो यह है कि अब तक जो हमारे अनेकों साथी और प्रेमी आर्य समाज को क्रियात्मक सहयोग यह कह कर नहीं दे रहे थे कि स्वराज्य प्राप्ति करना प्रथम कर्तव्य है वे लोग अब भी आर्य समाज के उद्देश्यों को पूर्ण करने में हमें कुछ क्रियात्मक सहयोग देंगे इसमें सन्देह ही है। तो भी हमें उनसे सहयोग प्राप्ति की आशा तो करनी ही चाहिये परन्तु उनके आसरे हाथ पर हाथ धर कर बैठ रहने से कुछ भी काम नहीं बनेगा। अतः जो लोग यह कहते हैं कि अब आर्यसमाज के उद्देश्यों की पूर्ति स्वतः होगी वे लोग निश्चय ही बड़ी भारी भूल में हैं। अभी अनेकों ऐसे विरोधी तत्त्व वर्त्तमान हैं जो आर्य समाज के उद्देश्यों को मूर्त्त रूप देने में बाधक हो रहे हैं और स्यात् कुछ समय तक होते रहेंगे। इस लिये भी यह आवश्यक हो जाता है कि आर्यसमाज अब अपने मन्तव्यों को पूरा करने के लिये पूरे वेग से कार्य करे। और यही सब कुछ निश्चित करने के लिये आर्य सम्मेलन होने जा रहा है। मेरी सम्मति में तो यदि आर्य समाज ने अब तक जो भी कार्य किया है वह भूमिका मात्र ही है वास्तविक कार्य तो उसे अब करना है क्योंकि अब तक उसने अपने एक भी उद्देश्य में पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त की है यह बात आर्य समाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द सरस्वती महाराज के ग्रन्थों का मनन करने वाला प्रत्येक विचार शील व्यक्ति निः-संकोच भाव से कह सकता है।

हां तो मेरे विचार से, आर्य समाज को अब क्या करना चाहिये वह निम्न प्रकार है:—

(१) समस्त आर्य जगत् के योग्य विद्वानों, धर्मात्मा पुरुषों और राजनीतिज्ञों में से उसे अपनी तीनों सभायें सुसंघटित रूप में बनानी चाहियें अर्थात् विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा और राजार्य सभा का नवीन और विस्तृत सङ्गठन करना अत्यन्त आवश्यक है।

इन सभाओं की शाखायें प्रत्येक आर्यसमाज के साथ होनी चाहियें कि जिससे सब जगह की सब प्रकार की स्थिति का ज्ञान हो और उस पर विचार करके आवश्यकतानुसार कार्यवाही की

जाती रहे। इन सभाओं का एक कार्य यह भी होगा कि आश्रम व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था के वैदिक रूप को पुनः संस्थापित करने का भरसक उपाय करें, देखिये पूना के व्याख्यान में ऋषि ने कहा था—

"……हमारे देश में कोई बड़ी धर्म सभा नहीं। जिसके कारण आश्रम व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था कुछ की कुछ होगई है।"

(उपदेश मंजरी पृ० ३१)

ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा:—

"……यह गुण कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें और पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिये।"

(स० प्र० पृ० ५५, ४था समुल्लास)

"… …उनके गुण कर्म स्वभाव से पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि, वर्णों की परीक्षा पूर्वक व्यवस्था करनी राजा और विद्वानों का काम है।………,'

(स० प्र० पृ० २४६, ११ वां समुल्लास)

ऋषि के उक्त निर्देशों से स्पष्ट है कि धर्मार्य-सभा, विद्यार्य सभा और राजार्य सभा को वर्ण-व्यवस्था तथा आश्रम-व्यवस्था को ठीक ठीक स्थापित करने का कार्य करना चाहिये। अब क्योंकि देशी राज्य हो गया है अतः राज्य को भी उक्त वर्णाश्रम व्यवस्था की संस्थापना के लिए प्रेरित करना और राज्य से सहायता लेना आर्य समाज को उचित है।

(२) वर्तमान में जितने राजनैतिकवाद चल रहे हैं इनके द्वारा प्रायः नास्तिकता को अत्यधिक प्रोत्साहन मिल रहा है अतः जनता (विशेषतः विद्यार्थियों एवं राजनैतिक पुरुषों) में आस्तिकता के भाव भरने के उपाय करना और ऐसा वातावरण बनाना कि जिससे लोग न केवल ईश्वर के मानने वाले बनें अपितु प्रतिदिन ईश्वरोपासनादि भी करें। इस बात का हमारे वर्तमान अनेक राजनैतिक नेताओं एवं कार्यकर्त्ताओं में अत्यधिक अभाव है और इसका प्रभाव जनसाधारण पर बड़े वेग से पड़ रहा है।

(३) आर्य समाज की समस्त शिक्षा संस्थाओं का एकीकरण करना और उनमें ऋषि दयानन्द प्रदर्शित पाठ्य प्रणाली को पूर्ण रूप से प्रचलित करना और यदि हम ऐसा नहीं कर सकते तो इन संस्थाओं को तोड़ देना ही ठीक है क्योंकि आर्य समाज का लाखों करोड़ों रु० इन संस्थाओं पर व्यय हो रहा है और इनसे आर्य समाज के उद्देश्य की सिद्धि शतांश भी नहीं हो रही। और यदि इसी रूप में इन्हें चलना है तो अब तो निश्चय ही ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध राज्य की ही ओर से अधिक अच्छे रूप में होगा।

किन्तु यदि आर्यसमाज अन्तिम बात को अपनाता है अर्थात् शिक्षा संस्थाओं में ऋषि पाठ प्रणाली को प्रचलित करने के स्थान में उन्हें तोड़ देता है या राज्य के संचालन में दे देता है तो यह उसका आत्मघातक कार्य होगा। मैं समझता हूँ कि आर्य समाज के नेताओं और विद्वानों को अब साहस के साथ ऋषि प्रदर्शित पाठ विधि को चलाने के लिए आगे बढ़ना चाहिये और वे चाहे प्रत्येक प्रान्त में केवल एक एक ही गुरुकुल चलायें उसमें सारा पाठ्य-क्रम (मन्वादि का) और ब्रह्मचर्याश्रमव्यवस्था ऋषि के निर्देशानुसार ही करनी चाहिये। यह

सब कार्यों में मुख्य और अत्यन्त आवश्यक सर्वोपरि कार्य है और इसी पर आर्यसमाज का भविष्य बहुत कुछ निर्भर है। अतः इधर अवश्य बढ़ना चाहिये।

(४) उक्त तीनों धर्म, विद्या और राज-सभाओं का यथा सम्भव शीघ्र संघटन करके वर्तमान आर्य सामाजिक जनों को वर्णानुक्रम में रखना चाहिये अर्थात् प्रत्येक आर्य के कार्य और योग्यता का विवरण लेकर उसको युक्त वर्ण में स्थापित करना चाहिये और इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह अपने वर्ण व आश्रम के धर्मों (कर्तव्यों) का पालन ठीक-ठीक करे।

(५) जो गृहस्थ आर्य वानप्रस्थ आश्रम में आने के समय और अवस्था के होने पर भी अभी तक गृहस्थी बने हुए हैं उनसे इसका कारण जानना और यदि कारण उचित हो तो ऐसा प्रबन्ध करना कि उसे वानप्रस्थ होने में सहायता मिले और यदि कोई अकारण वानप्रस्थी नहीं बनता तो उसे ऐसा करने के लिये प्रेरित करना।

(६) संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होने वाले व्यक्तियों की वैराग्य भावना एवं ज्ञान आदि की परीक्षा के लिये एक विद्वान्, धर्मात्मा संन्यासियों की सभा बनायी जाय जिसकी सम्मति के बिना कोई संन्यासी न हो। गृहस्थाश्रम से सीधा संन्यासी होने की प्रणाली पर रोक लगानी चाहिये क्योंकि बिना ब्रह्म-ज्ञान के संन्यासी आज कल समाज के लिये प्रायः अभिशाप ही सिद्ध हो रहे हैं।

(७) प्रत्येक प्रान्त (जिला) व प्रदेश (सूबा) एवं सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा में उक्त तीनों विद्या, धर्म और राज सभाओं के अधीन पृथक २ अनेकों उप समितियाँ बनाई जाँय जो एक २ विषय को अपना कार्य क्षेत्र बनायें जैसे राजार्यसभा की एक उपसमिति आर्य पत्रों (दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक आदि) के संचालन का प्रबन्ध करे; दूसरी अन्य आर्य जगत् से बाहर के पत्रों की समालोचनात्मक दृष्टि से अध्ययन कर उनके निराकरणीय विषयों की आलोचना करे, तीसरी उपसमिति समय २ पर उपस्थित होने वाली राजनैतिक समस्याओं पर तत्काल विचार विमर्श करके उनके विषय में वैदिक समाधान दे। आदि २।

यह ध्यान रहे कि प्रत्येक प्रान्त (जिला) से जहाँ २ से सम्भव हो, एक २ दैनिक, एक २ साप्ताहिक और एक २ मासिक पत्र निकालने का प्रयत्न यथा शक्ति शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिये। इस ओर आर्य धनी पुरुषों को विशेष रुचि दिखानी चाहिये।

(८) प्रत्येक भजनोपदेशक के लिये सिद्धान्त शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करनी आवश्यक कर देनी चाहिये चाहे एतदर्थ आर्य-प्रतिनिधि सभाओं व सार्वदेशिक सभा को अपने अधीन भजनोपदेशकों की नियुक्ति कर के २-३ मास वेतन देकर केवल सिद्धान्त शास्त्री परीक्षा की तैयारी ही क्यों न करनी पड़े। क्योंकि बिना इसके भजनोपदेशकों का सिद्धान्त विरुद्ध गायन-उपदेश बन्द होना असम्भव नहीं तो कठिनतम अवश्य है।

(६) उपदेशकों के लिये भी इसी प्रकार कोई उच्च परीक्षा निश्चित करनी आवश्यक है। और यथा संभव प्रति तीसरे मास में प्रत्येक प्रदेश के समस्त उपदेशकों का एक सम्मेलन हुआ करे जो विविध शंकाओं और प्रश्नों पर विचार विनिमय करके अपनी कठिनाइयों को धर्मार्यसभा के सम्मुख उपस्थित किया करे।

(१०) वार्षिकोत्सवों का वर्तमान क्रम बदलना चाहिये और इसके स्थान पर प्रति तीन मास के पश्चात् प्रत्येक समाज द्वारा केवल एक योग्य भजनोपदेशक वा एक उपदेशक बुला कर १ मास तक या कम से कम एक पक्ष तक अपने क्षेत्र में सार्वजनिक स्थानों में (यथा सम्भव समाज मन्दिर में नहीं) प्रवचन कराने चाहियें। ये स्थानीय जनता की योग्यतानुसार उपनिषत्कथा, वाल्मीकीय रामायण कथा, महाभारत कथा, वेद कथा, या एक २ विषय को लेकर उन पर गवेषणात्मक भाषण के रूप में हो सकते हैं। भजन व गायन भी विषयानुसार ही होने चाहियें। विषयानुकूल नये २ भजन भी बनाने पड़ेंगे। आर्य समाज में उच्च कोटि के संगीतज्ञों का अभाव सा है इसकी ओर भी विशेष ध्यान देना चाहिये।

(११) आर्य जनों के लिये आर्ष-वैदिक ग्रन्थों के स्वाध्याय का नियम अनिवार्य कर देना चाहिये। इस बात को देखने के लिये प्रत्येक समाज विद्या सभा एक उपसमिति बनादे जो प्रति सप्ताह प्रत्येक सभासद् के स्वाध्याय का लेखा करे और प्रति सप्ताह कोई न कोई सभासद् अपने स्वाध्याय के विषय में कुछ न कुछ अवश्य बोले। प्रति सप्ताह शंका समाधान भी अवश्य होना चाहिये। समाधान प्रधान वा मन्त्री को करना चाहिये और समाधान के साथ ऋषि के ग्रन्थ या अन्य आर्ष ग्रन्थ अथवा वैदिक ग्रन्थ का प्रमाण भी अवश्य देना चाहिये।

स्वाध्याय को प्रोत्साहन देने के लिये यह भी किया जा सकता है कि आर्य कुमार परिषद् की कोई न कोई वैदिक परीक्षा प्रति वर्ष प्रत्येक सभासद् दिया करे। इसके बिना आर्य सभासद् न बनाया जाय और जिसने कोई न कोई परीक्षा उस वर्ष उत्तीर्ण करली हो उसे ही अधिकारी व अन्तरंग सदस्य निर्वाचित किया जाय। क्योंकि बिन भय होत न प्रीति।

इसी प्रकार धर्मार्य सभा प्रत्येक आर्य सभासद् के स्वास्थ्य सदाचार आदि का ध्यान रक्खे और किसी के गिरते हुए स्वास्थ्य का कारण जाने और उसे दूर करने में उसकी सहायता करे। संध्या हवन आदि भी देखे। प्रत्येक सभासद् के यहां बालकों के प्रत्येक संस्कार वैदिक रीति से होते हैं या नहीं उस पर भी ध्यान रखे और न होते हों तो कराने का यत्न करे।

(१२) प्रत्येक सभासद् की योग्यता आदि का लेखा समाज में होना चाहिये और जो लोग सेवा कार्य (नौकरी) करते हैं वे यदि कहीं राजकीय कार्यों में लगाये जा सकने योग्य हों तो राजार्य सभा वा समाज के अन्य अधिकारी राजकीय पदों पर स्थित आर्य जनों के सहयोग से उन्हें राजकीय कार्य में नियुक्त कराने का भरसक यत्न करना चाहिये।

एतदर्थ समाज के पास एक सूची होनी चाहिये कि कौनसा आर्य पुरुष किस राजकीय

विभाग में कहां पर है जिससे उस तक पहुंचा जा सके।

(१३] राज्य द्वारा सञ्चालित शिक्षणालयों में उच्च कोटि के आर्य विद्वानों द्वारा प्रत्येक मास में या २ मास में २-४ वैदिक धर्म की विशेषता आदि वैदिक विषयों पर व्याख्यान होते रहने चाहिये।

(१४) यथा सम्भव प्रत्येक देश में वैदिक धर्म प्रचारक भेजने चाहिये किन्तु वे वैदिक शिक्षा के धुरंधर पण्डित होने के अतिरिक्त वर्तमान राजनीति विज्ञान आदि के भी उद्भट विद्वान् हों तो ठीक है जिससे उन्हें कहीं मुंह की न खानी पड़े। एतदर्थ गुरुकुल के स्नातकों में से इङ्गलिश आदि विदेशी भाषाओं के अच्छे विद्वानों को तैयार किया जा सकता है।

(१५) समस्त आर्य समाजियों को तत्काल जन्मगत जाति आदि सूचक पुछल्लों के प्रयोग से रोक दिया जाय।

(१६) पशुवध निषेध एवं मादकद्रव्यनिषेध आन्दोलन पूरे वेग के साथ चलाये जांय। इसमें शिथिलता नहीं होनी चाहिये।

[*श्री सत्यकाम जी सिद्धान्त शास्त्री* एक उत्साही आर्य युवक हैं। उनके लेख को हमने कुछ शाब्दिक परिवर्तन के साथ ज्यों का त्यों छाप दिया है। इन विषयों पर हम अपने विचार 'सार्वदेशिक' के सम्पादकीय स्तम्भों में समय २ पर प्रकट करते रहे हैं। कई निर्देश व्यवहार्य नहीं प्रतीत होते तथापि सम्पूर्णतया विचार उत्तम हैं। अन्य विद्वान् भी जनता तथा नेताओं के विचारार्थ व्यवहार्य निर्देश संक्षेप में भेज सकते हैं—सम्पादक सा० दे०]

कन्याओं का यज्ञोपवीताधिकार विवेचन

[लेखक—अनुसन्धानकर्ता श्री शिवपूजनसिंह जी 'पथिक' साहित्यालङ्कार 'सिद्धान्त-भास्कर 'साहित्य शिरोमणि', कानपुर]

[२]

गताङ्क से आगे

अर्थात्—पति अपनी पत्नी को 'या-अकृन्तन'···ऋचा से और 'परिधत्तवासा' मन्त्र से अखण्डित वस्त्र पहनावे। यदि वस्त्र को यज्ञोपवीतवत् धारण करना अभिप्राय होता तो वहां ही यज्ञोपवीतवत् धारण करावे वा वह इसे यज्ञोपवीतवत् धारण करें, कह देते। इस लिये यहां यज्ञोपवीत का धारण करना ही अभिप्रेत है।

आचार्य श्री सत्यव्रत जी सामश्रमी ने गोभिल गृ० सू० के संस्कृत भाष्य में 'यज्ञोपवीतिनीम्' का अर्थ 'यज्ञोपवीतयुताम्' अर्थात् यज्ञोपवीत वाली ही किया है।

महामहोपाध्याय मुकुन्द शर्मा ने गोभिल गृह्य सूत्र की मृदुला व्याख्या में जो चौखम्भा संस्कृत सीरीजमें छपी है, चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार* का खण्डन करते हुये 'तदेव सूत्र' आशयो

पत्नीतमिह यज्ञोपवीतपदार्थः उपनीतं ब्रह्मसूत्रम् इत्यामेयकोशेन स्मृत्वा च ब्रह्मसूत्रम् उपवीतं तद् यज्ञोपयिकमिति यज्ञोपवीतसमाख्यास्य तद् विद्यते ऽस्यास्तद्वतीम् इत्यादि व्याख्या की है।

महामहोपाध्याय श्री पं० शिवदत्त जी शर्मा प्रिन्सिपल ओरियन्टल कालेज ने 'जैमिनीय न्याय माला' की टीका में लिखा है कि—'अस्यैवाधिकरणस्यानुसारेण' अष्ट वर्षं ब्राह्मणमुपनयीत तमध्यापयीत इत्यत्रापि स्त्रिया अप्यधिकारः अतएव प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीम् अभ्युदानयन जपेत इति गृ० सूत्रम् २-१-१६ पश्चादग्नेः संवेष्टितं कटम् एवंजातीयकं वान्यत् पदा प्रवर्तयन्तीं वाचयेत्-प्र मे पतियानःपन्थाः कल्पताम् (२-१-१०) इति च गोभिल सूत्रम् मनसा भर्तु रभिचारे त्रिरात्रं यावकं क्षीरौदनं वा भुञ्जानाऽधः शयीत ऊर्ध्वं त्रिरात्राप्सु निमग्नायाः सावित्र्यष्टशतेन शिरोभिर्जुहुयात् पूता भवति (अ० २० सं० ५) इति वासिष्ठस्मृतिः, अथ य इच्छेद्-दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियाद् इति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम् ईश्वरौ जनयितवै इति बृहदारण्यकोपान्त्यश्च तिरश्च कठी बहवृचीत्यादि प्रयोगसाधकम् शाखाध्येतृ वाचिशब्दो जातिकार्यं लभते इत्यर्थकम् गोत्रं च चरणैः सह इति वार्तिकं च संगच्छते। किंच यजमानपत्न्या अध्ययनमन्तरेण ऋत्विगादिप्रोक्तार्थस्य ज्ञानाभावादुक्तकर्मणि प्रवृत्तिरेव न स्यात्। संस्कृतातिरिक्तभाषणं तु 'नायज्ञियां वाचं वदेत्' इत्यादिना निषिद्धमेव। उपलभ्यते च प्राचीनेतिहासादिषु सीतामहाश्वेतादीनां सन्ध्योपासनमपि' (जैमिनीय न्यायमाला विस्तारः। आनन्दाश्रम प्रेस, पूना, पृष्ठ ३०५)

अर्थात्—इस अधिकरण (मीमांसा अ० ६ पा० १ अधि० ४) में वर्णित यागे दम्पत्योः सहाधिकाराधिकरणम् के अनुसार अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत तमध्यापयीत इत्यादि वाक्यों में कन्याओं का भी उपनयनाधिकार सिद्ध होता है। इसी लिये गोभिल गृह्य सूत्र २-१-१० में स्त्री के लिये 'यज्ञोपवीतिनीम्' यह विशेषण प्रयुक्त हुआ है। वसिष्ठ स्मृति अ० २० खण्ड ५ में मन से भी पाप होने पर स्त्री को १०८ वार सावित्री वा गायत्री मन्त्र के जाप से शुद्ध होने का विधान है, बृहदारण्यक उपनिषद् की श्रुति में पुत्री पण्डिता हो उसके लिये साधन बताये गये हैं, कठी बहवृची इत्यादि प्रयोग व्याकरण शास्त्र में कहे गये हैं जिनसे स्त्रियों का वेद शाखाओं का अध्ययन सूचित होता है। यदि यजमान पत्नी वेदादि शिक्षिता न हो तो ऋत्विजों के कहे वाक्यों के अर्थ को भी वह न समझ सकेगी और न उसके अनुसार कार्य कर सकेगी। 'नायज्ञियां वाचं वदेत्' इस आदेश के अनुसार यज्ञ में संस्कृत के अतिरिक्त भाषा में भाषण निषिद्ध है। प्राचीन इतिहासों में सीता, महाश्वेता आदि के सन्ध्योपासनादि का स्पष्ट वर्णन पाया जाता है। इत्यादि

१ पं० चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार ने 'यज्ञोपवीतिनीम्' का अर्थ यज्ञोपवीत की नाईं वस्त्र से आच्छादित आदि अर्थ किया है। उसी प्रकार गोभिल गृ० सू० के पौराणिक टीकाकार तथा पद्धतिकारों ने ऐसा ही अर्थ करने का वृथा प्रयास किया है, यथा 'कृत्यचिन्तामणि', 'गृह्यकारिका' 'गोभिल गृह्य कर्म प्रकाशिका' प्रभृति लेखक।

इस उद्धरण में जो प्रबल शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा समर्थित और युक्तियुक्त है। महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त जी शर्मा ने 'गोभिल गृह्य सूत्र' के 'यज्ञोपवीतिनीम्' का स्पष्ट यज्ञोपवीत वाली यही अर्थ माना है तथा स्त्रियों के उपनयन, वेदाध्ययन, गायत्री जप इत्यादि के अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। ये अपने को कट्टर सनातनधर्मी ही मानते थे और इसी रूप में उनका समस्त पौराणिक मण्डलों में मान था। आर्य्य समाज केसाथ उनका किसी प्रकार का सम्बन्ध न था तथापि इस विषयक शास्त्रीय सिद्धान्त को उन्होंने वैय्याकरण सिद्धान्त कौमुदी, न्याय-सिन्धु, जैमिनीय, न्याय माला, आर्य विद्या-सुधा कर आदि की पाद-टिप्पणियों में प्रबल रूप से स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया है।

मैसूर के जगद् विख्यात प्राच्य पुस्तकालय तथा ऐड्यार मद्रास पुस्तकालय के अध्यक्ष पं० महादेव शास्त्री ने अपने Vedic law of marriage [वैदिक लौ ऑफ् मेरिज) ग्रन्थ में हारीत धर्म शास्त्र तथा गोभिल गृह्य सूत्रादि के प्रमाण उद्धृत करते हुए लिखा कि प्राचीन काल में कन्याओं का यज्ञोपवीत होता था।"

पारस्कर गृह्य सूत्र के हरिहर भाष्य में लिखा है:—

"स्त्रिय उपनीता अनुपनीताश्च" (पारस्कर गृ० सू० पृ० ८४ काशी सिद्ध विनायक प्रेस, संवत् १६३६ वि० में मुद्रित]

अर्थात—स्त्रियां दो प्रकार की होती हैं यज्ञोपवीत वाली और बिना यज्ञोपवीत के।

"द्विविधाः स्त्रियों ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षाचर्य्या इति वधूनां तूपस्थिते विवाहे कथञ्चिदुपनयनमात्रं कृत्वा विवाहः कार्यः"— (पराशर स्मृति के माधव भाष्योद्धृत हारीत वचनम् *)

अर्थ—"स्त्रियां दो प्रकार की होती हैं—ब्रह्मवादिनी और दूसरी सद्योवधू इनमें से ब्रह्मवादिनी स्त्रियों को जनेऊ वेदाध्ययन और अपने घर में ही भोजन करने की व्यवस्था है, तथा सद्योवधुओं को तो विवाह करने के समय में उपनयन मात्र करा कर विवाह करना चाहिये।"

विद्वद्वर पं० नरदेव शास्त्री 'वेदतीर्थ' लिखते हैं:—"स्मृति ग्रन्थों के देखने से दो प्रकार की स्त्रियों के विधान हैं, सद्योवधू और ब्रह्मवादिनी। सद्योवधू वह जिसका उपनयन संस्कार विवाह संकार के साथ हो। ब्रह्मवादिनी वह जिसका बाल्यावस्था में ही यज्ञोपवीत हो और जो आमरण ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित रहे। जो कुछ हो हम तो इस मत के हैं कि कन्याओं का यज्ञोपवीत अवश्य होना चाहिये।१०

---

* मिलाओ 'संस्कार रत्न माला' पूना संस्करण सन् १८६६ ई०, प्रथम खण्ड पृष्ठ १६५ पंक्ति ६-७, 'अगथर्व सूक्त संग्रह' सप्तम संस्करण पृ० ४०। महामहोपाध्याय पं० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी कृत "चातुर्वर्ण्य शिक्षा" प्रथम संस्करण पृष्ठ७।

१०. "आर्य समाज का इतिहास" प्रथमभाग, पृष्ठ ११८ (संवत् १६७५ रामनवमी में हिन्दी प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित, प्रथमावृत्ति)

"पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते ।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा ॥ १ ॥
पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत् परः ।
स्वगृहे चैव कन्याया भैक्षचर्या विधीयते ॥ २ ॥

(संवत् १८८३ वि. में एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता द्वारा प्रकाशित पराशर स्मृति के माधवभाष्योद्धृत यमवचनम्; 'चातुर्वर्ण्य शिक्षा' प्रथम संस्करण पृ० ७, 'ऋगवेद सूक्त संग्रह' सप्तम संस्करण पृष्ठ ५०)

अर्थः—"पहले कल्प में कन्याओं का यज्ञोपवीत संस्कार होता था, उन्हें गायत्री का उपदेश और वेद पढ़ने की आज्ञा थी। पिता, भाई आदि घर में ही कन्याओं के पढ़ाने और भोजन का प्रबन्ध करते थे।'

उपर्युक्त श्लोक पर विचारः—हारीत और यम स्मृति के प्रमाणों के विषय में शङ्का की जाती है कि "माधव ने पराशर स्मृति के भाष्य में और श्री कमलाकर भट्ट ने "निर्णय सिन्धु" में हारीत के सूत्र उद्धृत करके यह उत्तर दिया है कि 'नैवं कल्पान्तरविषयत्वात्', 'युगान्तर विषयत्वात्'। ऐसे न कहो, क्योंकि (हारीत का वचन) पूर्व युगों से सम्बन्ध रखता है जैसा कि यम का वचन है....'पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते' पूर्वकल्पों (युगों) में स्त्रियों का उपनयन इष्ट था'। 'पूर्व युग' में कहा है, यह नहीं कहा है कि अब होना चाहिए।"

समाधानः—माधव ने विक्रम सं० १४५० के लगभग पराशर माधव लिखा, और श्री कमलाकर भट्ट ने 'निर्णय सिन्धु' १५६८ विक्रमी में लिखा। यह वह समय है, जब कि कन्याओं का उपनयन सर्वथा लुप्त हो चुका था। मुसलमानी राज्य-स्थापन हो चुके थे, और कन्याओं को आठ, नौ, दश वर्ष की आयु तक विवाह कर देने के नियम शीघ्रबोधादि पोथियों में बन चुके थे। अत एव उस समय इसको 'युगान्तर विषयत्वात्' कह कर बचना आवश्यक प्रतीत हुआ। बस इतना ही कारण है और कुछ नहीं। अन्यथा यम ऋषि के वचनों से यह तात्पर्य किसी प्रकार भी नहीं निकल सकता, कि अब नहीं होना चाहिए। पूर्वकल्पों में होता था। इससे यह तात्पर्य कैसे निकल आयगा कि अब नहीं होना चाहिये। और न यह धर्म उन विधियों में वर्जित है, जो कलि वर्जित है, इसलिए इस का निषेध में तात्पर्य नहीं हुआ, तो हारीत के वचनों का कोई सङ्कोच न होकर कन्याओं का यज्ञोपवीत इस समय में भी कर्त्तव्य सिद्ध होता है। और यम का प्राचीन समय की विधि को बतलाना भी बिना प्रयोजन के नहीं, या तो आगे वर्त्तमान के लिए उसका निषेध करते, नहीं किया, तो उसका तात्पर्य भी विधि में ही सिद्ध होता है। ऐसा न मानें तो, ये वचन बिना प्रयोजन के कहे हुए मानने पड़ेंगे। इसलिए सरलभाव यही है कि इन दोनों स्मृतियों का विधि में ही तात्पर्य है, हाँ, उन व्यवस्थाओं से यह परिणाम अवश्य निकलता है कि उस समय भी शिथिलता बहुत कुछ आ चुकी थी।' यहाँ दो प्रकाण्ड विद्वानों की सम्मतियाँ दी जाती हैं जिससे स्पष्ट प्रकट हो जाय कि इससे कन्याओं का यज्ञोपवीत ही सिद्ध है।

आचार्य श्री क्षिति मोहन सेन 'शास्त्री' 'एम० ए०' शान्ति निकेतन अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ* में लिखते हैं:—"पराशर माधव के आचार काण्ड, विवाह प्रकरण में यम का वचन उद्धृत करके दिखाया गया है कि पुराकाल में कन्याओं का मौञ्जीबन्धन और उपनयन होता था, तथा वेद भी उन्हें पढ़ाए जाते थे (तर्कालङ्कार संस्करण पृ० ४८५)। वहीं हारीत का वचन उद्धृत करके कहा गया है कि स्त्रियों में दो श्रेणियाँ हैं, ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू।"

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के स्नातक पं० यशःपाल जी सिद्धान्तालङ्कार अपनी पुस्तक* में लिखते हैं:-"... पुराकल्पों में स्त्रियों को मौञ्जी बांधना, वेदों का पढ़ाना और गायत्री का उपदेश इष्ट था। यहाँ पर कल्प का अर्थ, समय वाचक माना जाय तो पुरा शब्द के होने समय 'इष्यते' यह वर्तमान काल का प्रयोग ठीक नहीं, क्योंकि 'परोक्षे लिट्' इस पाणिनीय सूत्रानुसार भूत अनद्यतन परोक्ष काल में लिट् लकार आना चाहिए। 'इष्यते' का अर्थ इष्ट होता है, न कि इष्ट था। इसलिए यहाँ कल्प शब्द का यह अर्थ करेंगे कि 'पूर्व विधिषु' अन्य वेदाध्यापन, सावित्री वाचन तथा विवाहादि विधि में प्रथम स्त्रियों को मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत) संस्कार इष्ट है। तत्पश्चात् वेदों का पढ़ाना और गायत्री मन्त्र की जपादि विधि करनी चाहिए। इसके लिए प्रमाण 'कल्पे विधि क्रमौ' अमर १७-४० अर्थात् कल्प, विधि, क्रम ये तीन नाम विधान शास्त्र के हैं। भगवान मनु भी कहते हैं कि "नह्यस्मिन्युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जी बन्धनात्" (मनु० २० १७१.) अर्थात्-यज्ञोपवीत से पूर्व वेद का उच्चारण न करे। कल्प शब्द, विधि अर्थ में साहित्य में भी प्रयुक्त होता रहा है।

'तदनन्तरं भगवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय त्रयीविद्यामध्यापितौ'

(उत्तर रामचरित)

अर्थात्—'भगवान बाल्मीकि ने एकादश वर्ष होने पर क्षात्र कल्प विधि से संस्कार करा कर दोनों लव कुश को त्रयी विद्या पढ़ाई।'

यहाँ 'कल्प' शब्द पर वीर राघव कृत टीका है—'कल्प्यतेऽनुष्ठीयतेऽनेनेति कल्पः अनुष्ठान-परिपाटीप्रकाशकग्रन्थः'।

अर्थात्—जिससे अनुष्ठान किया जाय वह कल्प अर्थात् अनुष्ठान परिपाटी का प्रकाशक पुस्तक।

"संस्कारो नाम दोषापनयनं गुणाधानं च। तत्र गर्भाधानादय उपनयनान्ता दोषापनयनात्मकाः ? कुतः। तदकरणे व्रात्यत्वप्रसङ्गात्। तत्करणे संस्कृतः कुमारः शुद्ध इति प्रसिद्धेश्च। एवं च याद्दोषापनयनं तावदवश्यं कर्त्तव्यत्वाद्। द्विजाङ्गनानामपि तत्संभव इति वेदराशेरभिप्रायः। वस्तुतस्तु द्विजाङ्गनानामपि यथाकुलं यथाकालं कर्त्तव्यमेवोपनयनं द्विजस्य-

११. "भारत वर्ष में जातिभेद" प्रथम संस्करण, पृ० १६४.

१२. "वैदिक सिद्धान्त-दर्पण" प्रथम संस्करण, पृ० ६२-६३.

विच्छेदाय । कल्पान्तरविषयवचनं चेच्छूद्रयोनय एव सर्वे वर्णाः संभवेयुः एवं सत्यत्रकल्पे सर्वे वर्णाः शूद्रा एव भवेयुरिति विद्वन्नेत्रपथमाच्छादयत्येव माधववचनं पराशरधर्मशास्त्रव्याख्यान्तर्गतमिति" (विवाह मीमांसायां स्त्री वेदाधिकारे)।

अर्थ—"जो संस्कार हैं सो सब दोष दूर करने के लिये और गुण धारण करने के लिये हैं। इनमें गर्भाधानादि से लेकर उपनयन तक के संस्कार दोष को दूर करने वाले हैं। क्यों? उनके न करने से व्रात्यत्व प्रसङ्ग आ पड़ेगा और करने सेसंस्कृत शुद्ध बालक होते हैं ऐसी प्रसिद्धि है इस लिये दोषों का दूर हटाना अवश्य कर्त्तव्य होने से द्विज स्त्रियों के लिये भी वे संस्कार होने चाहियें ऐसा वेदादि शास्त्रों का अभिप्राय है। वास्तव में द्विजाङ्गनाओं का कुल और काल देख कर उपनयन संस्कार कराना चाहिये जिससे द्विज जाति का विच्छेद न हो जाय। कल्पान्तर विषय का वचन माना जाय तो सब वर्ण शूद्र ही कहलायेंगे अतः माधव का जो युगान्तर वचन है वह विद्वानों के नेत्र पथ पर अन्धकार का पर्दा डालता है।"

"विधवा भी यज्ञोपवीत धारण करके स्वामी, श्वसुर प्रभृति के श्राद्ध करती हैं। वह विधानानुयायी कभी भी वा यह यज्ञोपवीत वाम या दाहिने स्कन्ध में पहिरती है। पुत्र वा कन्या के उद्देश्य में एकोद्दिष्ट श्राद्ध करने के संकल्प पर्यन्त समुदाय कार्य विधवा जननी स्वयं करती है। उसके बाद अवशिष्ट कार्य सम्पादन कराने के लिए पुरोहित को अनुरोध किया जाता है"— (यज्ञोपवीत परिधान के नियम कर्म प्रदीप १। २)

"एक स्वामी के बहुपत्नी के बीच में उपेतानाञ्च अन्यतमा अर्थात् उपनीता व शिक्षिता के मध्य में जो श्रेष्ठ व सब से पहिले आहुति देवे इसमें समझा जाता है कि जो जाति, कुल, सौन्दर्य प्रभृति सब कुछ से उपनीता के समान समाज में व परिवार में श्रेष्ठता है*— १३

"मदनपारिजात" (बिब्लिबोथेका इण्डिका संस्करण पृष्ठ ६६२) में स्त्री संस्कार नामक ग्रन्थ के एक अध्याय में स्मार्त्त मदनपाल कात्यायन का वाक्य बोलते हैं—"अगर किसी कारण से स्त्रियों के उपनयन का समय अतीत होजावे तो उनके व्रात्यस्तोम व अन्य २ प्रायश्चित्त करना होगा।"

"कादम्बरी संस्कृत साहित्य का सुप्रसिद्ध गद्य काव्य उपन्यास है, उसका कर्त्ता महाकवि बाण भट्ट प्रसिद्ध ऐतिहासिक राजा हर्षवर्धन की सभा का रत्न था। हर्षवर्धन ७वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ है। इसकी राजधानी कन्नौज थी। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसङ्ग उसी के राजत्वकाल में भारत में आया था। हर्षवर्धन का विस्तृत वर्णन मि० विनसेन्ट ए० स्मिथ साहब ने आंग्ल भाषा में लिखा है तथा कादम्बरी की अंग्रेजी भूमिका में डा० पीटर पीटर्सन साहब ने भी लिखा है। कादम्बरी एक आख्यायिका उपन्यास है उसका नायक चन्द्रापीड दिग्विजय करता हुआ जब कैलाश की ओर पहुंचा तो वहां एक दिन शिकार के पीछे भटक कर 'अच्छोद' नामक तालाब के समीप एक आश्रम में पहुंचा वहां उसने एक मन्दिर में शिवजी का पूजन करती हुई एक गन्धर्व कन्या को देखा जिसका नाम 'महाश्वेता' था। महाश्वेता का वर्णन करते हुये महा कवि बाण भट्ट जी लिखते हैं:—

"अयुग्मलोचनसकाशात् प्रसादलब्धेन चूडामणिचन्द्रमयूखजालेनेव मवहलीकृतेन ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकायाम्।"...

अर्थात्—ब्रह्म सूत्र (यज्ञोपवीत) जो महादेव के पास से प्रसाद के रूप में मिला था, जो मानो चूडामणि के चन्द्र के किरण जाल की भांति ज्ञात होता था, उस ब्रह्म सूत्र (यज्ञोपवीत) से उसका (महाश्वेता का) शरीर पवित्र हो रहा था,"

कादम्बरी की कथा चाहे काल्पनिक हो, पर इससे इतना तो ज्ञात होता है कि सातवीं शताब्दी में उत्पन्न बाण भट्ट ब्रह्मचारिणी तपस्विनी स्त्रियों का यज्ञोपवीत धारण करना उचित समझता है।

श्वेत चम्पक वर्णाभा रत्नभूषणभूषिताम्।
वह्निशुद्धां शुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम्-
(ब्रह्मवैवर्त पु० प्रकृति अध्याय ४६ श्लोक २)

अर्थ—सफेद चमेली के सदृश शोभा वाली रत्नों के भूषणों से भूषित साफ कपड़े पहिने हुए नाग के समान यज्ञोपवीत पहिनी हुई को देखा।

ततः शैलवरः सोऽपि प्रीत्या दुर्गोपवीतकम्।
कारयामास सोत्साहं वेदमन्त्रैः शिवस्य च ॥६॥
(शिव पुराण रुद्र सं० २, पार्वती खण्ड ३, अध्याय ४७)

अर्थ—पार्वती के पिता हिमालय ने प्रेम पूर्वक उत्साह से वेद मन्त्रों के द्वारा अपनी कन्या पार्वती तथा शिवजी का यज्ञोपवीत उनके विवाह के समय करवाया।

"यज्ञोपवीत मार्गेण छिन्ना तेन तपस्विनी।
सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रियदर्शना ॥१०॥
(वाल्मीकीय रामायण युद्ध काण्ड सर्ग ८१)

रावण ने छल से कमाई बेचारी सीता को यज्ञोपवीत मार्ग से काट डाला। वह सुन्दरी पृथ्वी पर गिर पड़ी।

"स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च नराधिप।
स्पर्शने नरक प्राप्तिर्विष्णोर्वा शंकरस्य च। "
(नारदीय पुराण, आह्निक सूत्रावली)

जो स्त्री यज्ञोपवीत न पहिनी हुई हो वह विष्णु और शिव का स्पर्श करके नरक को जाती है।

"विद्वन्मानसनिवासलग्नेन गुणकलापेनेवांसावलम्बिना ब्रह्म सूत्रेण पवित्रीकृतकाया।" १५

अर्थात्—विद्वानों के हृदय रूप निवास में लगे हुये गुणों के गुच्छों के तुल्य कन्धे पर पड़े हुए यज्ञोपवीत से पवित्र किये हुये शरीर वाली सरस्वती ब्रह्मा के पास खड़ी थी।

(शेष अगले अङ्क में)

---

१३ 'कात्यायन कृत कर्म-प्रदीप' १।८।६, ओप खर्ती, बिब्लिवोथेका इण्डिका संस्करण पृ० ३६२

१४ 'Kadambari of Bana' I1,[3 & 4, Pages 248; Nirnaya Sagar Press Bombay,

१५ "श्री हर्ष चरित्र" पृष्ठ ८ पंक्ति १३, (निर्णय सागर प्रेस, बम्बई में मुद्रित)

भारत की हिन्दू-अहिन्दू-समस्या

[लेखक—श्री प्रो० आत्मानन्द जी विद्यालङ्कार]

कोई भी राष्ट्र यदि जीवित वर्णाश्रम-व्यवस्था पर आश्रित हो तो वह सुखी और चिरंजीवी रह सकता है। कोई सुसम्बद्ध मनुष्य समाज किसी स्थिर देश में स्वतन्त्रता से बसता हुआ राष्ट्र बन जाता है। कभी आर्य जाति भारत में स्वतन्त्रता से बसती हुई राष्ट्र कहलाती थी। भारत में चक्रवर्ती राज्य भी रहे हैं और गण राज्य भी। भारत के इतिहास में ऐसे अनेक काल आए जब बाह्य आक्रमणों के कारण या आन्तर विप्लव के कारण या दोनों के कारण भारत खण्ड खण्ड हो गया। पिछले २६०० वर्ष में भारत का इतिहास बड़ा विचित्र है। विशाल एकच्छत्र राज्य, गण-राज्य, बाह्य आक्रमण, आन्तरविप्लव, उत्थान, पतन, के अनेक युग इन २६०० वर्षों में आए। ऐसे विचित्र इतिहास का अनुशीलन करने पर जो परिणाम निकलते हैं उनमें से कुछेक ये हैं।

(१) भारत वर्ष हिरण्य गर्भ है, शस्य श्यामल है। भूमि उर्वरा है। भारत वर्ष सैंकड़ों धनों और सुखों की खान है।

(२) इस देश में बसने वाली जाति असंघटित है, भ्रम, अज्ञान और नाना रूढ़ियों में फँसी हुई है और पुरुषार्थ हीन है। इसका हृदय कोमल, प्रेममय और शुद्ध है।

(३) इस जाति के पास उच्च वाङ्मय की विपुल सम्पत्ति है। वैदिक वाङ्मय, लौकिक भाषा वाङ्मय, संस्कृत वाङ्मय, परम्पराओं, उच्च कर्मों, उच्च विचारों का एक विशाल कोश इसके पास है।

(४) भौतिक और मानस कोशों और सम्पत्तियों के पूरा उपयोग लेने का सामर्थ्य इसके पास कभी कभी तो आ जाता है अनेक वार नहीं भी आता। लोग इसे झुकाते हैं तो यह जाग कर इन दोनों सम्पत्तियों का उपयोग लेने लगती है। नहीं तो ये कोश यों ही पड़े पड़े सड़ते हैं या विदेशी उठा कर ले जाते हैं। यहां की मानव जाति भी एक महा विशाल सम्पत्ति है। उसकी दशा भी दूसरी सम्पत्तियों की दशा के ही तुल्य है।

(५) भारतीय जाति निरन्तर प्रगतिशील नहीं।

(६) ज्ञान क्षेत्र, शास्त्र क्षेत्र, कला क्षेत्र, वीरता क्षेत्र, धन क्षेत्र, सेवा क्षेत्र और भक्ति क्षेत्र में महापुरुष उत्पन्न हो होकर इसे जगाते हैं। जाग कर और कुछ काम कर, जरा आगे सरक कर यह फिर सो जाती है। खरगोश के तुल्य है, कछुए के तुल्य नहीं।

(७) इसकी राजनीतिक दशा कभी अच्छी और कभी बहुत बुरी हो जाती है।

(८) एक प्रबल केन्द्रवाला एक छत्र राज्य होने पर इसमें, कुछ शान्ति और समृद्धि आती है। बाहर से हमले भी कम होते हैं। केन्द्र के

निर्बल होने पर, छोटे छोटे राजा और उप-जातियां केन्द्र से विमुख होकर या विरुद्ध होकर अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लेते हैं।

एक प्रचण्ड केन्द्रीय राजों के उदाहरण चन्द्रगुप्त मार्य, अग्निमित्र, कनिष्क, समुद्रगुप्तादि गुप्तवंशीयराजा, हर्ष वर्धन, अल्लाद्दीन खिलजी, अकबर, शाहजहां, कोई कोई पेशवा, और अंग्रेजी राज। केन्द्र के कमजोर होने पर, पुरु के समय अलेग्जेण्डर का आक्रमण, शकों, हूणों, कासिम, महमूद, मुहम्मदगौरी, चंगेजखां, तेमूर लंग, बाबर, नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली, आदि के बाहर के हमले। और आन्तर विप्लव तो अनन्त हैं।

(६) पिछले १२५ वर्ष में नवीन जागृति आई है जो आशा जनक है। ऐसे पुनजीगरण के युग महात्मा बुद्ध, अशोक, पुष्यमित्र, अग्निमित्र, कनिष्क, गुप्तकाल हर्षवर्धन, शंकराचार्य और भक्ति 'काल,' मराठा काल, सिक्खकाल हैं।

महात्मा बुद्ध से पहले इस देश में धर्म की दृष्टि से ऐसे स्पष्ट विभाग न होते थे। गणों की दृष्टि से प्रान्तों की दृष्टि से प्रायः विभाग होते थे। सूर्यवंश, चन्द्रवंश, यदुवंश, आदि। कैकेय, काम्बोज, बाह्रीक, सिन्धु, मद्र, कुरु, पांचाल, मत्स्य, विराट सौराष्ट्र, कोशल, विदेह, मगध अङ्ग, बङ्ग कलिङ्गादि. महात्मा बुद्ध के बाद वे विभाग तो रहे या गौण हुए पर इनके साथ धर्म और सम्प्रदाय की दृष्टि से भी विभाग शुरू हो गये। तथा कथित वेदानुयायियों में शैव, वैष्णव,शाक्तादि और इतरों में बौद्ध जैनादि विभाग हो गये।

चिरकालसे चल रहे एक मुख्य वैदिक सम्प्रदाय में से अलग होकर एक प्रचण्ड बौद्ध सम्प्रदाय अलग हो गया। इतना अलग हुआ कि धर्म-क्षेत्र में अलग होकर समाज क्षेत्र में, साहित्य क्षेत्र में, राजनीति क्षेत्र में, विदेश धर्म प्रचार क्षेत्र में, दर्शन क्षेत्र में, पुराण क्षेत्र में, प्राकृत भाषा क्षेत्र में, संस्कृत भाषा क्षेत्र में, मूर्तिपूजा क्षेत्र में, आश्रमविहारादिस्थापना क्षेत्र में बौद्धों की रचना और रुचि ब्राह्मणानुयायी वर्ग से बहुत भिन्न होगई। यह परस्पर संघर्ष कोई १३, १४ सौ वर्ष रहा है। दोनों पक्षों में बड़े २ शक्तिशाली राजा, राज्य, यति, संन्यासी और महा पण्डित हुए। जिन ने स्वदेश और विदेशों में अद्भुत आन्दोलन और संस्कृतियां फैलाईं। क्या वेद शास्त्रानुयायी लोगों की चित्त वृत्ति इतनी आग्रह पूर्ण थी हठमयी थी, शक्ति हीन थी कि नवीन बौद्ध सम्प्रदाय मुद्दत तक उससे टक्कर लेता रहा और अनेक युगों में वैदिक सम्प्रदाय से राज क्षेत्र और विद्या क्षेत्र में उत्साह और स्वधर्म प्रचार क्षेत्र में बढ़ भी गया, कहना पड़ता है कि इस देश के चिरकाल से आये जातीय जीवन में बीसियों दोष आ गये थे जिन में से कुछेक ये हैं जिनके कारण महात्मा बुद्ध और बौद्धों को सफलता मिली। वे जातीय जीवन के कुछेक दोष ये हैं:—

(१) घोर हिंसा। पशु वध।

(२) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि वर्ण और ब्रह्मचर्यादि प्रतः आश्रम जन्म मूलक और रूढ़ि परम्परागत हो गये।

(३) बाह्यलिङ्ग आडम्बर बढ़ गये।

(४) वेदों के अर्थ, अश्लील, हिंसा परक, युक्ति बुद्धि शून्य कर लिये गये।

(५) ऊंच नीच का भाव

(६) मध्यम मार्ग की क्षीणता

पहले तो दोनों सम्प्रदाय इतने भिन्न न थे। पर अशोक के बाद अधिक भिन्न हो गये। चक्र के ऊपर नीचे आने की तरह, बौद्ध अशोक के कुछ काल बाद, वैदिक पुष्यमित्र, अग्नि मित्र प_ जलि, फिर बौद्ध, फिर वैदिक गुप्त वंशीय र । फिर हर्षवर्धन दोनों का समान मान करने वाला। विदेश में धर्म अ_ र संस्कृति के प्रचार के लिये भारत के पूर्वीय देशों में बौद्ध वैदिक दोनों गये। श्चम , उत्तर में, चीन में, दूर मध्य एशिया तक मुख्यतया बौद्ध ही गये। बौद्धों की नीति सार्वभौम थी और विस्तार की थी ब्राह्मणों की नीति संकोच की भारतीय वैदिक थी। अभी यह मार्ग भेद, रुचि भेद, दृष्टि भेद नष्ट न होने पाया था कि इस्लाम के उदय के बाद पहले राजनीतिक दृष्टि से साथ ही धर्म प्रचार की दृष्टि से यह भेद और समस्या हिन्दू-बौद्ध समस्या से बदल कर हिन्दू-मुस्लिम समस्या गई। यहां तक कि मुसलमानों के आक्रमणों के होने पर सिन्ध में और दूसरे स्थानों पर बौद्ध और दूसरे उपेक्षित या तिरस्कृत वर्ग वैदिक हिन्दू लोगों को छोड़ कर मुसलमानों से जा मिलते थे। विचित्र बात है कि बहुत से बौद्ध मुसलमान भी हो गये। जो पहले हिन्दू विरोधी थे वे मुसलमान बन कर दुगुने विरोधी होगये। सन् १००० वर्ष से और सन् १२०० से तो हम हिन्दू-मुस्लिम समस्या, राजनीति क्षेत्र और सम्प्रदाय क्षेत्र से फैल कर, समाज क्षेत्र, विवाह-क्षेत्र, अन्न पान क्षेत्र (रोटी बेटी क्षेत्र), कला क्षेत्र, साहित्य क्षेत्र, भाषा क्षेत्र, धर्म स्मृति क्षेत्र, पेशों के क्षेत्र तक फैल गई। पिछले १००० वर्ष में यह संघर्ष कभी घट गया कभी बढ़ गया। पुराने साध्य रोग की तरह रहा। साध्य भी नहीं असाध्य भी नहीं। हिन्दू-बौद्ध समस्या, हिन्दू-मुस्लिम समस्या में पिछले २०० वर्ष से योरोपियन और अंग्रेज समस्या ने अपना पदार्पण किया।

इस सारे काल में शूद्र, चाण्डाल, अस्पृश्य अछूत, म्लेच्छ, बर्बर नाम से कहे जाने वाले अत्यन्त उपेक्षित तिरस्कृत वर्ग भी मुख्य प्रधान हिन्दू जाति का स्थिर और सुखी अङ्ग शायद ही बने हों। पंजाब में सिक्ख समुदाय यद्यपि हिन्दुओं के उद्धार के लिये ही खड़ा हुआ पर पिछले ३० वर्ष से वह भी अपने को मुख्य वर्ग हिन्दुओं से अलग सा समझने लगा है। आपको इन कालों की इस विहङ्गम दृष्टि से की आलोचना से स्पष्ट होगया होगा कि भारत के पिछले कम से कम २००० वर्षों में हिन्दू और अहिन्दू समस्या इस देश का अङ्ग है। आज हिन्दू और उससे भिन्न मुस्लिम, , सिक्ख, ईसाई लोगों की समस्या बन गई है। तो सोचना चाहिए कि मुख्य हिन्दू वर्ग में ही, कोई दोष हैं कि उससे अलग-होकर लोग बौद्ध, या मुस्लिम, या अछूत या ईसाई, या आदि वासी या सिक्ख बनते रहे हैं और बन रहे हैं। वे दोष मुख्यतया ये हैं:—

१, यह स्पष्टज्ञान न होना कि हम एक राष्ट्र हैं, एक जाति हैं, एक धर्मावलम्बी हैं।

२. ज्ञान की धारा का मलिन और क्षीण होना। अपने अन्दर से, जाति के अन्दर से, विद्वानों से, वेद शास्त्रों से, ईश्वर से मिलने वाले ज्ञान का ठीक ठीक न मिलना। यह अज्ञान मिथ्या शास्त्रों के अर्थ के अनर्थ करना। भौतिक ज्ञान की निरन्तर उन्नति न होना, ज्ञान की परीक्षा के लिये पुरुषार्थ न करना, सामान्य प्रजा में शिक्षा और ज्ञान की कमी, दूसरे देशों और उनके ज्ञानियों से सम्पर्क की कमी।

३. बाल विवाह, वृथा वैराग्य, और वर्णाश्रम व्यवस्था का गुण कर्म स्वभाव पर आश्रित न होकर, चिह्न प्रधान या जन्म प्रधान होना।

४. गणों का परस्पर विरोध, और एकच्छत्र, प्रबल केन्द्र वाला राज्य न होना।

५. देश का महा विस्तार।

६. जीवन के दर्शन या फिलासफी में आनंद, उत्साह, निर्भयता की कमी।

७. जाति के भिन्न २ वर्गों में ऊंच नीच के भावों की बहुत अधिकता।

८. सम्प्रदायों का लिङ्ग प्रधान, मन्दिर प्रधान, मूर्ति प्रधान, तीर्थ प्रधान, व्रतोपवास-पर्व प्रधान, ब्राह्मण प्रधान, शब्द प्रमाण प्रधान, पुराण कथा प्रधान, नायकावतार प्रधान, होना

९. अपनी मातृ भाषा में उत्तम साहित्य का न होना। संस्कृत में लिखी सब बातों को बिना सोचे समझे मानना।

१०. समूची जाति के जीवन में भीरुता का समाना।

११. एक शुद्ध परब्रह्म की उपासना का अभाव।

१२. जाति के जीवन में विस्तार की नीति का लोप, सङ्कोच की नीति का आश्रय।

१३. किसी एक अखिल भारतीय प्राकृत भाषा का न होना।

१४. दूसरे देशों से सम्पर्क का अभाव और भौतिक और सैनिक उन्नति को ओर उपेक्षा।

(१५) अपने से भिन्न वर्गों, उपजातियों, देशों को नीच, तुच्छ और मूर्ख समझना।

(१६) गृहस्थाश्रम की प्रधानता या केवलता। १८ वर्ष की आयु से मृत्यु तक गृहस्थ रहना।

(१७) धन्धों और पेशों की कमी। और एक धन्धे को छोड़ दूसरा न अख्त्यार करना।

(१८) जागरूक देश भक्ति की कमी।

(१९) भिन्न २ युगों में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से कभी किसी की प्रधानता कभी किसी की। चारों का उचित समन्वय न करना।

(२०) महा पुरुषों की उचित से अधिक, स्तुति, पूजा, मूर्तिस्थापन और उन्हें ईश्वर के स्थान पर इष्ट देव मानना।

(२१) प्रजा तन्त्र के भाव की कमी। केवल अपनी बिरादरी में समता और प्रजातन्त्र भाव, या पंचायत के भाव का सीमित रहना।

(२२) नये सेना सम्बन्धी आविष्कारों को दूसरों से न सीखना।

(२३) राजनीति के शास्त्र और प्रयोग दोनों का अल्पज्ञान, उसके सब अङ्गों पर ध्यान न रखना।

(२४) ज्ञान-कर्म-भक्ति का उचित समन्वय

न करके कभी किसी का लोप या कभी किसी की अत्यन्त प्रधानता ।

ये और ऐसे दोषों के कारण इस भारत की मुख्य जाति प्रधान जाति Majority community, Mother race, Mother community. अपना प्रबल राज्य न रख सकी। दूसरों के हमलों को पूरी तरह न रोक सकी, न अपने देश में सुखी रही, न परदेश में गई, यदि गई तो पराधीन रह कर। दूसरी जातियों पर इसकी धाक न रही। संसार की पराधीन, दुर्बल, अल्पजीवी, भीरु जाति प्रसिद्ध हो गई। यह स्थिति अब है। मुख्य जाति से ही अलग होकर, अछूत, मुसल्मान, ईसाई, सिक्ख, आदि वासी, आदि हैं।

ब्रिटिश राज्य, देसी रजवाड़े, फ्रेंच, पोर्चुगीज आदि राज शक्तियाँ हैं।

हाँ दुर्भाग्य के साथ सौभाग्य भी है जिससे इसी जाति ने परमात्मा की कृपा से अपने अन्दर से अनेक महापुरुष, विचार धारा, संस्कृतियां, समाज, सम्प्रदाय, संघ उत्पन्न किये जिन्होंने समय समय पर इस जाति के अभ्युदय का उच्च कार्य किया।

पुरानी ऋषि परम्परा,

महात्मा बुद्ध, बौद्ध सम्प्रदाय, महावीर, जैन सम्प्रदाय, राजा पुरु, चन्द्र गुप्त, चाणक्य, अशोक, उस की बहिन और पुत्र, पुष्य मित्र, अग्नि मित्र, पतञ्जलि, कनिष्क, चरक, अश्वघोष, माठर, समुद्रगुप्तादिक गुप्त वंश, सुवर्णीय-काल, विशाल साहित्य कालिदासादि कवि, अरब से खलीफाओं से सम्बन्ध, शंकराचार्य, कुमारिल भट्ट, इस्लाम के फकीर और सूफी लोग। १२०० वर्ष से ब्राह्मण-बौद्ध संघर्ष और महा पण्डित मण्डली वात्स्यायनादि नागार्जुनादि महापण्डितों का गम्भीर दार्शनिक साहित्य, राजा हर्ष राजा भोज और उसका विद्या प्रचार, रामानुजाचार्य, और उनका भक्तिवाद, भक्तसम्प्रदाय, रामानन्द, कबीर, नानक, तुलसीदास, सूरदास, चैतन्य, मीरा, नामदेव, गुजराती नरसिंह कवि, वल्लभाचार्यादि, तक्षशिला, विक्रमशिला, नालन्दा, वलभी आदि के विशाल विद्या पीठ, समर्थरामदास, काश्मीर पण्डित-मण्डली, विजय नगर, सायण माधवादि का लौकिक वैदिक साहित्य पर भाष्य, पृथ्वीराज, गोरा बादल, हमीर जयमल पत्ता, प्रताप, शिवाजी, पेशवा, छत्रसाल, भूषण कवि, अकबर आदि। गुरु नानकादि दस गुरु और सिक्ख सम्प्रदाय, यूरोपियन जातियां, ईसाई धर्म, ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, राजा राम मोहनराय, देवेन्द्रनाथ, ऋषि दयानन्द सरस्वती आर्य समाज की संस्थाएं, नवीन शिक्षा, ईसाइयों के स्कूल हस्पतालादि, सर सैयद अलीगढ़ विश्वविद्यालय मालवीय जी, हिन्दू युनिवर्सिटी, देशी भाषाओं की उन्नति, बंगालादि के विद्रोही, कांग्रेस और उस के संस्थापक, दादा भाई आदि, तिलक, ऐनी बेसैंएट और होमरूल आन्दोलन, समाज सुधार, शिक्षा प्रसार, अकाली आन्दोलन, दो महा युद्ध, उनमें गये लाखों सैनिक, सुभाष बाबू, आजाद हिन्द फौज, दलितोद्धार-आन्दोलन, महात्मा गांधी और उनका सत्याग्रह आन्दोलन, राष्ट्रीय प्रेस, जवाहरलालादि बीसियों नेता और लाखों जेल में हो आई सामान्य

प्रजा ने पिछले २५०० वर्ष से अबतक यथाशक्ति यथामति इस दुःखी, दरिद्र, रोगी, अल्पायु, विभक्त देश के उद्धारका प्रयत्न किया है। इन सबके भरसक प्रयत्न करने पर भी प्रधान जाति-हिन्दु जाति ने भारत की चारों सीमाओं पर रक्षा करके अपने अन्दर से अपने संन्यासी ब्राह्मण वर्ग द्वारा और अपने क्षात्र तेज और वाणिज्य के उत्साह रक्षा और वृद्धि का स्थिर उत्साह नहीं रखा। इसलिये किनारों की प्रजाओं को उनकी किस्मत पर छोड़ भीरु बन कर सिकुड़ती गई और संयुक्त प्रान्त, राजपूताना, बिहार, बंगालादि की ओर झुकती गई। ऐसा ही कुछ दक्षिण के समुद्री सीमा प्रान्तों पर इस लिये सिंध, सीमा प्रान्त, कश्मीर, मुलतान प्रांत, रावलपिण्डी प्रान्त कोचीन, ट्रावनकोर, पूर्वी बंगाल आदि स्थलीय, और जलीय सीमाओं पर के लोग हमारी रक्षा, प्रेम, धर्म संस्कृति न पाकर मुसलमान ईसाई बन गये और सारे देश में उपेक्षा, तिरस्कार अनुयोग के कारण, अछूत असभ्य बर्बर रह गये। प्रत्येक जीवित जागरूक, उन्नति शील जाति को अपने अन्दर से मकड़ी की तरह, ब्राह्म बल क्षात्र बल, धन धान्य पशु बल और सेवा बल का संग्रह, रक्षा और वृद्धि करते रहना चाहिये। यही हमने नहीं किया। जो वर्ग उपेक्षित रहे, तिरस्कृत रहे उन्होंने ही इस्लाम, ईसाई धर्म सिक्ख धर्म, स्वीकार कर लिया, या अनेकों को अभी तक कोई धर्म ही नहीं मिला। फिर भी लोग कहते हैं आर्य समाज को धर्म प्रचार, संस्कृति प्रचार, की आवश्यकता नहीं रही। इस्लाम, ईसाई धर्म और सिक्ख धर्म प्रचार के इतिहास को पढ़ना चाहिये। सिन्ध के हिन्दू कितने मुसलमान हो गये जो हिन्दू रहे उनमें भी सनातन धर्म का पूरा गहरा प्रचार नहीं। वे सिक्खों के गुरु ग्रन्थ साहिब और अमृतसर के हर मन्दिर की ओर अधिक खिंचते हैं क्योंकि विशाल हिन्दू धर्म के धर्म क्षेत्रों, विद्या क्षेत्रों, संस्कृति क्षेत्रों से प्रचारक, ब्राह्मण, संन्यासी और क्षत्रिय लोग दूरवर्ती सीमाओं पर नहीं पहुंचते। हृदय के कमजोर हो जाने पर जैसे रुधिर दूर तक सीमाओं पर नहीं पहुंचता और नाखून पीले पड़ जाते हैं ऐसे भारत के हृदय-वर्ती तीर्थों से धर्म, ज्ञान, संस्कृति, प्रताप, क्षत्रियत्व और धन, मन्त्र, (सलाह), उत्साह नेतृत्व के न मिलने से यदि ये लोग ईसाई, मुसलमान और सिक्ख हिन्दू विरोधी बनें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? जो अपने को प्रधान कहे उसे प्रधान बन कर रहना चाहिये। पंजाब प्रान्त में चिरकाल से यू० पी० बंगाल, बिहार दक्षिण से ब्राह्मण लोग संन्यासी लोग नहीं पहुंचे इस लिये पंजाब के अन्दर से सिक्ख धर्मका उदय हुआ। इससे सिक्ख धर्म और सिक्ख सम्प्रदायको मुसीबतके वक्त भारतके इतने प्रान्तों ने धर्म रक्षा और राज्य स्थापना में कब सहायता दी। इस लिए भारत के ब्राह्मण वर्ग और पंजाब के ब्राह्मण वर्ग का पंजाब में कोई बल प्रताप नहीं। महात्मा बुद्ध, कुमारिल भट्ट, शंकराचार्य, रामानन्द, कबीर तुलसी दास, स्वामी दयानन्द, सभी को काशी से धर्म प्रचार आरम्भ करना पड़ा। गुरु गोविन्द सिंह, राजा राम मोहन राय आदि ने काशी में वेदों के पढ़ने के लिये लोगों को भेजा,

पर काशी भारत के सुधारकों को चिरकाल से वेद नहीं पढ़ा सकी चाहे वे महात्मा बुद्ध हों, या गुरु गोविन्द सिंह, राजा राम मोहन राय हों या स्वामी दयानन्द। इस लिये भारत के सभी संशयात्मा और बुद्धिवादी लोग Protestant लोग जो केवल श्रद्धा पर नहीं चलना चाहते काशी में वेद के पढ़ने के इच्छुक हैं पिछले २५०० वर्ष से परन्तु उन्हें वेद का सच्चा सुबोध प्रकाश सन्मार्ग दर्शी अर्थ बताने वाला क्या आज तक मिला है? यह भी हिन्दू अहिन्दू समस्या का एक पक्ष है। इसे कौन हल करेगा? क्या कांग्रेस, वा हिन्दू महा सभा अकाली या ईसाई या मुस्लिम लीग? क्या यह कार्य पण्डित मण्डली और आर्य समाजका नहीं? सभ्यता संस्कृति, शिष्टाचार की दृष्टि से भी हिन्दुओं ने संकोच नीति और भीरु नीति का आश्रय लिया है इस लिये देश में हिन्दू-अहिन्दू समस्या है। अधिक संख्या में जो प्रान्त या खण्ड मुसलमान बन गये हैं उनका खून वंश और race तो वही पुरानी है। इस्लाम के ग्रहण करने पर भी इन सिन्ध, सीमाप्रान्त पंजाब के मुसलमान वासियों के स्वभाव पिछले हजारों साल से नहीं बदले। जैसे जब अर्जुन योगेश्वर श्री कृष्ण महाराज की मृत्यु के बाद यादव वंश की स्त्रियों को पञ्चनद के मार्ग से ला रहे थे तो वहां के लोगों ने यादव वंश की स्त्रियों को छीन लिया। महा भारत में कर्ण शल्य संवाद में जो बाहीक पंजाब वासी जातियों और गणों के दोष कहे गये है वे अब भी इन सब सप्त-सिन्धु क्षेत्र वासी लोगों में मौजूद हैं। अनुपात की दृष्टि से मुसलमान घोर अपराधों के कारण हिन्दुओं की अपेक्षा जेलों में बहुत अधिक संख्यामें जाते हैं। पिछली लड़ाईमें, अब भी, सीमा वर्ती लोग, लूट, खसोट की पुरुषोंको भगा ले जानेऔर मारनेमें नहीं हिचकते। यह स्वभाव सदियों से वैसे का वैसा ही है। इस्लाम ग्रहण कर लेने पर भी उन्हें भारतीय के नाते संस्कृति सभ्यता, कोमलता, शिष्टाचार, उद्योग, हुनर, स्थिर गृहस्थ जीवन सिखाने का काम बौद्धों के बाद किसी ने ग्रहण नहीं किया। प्रधान जाति यदि भारत को अखण्ड समझती है तो इन खण्डों की उपेक्षा क्यों करती है? अर्थात् समस्या पुरानी है हिन्दू-धर्म Majority Community सभ्यता संस्कृति में यदि संकोच और भीरुता को ग्रहण करेगा तो भारत ही के अङ्ग रूप, पर भारत की सीमा वर्ती प्रान्तों के लोग असभ्य रहेंगे ही।

सिक्खों में भी जाट अधिक हैं जो पहले उपेक्षित थे अरोड़े और क्षत्री कम। इस से भी यही सिद्ध हुआ हिन्दुओं में से जिन्हें सभ्यता संस्कृति नहीं पहुंची वे ही ज ट्टी सिक्ख बन गये।

जिन्हें हम, म्लेच्छ, यवन, पतित, उपेक्षित, तिरस्कृत, अछूत, अस्पृश्य, चण्डाल दूरवर्ती कहते हैं उन के हृदय पर क्या बीतती है उनके बच्चों और स्त्रियों पर क्या बीतती है इसका ठीक ठीक अनुभव हमें और हमारी स्त्रियों को उनको स्थिति में रखकर सोचना चाहिये। ये और इनकी स्त्रियां और बच्चे देखते हैं कि जो लोग सवर्ण हैं, जाति के संघटन के अङ्ग हैं उनका व्यवहार स्थिर है, उनको स्थिर धर्म, शिष्टाचार, प्रेम स्त्री, मकान, पेशा, बिरादरी,

परम्परा से स्वयं मिलता जाता है। हमारे बच्चों का जीवन स्थिर नहीं हम किसी संघटन के अङ्ग नहीं। हमारा विधान (Law) स्पष्ट और स्थिर नहीं, हम जीवन में उल्लास आनन्द बिना प्रयत्न के नहीं पाते। हमारे पेशे, काम, हीन, नीच, दुर्गन्ध, पाप, निर्दयता पूर्ण और शहरों से बाहिर हैं तो उन्हें उच्चलोगों से ईर्ष्या द्वेष, घृणा उत्पन्न होते हैं। वे मौका पाकर उसका पूरा बदला निकालते हैं यह हम आज भी देख रहे हैं और चिरकाल से देखते आ रहे हैं। जिन्ना, अम्बेदकर मिलन से आपके यह बात स्पष्ट हो जावगी। हमारी स्त्रियाँ भी, हमारे ही सिखाने से असवर्ण स्त्रियों, मुसलमान स्त्रियों ईसाई स्त्रियों को नीच, तुच्छ, दरिद्र अस्पृश्य समझती रही हैं। जब वे अछूत ईसाई मुसलमान बनकर एक संगठन में शामिल होकर कर पुरानी घृणा, ईर्ष्या द्वेष के कारण हमें दुःख देती हैं तो हमें बड़ा आश्चर्य होता है।

हमने जिन्हें अपने से अलग कहा, भिन्न कहा, उनसे हम ने यह भी कहा, हमारे धर्मशास्त्र, हमारे पण्डित, हमारे वेद, हमारे पुरोहित, हमारे पण्डे, पुजारी, संन्यासी, तीर्थ, संवत्, मास, दिन, वेशभूषा, Law, संस्कृतभाषा, हिन्दी, वैद्यक ऋषि मुनि, नेता, वीरपुरुष, सती स्त्रियां, शूर, इतिहास और आर्यजाति और भारतदेश तुम्हारे नहीं। तो उन्होंने इन आवश्यक चीजों को किसी दूसरे धर्म से लेना ही था। उन्होंने कुरान हदीस, मुल्ला, फकीर, मक्कामदीना हिजरीसंवत तारीख फारसी अरबी, उर्दू, हिकमत, पीर पैगम्बर इस्लामी तवारीख मुसलमान जाति India नहीं, कोई और, हिन्दुस्तान नहीं, इससे भिन्न देश कोई ग्रहण करना ही है। पहले वे इसे इस ढंग से नहीं लेते थे। हमने इन्हें जगाया, कइयों ने भड़काया और अब उस समस्या का स्वरूप भयङ्कर हो गया है। समस्या तो पुरानी है। समस्या हिन्दू अहिन्दू समस्या है। ४० करोड़ में लगभग १६ करोड़ अहिन्दू है और २४ करोड़ सवर्णहिन्दू। यदि इन २४ करोड़ को जागता हुआ, पक्का और सुसंगठित कर लो। बड़े विशाल और गहरे आधार पर यह काम स्वामी दयानन्द जी ने किया और उनके बाद उनके प्रवर्तित आर्यसमाज और उसके कार्यों ने। अब महात्मा गांधीजी ने जागे हिन्दुओं और अछूतों को एक रखने का विशाल और उपकारमय भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं। शान्ति से सोचें कैसे आड़े समय कितनी बड़ी मुसीबत से बचाने का महात्मा गान्धी ने उपाय सोचा और उसे कार्य में भी परिणत किया। वे तो धर्म के, सदाचार के, मलमंसाहत के विशाल आधार पर हिन्दू, अछूत, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, पारसी, बौद्ध, यहूदी, अंग्रेज, सबको सच्चा पक्का भारतीय बनाना चाहते हैं और भारतका समझदार नेकदिल हिस्सा उनके साथ है यह देखकर कौन प्रसन्न न होगा और महात्मा गान्धी का उपकार न मानेगा? दूसरी ओर भेदभाव को भड़का कर इस देश और प्रधान जाति से फट कर जबरदस्ती नया देश नयी जाति बनाने वालों ने इस समस्या को पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया जिस को हम कलकते के बड़े हत्या काण्ड के रूप में देखते हैं

और उसके बाद, नवाखाली, बिहार, बम्बई, पंजाब में रावलपिण्डी, जेहलम, अमृतसर, लाहौर मुलतान, गुड़गावां आदि के पशुतापूर्ण मुस्लिम अत्याचारों में हिन्दु-मुस्लिम फसादों में देखते हैं।

हम स्वामी दयानन्द और महात्मा गान्धी का बड़ा उपकार मानते हैं परन्तु हम चाहते हैं ये विचार सारी जाति के हृदय में और बुद्धि में समाए हुए हों, ये विचार चिरकाल तक उनके व्यवहार की नींव बनें। भारत के हिन्दू बुद्धि पूर्वक प्रेमपूर्वक श्रद्धापूर्वक स्थिरता से दलितों से अच्छा वर्तना सीखें। पूरी प्रसन्नता तब होगी जब ये भाव और विचार, समूची जाति के अन्दर घर कर जायेंगे विशेषतया हिन्दूजाति की स्त्रियों में।

चिरकाल तक समानता और भ्रातृभाव की कमी के कारण ही आज कल हमारे देश में कम्युनिज्म (Communism) और साम्यवाद (Socialism) फैलता है।

कम्युनिस्ट लोग अपने प्रचार का क्षेत्र भी मुसलमान, अछूत, मजदूर, किसानों को ही बनाते हैं।

मातृबुद्धि से सोचना चाहिये कि धर्म, संस्कृति सभ्यता, अन्न, वस्त्र, गृह, सौभाग्य, रूप, यश, विश्राम, विनोद, आदिके बटवारे में माता का हृदय यही चाहता है कि उसकी सब पुत्रियों और पुत्रों में ये चीजें समान रूप से बटें कोई पुत्र या पुत्री अभाव वाला ऋणी, और दुःखी न हो।

क्या मुख्य जाति हिन्दू वर्ग का हृदय जाति के उच्च और नीच, समीप स्थित या दूर स्थित लोगों की प्रधान और गौण आवश्यकताओं की पूर्ति को माता के हृदय के समान अनुभव करता है? दूर दूर तक कश्मीर, सीमा प्रान्त, सिन्ध, मुलतान, डेरागाजी खां के, पूर्वी बंगाल के, दक्षिण के तट की या नीच और दलित जातियों की आर्थिक स्थिति को सुधारने का आज से पहले जाति ने कोई आयोजन और प्रयत्न किया है? यदि इन नीच वर्गों को धर्म, शान्ति, अन्न वस्त्र, गृह, पत्नी, सन्तान, भूमि सुख उत्तम नेता यश, सामाजिक व्यवस्था न मिलती हो और चिरकाल से न मिलती हो तो ये सम्पन्न हिन्दू वर्ग से ईर्ष्या द्वेष और घृणा करेंगे ही। युरोप में Sociology और Social Sciences का यह तकाजा है कि समूची जाति के सर्वाङ्गीण हित की चिन्ता करो इसी लिये इंग्लैण्ड में Beavridge स्कीम आदि का प्रयोग हो रहा है। मजदूरों की घर न मिलने की समस्या को हल करने की कोशिश मजदूर सरकार कर रही है। क्या हमारे यहाँ किसी को सूझ भी ऐसी उठती है? रामानन्द, कबीर, नानक, दसगुरु, चैतन्यादि भक्तों ने ईश्वर भक्ति के आनन्द लेने में नीच लोगों का भी उद्धार किया था यह किसी से छिपा नहीं है। ईसाई मिश्नरी लोग नीच जातियों को सब प्रकार सुख पहुंचाने का कितना प्रयत्न करते हैं? आर्य समाज ने इस दिशा में कुछ प्रयत्न किया था। मेघ, रहतियों आदि को उच्च बनाने का प्रयत्न किया। गान्धी जी और कांग्रेस तो कर ही रहे

हैं। हिन्दू-अहिन्दू समस्या को सुलझाने का यह भी एक बड़ा उपाय है।

एक और बात जो हिन्दुओं से लोगों को अहिन्दू बनाती है वह है धर्म का स्वच्छ, सरल, और यथार्थ स्वरूप न देना। इस युग में ऋषि दयानन्द जी ने श्रद्धा और मेधा का मिश्रण करके हिन्दू जाति को एक ईश्वर, ओंकार, वेद-शास्त्र, परमात्मा का निराकार स्वरूप, परमात्मा से सीधा सम्बन्ध, उत्तम वर्णाश्रम व्यवस्था आदि का स्पष्ट विवेचन कर हिन्दू जाति के बुद्धिमान वर्ग को खींचने का प्रयत्न किया है। इस लिये आर्य समाज और ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वैदिक धर्म का स्वरूप हिन्दुओं को जल्दी समझ आता है। साधारण जनता के लिये पंडितों को उसे सरल रूप में ही रखना चाहिये संशय और विवाद द्वारा जनता में बुद्धि भेद उत्पन्न न करना चाहिये। गीता में ठीक कहा है:—

"न बुद्धिभेदं जनयेत् अज्ञानाम् कर्मसंगिनाम्।"

समूची जाति के साधारण वर्ग को तीर्थ और तीर्थ यात्रा भी आकर्षक है। मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि एक ही स्थान पर पड़े नाना कष्टों, समस्याओं से घिर कर वह तङ्ग आ जाता है उसे कोई धर्म स्थान, विद्या स्थान, एकान्त स्थान और रम्य स्थान मिले। हमारे तीर्थ वास्तव में ऐसे थे। पर मुद्दत से ये पाखण्ड, मूर्खता, दुराचार, मलिनता, अविद्या, अधर्म के अड्डे बन गये हैं। मद्दत से स्वामी दयानन्द जी को छोड़ किसी को गांधी जी और कांग्रेस को भी साहस नहीं हुआ कि इन तीर्थों को इनके पूर्व और वास्तविक रूप में फिर ले आवें। बिना तीर्थ के हिन्दू जाति ने रहना नहीं इस लिये इन्हें पवित्र करना ही होगा। तभी ये नव शिक्षित हिन्दू जनता और अहिन्दू जनता के प्रेम, शान्ति और आनन्द के भाजन बन सकेंगे। इन तीर्थों से घृणा अपनों की बढ़ती जाती है परायों की कौन कहे।

५८, ६० लाख साधुओं में जो थोड़े से श्रेष्ठ हैं वे वन्दनीय हैं। बाकी भारत की किसान मजदूर और दूसरी भोली प्रजा की छाती पर भार भूत हैं। इस स्थिति को हिन्दू-अहिन्दू सब कोई जानता है। ये हिन्दू जाति के गले के पत्थर अकर्मण्य और मूर्ख हिन्दू जाति को डुबोने के भारी कारण हैं। यदि कहीं ये कर्मशील, धर्म-प्रचारक बन कर स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द राम तीर्थ, रामकृष्ण, परमहंस, सच्चिदानन्द जी आदि के समान हिन्दू जाति की सच्ची सेवा करें तो हिन्दू समाज प्रबल उच्च और जागरूक हो जावे!

आर्य समाज बड़ा जागरूक समालोचक है। बुरे साधुओं को अपने अन्दर रहने ही नहीं देता

मानव जाति के जितने भाग हैं सब में अपने अपने अनेक गुण हैं और दोष हैं न कोई भाग सर्व गुण सम्पन्न है न कोई सर्व दोष विपन्न इस लिये महात्मा गांधी जी के तुल्य एक दूसरेके गुणोंका आदरकर अपनी ओर खींचना चाहिये। एक दूसरे के धर्म ग्रन्थ, महा पुरुष, गुरु, इतिहास, और धर्म स्थानों की निन्दा न कर पूज्य बुद्धि से व्यवहार करनेसे भारतके अहिन्दू और हिन्दू वर्ग आपस में एक दूसरे के अधिक प्रेमी हो जावेंगे।

भारत के हिन्दू, मृदु, दयापरायण, स्वच्छ,

ज्ञान प्रधान, सर्व धर्मों के मानदाता, शान्ति प्रिय और धन प्रिय हैं।

मुसलमानों में धर्म का सरल स्वरूप, परस्पर भ्रातृ भाव, पुरुषार्थ और ईश्वर पर विश्वास है।

ईसाई जागरूक स्वच्छ, विद्याप्रिय, और व्यवहार कुशल हैं।

सिक्ख वीर, सुसंगठित, श्रद्धावान, निर्भय, पुरुषार्थ प्रिय हैं।

अछूत, भद्र और सेवा परायण हैं।

पारसी, शिष्ट, धनी, उपकारी, सुखी और स्वच्छ हैं।

सारे भूमण्डल पर भी धर्म की दृष्टि से भी भूमण्डल के अनेक विशाल खण्ड बन गये हैं। सब खिन्धु क्षेत्र—अफगानिस्तान, ईरान, इराक, सीरिया, लेबेनोन, अरब, ट्रांसजोर्डन, टर्की, मिश्र, मोरक्को, रूस और चीन के मुसलमान संसार में इकट्ठा एक Bloc बनाए हुए हैं। जिसे भूमण्डल का मुस्लिम खण्ड कह सकते हैं।

ईसाई, यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया में—

बौद्ध—बर्मा, श्याम, मलाया, चीन, जापान में।

कन्फ्यूशिज्म—टाओ इज्म शिन्टोइज्म बाकी चीन जापान में

वैदिक हिन्दू धर्म—नेपाल और भारत में और नाना उपनिवेशों में

हिन्दुओं को सोचना चाहिये कि किस प्रकार ये Bloc के भिन्न अङ्ग विशेष करके मुस्लिम Bloo एक बड़ा संघ बन कर कमजोर, या असंगठित हिन्दू Bloc को हानि तो नहीं पहुंचाना चाहता है। हमें नैपाल और तिब्बत और चीन से मैत्री करने की आवश्यकता हो सकती है। पाकिस्तान भी अरब संघ में शामिल होकर पहला काम हिन्दुओं से घृणा फैलाना चाहता है। इसमें ब्रिटेन उसकी पीठ ठोक रहा है। पिछले १५, २० वर्ष में हिन्दू अपनी कई कमजोरियां त्याग कर इकट्ठे और एक हो रहे हैं। इसमें महात्मा गांधी, और कांग्रेसका भी काफी हाथ है। कलकत्ता के हत्याकाण्ड ने भी यह दिखा दिया है कि हिन्दुओं पर घोर अत्याचार अब कोई सोच समझ कर ही करेगा।

हाँ हम हिन्दुओं को धन का प्रदर्शन और अनुचित अत्यधिक संग्रह करना भी अपने ऊपर मुसीबत लाना है। सोमनाथ के मन्दिर की घटना से आज तक हम यह नहीं सीखे कि मन्दिर, धर्म स्थान ही रहने चाहियें न कि धन स्थान। हम हिन्दू, अपने कपड़े गहने, माल दिखाने के बड़े इच्छुक हैं। स्त्रियों को चाहिये कि समय असमय देखकर आडम्बर और दिखावा किया करें। मानव जाति के अन्दर ईर्ष्या स्वाभाविक दोष है। उसका परिणाम होकर ही रहता है। न केवल व्यक्तियों में परन्तु संघ भी यदि धन और आडम्बर प्रिय हो तो गरीब लोगों की ईर्ष्या के पात्र बनते हैं। यदि शहर के एक खण्ड में उत्पन्न गरीब हों दूसरे में अधिक धनी और आडम्बर प्रिय तो किसी न किसी दिन हृदय की ईर्ष्या आग में तबदील हो ही जाती है। हिन्दुओं के बुद्धिमान् नेता स्त्रियों को समझा दें कि वे कमसे कम इस जमाने में बहुत आडम्बर न किया करें।

देश में हिन्दू प्रान्तों में अन्न की समस्या भी हम में निखट्टुओं, हाथ से काम न करने वालों के कारण, वैज्ञानिक उन्नति से अभाव

के कारण और पशु धन की उपेक्षा के कारण है। यदि हम इस मोटे से सिद्धान्त की भी परवाह न करेंगे तो दुर्भिक्ष पर दुर्भिक्ष आवेंगे। भारत के भाग्य में पिछले ७०, ८० वर्ष से दुर्भिक्ष की परम्परा लिखी है। समूची जाति ने विशेषतया हिन्दुओं ने इस ओर बहुत कम ध्यान दिया है। यदि हम मुख्य वर्ग हैं सप्त सिन्धु क्षेत्र से परे हैं तो हम पर अन्न की समस्या का अधिक प्रभाव है। हिन्दू प्रान्त अन्न के लिये मुसलमानी प्रान्तों के मुंह ताज क्यों हो, ये लोग कभी न कभी धोखा भी दे सकते हैं। नई राष्ट्रीय सरकार इस ओर ध्यान देना चाहती है। अभी सिन्ध ने धमकी दी थी कि हम दूसरों को अपना अन्न नहीं देना चाहते गांव छोड़कर शहरों की ओर भागने ने भी हिन्दुओं को कमजोर कर दिया है। गांवों और वनों और उपवनों के पास रह कर जातियां सुखी, युवा और गति शील और प्रतापिनी रह सकती हैं साथ ही आधुनिक विज्ञान के स्थूल सिद्धान्त भी हम भूल जाते हैं कि मानव जगत् पशु पक्षि जगत् वृक्ष जगत् अर्थात् प्राणि जगत सारा आपस में अन्योन्याश्रित है। समूची हिन्दू जाति धनी या बाबूपने की ओर झुकना चाहती है। यह बुरे लक्षण हैं। हमारी सभ्यता आधुनिक विज्ञान व्यावहारिक बुद्धि हमारी वर्णाश्रम मर्यादा, विशेष करके आश्रम मर्यादा हमें स्वच्छ, सुन्दर, विरले विरले, वन उपवन नदी, पर्वत दरया वह, पशुपक्षी आदि से घिरे हुए जीवन की ही शिक्षा देते हैं। आपके सामने विहंगमदृष्टि से भारत की हिन्दू-अहिन्दू समस्या सामने आ गई। हम हिन्दू इसे आंखों से ओझल नहीं कर सकते। देश की परिस्थिति ने हमें इस समस्या के सुलझाने पर मजबूर भी कर दिया है। हम अपनी जाति की कमजोरियां जानते हैं हमें बल भी जानना चाहिये। आत्म बल, और आत्म विश्वास सब से पहले आना चाहिये। उसके साथ संगठन, वह भी समाज शास्त्र के उच्च सिद्धान्तों पर आश्रित। जो बड़ा है उसे आत्मा, हृदय बुद्धि, सामाजिक बल, विद्या, उपकार, क्षात्र बल में बड़ा होकर छोटे हीना को ऊंचा उठा कर लोक यात्रा में अपने साथ साथ चलाना चाहिये। भारत के सब भागों को मिला कर अखण्ड जाति और अखण्ड देश की रक्षा और उन्नति करनी चाहिये। पहले जाति-अखण्ड हो। जाति के एक होने में धर्म के बाह्यरूप को गौण करना पड़ेगा। पर साथ ही अपने हिन्दुओं के अन्दर निखट्टू अकर्मण्य, अव्यवस्थित, बहुत ऊंचे या बहुत नीचे वर्गों को कर्म शील, जातिका अङ्ग और समतल पर लाना होगा। इसके लिये हिन्दुओं के आन्तर के संगठन के लिये हिन्दुओं को आर्य समाज के विचारों को अपनाना ही चाहिये। यदि शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होना पड़े वह भी करना ही चाहिये। पंजाब के हम हिन्दुओं को भारत के बाकी हिन्दुओं के साथ जीवन के अनेक कार्य करने हैं। घर का भेद मौलानाओं, खलीफाओं और दूसरे ऐसे ही लोगों को न देना चाहिये चाह कांग्रेसी हो या अकांग्रेसी, पंजाब के हिन्दू अपने आप में एक जमात हैं जिस के दुश्मन कई हैं। इन दुश्मनों को दोस्त

समझना बुद्धिमत्ता नहीं। सिक्खों के सारे इतिहास को जान बूझकर न समझना, या पिछले २५ साल के पंजाब के हिन्दुओं के साथ क्या वर्ताव हो रहा है इसे जान बूझकर आंखों से क्यों ओझल किया जाय। देश में साझे काम में साथ देने को पंजाब के हिन्दू सदा तैयार हैं। हिन्दुओं से भिन्न लोगों पर अति विश्वास से हिन्दू स्त्रियों की जान खतरे में है यह एक सचाई है। हां भारत के वैदिक धर्म, इतिहास, ऋषि मुनि, स्वामी दयानन्द, आर्यसमाज, सिक्ख गुरु, सिक्खों का इतिहास कांग्रेस और महात्मा गांधी और आधुनिक दो युद्धों, आधुनिक जगत्‌के अनुभव लेकर इस लोक यात्रा को चलाना चाहिये।

[गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य पुराने स्नातक श्री प्रो० आत्मानन्द जी विद्यालङ्कार का यह लेख बड़ा विचार पूर्ण है। देश के इतिहास और वर्तमान परिस्थिति पर दृष्टिपात करते हुए उन्होंने जो निर्देश भारतीय समाज को बलशाली और संगठित करने के लिये दिये हैं वे बड़े महत्त्व पूर्ण हैं। आशा है पाठक उन पर गम्भीरता से विचार कर सामाजिक और राष्ट्रीय निर्बलताओं को दूर करने का संगठित प्रयत्न करेंगे। सुयोग्य लेखक महोदय का तात्पर्य किसी भी अन्य मत के मान्य ग्रन्थों और महापुरुषों की अनुचित निन्दा और उनकी पक्षपात पूर्ण आलोचना न करने से ही प्रतीत होता है अन्यथा उचित, सत्य-जिज्ञासा से प्रेरित आलोचना का तो प्रत्येक को अधिकार है।

—सम्पादक सा० दे०]

आर्य वीर दल का कार्यक्रम

[श्री प्रो० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति मन्त्री अ० भा० आर्य वीर दल समिति]

गत पांच महीनों में देश की परिस्थिति इतनी बदल गयी है कि देश की प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक समस्या पर नये दृष्टिकोण से विचार करना सर्वथा स्वाभाविक हो गया है। देश का राजनैतिक और साम्प्रदायिक वातावरण बिल्कुल बदल गया है, इस कारण अन्य संस्थाओं की तरह आर्यवीर दलों के कार्यक्रम के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के नये प्रश्नों का उठाना अवश्यम्भावी था। पत्रों द्वारा तथा मौखिक रूप से मुझसे जो प्रश्न पूछे जाते रहे हैं, उनके उत्तर देना आवश्यक प्रतीत होता है। मैं यहां उनके उत्तर संक्षेप में देता हूँ।

१. (प्रश्न) अब आर्यवीर दलों का उद्देश्य क्या होगा ?

(उत्तर) आरम्भ से ही आर्यवीर दल के तीन उद्देश्य रहे हैं। [१] उचित उपायों द्वारा आर्य संस्कृति तथा आर्य सभ्यता की रक्षा। [२] जनता में क्षात्र-धर्म की भावना को जागृत करना और [३] लोगों में प्रेम पूर्वक सेवा की प्रवृत्ति उत्पन्न करना। आर्यवीर दल की स्थापना इन उद्देश्यों से हुई थी। आज भी उसके वही उद्देश्य हैं। भारत की राजनैतिक या साम्प्रदायिक स्थिति के बदले जाने से इन उद्देश्यों में कोई परिवर्त्तन नहीं आया और न आना आवश्यक ही है।

२. (प्रश्न) अब आर्यवीर दलों का कार्यक्रम क्या हो ?

(उत्तर) आर्यवीर दलों के कार्यक्रम में भी मौलिक परिवर्त्तन कोई नहीं हुआ। दीक्षा लेने के समय आर्यवीर जो प्रतिज्ञाएं करते हैं, उनकी पूर्ति के लिये व्यक्ति रूप से और समूह रूप से प्रयत्न करना ही आर्यवीरों का स्थायी कार्यक्रम है। आर्यवीर और आर्यवीर दल अपने से यह प्रश्न करें कि क्या हम शारीरिक, मानसिक और आत्मिक दृष्टि से पूरे आर्य बन गये हैं। क्या हमने अपने को सच्चा क्षत्रिय बना लिया है। क्या हमने इतनी शक्ति पैदा कर ली है कि यदि हमारे धर्म या देश पर आक्रमण हो, तो हम आक्रमणकारी को परास्त कर सकें, इस आत्म निरीक्षण से अपने अन्दर जितनी कमी हो, उसे शीघ्र से शीघ्र पूरा करने का उपाय करना ही आर्यवीरों का व्यक्ति रूप से और आर्यवीर दलों का समूह रूप से कार्यक्रम है।

३. (प्रश्न) आर्यवीर दल का वर्त्तमान सरकार से क्या सम्बन्ध होना चाहिये ?

(उत्तर) जब तक भारतवर्ष पराधीन था तबतक समय की सरकार के साथ हमारे सम्बन्धों में एक विशेषता रही [illegible] आर्य समाज, ऋषि दयानन्द के इन वाक्यों को सार्वदेशिक सत्य के रूप में स्वीकार करता

रहा है कि "कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।"

इस सिद्धान्त के अनुसार एक वैदिक धर्मी के लिये विदेशी शासन में रहना सर्वथा धर्म विरुद्ध है। इस कारण आर्य जन भारत की विदेशी सरकार का पूरा और हार्दिक सहयोग नहीं कर सकते थे। अब दशा बदल गयी है। अब वैदिक धर्मियों का वर्त्तमान सरकार से कोई मौलिक भेद नहीं रहा। हां, जब कभी आर्यसमाज को ऐसा प्रतीत होगा कि सरकार का कोई कार्य आर्यसमाज के धार्मिक, सामाजिक अथवा संस्कृतिक कार्यक्रम का विरोधी है, तब वह प्रतिवाद का शब्द उठायेगा और सब वैध उपायों से अपने पक्ष की पुष्टि करेगा। आर्यवीर दल की स्थिति आर्यसमाज में वही होनी चाहिये जो शरीर में भुजाओं की है। जिस कार्य को मन सोचता है, हाथ और भुजदण्ड उसे पूरा करते हैं।

४. (प्रश्न) वर्त्तमान राजनीतिक दलों से आर्यवीर दल का क्या सम्बन्ध होना चाहिये ?

(उत्तर) राजनीतिक दलों से आर्यवीर दल का कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। कांग्रेस पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी, हिन्दू महासभा पार्टी आदि राजनैतिक पार्टियां अपने अपने प्रोग्राम लेकर देश के सामने आ रही हैं। जनतन्त्र शासन में राजनैतिक पार्टियों का होना अवश्यम्भावी है। प्रत्येक देशवासी स्वतन्त्र है कि वह अपने मन्तव्य के अनुसार किसी पार्टी में सम्मिलित हो। परन्तु आर्यवीर दलों का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं। दलों के परस्पर संघर्ष से आर्यवीर दलों को तथा आर्यवीरों को भी अलग रहना चाहिये। आर्यसमाज और आर्यवीर दल का कार्यक्षेत्र धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक है, उन्हें राजनैतिक प्रतिस्पर्द्धाओं की उलझन में नहीं फंसाना चाहिये। आर्यसमाज और आर्यवीर दल की स्थिति स्वतन्त्र है। उन्हें किसी राजनैतिक दल का दुमछल्ला बनाना सर्वथा अनुचित है।

५. (प्रश्न) शान्ति रक्षा के प्रति आर्यवीर दल का क्या कर्त्तव्य है ?

(उत्तर) अपने देश, नगर तथा ग्राम की शान्ति की रक्षा में सहायता देना आर्य वीर दल और आर्यवीरों का प्रथम कर्त्तव्य है। आर्यवीर दल के उद्देश्यों में जो 'रक्षा' शब्द आया है, उसका यही अभिप्राय है। जनता के जान, माल और अधिकारों की प्राणपण से रक्षा करना क्षत्रिय का परम धर्म है। सच्चा आर्य वीर वही है, जो सच्चा क्षत्रिय हो। जो व्यक्ति उत्पात मचाये, लूट,मार या हत्या में हिस्सा ले, या सभा-सोइटियों में गड़बड़ मचाये, वह आर्यवीर कहलाने का अधिकारी नहीं! आर्यवीरों का कर्त्तव्य है कि वे अपने-अपने क्षेत्र में शांति-रक्षा के पहरेदार बनें और जो लोग शांति-रक्षा का प्रयत्न कर रहे हों, उनकी सहायता करें।

राष्ट्र-भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानी ?

लेखिका-स्नातिका सुशीला देवी जी विद्यालंकृता गुरुकुल विद्यामंदिर सूपा

[अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर बम्बई में राष्ट्रभाषापरिषत् में पढ़ा हुवा निबन्ध]

—:■■■■■:—

आज हमारा देश स्वतन्त्र हो चुका है। अब इस विशाल देश में जहां अनेक प्रान्त हैं-अनेक जातियां धर्म और बोलियां हैं-एक सूत्र में पिरोने वाली भाषा होनी चाहिये। यह निर्विवाद सत्य है कि वह भाषा हिन्दी ही है। आज मुसलमान भाइयों को सन्तुष्ट करने के लिये न चाहते हुए भी हमें देश का बंटवारा सहना पड़ा है, इसी प्रकार इन्हें अपनाने के लिये दस करोड़ की बनी कौम को—जो इस देश से कभी जा नहीं सकती है, शान्त रखने के लिये मातृ मि के टुकड़े किये गये और अब भाषा में भी सम्प्रदायवाद को स्थान दिया जाने लगा है। आगे चल कर यह सम्प्रदायवाद भारतीयता को कहां तक निगल जायगा यह कहना मुश्किल है। आज महात्मा गांधी जी जैसे हमारे प्रिय पूज्य नेता यह कह रहे हैं कि हमें अपनी राष्ट्रभाषा को संस्कृत की ओर ले जाने की जगह उर्दू-फारसी की ओर ले जाना चाहिये जिससे हिन्दू मुस्लिम ऐक्य हो सके। मेरी समझ में यह बात असामयिक है। अभी हमारे सामने इससे भी अधिक आवश्यक कार्य पड़े हैं—अभी मातृभूमि की छाती पर किये गये घाव भरे नहीं हैं, ताजे ही हैं, अभी मुसलमान भाइयों ने "हँस करके लिया है पाकिस्तान और लड़ कर लेंगे हिन्दुस्तान" के नारे बन्द नहीं किये हैं। फिर जब कि दो स्वतन्त्र राष्ट्र, एक हिन्दी संघ और और दूसरा पाकिस्तान बन गये हैं तब उनकी स्वतन्त्र राष्ट्र भाषा क्यों न होवे ? यदि पाकिस्तान की राष्ट्र भाषा उर्दू हिन्दुस्तानी है तो हिन्दी संघ अपने पूर्वजों की विरासत को, जिस में हमारा साहित्य, इतिहास, विज्ञान, धर्म—तत्वज्ञान भरा पड़ा है, क्यों अपमानित करे ? हिन्दी संघ की मुख्य- मुख्य प्रान्तीय भाषायें—गुजराती, महाराष्ट्री, बंगाली, उड़ीया, पूर्वी, पश्चिमी हिन्दी इत्यादि सब की सब संस्कृत की ऋणी हैं—संस्कृत भाषा ही ऐसी पारदर्शक—यौगिक तथा वैज्ञानिक है कि इसका भारतीय आर्य भाषाओं पर स्पष्ट एवं व्यापक प्रभाव है। इसमें विविध विज्ञानों के विचारों तथा संज्ञाओं को पचाने की अद्भुत शक्ति है, इस देवनागरी में हमारा इतिहास, हमारा गौरव, हमारा हृदय विद्यमान है। और इस लिये भी कि हम हिन्दुस्तान का नवनिर्माण करना चाह रहे हैं, जब कि इस देश ने दासता की जंजीरें तोड़ कर स्वतन्त्रता की अंगड़ाई ली है तब हमें अपने प्राचीन को और भी अधिक अपना कर साथ जुड़े रहना चाहिये। हमें अपनी ढिलमिल नीति छोड़ देनी चाहिये। हमने जिस रीति नीति से

दूसरे को आवश्यकता से अधिक सिर पर चढ़ा कर राष्ट्रवादी न रहने देकर कौमीवादी "कायदे आजम" बनाया है—मुस्लिम लीग को वामन से विष्णु बना दिया है। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक हरेक दृष्टि से अखण्ड भारत से टुकड़े टुकड़े करवा दिये हैं--अब इस नीति को इस समय दुहराना नहीं है। अब तो हमें वैदिक— भाषा संस्कृत भाषा को संजीवित करते हुए इसकी पारदर्शकता व सर्वग्राहिता तथा वैज्ञानिकता की छाप को अपने राष्ट्र भाषा पर छोड़ते हुए आगे बढ़ना होगा। यही कारण है कि प्रो० थौमस तथा डा० काटजु जैसे प्राच्य विद्याविशारद तथा देश भक्त ने संस्कृत भाषा को राष्ट्र-भाषा बनाने तक का साहस किया है। हमारी नम्र दृष्टि में संस्कृत को राष्ट्र भाषा बनाने का प्रयास अभी सफल नहीं हो सकता है परन्तु हिन्दी भाषा पर संस्कृत की छाप को न सह सकना सरासर अन्याय है।

भाषा कृत्रिम उपायों से बनाई नहीं जाती है, संसार के महान् धार्मिक एवं राजनैतिक युग-पुरुषों ने अपने विचारों का प्रचार साधारण प्रजा की भाषा में किया है। वे भाषायें विद्वानों ने बैठ कर बनाई नहीं थी...वे तो नदियों के प्रवाह के समान स्वाभाविक बहा करती हैं-- साधारण प्रजा के हृदयों की धाराओं में बहा करती हैं—दूसरे शब्दों में कहें तो महा पुरुष भाषा नहीं बनाते हैं वे बनी हुई सर्वसाधारण भाषा का सहारा लेकर ही उसमें प्राण एवं चेतना फूंक देते हैं-आज कुछ विपरीत सा हो रहा है—महा पुरुष भाषा बनाने बैठ गये हैं, यह भाषा विज्ञान के इतिहास से विपरीत हो रहा है--साहित्यकारों के क्षेत्रों में हस्तक्षेप किया जा रहा है, यह अनुचित है, आज जो हिन्दी कही जाती है उसे स्वयं मुसलमान भाइयों ने हिन्दकी हिन्दुस्तानी कहा है-हिन्दुस्तानी नाम अंग्रेज लोगों ने दिया है, हमें वस्तुतः अब वे नाम भी नहीं रखने चाहिये क्योंकि ये हमारी दासता के चिन्ह हैं। भले थोड़े समय के लिये इन नामों से काम चलाया जाय परन्तु इन पर आग्रह रक्खा जाय यह तो अनुचित है। वस्तुतः हिन्दुस्तानी-उर्दू तो हिन्दी की शैली मात्र है कोई भिन्न भाषा नहीं है फिर "हिन्दुस्तानी" राष्ट्र पर इतना आग्रह क्यों? और जब यह आग्रह भारत के राष्ट्र पितामह की ओर से होता है तब इस पर लोहे की कीलें गड़ जाती हैं। लोग वेद वाक्य मानकर अन्ध भक्त हो जाते हैं और खचतान करके कृत्रिम उपायों से उर्दू बोलने की ओर प्रयत्न करते हैं तब फिर मुसलमानों का तो कहना ही क्या? वे हमारे ही कथन को हमारे सामने रखकर संस्कृत से, हिन्दी से घृणा करते हैं और उर्दू का नारा लगाते हैं। अन्ततः इसमें हम मुसलमान भाइयों को क्या लाभ पहुंचाते हैं? कुछ भी तो नहीं, उन्हें एक अद्भुत संस्कृतिसे तथा उसके स्रोत से सदा के लिये दूर करते हैं। ये हमारे भाई जब हमारे शासक थे तब जिस संस्कृत देव नागरी में उन्होंने अपने शिला लेख तथा स्तंभलेख लिखे थे, जिस भाषा में शहाबुद्दीन गोरी तथा मुहम्मद गोरी ने सिक्कों को चलाया था, औरंगजेब ने आम को "सुधारस" तथा

"रसना विलास" कहा था, जेबुन्निसा बेगम ने "नैनविलास" ग्रन्थ लिखा था। रहीम ने रत्नाकरोहि सदनं गृहिणी च पद्मा" जैसे श्लोक रचे। आज उसी संस्कृत भाषा के स्पर्श से घृणा क्यों की जाती है जब कि वे शासक भी नहीं हैं। रसखान, जायसी की कविताओं को पढ़ कर कौन कह सकता है कि मुसलमान भाई "हिन्दी" से घृणा करेंगे? समझ न सकेंगे? यदि हम इन भाइयों को संस्कृत के स्पर्श से दूर करेंगे तो भविष्य में यह डर है कि वे हमसे और भी अधिक दूर हो जावेंगे और हम पर यह भी दोष लगावेंगे हमें इतनी महत्वपूर्ण भाषा से दूर करके इन्होंने द्रोह किया है, फिर ये मुसलमान भाई कहां से आये हैं? ये हमारे में से ही तो बने है तो इन्हें क्यों उर्दू और फारसी की भूलभुलैयों में डाल कर ऐसी अवैज्ञानिक भाषा के चक्कर में डाल कर जो लिखी जाती है कुछ और बोली जाती है कुछ (किश्ती शब्द अनेक प्रकार से बोला जाता है) क्यों सदा के लिये भारत माता तथा भारतीय संस्कृति की पवित्र गोद से दूर किया जा रहा है। यदि हम हिन्दु मुस्लिम ऐक्य चाहते हों, यदि सचमुच एशिया में—नहीं नहीं दुनियां में भारत ने सिर ऊंचा करके संस्कृति का संदेश देना है तो हमें संस्कृत स्पर्श के भय को छोड़ कर हिन्दी (आर्य भाषा) पर ही बल देना होगा। हिन्दोस्तानी के ३०-३५ हजार शब्दों में ६-७ हजार उर्दू फारसी के शब्द हैं। फिर इस पर आवश्यकता से अधिक जोर देकर हिन्दी को हिन्दोस्तानी के रूप में बदलने की क्या आवश्यकता है? आज हमें अपने राष्ट्र का पुनर्निमाण करना है। ऐसे समय में हमें अपनी संस्कृति, इतिहास, भाषा-भूषा आदि पर विशेष बल देना होगा। हमारे कोमल बच्चों के मन में से हरेक प्रकार की दासता की शृङ्खलाएं हटा देनी होंगी। उनके कोमल मन पर अधिक भार डाल कर मौलिकता का नाश नहीं करना चाहिए। स्वतंत्र भारत की नवीन प्रजा को मातृ भाषा, राष्ट्र भाषा हिन्दी एवं संस्कृत की पवित्र गंगा में स्नान कराना चाहिए। इसी सत्य को समझ कर महर्षि दयानन्द ने गुजराती होते हुए भी अपने गंभीर गंभीर ग्रन्थों को हिन्दी में ही लिखा, वेदों का भाष्य किया। उनके शिष्य अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मञ्च से आर्य भाषा तथा देव नागरी के नारे को बुलन्द किया था। आज मान्यवर श्री पुरुषोत्तमदास टंडन जी तथा मुन्शी जी इत्यादि महानुभाव हिन्दी युग को लाने का भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं। श्रद्धेय टंडन जी के ही प्रयत्न से यू० पी० तथा बिहार की सरकारों ने हिन्दी को राज भाषा का स्थान दिया है। दिल्ली में पूज्य महात्मा जी तथा पं० नेहरु जी जैसे महान् पुरुषों के अस्तित्व में भी हिन्दी का विजय हो रहा है, यह बताता है कि हिन्दी ही प्रजा की भाषा है। आज हिन्दुस्तानी की अपेक्षा हिन्दी की परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों की संख्या इतनी अधिक है और दिनों दिन इतनी अधिक बढ़ती जा रही है कि दोनों की तुलना नहीं हो सकती। यहां गुजरात में पूज्य महात्मा जी के तीर्थ स्थान बारदोली के पास महर्षि दयानन्द जी के स्मारक गुरुकुल में ६ वर्ष का छोटे से

छोटा बालक तथा छोटे से छोटा नौकर हिन्दी भाषा की आराधना कर रहा है। सुपा गुरुकुल के समीप के सरभोए नामक ग्राम के मुसलमान भाइयों ने अपने यहां की उर्दू पाठशाला को स्वयमेव बन्द कर के यह सिद्ध कर दिया है कि पूज्य गांधी जी के गुजरात में भी जनता का हृदय हिन्दी की ओर ही ढला हुआ है। हिन्दुस्तानी या उर्दू की ओर नहीं। आज यह बिल्कुल स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा की रक्षा से ही हिन्दुस्तान की रक्षा होगी। हम सब को मिलकर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने में यथा शक्ति सहयोग देना चाहिए।

[इस महत्वपूर्ण उत्तम निबन्ध की ओर हम विधान परिषद के सदस्यों का ध्यान आकर्षित करते हुए उनसे निवेदन करते हैं कि वे अविलम्ब हिन्दी को राष्ट्र भाषा और देवनागरी को राष्ट्र लिपि घोषित करें। सम्पादक सा० दे०]

बदनाम, पर देश-भक्त स्व० भाई परमानन्द

एक चरित्र चित्रण

[लेखक -- श्री बालमुकुन्द जी मिश्र साहित्यालङ्कार]

भाई परमानन्द जी जब नौजवान थे, और अंग्रेजी राज्य जब उनका विरोधी था तब, देश उन्हें एक क्रान्तिकारी और भारत के उन्नायक सुपूत के रूप में स्वीकार करता था। उस समय देश के नेता भी परमानन्द जी की शान में माथा उठा, सीना फुलाकर कहते थे।

'भाई परमानन्द जी निडर हैं। वे मृत्यु से कदापि भय भीत नहीं होते हैं।'

[विश्ववन्द्य महात्मा गांधी]

'भाई परमानन्द जी उन देश भक्तों से सम्बन्ध रखते हैं,......... जिन्होंने देश की सेवा को अपने जीवन का उद्देश्य बना रखा है। .... वे सत्य और सज्जनता के आदर्श हैं। ....विश्वास करता हूँ कि उनकी देश भक्ति का आदर्श ऊंचा है।

[दीन बन्धु ऐण्ड्रयूज]

भाई परमानन्द जी सचमुच देश-भक्त थे। राष्ट्र और जाति—अहित के रोड़ों को जिन्दगी भर चुन-चुनकर बगाते-फैंकते-फैंकते थककर अन्तिम दिनों तक इतने चूर-चूर हो चुके थे कि वे, निराश हो गए थे और स्वयं को ही अपना अस्तित्व तक भी खलने लगा था। उन्हें हर समय मार्ग में ठोकर वाले रोड़े-ही रोड़े दिखाई देने लग गये थे, जो भाई जी को हर पल खटकते रहते थे। जिन्हें वे अपने बुढ़ापे की थकी काया के कारण हटा न पाए, इसी कारण से उनमें चुभन आ गई थी। उनके अन्तिम दिन मानसिक परेशानी के कारण अत्यन्त दयनीय बन गए थे, इसकी झलक हमें पत्र-पत्रिकाओं में लिखे भाई जी के ही लेखों से मिल जाती है।

देश और जाति के प्रति भाई जी की सेवाएं इतनी थीं, कि उनकी सेवाओं को देख कर कोई भी भारतीय उनको कभी भी परेशान देखना पसन्द नहीं करता था, पर उनका दोष कहो-वा गुण, पटती किसी से भी नहीं थी। इसी कारण से उनका कोई भी एक वास्तविक मित्र न बन पाया, सभी लोग किसी न किसी रूप में उनके विरोधी ही रहे। यही-विरोध परमानन्द जी को खलता था। झगड़ा तो झगड़ा ही है, झगड़ते-झगड़ते एक दिन उनकी प्रवृत्ति ही बघेड़े वाली बन गई। जो कुछ कहते थे इस दबंगपन से कहते थे कि जो कह दिया-सो कह दिया। कोरी-कोरी उघेड़ उघेड़ कर, मुंह फट, आर-पार बात करने वाली भाई जी की जीभ और आदत ही ने उनके जीवन को कठिन- कटु- सत्य के रूप में ढाल दिया था। कई भद्र जनों ने मुझे बताया कि उनके स्वभाव में एक यह भी बात थी कि वे अपने परिचित से जब भी किसी कारण से खिंचे कि बस फिर तन गए। मानना और मनाना फिर कैसा फिर तो तेल देखो और तेल

की-धार। ऐसा स्वभाव परमानन्द जी की गम तनुक मिजाजीपन की ओर संकेत करता है।

श्री भाई परमानन्द जी ने अपनी चलती जिन्दगी में, सम्भवतः ही तात्कालिक समय में मान्य माने जाने वाले किसी महापुरुष को छुपाकर छोड़ा होगा, वरना अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर लगभग सभों को ही कड़े-शब्दों के कोड़े से फटकार लगाई है। और जबकि सर्व साधारण किसी न किसी विशिष्ट व्यक्ति से प्रभावित हुए बिना रह ही नहीं सकता तब कोई अपने प्रिय-माननीय के प्रति खुले रूप में नग्नता से अखरने वाली बात कहने वाले को चाहे उसकी बात कतई सच्चाई से ही भरपूर हो क्यों न हो, सहन को ही नहीं जा सकता। कड़वी बातों को या तो संत तुलसीदास जैसे साधु-वृन्द सहन कर सकते हैं या वे लोग जो कड़ी सच्चाई कथन करने वाले के पटुअनुचरत्व को ग्रहण कर चुके हों। उनकी इस कर्कश-वृत्ति ने उन्हें ऊंचों से लेकर सर्वसाधारण तक में बुरी प्रकार से बदनाम करवा दिया था।

क्रान्तिकारियों के अगुवा रासबिहारी द्वारा लिखे एक लेख को पढ़ते हुए जब मैंने भाई जी के विषय में पढ़ा :—

Bhai Parmanand Ji belongs to that class of humanity which now and then comes to the world to succour people from mundane distress, suffering, anguishes and troubles which are the common lot of the average person. Bhaiji was a noble soul, a selfless patriot, a kind friend, and well-wisher of humanity. I have for the last thirty years followed his activities in all spheres of public life, and it is my firm belief that if the Indians had a few more of Bhaiji's kind, the salvation of India would have been achieved long ago.

[Rash Behari Bose]

[अर्थात—जनता के भाग्य में साधारणतः आने वाले कष्ट व विकट समयों से उन्हें बचाने के लिए पृथ्वी पर जो पुरुष जन्म लेते हैं, भाई परमानन्द जी उनमें से एक हैं। वे देश प्रेमी और मानव-जाति के कल्याणकारी हैं। विगत तीस वर्षों से उनकी लोक सेवाओं को देखते हुए मेरी धारणा बन गई है कि यदि भारत में भाई परमानन्द जैसे कुछ और व्यक्ति होते तो भारत कभी का बहुत पहले ही स्वाधीन हो गया होता।]

तो; मैंने समझ लिया कि हो-न-हो है यह भी कोई गजब का आदमी। (क्रमशः)

सुमन संचय

आर्य मर्यादा की रक्षा

[लेखक—श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक]

महाभारत समाप्त हो चुका था। धर्म राज युधिष्ठर राम राज्य के आदर्शों के अनुसार राज्य-संचालन कर रहे थे। अभागे धृतराष्ट्र और गांधारी पांडवों के आश्रय में अपना शेष जीवन व्यतीत करते थे। यद्यपि धृतराष्ट्र के कारण पांडवों को प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से बड़े कष्ट और अत्याचार सहन करने पड़े थे और कई बार उनके जीवन भी संकट में पड़ गए थे, तथापि उनके प्रति उनकी श्रद्धा में कोई कमी न आई थी। आर्य आदर्शों में पले होने के कारण उन्होंने धृतराष्ट्र के प्रति आर्योचित मर्यादा का पालन किया। उन्होंने औरंगजेब की भांति उनको कैद में नहीं डाला प्रत्युत उन्होंने धृतराष्ट्र की और कुन्ती, द्रौपदी आदि ने गांधारी की तन मन धन से सेवा करने में अपना अहो भाग्य समझा। इस तरह बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर धृतराष्ट्र की वन जाने की इच्छा हुई। उन्होंने इस विषय में युधिष्ठिर की अनुमति चाही। पर युधिष्ठिर राजी न हुए परन्तु विदुर और व्यास के समझाने से उन्होंने धृतराष्ट्र का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन धृतराष्ट्र की इच्छानुसार विदुर ने युधिष्ठिर से कहा 'वनवास के लिए प्रस्थान करने से पूर्व धृतराष्ट्र अपने पुत्रों और रिश्तेदारों की स्मृति में जो युद्ध में मारे गये दान करना चाहते हैं। यह सुन और हर्षित हो युधिष्ठिर तथा अर्जुन ने धृतराष्ट्र के विचार की प्रशंसा की परन्तु भीम ने जो धृतराष्ट्र कृत अपने प्रति असंख्य अपकारों एवं अपमान को न भुला सके थे, इसका विरोध किया। यह देख अर्जुन भीम से बोले हमारे पितृव्य सदैव के लिये हम से विदा हो रहे हैं वे आपके अर्जित धन से दान करना चाहते हैं।" यदि हम उनके ऐसा करने में बाधा डालेंगे तो हमारी निन्दा होगी। इस समय हमारी स्थिति ऐसी है कि हम उनको सब कुछ दे सकते हैं। अतः उनकी इच्छा पूर्ति में बाधा न डालो। अर्जुन के इस कथन की धर्मराज ने प्रशंसा की। पर भीम क्रुद्ध होकर दुर्योधन के कुकर्मों का लेखा बतलाते हुए बोले-"उन पापी कौरवों की स्मृति में दान की अनुमति देना महा पाप है। उनकी स्मृति में दान करना आवश्यक हो तो धृतराष्ट्र नहीं वरन् हम दान करेंगे।

अर्जुन ने धैर्य पूर्वक उत्तर दिया-"ऐ मेरे बड़े भाई ? मैं आपके मुंह नहीं लगता। परन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि धृतराष्ट्र चाहे जैसे हों हैं हमारे पूज्य। एक बात और। मर्य्यादा के भीतर रहने वाले सज्जन दूसरों के द्वारा अपने प्रति किए गए अपराधों को भूल जाया करते हैं, परन्तु उनके द्वारा किये गये उपकारों को नहीं भूलते हैं।

भीम इस बार भी राजी न हुए। भगवती कुन्ती चुपचाप खड़ी अपने तीनों पुत्रों की बात सुन रही थीं, भीम की हठ धर्मी उनसे सहन न हुई। वह आगे आकर बोलीं-"भीम! राजमद

ने तुमको अन्धा बना दिया प्रतीत होता है। मत समझो यह राज्य तुम्हारा है। इसको धृतराष्ट्र का राज्य समझो। मेरी कोख से जन्म लेकर तुम में यह अनार्य्यता कहां से आई ?

युधिष्ठिर ने विदुर को भेज कर धृतराष्ट्र से कहलाया, आप सानन्द दान करें।

यह विदित होने पर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर और अर्जुन की प्रशंसा की, फिर प्रचुर परिमाण में दान दिया। तत्पश्चात् वे गान्धारी के कन्धे पर हाथ रखे हुए बन के लिए रवाना हुए।

उनके साथ राजमाता भगवती कुन्ती भी थी। पांचों पाण्डवों ने उनको रोकने की भरसक चेष्टा की परन्तु वे राजी न हुईं। उन्होंने एक बार अपने पुत्रों, पुत्र वधुओं और राज प्रासादों की ओर चाह भरी दृष्टि से देखा और अपने को संभाल कर कहा:— 'आर्य मर्यादा के अनुसार अब मेरा रहना यहाँ न हो सकेगा। यहां की तरह बन में भी धृतराष्ट्र और गांधारी की सेवा करना मेरा एक मात्र ध्येय रहेगा। तुम लोग मेरे इस व्रत में सहायक बनो। बाधक मत बनो।"

पाण्डवों ने आगे कुछ न कहा, और वे तीनों बन को चले गए।

आर्य कुमार जगत्

सांस्कृतिक केन्द्र की महत्त्व पूर्ण योजना

[भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषत् की अन्तरङ्ग सभा में ९-१२-४७ को सर्वसम्मति से स्वीकृत]

युवकों को स्वावलम्बन, शिष्टाचार, चारित्र-गठन, व्यावहारिक-सभ्यता की क्रियात्मक शिक्षा देने व उन्हें भारतीय सभ्यता से सम्यक् परिचित कराने के लिये भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषत् "सांस्कृतिक केन्द्र" का आयोजन करेगी।

स्थान व समय

किसी सुन्दर प्राकृतिक प्रदेश में इसकी स्थिर रूप से स्थापना इसका लक्ष्य होगा।

परन्तु इस वर्ष यह अस्थायी रूप से एक मास के लिये किसी पर्वतीय प्रदेश में लगाया जायगा।

साधनः—

स्थायी कैम्प में निम्न वस्तुओं की पूर्ति आवश्यक है, अस्थायी में सुविधानुसार की जा सकती हैं।

१. धार्मिक परीक्षाओं की शिक्षा देने व प्रचार करने के लिये "आर्य कुमार विद्यापीठ" की स्थापना।

२. युवकों को राजनीति से परिचित कराने के लिये समय २ पर मौक पार्लियामेंट आदि की आयोजना।

३. युवकों की भाषण कला को प्रोत्साहित करने के लिये वाद विवाद एवं व्याख्यानों की आयोजना।

४. कुमारों की निबन्ध शैली को उत्कृष्ट बनाने के लिये एवं उन में किसी विषय को गम्भीर रूपेण विचार करने की शिक्षा प्रदान करने के लिये आर्य कुमार पत्र का प्रकाशन।

५. युवकों में नियन्त्रण की भावना उत्पन्न करने के लिये सैनिक शिक्षा का प्रचलन।

६. ग्रामों में शिक्षा का प्रचार करने के लिये वाचनालय, पुस्तकालय एवं चल पुस्तकालयों की स्थापना।

७. कुमारों की ज्ञान शक्ति को बढ़ाने के लिये कैम्प में एक आदर्श पुस्तकालय की स्थापना

८. युवकों को स्वावलम्बन की ओर प्रेरित करने लिये उन्हें निम्न लिखित कार्य सिखाना। १- कपड़ा बुनना। २- कातना। ३- मधु मक्खियों का पालना। चमड़े की रङ्गाई।

९- एक महीने तक उन्हें सदाचार की शिक्षा प्रदान कर सभी दुर्व्यसनों से दूर रखना।

१०- भारत की ८० प्रतिशत जनता का साहचर्य प्राप्त करने के लिये ग्राम वासियों के सम्पर्क की स्थापना एवं कृषि की दीक्षा।

११- शरीर स्वस्थ व सबल बनाने के लिये भारतीय व्यायाम, भारतीय खेल, आदि का प्रचलन।

१२- कुमारों में परिचय एवं प्रेम तथा अन्य साहचर्यों में अपनी भ्रातृ भावना को परिचित कराने के लिये सब कार्य संगठनात्मक रूप से कराना।

१३- भारतीय विद्वानों के विविध विषयों पर

भाषण जैसे भारतीय संस्कृति, भारतीय राजनीति, भारतीय भाषा का महत्त्व आदि।

१४- कैम्प से जाने के पश्चात् भी अपने स्थान पर रहते हुए उस से लाभ उठाने के लिये विविध ट्रैक्ट आदि का प्रकाशन।

केन्द्र योग्यताः—

इस केन्द्र में भाग लेने की योग्यता हाईस्कूल, प्रथमा, विशारद, अथवा उनके समकक्ष हो।

उमेश चन्द्र कार्यालय मन्त्री

[इस महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्र की योजना को सफल बनाने के लिये धनी मानी सज्जनों के आर्थिक सहयोग और आर्य कुमारों के क्रियात्मक सहयोग की आवश्यकता है। शिविर के निश्चित स्थान और तिथियों से यथा समय सूचित किया जाएगा। निम्न महानुभावों ने आर्य कुमार परिषत् की सांस्कृतिक केन्द्र तथा अन्य योजनाओं को सफल बनाने के लिये शिष्टमण्डल के निवेदन पर निम्न आर्थिक सहायता दी जिस के लिये परिषत् की ओर से उन्हें हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है। अन्य महानुभावों को भी उनका अनुसरण करते हुए आर्य कुमारों को प्रोत्साहित करना चाहिये।

१०१) श्री ला. रलाराम मेलाराम जी ठेकेदार नई देहली

१०१) श्री ला. नारायणदत्तजी ठेकेदार नई देहली

१०१) श्री ला० हंस राज जी गुप्त नई देहली।

२५) श्री ला. ज्ञान चन्द्रजी आर्य नई देहली।

२५) श्री ला० मिल्खासिंह जी नई देहली।

धर्मदेव विद्यावाचस्पति

प्रधान आर्यकुमार परिषत्]

महात्मा गांधी जी के नाम एक आवश्यक पत्र,

(मुस्लिम मनोवृत्ति तथा उपचारार्थ विषयक)

बलिदान भवन, देहली ।
६-१-४८

श्री पूज्य पाद महात्मा जी !

सादर नमस्ते ।

आपकी सेवा में इससे पूर्व सार्वदेशिक का जनवरी का अंक भिजवाया जा चुका है । जिसके ३, ४ लेखों की ओर आपका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करना चाहता हूँ । कृपया उन्हें अवश्य पढ़ने का कष्ट करें । प्रथम लेख डा० सूर्यदेव जी एम० ए०, डी लिट् अजमेर का देश के प्रति मुस्लिम मनोवृत्ति, इस शीर्षक का है । जिसके अन्त में छोटी सी सम्पादकीय टिप्पणी देते हुए मैंने आप से निवेदन किया है कि मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या की संकुचित मनोवृत्ति को बदलने का विशेष प्रयत्न करें ।

(२) दूसरा लेख श्री मेधातिथि जी का है जो शेख मकबूल अहमद के नाम से मुसलमान रूप में देव बन्द आदि में अध्ययन करते रहे हैं। उन्होंने यह लेख कुरान, हदीस आदि के पूर्ण अनुशीलन के पश्चात् लिखा है। कुरान से जो आयतें इस लेख में उद्धृत की हैं तथा अन्य जो इस प्रकार की वहां पाई जाती हैं कि "पस चाहिए कि लड़े बीच राह खुदा के वह लोग बेचते हैं जिन्दगानी दुनियां को बदले आखिरत के और जो कोई लड़े बीच राह खुदा के पस मारा जावे या गालिब आवे पस अनकरीब देंगे हम उसको शबाब बड़ा, (पारा ५ सू० ४ आ० ७४ ताज कम्पनी लाहौर द्वारा प्रकाशित कुरान अनुवाद पृष्ठ १४४) ख्वाजा हसन निजामी ने इस आयत का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार किया है: । जो लोग परलोक के सुख के बदले सांसारिक जीवन (अर्थात अपनी जान तक) बेच चुके हैं उन्हें चाहिए कि अल्लाह की राह में शत्रुओं से निःसंकोच लड़े और जो अल्लाह की राह में शत्रुओं से लड़े और मारा जाय या विजित हो तो दोनों दशाओं में हम उसे बड़ा पुण्य देंगे। (हिन्दी कुरान हसन निजामी द्वारा अनूदित पृ० १२६) ऐसा ही अनुवाद मौ० नजीर अहमद हाफिज गुलाम सरवर और अन्य प्रायः सभी भाष्यकारों ने किया है। हिन्दी कुरान पृ० १३० में ख्वाजा हसन निजामी ने कुरान की एक दूसरी आयत ३।३।२८ का अनुवाद इस प्रकार किया है। "ऐ मुसलमानों तुम उन (काफिरों) में से किसी को अपना मित्र न समझो जब तक वे अल्लाह की राह में अपना घर बार न छोड़ दें और जिहाद में शरीक न हों और यदि ये जिहाद से मुंह मोड़ें तो उनको जहां चाहो पकड़ लो और मार डालो और उनमें से कदापि किसी को अपना मित्र व सहायक न बनाओ। हाफिज गुलाम सरवर ने इसका अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार दिया है।

"Take not any of them (unbelievers)

as friends untill they leave their home in God's way. But if they turn back then capture them and shed their blood, where even you find them and take not any of them as friends or helpers. (Holy Quran translated by Hafiz Ghulam Sarwar Part 5 Chap. 4 Verse 89 P. 52)

कुरान ३-१२-११५ का अनुवाद मौ० मुहम्मद अली एम० ए० ने इस प्रकार किया है:—

"Those who disblieve, neither their wealth nor their children shall avail them in the least against God! and these are the inmates of the fire they shall abide

ऐसी आयतों में केवल ईश्वर में अविश्वास के लिये दण्ड नहीं बल्कि मुहम्मद साहेब में अविश्वास के लिये भी नरक दण्ड का स्पष्ट विधान है यथा कुरान ४० । २ । १४ में लिखा है कि:— And who ever disobeys God and His Apostle and goes beyond His limits He will cause him to enter fire to abide in it and he shall have an abiding chastisement (Translation of Holy Quran by M. Mohammad Ali) ऐसा ही अनुवाद अन्य प्रायः सभी उर्दू, अंग्रेजी हिन्दी अनुवादकों ने किया है। मुसलमानों की इस भयंकर असहिष्णुतापूर्ण मनोवृत्ति को परिवर्तित किए बिना आपका हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्न कभी सफल नहीं हो सकता। मैंने ऐसी आयतों पर प्रायः सभी उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी अनुवाद देखे हैं और अङ्कित किए हैं। सब में भाव समान हैं जो मुसलमानों को ९५ प्रति शतक जनता में कूट २ कर भरे हैं। पंजाब, बंगाल, सिन्ध आदि के साम्प्रदायिक उपद्रव और लूट मार, अपहरण, अग्नि काण्ड, तथा अन्य अत्याचार इस मनोवृत्ति के स्वाभाविक परिणाम हैं जिसके लिये कुरान की इन शिक्षाओं का उत्तरदायित्व है। आप चाहेंगे तो ऐसी १५ । २० आयतों पर हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी में सब मुसलमान अनुवादकों का अनुवाद लिखकर भेज दूंगा जिससे आपको ज्ञात होगा कि मौ० आजाद जैसे बहुत कम विचारशील मुसलमान यदि इन आयतों का दूसरा अर्थ करते हैं तो वह सर्व साधारण व मुस्लिम जनता तथा उसके नेताओं को मान्य नहीं। १३-१-४८

श्री पूज्य पाद महात्मा जी।

जैसे कि इस पत्र पर दी तिथि से आपको ज्ञात होगा कि यह पत्र मैंने ६ । १ । ४८ को लिखना आरम्भ किया था किन्तु अन्य कार्य वश इसे पूरा करके भेजा नहीं जा सका। आज प्रायः समाचार पत्रों से आपके उपवास विषयक निश्चय के समाचार को पढ़कर हम सब स्तब्ध रह गए। आपके राजनैतिक तथा भाषादि सम्बन्धी विचारों से मत भेद होने पर भी प्रत्येक भारतीय आपके व्यक्तित्व के प्रति विशेष आदर का भाव रखता है। हम सब आर्य आपके जीवन को देश और जगत् के लिए बहुमूल्य समझते हैं और इस लिए आर्य

जगत् की ओर से मैं आप से सादर निवेदन करता हूँ कि अपने अनिश्चित काल के लिए उपवास विषयक विचार को कृपया छोड़ दें और भारतीयों में परस्पर प्रेम, तथा ऐक्य विषयक प्रयत्न मुसलमानों की संकुचित मनोवृत्ति के परिवर्तन कराने द्वारा जिसमें मौ० आज़ाद जैसे उदार मुसलमानों का सहयोग विशेष रूप से अपेक्षित है जारी रखें। आपकी यह कामना कि सब सम्प्रदायों के लोगों और समस्त देश वासियों में प्रेम तथा हार्दिक ऐक्य स्थापित हो अत्यन्त अभिनन्दनीय है किन्तु कृपया अपने बहुमूल्य जीवन की इस दुःखसाध्य एकता की वेदी पर बलि न चढ़ा दें। भगवान आपके महात्मजनोचित शुभ संकल्प को पूर्ण करके आपके बहुमूल्य जीवन को सुरक्षित रखें यही हम आर्यों की हार्दिक प्रार्थना है।

भवदीय विनीत

धर्म देव विद्यावाचस्पति

(स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा, देहली।)

१७ जनवरी को महात्मा गांधी जी के नाम निम्न तार मैंने सार्वदेशिक सभा की ओर से बलिदान भवन में उनके दीर्घ जीवन और शुभ सङ्कल्प की पूर्ति के लिये भगवान से प्रार्थना कराने के पश्चात् भेजा।

"Your life precious please end fast establishing abiding unity by changing Muslims' fanatical Meutility

अर्थात् आपका जीवन बहुमूल्य है। कृपया अपने उपवास को समाप्त करें और मुसलमानों की मतान्धता पूर्ण मनोवृत्ति को परिवर्तित करते हुये स्थिर एकता स्थापित करें।

—:—:—

मुस्लिम धार्मिक दृष्टिकोण से हिन्दुओं की स्थिति

[२]

[लेखक—श्री मेधातिथि जी भू० पू० शेख मक़्बूल अहमद नागपुर]

अन्त में मैं दो हदीसों पर बहस को समाप्त कर देना चाहता हूँ।

अन् अबि हुररह काल काल रसूलुल्लाहि अल् मुस्लिमु मन् सलिमल् मुस्लिमीन लसानिही वयदिही — अल्मिशकात्

अबुहुरेर: से है उसने कहा कि मुहम्मद साहिब ने कहा कि मुसलमान वह है जिसके हाथ तथा जबान से मुसलमान सुरक्षित रहें (अर्थात् जो मुसलमानों को न मारे और न गाली आदि दे)

अस्सलातु फ़ारिकुम्बैनल् इस्लामि वल् कुफ़रि

अल् हदीस्

नमाज मुसलमान तथा काफ़िर के बीच फ़रक है (अर्थात् जो नमाज नहीं पढ़ता वह काफ़िर है)

उपरोक्त दोनों हदीसें हिन्दू को मुसलमान की दृष्टि में काफ़िर बनाती हैं। हिन्दू नमाज़ नहीं पढ़ता अतः मुहम्मद साहिब के कथनानुसार काफ़िर है। जिन्ना आदि अधूरे मुस्लिमों को जाने दो, मौलाना शब्बीर अहमद जैसे जबरदस्त आलिम के फ़तवे बांटे गये हैं कि हिन्दू काफ़िर हैं। अतः उसके साथ जहाद (युद्ध) करने के लिए मुसलमानों को काश्मीर चलना चाहिये—जब यह सिद्ध हुआ कि मुसलमान की दृष्टि में हिन्दू काफ़िर हैं और कुर्आन तथा हदीस की इन आज्ञाओं का आक्रमण हिन्दू पर भी हो सकता है तब मैं नहीं समझ सकता कि महात्मा गांधी जी ने ये शब्द क्यों कहे कि यह सब कुछ हिन्दुओं के लिए नहीं है। मैं समझता हूँ कि जब तक कुर्आन तथा हदीस में यह भयङ्कर तथा अशान्ति को जागृत रखने वाला मैगज़ीन भरा हुआ है भारत में शान्ति का स्थापित होना कुछ असम्भव सा ही जान पड़ता है। इन ही कुर्आन तथा हदीस की आज्ञाओं का शिकार होकर चालीस लाख हिन्दू पाकिस्तान से बाहर निकाल दिये गये हैं। इसी चीज ने पाकिस्तान का विभाजन करने का विचार उत्पन्न किया है और यदि इन आज्ञाओं को इन पुस्तकों में से निकलवाया न गया तो हम नहीं कह सकते कि भारत को भविष्य में किन किन सङ्कटों का सामना करना पड़ेगा। अतः मैं भारत की स्वतन्त्रता की रक्षा के विचार से भारत के विजेता, राष्ट्र पिता, पूज्य महात्मा गांधी जी के चरणों में नम्र निवेदन करूंगा कि कृपया जितना भी शीघ्र सम्भव हो सके इन पुस्तकों में से इस विष को निकलवाने का प्रयत्न कीजिये ताकि इस आस्तीन के सांप से भारतीय निर्भय हो सकें। परन्तु यदि किसी कारण से यह समझा जाए कि पुस्तकों में से यह चीजें नहीं निकलवाई जा सकतीं तो कम से कम अर्बी के विद्यालयों में इन पुस्तकों का पढ़ना पढ़ाना बन्द करा दिया जाय—अन्यथा अन्दर ही अन्दर यह विषैला प्रचार होता रहेगा और नहीं कहा

जा सकता कि किस समय हमें फिर इसके परिणाम को भुगतना पड़ जाए।

अब महात्मा जी का दूसरा वाक्य रह जाता है जिसमें आपने लिखा है कि मुहम्मद साहिब को रसूल मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं हो सकती।

मैं इस शब्द पर भी कुर्आन तथा हदीस के द्वारा ही बहस करना चाहता हूँ।

कुल् इन्नमा अना बशरुन मिस्लुकुम।

अलकुरान

कहो कि मै भी तुम्हारी ही तरह एक आदमी हूँ।

नोट—यह शब्द मुहम्मद साहिब के कथनानुसार अल्लाह ने मुहम्मद साहिब से कहलवाए हैं। और हमारी राय में ये शब्द मुहम्मद साहिब ने स्वयं कहे हैं क्योंकि हम कुर्आन को मिनल्लाह (ईश्वर कृत) नहीं मानते।

...... काल अजल् वलाकिन्नी लस्तु कअहदिम् मिन्कुम्। मुस्लिम्।

(मुहम्मद साहिब ने) कहा कि हां परन्तु मैं तुम्हारे जैसा नहीं हूँ।

ये दोनों कथन एक दूसरे को झुठला रहे हैं। और देखिए

अन हकीमिबने मुआवियः काल काल रसूलुल्लाहि इन्नाफ़िलजन्नति बहरुल माअिव बहरुल अस्लि व बहरुल लबनि व बहरुल् खमरि सुम्मा तशक्ककुल् अनहार, बादु।

अलमिश्कात

मुआविया के बेटे हकीम ने कहा कि मुहम्मद साहिब ने कहा कि जन्नत में पानी, शहद, दूध और शराब के चार समुद्र हैं और उन चारों समुद्रों में से चार दरिया निकलते हैं।

अन अबि हुरेरः काल काल रसूलल्लाहि सैहानु व जैहानु वल फ़िरातु वन्नीलु कुल्लु मिन अनहारिल् जन्नति–

अलमिशकात

अबुहुरेरः ने कहा कि मुहम्मद साहिब ने कहा कि सैहान, जैहान, फिरात और नील (यह चारों दरया) जन्नत की नहरों में से हैं।

मिशकात के भाष्यकार ने इन दरयाओं के बारे में लिखा है कि—

सैहानु व जैहानु नहरानि अज़ीमानि बिल्ह अवासिम् वतरतूस

सैहान तथा जैहान बहुत बड़े दरिया हैं जो अवासिम और तरतूस के पास बहते हैं

फिरात इरा[illegible]

बहता है।

यहां बुखारी तथा मुस्लिम का एक और शब्द भी सुन लीजिए जो यहां इस हदीस से सम्बन्ध रखता है

फी किताबि मुस्लिम इन्नल् फ़िरात वन्नली य.खर, जानि मिनल जन्नति व फी किताबिल् बुखारी, मिन् अस्लि सिदतिल् मुन्तहा-मिशकात वा हाशिया।

मुस्लिम में है कि फिरात और नील जन्नत में से निकलते हैं और बुखारी में है कि (सातवें आसमान के ऊपर) जो बेरी का पेड़ है उसकी जड़ में से यह दोनों दरया निकलते हैं।

अन् उसामतन्निस्सामिति काल काल रसूलुल्लाहि फिल जन्नति मियतु दर्जतिन मा बैन कुल्लि दर्ज तैनि कमा बैन स्समायि वल् अर्ज़ि वल् फिर्दौसु अअलाहा दर्जतन मिन्हात-फज्जर अनहारुल् जन्नतिल् अरबअतु वमिन्

फोकिहा यकूनुल् अशु अल् मिशकात

सामित के बेटे उसामा से है कि मुहम्मद साहिब ने कहा कि जन्नत के एक सौ भाग (हिस्से) हैं उन में से हर दो भागों के बीच इतना फासला है जितना कि जमीन आस्मान के बीच। सब से ऊपर के दर्जे का नाम फिर्दौसी है इसी में से चारों नहरें निकलती हैं और उस (फिर्दौस) के ऊपर तख्त है (जिस पर अल्लाह बैठा है)

अब कुछ चीजें विचार योग्य हैं और वह यह कि इतनी बड़ी जन्नत का आस्मान में होना बुद्धि से परे है दिमाग इसे कदापि स्वीकार करने के लिए तय्यार नहीं हो सकता आस्मान सात हैं उनके ऊपर बेर का वृक्ष है उस वृक्ष के फल बड़े मटके जितने बड़े होते हैं उसके ऊपर तख्त भी है चार नहरें भी बह रही हैं परन्तु दिखाई कुछ भी नहीं देता और जब हमारी दुनियाँ का नक्शा हमें बताता है कि जिस नील तथा फिरात का आस्मान में जारी होना मुहम्मद साहिब ने बताया है वह ईराक तथा मिसर में बह रही हैं और पहाड़ों से निकलते हैं उन दरयाओं के चशमे आकाश में नहीं बल्कि इसी पृथ्वी की पहाड़ी जमीन पर है तब हम यह सोचने के लिए बाधित हो जाते हैं कि इस प्रकार की विचित्र बातें करने वाले मनुष्य को हम ईश्वर का दूत कैसे मान लें जिसकी इन बातों को बुद्धि मानने से इन्कार करती है।

अच्छा होगा यदि हम एक और हदीस पर विचार कर लें।

अन् अबि औफा काल् गजौना मअ रसूलिल्लाहि सबअ गजवातिन कुन्ना नाकुलु मऊहूलु जराद:अल् मिशकात

औफा के पिता ने कहा कि हमने मुहम्मद साहिब के साथ सात लड़ाइयां लड़ीं हम टिड्डियों को खाया करते थे।

वह मनुष्य जो ऐसी बातें कहता है जिनको बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती जिसकी दो बातें आपस में एक दूसरे से विरोध रखती हों और जो मनुष्य टिड्डियों को खानेसे भी घृणा न करता हो उस मनुष्य को रसूल (ईश्वर का दूत) कैसे माना जा सकता है-पहले तो मांस भक्षण ही बुद्धि का सर्व नाश कर देता है। परन्तु टिड्डी आदि तो मनुष्य के मस्तिष्क में इतना विकार उत्पन्न कर देती हैं--कि मनुष्य की बुद्धि किसी गम्भीर अथवा आध्यात्मिक प्रश्न पर भली प्रकार विचार ही नहीं कर सकती--परिणाम स्वरूप वह इस प्रकार की बातें कहने लग जाता है जिन को बुद्धि किसी भी हालत में स्वीकार नहीं कर सकती-मैं इस प्रकार की बातों का कुछ नमूना ऊपर लिख चुका हूँ! कम से कम मेरे जैसा आदमी जो हर बात को बुद्धि की कसौटी पर परख कर स्वीकार करता है ऐसे मनुष्य को रसूल नहीं मान सकता।

मुहम्मद साहिब की इसी प्रकार की कई बातें जो उन्होंने कह तो दी हैं परन्तु उनको बुद्धि स्वीकार नहीं करती वर्तमान समय के मौलवियों के सामने एक विकट समस्या बन चुकी है। मौलवी आज तक लोगों में ईमान बिलगैब (बिना देखे तथा बिना सोचे समझे मान लेना) का प्रचार करते रहे हैं परन्तु अब जब कि आर्य-समाज ने लोगों को कुछ तर्क सिखा दिया है

और लोग विना सोचे समझे किसी चीज को स्वीकार नहीं करना चाहते तब मौलवियों के प्रचार में कुछ बाधाएं पड़ने लग गई हैं—ऐसी बाधाएं जिनको सुलझाने का मौलवियों के पास कोई रास्ता नहीं।

मुहम्मद साहिब के समय में भी इस प्रकार की कुछ शङ्कायें उठी थीं परन्तु राज्य अपना होने के कारण इन चीजों को कठोरता के साथ दबा दिया गया था—बुखारी तथा मुस्लिम में इस प्रकार की कई घटनाएं लिखी हुई हैं। जैसे—

एक आदमी ने मुहम्मद साहिब से जाकर कहा कि मेरे दिल में कुछ शङ्काएं उत्पन्न हुई हैं आपने उसकी छाती पर हाथ रख कर कहा कि इन शङ्काओं को दिल ही में रहने दें क्योंकि यदि यह जबान पर आ गईं तो तुम काफिर हो जाओगे वह आदमी यह सुन कर चुपके से चला गया।

यहां यह समझने की आवश्यकता है कि वह चुपचाप चला क्यों गया?

जिस समय उसने शङ्का प्रकट करने की आज्ञा मांगी उस समय वह मुसलमान था उस के दिल में ये शङ्काएं मुसलमान होने के बाद ही पैदा हुई हैं। परन्तु उस के शङ्का समाधान की आज्ञा मांगने पर जब मुहम्मद साहिब ने कह दिया कि यदि शङ्काएं ज़बान से तुम ने कहदीं तो काफ़िर हो जाओगे। और अरब में इसलामी राज्य स्थापित करने के पश्चात् मुहम्मद साहिब ने एक आर्डीनेन्स जारी किया था कि मुर्तद (जो मुसलमान फिर काफ़िर हो जाए) को कतल कर दिया जाए—इस आर्डर के आधीन यदि वह अब भी शङ्का प्रकट करता तो मुहम्मद साहिब काफ़िर कह कर उसे क़तल करा देते अतः वह उठा और चुप चाप चला गया।

एक दूसरी घटना भी सुन लीजिए।

एक मुसलमान ने उमर इबने खत्ताब को कहा कि मेरी राय में मुहम्मद साहिब का अमुक फैसला कुछ गलत है इस पर दुबारा विचार होना चाहिये उमर ने यह सुना और तलवार से उस मुसलमान की गर्दन उड़ा दी। और कहा कि जो मनुष्य मुहम्मद साहिब की बातों पर शक करता है उसे जीवित रहने की आज्ञा नहीं दी जा सकती।

ये घटनाएं उस समय घटी थीं—जब कि मुसलमानों के हाथ में मुहम्मद साहिब को रसूल मनवाने के लिए शक्ति थी, यद्यपि आज भारत में मुसलमानों के हाथ में पूरी शक्ति नहीं है तथापि हमें यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि मुसलमान के उस पूर्व दृष्टि कोण में आज भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। जिन दिनों मैं अर्बी भाषा की अन्तिम परीक्षा के लिए तय्यारी कर रहा था हदीस पढ़ते हुए मेरे सामने एक प्रश्न उपस्थित हुआ वह यह कि सहा सित्ता की पुस्तकों से कई इस प्रकार की हदीसें आई हैं जिनको बुद्धि स्वीकार नहीं करती चूंकि वह हदीसें मुहम्मद साहिब ने कही हैं अतः विवश होकर यही कहना पड़ता है कि मुहम्मद साहिब ने अमुक जो बात कही है वह ठीक नहीं है अर्थात् गलत है। मेरे उस्ताद तथा भारत की एक बहुत बड़ी इस्लामी धार्मिक सोसाइटी (जमाअते इस्लामी) के अमीर (प्रैज़ीडेन्ट) श्री मौलाना अबुलआअला मौदूदी ने मुझे मेरे इस प्रश्न पर लिखित उत्तर दिया था कि मुहम्मद साहिब

की किसी भी बात को गलत कहने से कुफ़र लाजिम आता है। उत्तः मेरे लिए पर्याप्त नहीं था अतः प्रश्न मुफती किफायतुल्लाह देहलवी के पास भेज दिया गया आपका भी लिखित उत्तर प्राप्त हुआ और वह यह कि ठीक दिमाग वाले इस्लाम को ठीक समझते हैं। और गलत दिमाग वाले इस्लाम को गलत समझते हैं-दोनों लिखित उत्तर मेरे पास सुरक्षित हैं।

मैं इन दोनों का शिष्य होने पर भी इन के उत्तरों पर आश्चर्य प्रकट किए बिना नहीं रह सकता। मैं मौलाना मौदूदी साहिब से पूछना चाहता हूँ कि वह धर्म सच्चा धर्म नहीं कहा जा सकता जो असत्यवादी बनने की शिक्षा देता हो और जब आप कहते हैं कि एक आदमी के गलत को भी गलत न कहा जाए तो वह असत्य का प्रचार है सत्य का नहीं फिर आप कैसे कह सकते हैं कि आपका धर्म सच्चा है।

मैं मौदूदी साहिब से पूछना चाहता हूँ कि क जब आप मुहम्मद साहिब के द्वारा कही गई बातों पर की जाने वाली शङ्काओं का ठीक ठीक उत्तर नहीं दे सके तब आप शङ्का प्रकट करने वाले को अपनी राय प्रकट करने से रोकते क्यों हैं तथा लोगों में ऐसे धर्म का प्रचार क्यों करते हैं जिस पर की जाने वाली शङ्काओं का आप समाधान नहीं कर सकते।

रहा मुफती साहिब का उत्तर तो वह तो बहुत ही विचित्र है आश्चर्य तो यह है कि यह उत्तर उसकी ओर से प्राप्त हो रहा है कि जिस के शिष्य भारत के कोने कोने में फैले हुए हैं। इसका अर्थ तो यह हुआ जो आदमी मुफती साहिब से अपने आप को बुद्धिमान् कहलाना चाहता हो वह कह दे कि इस्लाम ठीक है अर्थात् सच्चा धर्म है परन्तु जिसने कह दिया कि इस्लाम ठीक नहीं अर्थात् गलत है तो मुफती साहिब बिना यह विचारे कि इसने यह शब्द क्यों तथा किस आधार पर कहे हैं स्पष्ट कह देंगे कि इसका दिमाग खराब है। इस्लाम को सच्चा सिद्ध करने के लिए यह भी एक अच्छा मार्ग मुफती जी ने तलाश किया है। अस्तु

अब मैं श्री महात्मा जी से स्पष्ट शब्दों में एक प्रश्न करना चाहता हूँ। श्रीमान जी! क्या आप एक ऐसे मनुष्य को रसूल मानने के लिए कह रहे हैं जिस मनुष्य की रसालत को आज तक सिद्ध नहीं किया जा सका, क्या आप ऐसे आदमी को रसूल मान रहे हैं। जिनकी बात के असत्य होने पर पर्याप्त शङ्काएं की जा सकती हैं। और मौलवियों के पास उन शङ्काओं का कोई उत्तर नहीं, और कि आप अहिंसा वादी हो कर भी क्या एक ऐसे मनुष्य को रसूल मनवाना अथवा मानना चाहते हैं जिसने स्वयं को लोगों से रसूल कहलवाने के लिए तलवार उठाई और लाखों तथा करोड़ों मनुष्यों को काट कर रख दिया।

मैं अन्त में आशा करता हूँ-कि श्री महात्मा जी अपने शब्दों पर पुनः विचार करने के लिए समय निकालने का प्रयत्न करेंगे।

[श्री मेधातिथि जी के 'मुस्लिम दृष्टि कोण से हिन्दुओं की स्थिति विषयक दोनों लेख जो इस तथा पिछले अङ्क में प्रकाशित हुए हैं

कुरान तथा हदीसों के गम्भीर अनुशीलन के परिणाम तथा तर्क सङ्गत हैं। यह स्पष्ट है कि कुरान तथा हदीसों से जो उद्धरण इन लेखों में दिये गये हैं उन के प्रायः सब पुराने भाष्यकार और मौलवी लोग वही अर्थ मानते हैं जिन को इन लेखों में उद्धृत किया गया है। हमने स्वयं ऐसी आयतों के बहुत से उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी अनुवादों को देखा और एक जैसा पाया है। यदि मौ० अबुलकलाम आजाद जैसे कुछ ऐसे अरबी के विद्वान् हैं जो इन का ऐसा अमुस्लिमों से घृणा सूचक बुद्धि विरुद्ध अर्थ नहीं मानते तो यह उनका कर्तव्य है कि मुस्लिमों की इस संकुचित, मतान्धता पूर्ण मनोवृत्ति को जो अमानुषिक अनन्त अत्याचारों के लिये प्रेरक बनी है दूर करने का प्रयत्न करें। महात्मा गांधी जी अरबी फारसी नहीं जानते, इस्लाम विषयक उनका ज्ञान अत्यधिक सीमित है अतः वे इन विषयों में प्रामाणिकता से नहीं बोल सकते। हम में से प्रत्येक की यह हार्दिक अभिलाषा है कि इस देश के सब निवासियों में ही नहीं समस्त जगत् के वासियों में हार्दिक प्रेम और एकता हो, वैर, विरोध, विद्वेष का कहीं नाम भी न रहे। इसी लिये पूज्य महात्मा गांधी जी के इस विषयक महात्मजनोचित शुभ संकल्प को हम अत्यन्त अभिनन्दनीय समझते हैं किन्तु यथार्थता को भुला कर ऊपर की लीपापोती से कभी स्थायी परिणाम नहीं निकल सकता और न स्थिर ऐक्य स्थापित हो सकता है। इस लिये पूज्य महात्मा गांधी जी से हम नम्रता पूर्वक निवेदन करना चाहते हैं कि वे या तो कुरान और हदीसों के पुराने नये सब भाष्यों और मुस्लिम इतिहास का गम्भीर अनुशीलन कर के मुस्लिम मनोवृत्ति को ठीक २ समझ कर उसके असहिष्णुता और मतान्धता पूर्ण अंश को जो मुसलमान भाइयों की ६५ प्रतिशत जनता में कूट २ कर भरा है दूर करने का स्वयं प्रयत्न करें और यदि इस वृद्धावस्था में वैसा करना उनके लिये सम्भव नहीं तो मौ० आजाद जैसे मुस्लिम विद्वानों के द्वारा सर्व साधारण ही नहीं, पढ़े लिखे मुसलमानों की अमुस्लिमों के प्रति इस विद्वेष पूर्ण मनोवृत्ति को परिवर्तित कराने का निरन्तर प्रयत्न करावें अन्यथा हमें भय है कि जिस हिन्दू मुस्लिम-सिक्ख ऐक्य को स्थापित करने के लिये उन्होंने अभी १३ जनवरी से अनशन व्रत प्रारम्भ किया था और जो १८ जनवरी को मध्याह्न समाप्त कर दिया गया यह प्रसन्नता की बात है वह स्थायि रूप धारण न कर सकेगा। पूज्य महात्मा जी भी व्रत के दबाव में ऊपर की लीपापोती नहीं हृदयों का वास्तविक मेल चाहते हैं (जैसे कि उन्होंने अपने पिछले दिनों के वक्तव्यों में बार २ स्पष्ट किया) ऐसी अवस्था में एक अच्छे डाक्टर के रूप में उनके लिये बीमारी तथा उसके निदान (मूल कारण) को समझ लेना आवश्यक है जिसका श्री मेधातिथि जी भू० पू० शेख मकबूल अहमद ने गम्भीर अनुशीलन के पश्चात् इन दो लेखों में सप्रमाण निर्देश किया है। हम चाहते हैं हमारे सब मान्य राष्ट्रीय नेता इन लेखों को इसी रूप में लेकर इस बीमारी को दूर करने का निरन्तर प्रयत्न करें ताकि देश में सच्ची एकता स्थापित हो— —— सम्पादक सा० दे०]

साहित्य समीक्षा

(प्रत्येक पुस्तक की समालोचनार्थ २ प्रतियां भेजनी चाहिये)

शाङ्करभाष्यालोचन—लेखक श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० प्रकाशक—कला प्रेस प्रयाग। मू० ५)

'सार्वदेशिक' के दिसम्बर ४७ के अङ्क में हमने जिस अद्भुत दार्शनिक ग्रन्थ की चर्चा की थी वह प्रकाशित हो गया है। स्वप्नमीमांसा पर और अपर ब्रह्म, शाङ्कर चतुः सूत्री, शाङ्कर सांख्य विरोध-वैशेषिक और शङ्कर स्वामी, ब्र और जीव का स्पष्ट भेद, शङ्कराचार्य और पौराणिक मत, प्रलय क्रम, परस्पर विरोध, शाङ्कर सूक्तियां इत्यादि विषयों पर बड़ा गम्भीर किन्तु रोचक सुन्दर विवेचन उक्त ग्रन्थ में किया गया है जो प्रत्येक सुशिक्षित व्यक्ति के लिये जिस की दार्शनिक विषयों में कुछ भी रुचि है अत्यन्त उपयोगी है। प्रत्येक आर्य समाज और आर्य कुमार सभा तथा अन्य संस्था के पुस्तकालय में इस की एक प्रति अवश्य रहनी चाहिये। पौराणिक विद्वानों में शाङ्कर मत के मानने वाले विद्वान् बहुत हैं अतः उत्साही आर्यों को चाहिये कि इस पुस्तक को उन तक पहुंचाएं ताकि इसका यथेष्ट प्रचार हो और विचारशील विद्वान् वैदिक धर्म के दृष्टि कोण को समझ सकें। हम इस अद्भुत दार्शनिक ग्रन्थ के लिखने पर आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० गङ्गा प्रसाद जी उपाध्याय का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

रामायण दर्पण—लेखक श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी, प्रकाशक आर्य साहित्य मण्डल अजमेर मूल्य ।।।)

श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी जिनका पूर्वाश्रम में नाम पं० प्रियरत्न जी आर्य था आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं जिन्होंने वैदिक विषयों पर बड़ी महत्त्वपूर्ण अनुसन्धानपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। रामायण के सम्बन्ध में अनेक विषयों पर इस पुस्तक में नवीन प्रकाश डाला गया है। राम, लक्ष्मण, भरत, दशरथ, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, सीता, रावण आदि के चरित्र पर प्रकाश डालने के अतिरिक्त उस काल की कला कौशल और विज्ञान विद्या पर विशेष अनुसन्धानपूर्ण प्रकाश डाल कर बताया गया है कि नगर उद्यान की कला, शस्त्र विद्या, हस्त शिल्प, बिजली के यन्त्र, विमान आदि का ज्ञान उस समय के लोगों को था। यह ग्रन्थ प्राचीन भारत की वैज्ञानिक उन्नति और भारतीय संस्कृति और सभ्यता के स्वरूप को समझने की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है।

स्वराज्य दर्शन—लेखक श्री पं० लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित। प्रकाशक — सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड बलिदान भवन देहली मूल्य १)

इस पुस्तक में स्वराज्य के प्राचीन शास्त्र सम्मत तत्त्वों को संस्कृत सूत्र रूप में रखते हुए उनके समर्थन में महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों से उद्धरण दिये हैं तथा राजा प्रजा का सम्बन्ध, सच्चा प्रजातन्त्र शासन, मन्त्रियों के कर्तव्य

तथा अधिकार, राजा का चुनाव, हिंसा, अहिंसा का प्रश्न इत्यादि पर बड़ा उत्तम प्रकाश डाला गया है। स्वामी दयानन्द और देशभक्ति, स्वामी दयानन्द और रियासतें, आर्य समाज और राष्ट्रियता इत्यादि विषयों पर भी उत्साही लेखक महोदय ने जो सार्वदेशिक राजार्य-सभा के मन्त्री हैं सरल और ओजस्विनी भाषा में अपने विचार प्रकट किये हैं। वर्तमान समस्याओं और राजनैतिक विषयों पर महर्षि दयानन्द के दृष्टिकोण को समझने के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। हम इस पुस्तक का अधिक से अधिक प्रचार चाहते हैं।

दयानन्द सन्देश—सम्पादक आचार्य राजेन्द्र-नाथ जी शास्त्री और पं० वेदबन्धु शर्मा ।

पता-दयानन्द सन्देश ईपो सराय, नई देहली। वार्षिक मूल्य ६)

यह प्रसन्नता की बात है कि दयानन्द सन्देश नामक पत्र जो अनिवार्य बाधाओं के कारण सन् १९४२ में बन्द होगया था पुनः निकलना आरम्भ हुआ है, इसके दिसम्बर ४७ तथा जनवरी ४८ के अङ्क हमारे सम्मुख हैं जिसमें अच्छे २ विद्वानों के उत्तम लेख और कविताएं हैं। वैदिक धर्म और संस्कृति के प्रचार के उद्देश्य से पुनः संचालित अपने सहयोगी का हम स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि यह सदा ऋषि दयानन्द का अमर सन्देश जनता को सुनाता रहेगा। पृष्ठ पत्र पर दयानन्द विद्यालय फार्मेसी का विज्ञापन उर्दू में देना हमें अनावश्यक और अनुचित प्रतीत हुआ आशा है भविष्य में वह न रहेगा।

क्रान्ति दीप—लेखक कवि कमल श्री साहित्यालङ्कार अ० भा० रेडियो विभाग नई देहली

श्री कमल जी एक उदीयमान भावुक, प्रतिभाशाली राष्ट्रीय कवि हैं। इस छोटीसी पुस्तिका में उनकी हिन्दी गान, दीपक की पुकार, दीपक माला, अब कौन मधु राग गाए,विजय गीत, जीवन ज्वाला, जलन सुख, होगा, बन्धन खोलो (जो सा० दे० के जनवरी अङ्क में छपी थी) विजय ललकार, आलोक इत्यादि शीर्षक स्फूर्ति दायिनी ओजस्विनी कविताएं हैं। नवयुवकों में ये कविताएं नवजीवन का संचार करने वाली हैं जिसकी बड़ी आवश्यकता है अतः हम श्री कमल जी का इनके लिये हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

धर्म देव

स्त्रियों का वेदाध्ययन और वैदिक कर्मकाण्ड में अधिकार—लेखक—पं०धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली द्वारा प्रकाशित पृष्ठ २५० मूल्य १।)

मैंने पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति द्वारा प्रणीत 'स्त्रियों का वेदाधिकार' नाम ग्रन्थ पढ़ा है। उसमें वेदों, ब्राह्मणों, सूत्रों, स्मृतियों और पुराणों द्वारा उचित क्रम से पं० जी ने स्त्रियों के इस अधिकार को पुष्ट किया है। पं० जी की कुशाग्र बुद्धि को मैं उस समय से जानता हूँ जब कि वे १५-१६ वर्षों के थे। आज मुझे यह जान कर विशेष हर्ष हुआ कि यह ग्रन्थ, हिन्दू यूनिवर्सिटी के कुछ प्रबन्धकों द्वारा एक देवी को वेद पढ़ाने पर रोक लगाने पर लिखा गया है, दूसरा भारत विख्यात पं० दीनानाथ जी शास्त्री विद्यावागीश द्वारा प्रदर्शित प्रौढ़ प्रतिपक्ष युक्तियों

की कसौटी के संघर्ष से मंज कर यह तैयार हुआ है अतः—इस सोने के खरा होने में कोई सन्देह नहीं, केवल एक स्थान में थोड़ा प्रौढ़िवाद से काम लिया है।

मैं पं० दीनानाथ जी की विद्वत्ता का भी कायल हूं। परन्तु ईश्वरीय ज्ञान वेद पर परिगणित द्विजों और उन में भी केवल पुरुषों के ही अधिकार को स्थिर रखना मैं न्यायसंगत कदापि नहीं मानता। अतः मैं इस ग्रन्थ का पोषक हूँ। मेरे विचार में तो ईश्वरीय ज्ञान वेद पर प्रतिबन्ध लगाना कि पुरुष पढ़े और स्त्री न पढ़े, मानो सूर्य्य के प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाना है कि वह अमुक घर में प्रकाश दे और अमुक घर में न दे।

इस ग्रन्थ के प्रकट हो जाने से अब प्रमाणान्वेषकों को इसके आश्रय से सभी शास्त्रों के प्रमाण एकत्र सुगमता से प्राप्त हो जाएंगे। अतः पं० जी का प्रयत्न स्तुतिशत भाजन और जनता के संग्रह योग्य है।

चूड़ामणि शाण्डिल्य शास्त्री
(कार्यनिवृत्त आचार्य सनातन धर्म संस्कृत कालेज मुलतान)

कुछ सूचनाएँ

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा से श्री शिवचन्द्र जी की विदाई

१५ वर्ष तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा में विभिन्न पदों जैसे मन्त्री अखिल भारतीय आर्य रक्षा समिति (हैदराबाद राज्य में आर्य सत्याग्रह के दिवसों में तथा उस से पूर्व) मन्त्री अखिल भारतीय आर्य कांग्रेस, शोलापुर, संयोजक, आर्य समाज मिशन दक्षिण भारत, संयोजक मन्त्री दक्षिण भारत आर्य कान्फ्रेन्स मदुरा तथा बंगलौर, प्रचार मन्त्री दक्षिण भारत आर्य कान्फ्रेन्स मद्रास, कार्यालय मन्त्री अखिल भारतीय आर्य कांग्रेस देहली, उपमन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, तथा सहायक मंत्री, अखिल भारतीय सत्यार्थप्रकाश रक्षा समिति पर कार्य करने के पश्चात् श्रीयुत शिवचन्द्र जी सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा से मुक्त (retire) हो गये हैं।

इन वर्षों में श्री चन्द्रजी ने "विदेशों में आर्य समाज," "हैदराबाद राज्य में आर्य समाज का केस," "सिन्ध में सत्यार्थप्रकाश का केस" "हिन्दू रजवाडे तथा भारत का भविष्य" नामक पुस्तकें लिखी थीं।

—सर्व आर्य सज्जनों को यह पढ़ कर प्रसन्नता होगी कि मैंने आर्य समाज नयाबाँस देहली में स्वतन्त्र रूप से कार्य आरम्भ कर दिया है जो भाई अपने वार्षिक उत्सवों तथा संस्कारों में मेरी सेवा की आवश्यकता समझें मुझे इन पते पर सूचित करें।

आशानन्द भजनोपदेशक आर्य समाज
नयाबांस, देहली

—आर्य जनता को यह सुन कर प्रसन्नता होगी कि प्रोफेसर जगदीश भूषण संगीत रत्न (गुजरातों चढियं चन्द) ने अपना निवास स्थान शाहदरा (देहली) बनाया है। जिन आर्य सज्जनों तथा आर्य समाजों को वार्षिकोत्सवों विवाहों आदि पर गाने कथा तथा प्रचार के लिये उनकी आवश्यकता हो वे हम से पत्र व्यवहार करें

भवदीय :—
मंगतराम मन्त्री आ० स० शाहदरा (देहली)

काश्मीर में सेवा विषयक आर्य वीरों का प्रशंसनीय निश्चय

श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से भारत सरकार को लिखा गया था कि सभा १००० वीरों की सेवायें काश्मीर समस्या के सम्बन्ध में सरकार को अर्पण करने के लिये तैयार है। भारत सरकार की ओर से धन्यवाद का पत्र आ चुका है और श्री ओ३म्-प्रकाश जी त्यागी उपाध्यक्ष आर्यवीर दल ने १०८२ वीरों की सूची भी कार्यालय में भेज दी है। यह संतोष की बात है कि इससे भी अधिक आर्यवीर देश सेवा के लिये कटिबद्ध हैं। यह कहना कठिन है कि भारत सरकार कब इन वीरों की मांग करे। यह भी संभव है कि मांग न करे। क्यों कि प्रायः सरकार सीधा भरती करना अधिक पसन्द करती है। यदि मांग आई तो हम आशा करते हैं कि हमारे वीर अति न्यून समय के विज्ञापन पर भी तय्यार मिलेंगे। परन्तु इस विषय में मेरी धारणा यह है कि वीर वृन्द व्यक्तिगत रूप से पुलिस तथा सेना के अन्यान्य भागों में अपनी शक्ति और रुचि के अनुसार सम्मिलित होने की चेष्टा करें और साम्प्रदायिकता के भावों को त्याग कर सरकार की नीति के अनुसार निःस्वार्थ भाव से देश की सेवा में जुट जावें। आर्यवीर स्वभावतः साम्प्रदायिकता के भावों से मुक्त होते हैं और आर्य समाज के सार्वभौमिक सिद्धान्तों को दृष्टि में रखते हुए उनसे आशा की जाती है कि उनकी सेवायें देश के लिये बहुमूल्य सिद्ध होंगी। यह बात जितनी आर्यसमाज पर स्पष्ट है उतनी आर्यसमाज के बाहर नहीं. परन्तु हमको संसार पर यह सिद्ध करना है कि आर्यवीर विश्वास पात्र निःस्वार्थ विश्वमित्र होते हैं यह तभी हो सकता है जब आर्य वीरों को देश सेवा का अवसर मिले। यह अवसर तभी मिल सकता है जब वे सीधे अपना सम्पर्क प्राप्त करें और अन्यान्य विभागों की शिक्षा प्राप्त करें। सेना और पुलिस के जल स्थल तथा आंतरिक सभी विभागों में पर्याप्त अवसर है। आवश्यकता है वैयक्तिक प्रगतिशीलता की। आर्यवीर दल की शिक्षा से यह गुण अवश्य आविर्भूत होगा और पर्याप्त प्रेरणा मिलेगी। आर्यवीरों की प्रगति विश्वतोमुखी होनी चाहिये। आशा है कि आर्यवीर और उनके नेता मेरे इस प्रस्ताव पर गंभीर विचार करेंगे।

गंगाप्रसाद उपाध्याय एम. ए.
मंत्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

आवश्यक सूचना

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का वार्षिक साधारण अधिवेशन २४ और २५ एप्रिल १९४८ को देहली में होगा।

मन्त्री सार्वदेशिक सभा, देहली

सार्वदेशिक के ग्राहकों से

सार्वदेशिक पत्र सम्बन्धी पत्र-व्यवहार करते समय कृपया अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

सम्पादकीय

म० गांधीजी का उपवास और उसका परिणाम

श्री पूज्य महात्मा गांधी जी ने गत १३ जनवरी से हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख जनता में हार्दिक एकता को लाने के लिए उपवास प्रारम्भ किया था जो १८ जनवरी को इस विषयक आश्वासनों के प्राप्त होने पर समाप्त किया गया। महात्मा गांधी जी का यह उद्देश्य कि सब लोगों में हार्दिक प्रेम, सौहार्द और एकता स्थापित हो नितान्त प्रशंसनीय है किन्तु इस प्रकार के उपवास से ही उस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है अथवा अब हो गई है इसमें हमारा विश्वास नहीं है। उपवास के तीसरे दिन महात्मा जी ने उपवास विषयक कुछ प्रश्नों का लिखित उत्तर देते हुए कहा था कि "मैं साफ़ लफ्ज़ों में कह चुका हूँ कि मेरा उपवास यूनियन के मुसलमानों की ख़ातिर है। और इसलिये वह यूनियन के हिन्दू और सिक्खों और पाकिस्तान के मुसलमानों के सामने है। इस तरह से यह उपवास पाकिस्तान की अक़लियत (बहु संख्या) की ख़ातिर भी है। फाका सब की आत्मशुद्धि के लिए है।" (हरिजन सेवक २५ जन०) १७ जनवरी को महात्मा जी ने अपने लिखित सन्देश में कहा "मैं पहले भी कह चुका हूँ और फिर से दोहराता हूँ कि फाके के दबाव के नीचे कुछ भी न किया जाए। मैंने देखा है कि फाके के दबाव के नीचे कई बातें कर ली जाती हैं और फाका ख़तम होने के बाद मिट जाती हैं। अगर ऐसा कुछ हुआ तो बहुत बुरी बात होगी।" (हरिजन सेवक २५ जन०)

हमें महात्मा जी के उद्देश्य की उत्तमता और यथार्थता में कोई सन्देह नहीं है किन्तु यह स्पष्ट है कि उन जैसे जगद्वन्द्य महापुरुष के जीवन का ऐसा अवसान हो इसको कोई नहीं चाहता था इस लिए इस उपवास के दबाव के नीचे कई ऐसे कार्य कर लिये गये जिनको उचित और विवेक पूर्ण नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ जिन ५५ करोड़ के विषय में माननीय सरदार पटेल ने सार्वजनिक रूप से कुछ ही दिन पूर्व स्पष्ट घोषणा की थी कि "भारत और पाकिस्तान के मध्य आर्थिक समझौता दोनों देशों के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्धों पर निर्भर होगा और जब तक काश्मीर के आक्रमणकारियों को पाकिस्तान सहायता देना बन्द नहीं करता तब तक एक पाई भी उसे न दी जाएगी।" महात्मा जी के व्रत के तीसरे ही दिन भारत सरकार का उसे पाकिस्तान को दे देने का निश्चय करना ऐसा ही कार्य है। इस निश्चय की घोषणा करते हुए प्रधान मन्त्री माननीय

पं० जवाहरलाल जी ने कहा कि 'हमने इस आशा से कि संसार हमारी शान्ति और सद्-भावना की इच्छाओं को पूर्णतः समझ लेगा यह निर्णय किया है जो भारत के उच्च आदर्शों और गांधी जी के महान् पथ के अनुकूल है। हमें यह आशा है कि इस से ऐसी स्थिति हो जायगी जो गांधीजी को उपवास छोड़ने में मदद देगी।"

प्रधान मन्त्री, पं० नेहरु जी के यह कहने पर भी कि 'इस उपवासका इस विशेष मामले में कोई सम्बन्ध नहीं है" यह स्पष्ट है कि यह कार्य महात्मा जी के निर्देशानुसार और उन के बहुमूल्य जीवन को बचाने की चिन्ता में किया गया। भारत सरकार की इस (हमारे विचार में अनुचित) उदारता का पाकिस्तान ने कुछ भी आदर नहीं किया किन्तु यह मांग की कि इस ५५ करोड़की राशि में से पाकिस्तान पर किये व्यय को भी न काटा जाए और भारत सरकार का ऐसा करना सर्वथा अनुचित और अवैधानिक होगा। सर जफ़रुल्ला ने भारत सरकार के विरुद्ध सब प्रकार के अति-शयोक्तिपूर्ण कल्पित और असत्य आरोप संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा समिति में रखते हुए महात्मा जी के उपवास को इस बात का स्पष्ट प्रमाण बताया कि भारत सङ्घ में मुसलमानों पर कितने अत्याचार किये गये हैं। जिन ७ शर्तों को स्वीकृत करके महात्मा जी से उपवास समाप्त कराया गया वे भी स्पष्टतः एक पक्षीय थीं। मुसलमानों की बहुसंख्या की मनोवृत्ति तो वस्तुतः उस मुस्लिम मौलवी की पुस्तक से प्रकट होती है जिसका उपवास समाप्त करते हुए मा० गांधी जी ने निर्देश किया है 'कि खुदा फरमाता है कि एक काफ़िर-और हिन्दू काफ़िर हैं—एक जहरी जानवर से भी बदतर है। उसे मार सकते हैं, उसे धोखा देना फर्ज है उसके साथ शराफ़त क्या करना?"

महात्मा जी ने इन शब्दों को उद्धृत करते हुए ठीक ही कहा कि 'यह चीज अगर मुसल-मानों के दिल में छुपी छुपी भी पड़ी है तो यह कहना कि हम अच्छे रहेंगे, हिन्दुओं के साथ धोखे बाजी है। एक को धोखा दिया तो सब को दिया।"

यदि महात्मा जी का उपवास इस मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या की (जो संभवतः ६० प्रतिशतक से कम न हो) मनोवृत्ति को परिव-र्तित करने में सफल हो सके (जिस की हमें कोई विशेष आशा प्रतीत नहीं होती) तभी उसे सफल कहा जा सकेगा अन्यथा ऊपर की क्षणिक लीपा पोती से विशेष लाभ नहीं हो सकता। अभी तक तो पाकिस्तान सरकार तथा सर्व-साधारण मुसलमानों की मनोवृत्ति में परिवर्तन के कोई लक्षण दिखाई नहीं देते। हम हृदय से चाहते हैं कि सब देशवासियों में हार्दिक एकता और प्रेम स्थापित हो किन्तु उपवास के द्वारा ही वह उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता। महात्मा जी के जीवन का अन्त करने के लिए जो प्रयत्न २० जनवरी को एक असन्तुष्ट शरणार्थी (मदन-लाल) की ओर से किया गया उसे हम सर्वथा निन्दनीय समझते हैं।

संयुक्त-राष्ट्रसङ्घ का अभिनयः—

भारत सरकार ने जब देखा कि पाकिस्तान सरकार काश्मीर पर आक्रमणकारियों को प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्षरूप में सब प्रकार की

सहायता दे रही है और बार बार समझाने पर भी वह मानती नहीं तो उस ने यह विषय संयुक्त राष्ट्र सङ्घ के सामने रखना उचित समझा और इन पंक्तियों के लिखते समय तक वह विषय संयुक्त राष्ट्र सङ्घ की सुरक्षा समिति के विचाराधीन है। अभीतक जो कुछ हो रहा है उससे हमें कोई आशा नहीं प्रतीत होती कि भारत के पक्ष में निर्णय होगा क्यों कि प्रायः प्रत्येक विषय में पाकिस्तान प्रति निधि मण्डल की बातों को मान लिया जा रहा है। काश्मीर के विषय तक ही निर्णय को सीमित न कर के पाकिस्तान द्वारा प्रस्तुत अन्य अनावश्यक और निस्सार शिकायतों के विषय को भी विचारणीय विषयों में रख दिया गया है। भारतीय सेना और आक्रान्ताओं को एक कोटि में रख कर दोनों को हटाने और वर्तमान अन्तः कालीन सरकार को बदलने इत्यादि के प्रस्ताव रखे जा रहे हैं जो न्याय पूर्ण नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सुरक्षा समिति द्वारा नियुक्त कमीशन संभवतः भारत की तरह काश्मीर के विभाजन का ही निर्णय देगा। भारत सरकार को सुरक्षा समिति द्वारा आयोजित कमीशन से समर्थन की आशा न करके (यद्यपि निःसन्देह भारत का पक्ष प्रबल और न्याय सङ्गत है) अपनी सम्पूर्ण शक्ति को बड़ी तत्परता के साथ काश्मीर की रक्षा और आक्रान्ताओं को मार भगाने में लगा देना चाहिये और समस्त भारतीय देश भक्तों को उस की सहायता करनी चाहिये। सत्य और न्याय के साथ शक्ति का अधिकतम प्रयोग अत्यावश्यक है। किसी अन्यायपूर्ण निश्चय वा समझौते को स्वीकार करना आत्मघात के समान होगा।

अपहृत और मतान्तरित महिलाओं की समस्या

पाकिस्तान के मतान्ध आततायियों ने ५० हजार से अधिक हिन्दू सिक्ख कन्याओं और विवाहित महिलाओं का अपहरण किया तथा उन्हें बलात् मुसलमान बना लिया। उन में से कइयों से बलात्कार किया गया और बलात् विवाह भी कइयों के करा दिये गये। इन अपहृत और मतान्तरित महिलाओं की समस्या ने एक भीषण रूप धारण कर लिया है। हम ने भी सार्वदेशिक के सम्पादकीय स्तम्भ तथा पत्र द्वारा माननीय सरदार पटेल और श्री नियोगी जी आदि का ध्यान आकर्षित कर इस विषयक रक्षा कार्य को तत्परता से कराने का भारत सरकार से अनुरोध किया था और यह सन्तोष की बात है कि भारत सरकार इस विषय में यथा सम्भव तत्परता से कार्य कर रही है यद्यपि दुर्भाग्यवश अन्य विषयों की तरह इस विषय में भी उसे पाकिस्तान सरकार का सहयोग प्राप्त नहीं हो रहा। महात्मा गांधी जी, डा० श्यामाप्रसाद जी मुखोपाध्याय, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू आदि ने जनता से अपील की है कि इन अत्याचारों का शिकार बनी हुई महिलाओं को घृणा से न देखा जाए और उन के साथ प्रेम पूर्ण व्यवहार किया जाए। हमारा भी समस्त आर्यों और आर्य संस्थाओं के संचालकों से अनुरोध है कि वे इन अपहृत और मतान्तरित महिलाओं तथा कन्याओं को सप्रेम गायत्री मन्त्र दीक्षा पूर्वक समाज में पुनः सम्मिलित कर लें। वे हमारी दया की पात्र हैं न कि घृणा की क्यों कि

अपनी इच्छा से उन्होंने इस्लाम को कभी स्वीकार नहीं किया! पाराशर, वशिष्ठ तथा देवल स्मृति आदि नवीन स्मृतियों में भी स्पष्ट व्यवस्था है कि:—

बलाच्चेत् प्रहृता कन्या, मन्त्रैर्यदि न संस्कृता।
अन्यस्मै विधिवद् देया, यथा कन्या तथैव सा॥

अर्थात् बलात्कार से जिस कन्या को भगा लिया गया हो मन्त्रपूर्वक विवाहादि संस्कार न कराया गया हो तो उसे विधिपूर्वक दूसरे योग्य वर को दे देना चाहिये। वह कन्या के समान ही है। ऐसी उदारता और हृदय की विशालता दिखाये बिना समाज की उन्नति नहीं हो सकती। अविवाहित आर्य युवकों को ऐसी अपहृता अथवा मतान्तरिता कन्याओं के साथ विवाह में संकोच न करना चाहिये किन्तु इसे एक पुण्य कार्य समझना चाहिये। जातिभेद निवारक आर्य परिवार संघ अजमेर इस विषय में अधिकतम सहायता करेगा। युवक युवतियों को जाति बन्धन तोड़ने का व्रत लेकर इन विषयों में आगे बढ़ना चाहिए।

पाकिस्तान में अमानुषिक अत्याचार:—

मि० जिन्ना तथा लियाकतअली खां आदि के बार २ आश्वासन देने पर भी कि पाकिस्तान में सब जाति के लोगों के साथ समानता का व्यवहार किया जाएगा, अमुस्लिमों पर अमानुषिक बर्बरता पूर्ण अत्याचार निरन्तर जारी हैं। जनवरी के प्रथम सप्ताह में पाकिस्तान के मन्त्रि कार्यालय के समीप करांची में सैंकड़ों सिक्खों तथा हिन्दुओं को जिस प्रकार मारा गया और उनकी करोड़ों की सम्पत्ति को लूटा गया, आर्य पुत्री पाठशाला, गुरुद्वारा, मंदिरों और दुकानों को आग लगाई गई, स्त्रियों को भगाया और उनसे बलात्कार किया गया और पुलिस के सामने तथा उसकी सहायता से कई हजार मुसलमानों का समूह यह सब कुछ करता रहा, यह अत्यन्त निन्दनीय वृत्तान्त सर्व विदित है। पाकिस्तान के गुजरात स्टेशन और पेशावर समीपस्थ पाराचिनार शरणार्थी शिविर में अमुस्लिमों पर बहुत बड़ी मात्रा में ऐसे ही भयङ्कर हत्याकाण्ड किये गये। ये घटनाएं महात्मा गांधी के उपवास के दिनों और उसके ठीक पश्चात् हुईं। पाकिस्तान में सम्मिलित बहावलपुर रियासत में भी अमुस्लिमों पर ऐसे बर्बरतापूर्ण भीषण अत्याचार किए जा रहे हैं। एक लाख के लगभग अमुस्लिम या तो मार डाले गये हैं और या बलात् मुसलमान बना लिये गये हैं। ७० हजार हिन्दू सिक्ख निकलना चाहते हुए भी अभी तक वहां से नहीं निकाले जा सके। भारत सरकार से हमारा सानुरोध निवेदन है कि सिन्ध, सीमाप्रान्त और बहावलपुर से इन पीड़ित व्यक्तियों को निकालने का अविलम्ब प्रबन्ध कराया जाए क्योंकि पाकिस्तान सरकार तथा बहावलपुर के अधिकारियों के आश्वासनों का कौड़ी भर भी मूल्य नहीं है। महात्मा जी के व्रत ने इन गुण्डों पर कोई प्रभाव नहीं डाला। इनके लिए तो शारीरिक शक्ति और भयङ्कर दण्ड का प्रयोग ही अनिवार्य है।

सार्वदेशिक प्रकाशन कम्पनी और आर्य जनता:—

आर्य जनता को ज्ञात है कि सार्वदेशिक

सभा की विशेष प्रेरणा और सहयोग से सार्वदेशिक प्रकाशन कम्पनी को स्थापित किया गया है जिसका उद्देश्य उत्तम साहित्य-प्रकाशन और आर्य भाषा तथा अंग्रेजी में दैनिक मासिक पत्रादि का संचालन करके आर्य धर्म और संस्कृति का प्रचार है। इस उद्देश्य को आर्य जनता के क्रियात्मक सहयोग से ही पूर्ण किया जा सकता है क्योंकि २ लाख के अंश (शेअर्स) बिकने पर कार्य प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया है। ८० हजार से अधिक के शेअर्स अब तक बिक चुके हैं किन्तु इतने से काम नहीं चल सकता। दो लाख तक के शेअर्स की बिक्री तो तुरन्त हो जानी आवश्यक है अन्यथा इस पुण्य कार्य में विलम्ब का उत्तरदायित्व आर्य जनता की होगी। एक अंश वा शेअर का मूल्य १०) है। आर्यों को अधिकतम संख्या में इन्हें खरीद कर प्रचार दृष्टि से अत्यावश्यक इस योजना को अविलम्ब क्रियात्मक रूप देना चाहिये। सार्वदेशिक प्रकाशन कार्यालय बलिदानभवन देहली से फार्म तथा इस विषयक साहित्य मंगवा लेना चाहिये। ध० दे० ६-१-४८

पूज्य महात्मा गांधी जी की क्रूर हत्याः—

जब 'सार्वदेशिक' के फरवरी अङ्क की समस्त सामग्री सम्पादकीय टिप्पणियों सहित प्रेस में दी जा चुकी थी और वह कम्पोज भी हो गई थी हमें ३० जनवरी की सायं ५ बजे विश्ववन्द्य महात्मा गांधी जी के प्रार्थना सभा में जाते समय नारायण विनायक गोडसे नामक एक उन्मत्त महाराष्ट्रीय युवक द्वारा रिवाल्वर से हत्या का अत्यन्त दुःखजनक समाचार मिला जिसे सुन कर हम स्तब्ध रह गये। हमारे पास शब्द नहीं जिनमें इस निर्दयता और बर्बरतापूर्ण अमानुषिक हत्या की पर्याप्त निन्दा की जाए। जिन २ व्यक्तियों का हाथ विश्व विभूति महात्मा जी की इस हत्या में रहा हो वे सब कठोरतम निन्दा और दण्ड के पात्र हैं। दिवंगत पूज्य महात्मा जी के भाषा, लिपि आदि अहिंसादि विषयक कुछ विचारों से हमारा तथा अन्य अनेक विचारकों का कई अंशों में मतभेद था जिसे उनके साथ पत्र-व्यवहार, भेंट तथा 'सार्वदेशिक' की सम्पादकीय टिप्पणियों द्वारा हम समय २ पर प्रकट करते रहे हैं किन्तु उनकी सरलता, सत्यनिष्ठता, निर्भयता तपस्विता, स्वार्थत्याग, उज्ज्वल देश-भक्ति, विश्व प्रेम, शान्ति और एकता के निरन्तर प्रचार, निस्वार्थ परोपकारमय जीवन तथा अन्य दिव्य गुणों और परोपकार, दलितोद्धार तथा स्वतन्त्रता प्राप्त्यर्थ किये गये अद्भुत कार्यों के आगे कौन है जो श्रद्धापूर्वक नत मस्तक न हो जाए? हमारी प्रिय मातृभूमि को स्वतन्त्र कराने में स्वर्गीय महात्मा जी का बहुत बड़ा भाग था इसमें किसी का मतभेद नहीं हो सकता। अस्पृश्यतानिवारणार्थ महात्मा गांधीजी का भगीरथ प्रयत्न संसार के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगा। साम्प्रदायिक एकता तथा शान्ति की स्थापनार्थ अभी १३ से १८ जनवरी तक लगभग ७६ वर्ष की आयु में किया गया उनका उपवास उनके विशाल हृदय की वेदना और महात्मजनोचित शान्ति प्रियता को सूचित करने के लिए पर्याप्त है। ऐसे विश्ववन्द्य महात्मा के प्रति समस्त आर्य जगत् की ओर से श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए हम भगवान् से उनकी सद्गति तथा उनके अत्यन्त अभिनन्दनीय उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। —धर्मदेव २-२-४८

पूज्य राष्ट्र पिता का अमर बलिदान

३०-१-४८ रात्रि

[पं० धर्म देव जी विद्यावाचस्पति स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा, प्रधान आर्य कुमार परिषद् देहली]

सत्य अहिंसा मूर्ति महात्मा गांधी का अवसान हुआ।
प्रेम ऐक्य की वेदी पर पुण्यात्मा का बलिदान हुआ।
हो सब का कल्याण जगत में नहिं विरोध अब लेश रहे।
उस भावनायुक्त अन्त का हाय शून्य है स्थान हुआ॥

पर उपकार परायण निशिदिन, वे थे धीर शिरोमणि वीर।
आत्म शक्ति उनकी अति अद्भुत, ध्येय ऐक्य उनका गम्भीर।
पूर्ण अहिंसामय साधन से भारत को स्वाधीन किया
हाय दुष्ट की गोली ने उन विश्ववन्द्य का अन्त किया॥

कौन विश्व को प्रेम शान्ति का अब सन्देश सुनाएगा ?
सत्य मार्ग से भ्रष्ट नरों को कौन मार्ग दिखलाएगा ?
वैर विरोध बढ़ा है जग में उस को कौन मिटाएगा ?
कौन पाप में मग्न जनों में ऊंचे भाव जगाएगा ?

हाय दुष्ट हत्यारे तू ने, कुछ भी तो न विचार किया।
सकल विश्व के मान्य महात्मा, का निर्दय संहार किया।
तू ने सारे जग में भारत, का अतिशय अपकार किया।
विश्वमित्र उस शुभ विभूति को हर के अत्याचार किया॥

वे तो अमर हुए जगती पर, अपने शुभ गुण गण कारण।
सत्य अहिंसा प्रेम दया का, किया उन्होंने व्रत धारण।
उनका नाम मिटा सकता तू, नहीं कभी भी ऐ दानव।
तू ने अति कृतघ्नता दिखला, किया कलङ्कित पद मानव॥

पूज्य महात्मा की हत्या पर, हम सब शोक मनाते हैं।
मन मन्दिर में उनकी, मोहन प्रतिमा आज बिठाते हैं॥
भक्ति कुसुम लेकर अति सुरभित, हम सप्रेम चढ़ाते हैं।
उनके सन्मुख श्रद्धा से सब, नतमस्तक हो जाते हैं॥

पूर्ण अहिंसक सत्य व्रत-धरवर वे धीर शिरोमणि थे।
उनके समान सारे जग में नहिं कोई भी नरमणि थे॥

क्यों फिर उनके अद्भुत गुणगण, का हम सब नहिं मान करें ?
क्यों न महात्मा जी का श्रद्धा-पूर्वक दिल से मान करें ?
पढ़े महापुरुषों के जीवन जो थे पर उपकारी ।
जनता के हित अर्पित करदी जिन विभूति निज सारी ॥

किन्तु महात्मा गान्धी जी का, जीवन कुछ अनुपम था ।
आत्म शक्ति का शुभ विकास उन का अतिशय उत्तम था ॥
सत्याग्रह का शस्त्र चलाना, पूर्ण अहिंसामय जो ।
किसने हमें सिखाया अद्भुत स्वतन्त्रता पाने को ?

किस के एक इशारे पर थे, उद्यत कट मरने को ?
भारत वासी देश भक्त सब, सकल जेल भरने को ?
अनभिषिक्त सम्राट् कौन था, भारतीय हृदयों का ?
पावन पतित जनों का तप से, नेता सदय जनों का ?

शत्रु मित्र किस के गुण गण में, सब मोहित हो जाते थे ?
कौन महात्मा जिस के आगे, सभी हार खा जाते थे ?
कर दिखलाये किसने करतब, जो न किसी ने किये थे ?
किस ने अपने तन मन धन जन, पर हित सबे दिये थे ?

कहां दृष्टि गोचर होती थी इतनी विनय सरलता ?
जादू की सी आकर्षकता निर्भयता तत्परता ?
"दया धर्म का मूल" यही उपदेश सुनाते निशिदिन ।
प्रेम शान्ति का उदारता का भाव बढ़ाते छिन छिन ।

हाय आततायी की गोली, का शिकार बन लीन हुए ।
पर ब्रह्म की शान्तिमयी उस, गोदी में आसीन हुए ।
करें प्रार्थना सद्गति की क्यों इस में क्या कुछ भी सन्देह ?
आत्म तत्त्व को अमर जान कर, वे जीवन में बने विदेह ॥

जीवन उन का शुद्ध यज्ञ मय, जिस में नहीं स्वार्थ का लेश ।
ईश्वर पर विश्वास अटल था, नहीं द्वेष मल का अवशेष ॥
यही प्रार्थना हम भी वैसे पर उपकारी धीर बनें ।
उन के चरण चिन्ह पर चलकर, नर नारी सब वीर बनें ।
सारे जग में प्रेम शान्ति का हो जाए साम्राज्य अचल ।
सर्व शक्तिशाली जगदीश्वर, देवें निर्बल जन को बल ॥

श्री प्रधान जी सार्वदेशिक सभा का महत्वपूर्ण वक्तव्य

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री मदन मोहन जी एम० ए० एल एल बी रि० चीफ जस्टिस ने अपनी अन्तरंग सभा की सहमति से निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया है।

सत्य और अहिंसा के मूर्तस्वरूप श्री महात्मा गांधी जी की हत्या ने देश को स्तब्ध कर दिया है। वे शान्ति के संग्राम में झूझते हुए वीर योद्धाओं की गति को प्राप्त हुए हैं। उनकी हत्या से ऋषि दयानन्द की हत्या की स्मृति हो आती है जिन्हें १८८३ ई० में एक हिन्दू ने विष दे दिया था। उन का घातक समझता था कि मैं हिन्दू धर्म के शत्रु का नाश कर रहा हूँ किन्तु अब क्या स्थिति है? आज कट्टर से कट्टर हिन्दू ऋषि दयानन्द को हिन्दू धर्म का परित्राता समझता है।

महात्मा गांधी के प्राण भी एक हिन्दू नव युवक के हाथों से गये हैं। वह भ्रान्त भाई यह न समझ सका कि कितना बड़ा पाप वह कर रहा है। उसने हमारे देश से एक महान सयामक शक्ति को समाप्त कर दिया है। यह महात्मा जी का ही व्यक्तित्व था जो परस्पर विरोधी तत्वों को मर्यादा के अन्दर संयम से रखता था। उनका सरकार और जनता दोनों पर पूर्ण प्रभाव था। वही एक ऐसे व्यक्ति थे जिनके पास प्रत्येक व्यक्ति की पहुंच थी। उन की वाणी सर्वोच्च थी।

वस्तुतः इतने थोड़े समय में और बिना रक्त पात के देश को स्वराज्य मिलना उनके सत्य और अहिंसा के उदात्त आदर्शों की अपूर्व विजय थी।

उनकी हत्या के बाद भविष्य अन्धकार-मय प्रतीत होता है। इस का परिणाम पहले से भी अधिक तीव्र बन्धु घात और अन्तः-कलह हो सकता है। इसे अवश्य रोका जाना चाहिये।

मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूँ और अगर इसे धृष्टता न समझा जावे तो मैं अपने हिन्दू सभा तथा कांग्रेस के भाइयों से दो शब्द कह देना चाहता हूँ। अपने हिन्दू सभा के भाइयों से मैं कहता हूँ कि आप शान्त चित्त से रुक कर केवल व्यतिरेकी हिन्दुत्व के सिद्धान्त पर विचार कीजिये। यह सिद्धान्त हमारे देश के लिये उतना ही हानि कारक सिद्ध हो सकता जितना मुस्लिम लीग का दो राष्ट्रों का सिद्धान्त इस देश के लिये विनाशकारी सिद्ध हुआ है। अपने कांग्रेस के भाइयों से मैं कहता हूँ कि कृपा कर आप अपने उन भाइयों की बात भी सोचिये जिन्होंने अपनी २ धारणा के अनुसार स्वराज्य की स्थापना में योग दिया है और केन्द्र के समान प्रान्त में भी अपनी सरकारों को उदारता के साथ विस्तृत कीजिये।

आर्यावर्त के इतिहास के इस संकट पूर्ण काल में आर्य समाज पर महान उत्तर दायित्व आ गया है। आर्य समाजियों को इन दोनों में परस्पर मेल स्थापन के लिये पूरा यत्न करना चाहिये। उन्हें महा सभाइयों और कांग्रेसियों के बीच सौहार्द पैदा करने के लिये जीजान से लग जाना चाहिये ताकि हमारी मातृभूमि फिर उसी प्राचीन महान् गौरव को और यश की अधिकारिणी हो सके।

मदन मोहन सेठ
प्रधान सार्वदेशिक सभा।

आंधी

जब कभी किसी देश में शासन परिवर्तन होता है तो स्वभावतः आंधी सी आ जाया करती है। भारत वर्ष में भी वर्तमान राज्य परिवर्तन के उषा काल से ही आंधी सी आ रही है और अनेकानेक भावनाओं की विभिन्न तरंगें गुप्त और प्रकट रूप से भारतीय वायु मण्डल को क्षुब्ध कर रही हैं। एक हिन्दू युवक द्वारा संसार के सबसे बड़े आत्मा तथा भारतीय प्राचीन संस्कृति के महान् पुजारी महात्मा गांधी की नृशंस हत्या ने भारत वर्ष की आंखें खोल दी हैं। जो किसी को स्वप्न में नहीं सूझता था वह हो गया, इससे स्पष्ट है कि वायु मण्डल कितना विषैला है। महात्मा गांधी ने राजनैतिक आतंकवाद का आयु भर खण्डन किया और उन्हीं के प्रभाव से पाश्चात्य नैतिक आतंकवाद का भारत में दमन हुआ। शोक का स्थान है कि आतंकवाद ने महात्मा जी के जीवन को समाप्त किया।

भारत के कल्याण चाहने वालों को यत्न करना चाहिये कि यह विषैला वायु मण्डल शीघ्र से शीघ्र दूर हो और देश शान्ति और उन्नति पथ पर चल सके। इसके लिये समस्त भारत वर्ष को अनिवार्य रूप से प्रयत्न करना चाहिये।

मैं इस विषय में आर्य समाजों का ध्यान एक बात की ओर विशेष रूप से आकर्षित करना चाहता हूँ। जब हैजे का प्रकोप होता है तो रोटी भी हानि पहुंचाया करती है। आर्य समाज के प्रेस और प्लेट फार्म को सावधानी से काम करना चाहिये जिससे अनार्य और अधर्म युक्त बातों को वाचिक या कायिक रूप में प्रचार करने वाले व्यक्ति या व्यक्ति समूह आर्यसमाज के प्लेट फार्म का दुरुपयोग करने की चेष्टा करने का अवसर प्राप्त न कर सकें। जो उत्तरदायित्व शून्य व्यक्ति हैं उनके व्याख्यान न होने देने चाहिये।

आर्यसमाज स्वयं अन्य मतावलम्बी आतंकवाद का शिकार रहा है और उसने धार्मिक और नैतिक दोनों विभागों में आतंकवाद का प्रतिरोध किया है।

पं० लेखराम और स्वामी दयानन्द की हत्या पर आर्य समाज ने बदला लेने की चेष्टा नहीं की और न विषैले वायु मण्डल को उत्पन्न होने दिया। आर्य समाज अब भी उसी नीति का पालन कर रहा है और करेगा। परन्तु आर्य समाज के कार्यकर्ताओं को इस लिये सावधानी की आवश्यकता है कि आर्य समाज को प्रगतिशील संस्था समझने के कारण बाहर के आदमी उससे लाभ उठाने का प्रयत्न कर सकते हैं और आर्य समाज के युवकों और सर्व साधारण के विचारों को विष युक्त बना सकते हैं।

आज जब भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है और आर्य समाज के नर नारियों ने अपना धर्म समझ कर इसमें अनेक प्रकार के आत्म त्याग किये हैं आर्य समाज अपनी समस्त शक्ति

से भारत में शान्ति स्थापन करने और भारतीय शासन को सुदृढ़ बनाने में सहायक रहेगा।

आर्य समाज का विश्वास है कि आतंकवाद अत्यन्त घृणित चीज है, और उसका दमन होना चाहिये क्योंकि आर्य समाज इस प्रकार के नृशसकार्य को भारतीय संस्कृति का विघातक समझता है विकारक नहीं समझता।

गङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम. ए.
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
दिल्ली।

श्री पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिंटिंग प्रेस" श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित

Regd. NO. L.219

सार्वदेशिकसभा पुस्तक भण्डार की उत्तमोत्तम पुस्तकें

नाम पुस्तक	लेखक व प्रकाशक	मूल्य
(१) वैदिक सिद्धान्त स०	(सार्व० सभा)	१)
(२) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर	,,	१।)
(३) आर्य सिद्धान्त विमर्श	,,	१॥)
(४) सार्वदेशिक सभा का इतिहास	,, अ०	२)
(५) आर्य डायरेक्टरी	,, अ०	१।)
(६) आर्य विवाह ऐक्ट की व्याख्या	,,	।)
(७) आर्य पर्व पद्धति	प० भवानीप्रसाद जी	१।)
(८) आर्यवीर दल शिक्षण शिविर	'ओमप्रकाशजी'	।)
(९) आर्य वीर दल बौद्धिक शिक्षण	(प० इन्द्रजी)	।=)
(१०) यम पितृ परिचय	पं० प्रियरत्न आर्य	२)
(११) अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र	,,	२)
(१२) वैदिक सूर्य विज्ञान	,,	=)
(१३) वेद में असित शब्द	,,	–
(१४) ऋग्वेद में देवृकामा	,,	–)
(१५) वेद में दो बड़ी वैज्ञानिक शक्तियां	,,	१)
(१६) विमान शास्त्र	,,	।=॥
(१७) नया संसार	श्री पं० रघुनाथ प्रसाद पाठक	≈)
(१८) मातृत्व की ओर	,, ,, अ०	१।)
(१९) कथा माला	,,	॥।)
(२०) आर्य जीवन गृहस्थ धर्म	,,	॥=)
(२१) आर्य शब्द का महत्व	,,	–)
(२२) आत्म कथा	श्री नारायण स्वामी जी	२।)
(२३) श्री नारायण स्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ		५)
(२४) योग रहस्य	श्री महात्मा नारायण स्वामी जी	१)
(२५) विद्यार्थी जीवन रहस्य	,,	॥)
(२६) प्राणायाम विधि	,,	≈)
(२७) उपनिषद् ईश ।≈) केन ॥) कठ ॥) प्रश्न ।=) मुण्डक ।≈) माण्डूक्य ≈), ऐतरेय ।) तैत्तिरीय ॥।)		
(२८) श्री नारायण स्वामी जी की संक्षिप्त जीवनी		–)
(२९) नारायण-सुधा सजिल्द		१॥)
(३०) शहीदी पट्टिका		।=)
(३१) आर्यसमाज मन्दिर चित्र		।)
(३२) इज़हारे हकीकत	श्री ला० ज्ञानचन्द्र जी आर्य	॥।=)
(३३) बहिनों की बातें	(पं० सिद्धगोपाल जी कविरत्न)	१)
(३४) दयानन्द जन्म स्थान निर्णय	(पं० विजयशङ्कर मूलशङ्कर जी)	॥।)
(३५) भूमिका प्रकाश	(श्री द्विजेन्द्रनाथ जी)	१॥)
(३६) वेद और गोमेध	श्री बा० श्यामसुन्दरलाल जी	≈)
(३७) सत्यार्थ प्रकाश आन्दोलन का इतिहास		।=) नेट-
(३८) सत्यार्थ प्रकाश गान	(पं० सत्यभूषण जी योगी)	।=)
(३९) हमारे घर	(श्री निरंजनलाल जी गौतम)	॥=)
(४०) भारतवर्ष में जाति भेद	,,	।)
(४१) स्त्रियों का वेदाधिकार	पं० धर्मदेव जी वि० वा०	१।)
(४२) सत्यार्थ प्रकाश की सार्वभौमता	,,	–)
(४३) सत्यार्थप्रकाश और उसकी रक्षा		–)
(४४) आर्य समाज के साप्ताहिक सत्सङ्ग का कार्य क्रम		–)
(४५) सरल सन्ध्योपासना		।)
(४६) एशिया का वेनिस	(स्वा० स्वामी सदानन्द जी)	॥।)
(४७) आर्यसमाज के नियमोपनियम		–॥
(४८) वैदिक वीर गर्जना	(श्री रामनाथ वेदालङ्कार)	॥=)
(४९) धर्मार्य सभा की घोषणानुसार दैनिक सन्ध्या हवन की विधि		–)
(५०) वीरमाता का उपदेश	(प्रो० विश्वनाथ विद्यालङ्कार)	।)
(५१) महाराणा सांगा	श्री हरविलास शारदा	१)
(५२) सिन्धी सत्यार्थ प्रकाश		५)
(५३) वैदिक राष्ट्रीयता	(स्वामी ब्रह्म मुनि)	।)
(५४) वैदिक ज्योतिष शास्त्र		१॥)
(५५) मृत्यु और परलोक	श्री म० नारायण स्वामी जी	१।)
(५६) स्वराज्य दर्शन	पं० लक्ष्मी दत्त जी दीक्षित	१)
(५७) शाङ्करभाष्या लोचन	श्री पं० गङ्गा प्रसाद जी उपाध्याय कृत सजिल्द	५)
(५८) आर्य समाज के महाधन वा हुतात्मा	श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी सजिल्द	२॥)

॥ ओ३म् ॥

सार्वदेशिक



विश्ववन्द्य महात्मा गांधी जी

मार्च १९४८ ई०
फाल्गुन सं० २००४ वि०

सम्पादक—
श्री पं० धर्मदेव जी सिद्धान्तालङ्कार
विद्यावाचस्पति, साहित्यभूषण

वार्षिक मू० स्वदेश ५)
विदेश १० शि०
१ प्रति का ॥।)

महात्मांक

विषय-सूची

१. वैदिक प्रार्थना— [illegible]

२. वेदामृत २

३ आध्यात्मिक शिक्षण—श्री डा० इन्द्रसेन जी एम० ए०, पी० एच०, डी०
अरविन्दाश्रम, पाण्डिचेरो ... ... [illegible]

४. विश्ववन्द्य बापू (कविता) विद्या वारिधि रुद्रमित्र शास्त्री 'कमलेश' .. [illegible]

५ ऋषि दयानन्द और महात्मा गाधी—डा० सूर्यदेव शर्मा एम. ए., डी. लिट् ८

६ सौराष्ट्र के दो अमर शहीद—आचार्य प० चन्द्रकान्त जी वेदवाचस्पति
गुरुकुल विद्या मन्दिर सूपा (नवसारी) १३

७. नरेशों को इस युग का सन्देश—श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक ... [illegible]

८ हुतात्मा गांधी जी की पुण्य स्मृति में—श्रीमती सुशीला देवी जी
विद्यालंकृता, गुरुकुल सूपा ... ... [illegible]

६. पूज्य राष्ट्रपिता की स्मृति में (कविता) श्री प० धर्म देव जी विद्यावाचस्पति [illegible]

१०. महर्षि दयानन्द वचनामृत— ... [illegible]

११ महात्मा गांधी वचनामृत— ... . [illegible]

१२. बापू (कविता)—श्री बाल कृष्ण शर्मा ... ... [illegible]

१३. प्राचीन आर्य नाम क्यों न हो—श्री ज्ञानेश्वर जी भूलियान ... [illegible]

१४. महर्षि दयानन्द और महात्मा गाधी—श्री धर्म देव जी विद्यावाचस्पति .. [illegible]

१५ कन्याओं का यज्ञोपवीताधिकार विवेचन—श्री ठा० शिवपूजन सिंह जी ... [illegible]

१६ साहित्य समीक्षा .. .. [illegible]

Deification And Mahatma Gandhi ... [illegible]

१७. आर्य कुमार जगत ... [illegible]

१८, सम्पादकीय ... ... [illegible]

॥ ओ३म् ॥

सार्वदेशिक

* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष २८ } मार्च १९४८ ई०] फाल्गुन २००४ दयानन्दाब्द १२२ { अङ्क १

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन् त्वामागांसि कृणवत् सखा ते।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन् भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम्॥

(ऋग्वेद ७। ८८। ६)

अर्थः—

(वरुण) हे पापनिवारक तथा सब श्रेष्ठ परमेश्वर! (यः) जो मैं तेरा उपासक (नित्यः) सदा का (ते) तेरा (आपिः) बन्धु और (प्रियः सखा) प्यारा मित्र (सन) हो कर भी (त्वाम्) तेरे प्रति (आगांसि कृणवत्) पापों को कर देता हूँ ऐसे (एनस्वन्तः) पापी होकर (यक्षिन्) हे पूजनीय परमात्मन् (ते) तेरे दिये ऐश्वर्यादि को (मा भुजेम) न भोगें— निष्पाप हो कर ही तेरी कृपाओं का सुख भोगें- (विप्रः) ज्ञान का भण्डार तू (स्तुवते) मुझ स्तुति करने वाले भक्त के लिये (वरूथम्) उत्तम ज्ञान को (यन्धि) प्रदान कर।

वेदामृत
एकेश्वरपूजा

[१] ओ३म् नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्यु ग्रं निचिकेषि द्रुग्धम् ।
सहस्रमन्यान् प्रसुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥

अथर्व १।१०।८

शब्दार्थः—(उग्र) पापियों के लिये कठोर स्वरूप हे परमेश्वर आप (विश्वम्) सब प्रकार के (द्रुग्धम्) हमारे धर्माचरण के द्रोहों अथवा अपराधों को (हि) निश्चय से [निचिकेषि] भली भांति जानते हैं [राजन्] हे सब के स्वामिन [वरुण] वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ प्रभो! [ते मन्यवे नमः] पापियों के प्रति आपके मन्यु के लिये मेरा नमस्कार हो। [साकम्] अपने साथ ही मैं [सहस्रम्] हजारों [अन्यान्] औरों को भी [प्रसुवामि] प्रेरणा करता हूँ जिस से वे भी आप को नमस्कार करें [अयम्] यह [तव] तेरा उपासक [शतम्] सौ [शरदः] वर्षों तक [जीवाति] जीवित रह सके।

पद्यानुवादः—

पाप निवारक हे परमेश्वर
हो प्रणाम तुम को शत बार।
मन्यु तुम्हारा जो पापों पर
हो प्रणाम उस को शत बार॥
तुम्हीं जानते पूर्ण रीति से
जो कुछ भी करते हम पाप।
क्रूर कार्य जो करें द्रोह से
देते अन्यों को सन्ताप।
ऐसी कृपा करो जगदीश्वर
अब सब पापों को दें छोड़।
सब बुराइयों से कुकर्म से
हम सब अब लेवें मुख मोड़।
नहिं केवल निष्पाप बनें हम
किन्तु सहस्रों को भी साथ।
ले कर तेरे गुणगण गावें
तेरी महिमा गावें नाथ।
तेरे भक्त बनें तव आज्ञा
का निशिदिन पालन करते।

पद्यानुवाद--

होकर तेरा नित्यबन्धु मैं
तथा सखा प्यारा जगदीश।
जो कुछ भी अपराध करूं फिर
लज्जित होता नमता शीश।
पूज्य! शक्ति दो कभी न पापी
हो कर सुख उपभोग करें।
दो भक्तों को ज्ञान महोत्तम
तेरी आज्ञा शीश धरें॥

—*—

सौ वर्षों से दीर्घ आयु को
पावें जन सङ्कट हरते ॥

[२] ओ३म् उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीड़े
ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन् स्वस्तये ।
दर्शन् नु ता वरुण यास्ते विष्ठा
आवर्ततः कृणवो वपूंषि ॥

अथर्व ५।१।८

शब्दार्थः—मैं [पुत्रः] पुत्र [पितरम] सारे जगत के पालक पिता [क्षत्रम्] सब प्रकारके दुःखों से रक्षा करने वाले [ज्येष्ठम] सबसे बड़े [उत] और [मर्यादम] वेद-द्वारा धर्म मर्यादा बांधने वाले परमेश्वर की [ईडे] पूजा वा स्तुति करता हूँ [स्वस्तये] अपने कल्याणके लिये सब विद्वान [अह्वयन्] उसी को पुकारते हैं। [वरुण] हे वरणीय सर्वश्रेष्ठ प्रभो [याः] जो [ते] तेरी [विष्ठाः] संसार में बनाई हुई विविध व्यवस्थाएं हैं [ताः] उन को [नु] शीघ्र [दर्शन] दर्शाते हुए [आवर्ततः] परिभ्रमण शील इस जगत् के [वपूंषि] रूपों वा रहस्यों को [कृणवः] प्रकट कर दे।

पद्यानुवादः—

परम पिता मैं पुत्र तुम्हारा,
पूजा निशिदिन करता हूँ।
सब विपदों से रक्षक सब से
तुम महान् चित धरता हूँ।
पाप निवारक तुम को सारे
ज्ञानी प्रतिदिन याद करें।
हो कल्याण सभी का इसके
लिये प्रार्थना नाथ करें।
तुमने स्थापित की मर्यादा
सत्य धर्म की वेदों से।
हमें बुद्धि दो जान सकें हम
विश्व नियम सब वेदों से।
दर्शन देव! करा दो करुणा
कर के विश्व व्यवस्था का।
ज्ञान नेत्र खुलजाएं हमारे
हो विकाश शुभ आस्था का।
तेरे मङ्गल कर को देखें
प्रति रचना में छिन छिन में।
हो जाएं हम मग्न तुम्हीं में
रहें अभय रजनी दिन में।
ज्ञान भक्ति का कर्म योग का
देव समन्वय शुभ होवे।
जो आवे सम्पर्क हमारे
पाप ताप वह सब खोवे।

इन मन्त्रों में सब से उत्तम, सारे जगत् के पिता, वेदों के द्वारा सबके कल्याणार्थ धर्म की मर्यादा बांधने वाले एक परमेश्वर की पूजा का स्पष्ट उपदेश है। साथ ही यह भी बताया गया है कि हम केवल स्वयं ही ईश्वर भक्त न बनें किन्तु अन्य भी हजारों को ऐसी प्रेरणा करें जिससे वे भी हमारे समान परमात्मा के गुणों का कीर्तन करें। महर्षि दयानन्द जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी और महात्मा गांधी जी जैसे सच्चे ईश्वर भक्तों ने वेद के इस आदेश का पालन करते हुए ही जनता में सच्चे भक्तिभाव को जागृत करने का सदा प्रयत्न किया जिसके लिए वे वन्दनीय हैं। हम सबको भी उनका अनुकरण करना चाहिए। "ध्रुव"

आध्यात्मिक शिक्षण

[लेखक—श्री डा. इन्द्र सेन जी एम.ए.पी. एच. डी. श्री अरविन्दाश्रम पाण्डीचरी]

आज विज्ञान का युग है। मानव प्रकृति के रहस्यों को अधिकृत करना चाहता है। वह विज्ञान-आविष्कृत यन्त्रों तथा साधनोंके उपयोग को जानना चाहता है। ये यन्त्र और साधन ही मानव मानव के संबंधों को भी निर्धारित करते हैं। परमाणु बम्ब एकराष्ट्र को सर्वोपरि प्रभुत्व दे रहा है तथा दूसरों को अधीनता के लिये बाधित कर रहा है। मानव की निज शुद्धाशुद्ध आन्तर स्थिति आज उसकी संस्कृति का मानदण्ड नहीं। सारा दृष्टिकोण ही बहिर्मुख है।

वर्तमान युग में समाज-संगठन के विषय पर भी काफी विचार हुआ है। कार्ल मार्कस इसके विशेष प्रवर्तक हैं। परन्तु यह विचार भी मानव को विज्ञान के यन्त्र और साधन के रूप में ही कल्पित करता है। एक श्रेणी दूसरी श्रेणी का शोषण न करे और सर्व-साधारण सुयोग्य और सबल होकर मशीन के पुरजों की तरह अपना- काम करते हुए राष्ट्र को बलशाली बनाएं। यही समाज-संगठन का आधुनिक वैज्ञानिक विचार है। इसमें प्रत्यक्ष ही, राष्ट्र की बलशालिता उद्देश्य है, व्यक्ति का निज सांस्कृतिक विकास अपने-आपमें लक्ष्य नहीं। सारी विचार-धारा बाह्मुखी है।

कुछ आश्चर्य नहीं जो, जैसा कि श्री अरविन्द ने कहा है, मानव आज अपनी आन्तरिक स्थिति में उतना ही अव्यवस्थित है जितना कि आदि-मानव बाह्य परिस्थिति में था। वर्तमान युग का सारा प्रयत्न ही है बाह्य संगठन। प्राकृतिक परिस्थिति को तथा मानव-समाज को परिणामरूप में जो आन्तरिक परिष्कृति प्राप्त हो गयी है वही हमारी आज की सांस्कृतिक स्थिति है।

मन और बुद्धि स्वभावतः ही हमारी बहिर्मुखी वैज्ञानिक संस्कृति के प्रधान साधन हैं। और ऐसे सांस्कृतिक वातावरण में शिक्षाकी मर्यादा संवेदनों (sensations) तथा विचारों (ideas) का संग्रह और सगठन ही होगी। कुछ आश्चर्य नहीं जो आज विश्व-विद्यालयों के वायुमण्डल में पढ़ना, लिखना व्याख्यान देना तथा सुनना, वाद विवाद, विचारों का आदान प्रदान, गोष्ठियां तथा सभाएं करना अपने आप में उद्देश्य तथा पुरुषार्थ का विषय माने जायं। पश्चिमी देशों में विश्व विद्यालयों की यह मर्यादा और आदर्श सामान्य जनता के भी आदर्श बने हुए हैं। धार्मिक क्षेत्र भी अधिकांश में इन्हीं

बौद्धिक आदर्शों का अनुसरण करते हैं। यहां धार्मिक क्षेत्रों में भेद विशेष कर इतना ही होता है कि चर्चा के विषय आत्मा, परमात्मा, उपकार, धर्म प्रचार आदि होते हैं। भारत में सामान्य रूप से यह बौद्धिक व्यापार कुछ कम है, फिर भी धर्म-स्थानों पर विशेषकर बल कथा-वार्त्ता, सद्गोष्ठी, सत्संग, स्वाध्याय आदि पर ही होता है, यद्यपि ध्यान, जप, मनन, आत्म-चिन्तन भी किसी अंश में जरूर देखने में आते हैं।

मनोमय पुरुष के लिये उसकी इन्द्रियां और मन बुद्धि, निश्चय ही, उसके स्वाभाविक साधन हैं और इन्हें वह सहज ही उपयोग में लायगा। परन्तु जहाँ उद्देश्य मनोमय पुरुषत्व को अतिक्रान्त करके आत्म-व्यवहार प्रचलित करना हो वहां शिक्षण की शैली में परिवर्तन आवश्यक हो जायगा। मन-बुद्धि को ही सदा व्यवहार और उपयोग में लाने से मन बुद्धि ही विकसित और सुदृढ़ होंगी। इसके विपरीत आत्मा के जाग्रत् करने के लिये पहला प्रयत्न ही होता है मन बुद्धि को शान्त करना।

भारतवर्ष की आध्यात्मिक शिक्षण सम्बन्धी मर्यादाएं किसी अंश में हमारी परम्पराओं में आज भी देखने में आती हैं। परन्तु उनका उज्ज्वल स्वरूप हमें उपनिषदों में ही मिलता है। उपनिषदों के प्रसङ्ग हमें बार बार बतलाते हैं कि ज्ञान 'जानने मात्र' का विषय नहीं बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव और हृदयगंम करने का विषय है। 'To know' जानना, 'To realise' हृदयंगम करना, इनमें हम भेद नहीं करते। परन्तु वहां जानना-मात्र कुछ महत्त्व नहीं रखता, हृदयंगम करना ही ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया है। इसके लिये शिष्य गुरु के पास जाता है। गुरु ऐसा व्यक्ति है जिसने वह ज्ञान हृदयंगम किया हुआ है और वह दूसरों को उसे हृदयंगम करवा सकता है। फिर शिष्य सदा उत्कट जिज्ञासु है। जिज्ञासु शिष्य खोजता हुआ अनुभवी गुरु के पास पहुंचता है और अपनी जिज्ञासा निवेदन करता है। गुरु अनेक बार जिज्ञासा की मर्यादा को परखते हैं। शिष्य समर्पण-भाव में उनके वातावरण में रहते हुए आशापूर्ण प्रतीक्षा करता है। उनके कुल के व्यावहारिक काम-काज में उचित सहयोग देता है, गौएं चरा लाता है, फल मूल इकट्ठे कर लाता है अथवा अन्य कुछ काम करता रहता है। श्रद्धा और जिज्ञासा को सदैव जाग्रत रखते हुए शिष्य गुरु के वातावरण और संसर्ग में रह कर अपने में विकास अनुभव करने लगता है। मौके पर कहे हुए गुरु के प्रेरणा-पूर्ण दो शब्द उसके अन्दर नयी प्रबल गति पैदा कर देते हैं जो एक समय तक विकसित होती रहती है। मानो उसे यह अनुभूति

होती है कि सामान्य जीवन वास्तव में बड़ा तुच्छ है। नित्य वही खाना पीना, कुछ काम करना और सो जाना, कभी रोना और कभी हंस लेना, बचपन में वही, जवानी में वही, बुढ़ापे मे वही। यह अनुभव दिनानुदिन विकसित, व्याप्त तथा गम्भीर होता जाता है। वह देखता है कि उस का व्यक्तित्व ही उस अंश में बदल जाता है गुरु के आध्यात्मिक वातावरण में अभीप्सा पूर्वक रहते हुए वह कालान्तर में एक गम्भीरतर अनुभूति से चकित हो उठता है। शायद किसी स्थिति में गुरु की कृपामयी दृष्टि का विशेष अनुभव किया। वह निस्सार जीवन और जगत में एक नएस्तर को देखने लगता है। वह अनुभव करता है कि यह विस्तृत संसार बड़ा सुन्दर है। वह आनन्द से हिलोरें लेता हुवा गौएं चराता रहता है अथवा लकड़ियां इकट्ठी करता रहता रहता है। वह कृतज्ञता से परिपूर्ण हो कर उस भाव को अपने रोम रोम में रमने देता है और अपनी आन्तरिक चेतना के क्रमिक विकास में वर्षो आनन्द पूर्वक बिताता जाता है। उपनिषदें मौन उपदेश का ज्वलन्त दृष्टान्त उपस्थित करती हैं।वास्तव में आध्यात्मिक शिक्षण का उच्चतर साधन है ही वह, वाणी और व्यवहार के दृष्टान्त गौण चीजें ही हैं।

हमने ऊपर कहा था कि भारत की परम्परा में आध्यात्मिक शिक्षण के अनेक सत्य सामान्य रूप से देखने में आते हैं। एक वृत्तान्त है कि एक पिता ने अपने पुत्र के सम्मुख ही एक साधु से शिकायत की कि वह गुड़ बहुत खाता है तथा प्रार्थना की कि वे उसे गुड़ छोड़ने का उपदेश दें। साधु महोदयने दोनों से सात दिन बाद आने को कहा। सात दिन बाद जब वे दोनों गये तो साधु जी ने लड़के को गुड़ खाने के सम्बन्ध में समझाया-बुझाया। और उसने उनकी आज्ञा को स्वीकार किया। पिता ने कुतूहल में पूछा "महाराज" यह बात आपने जब हम पहला बार आये थे तभी न कह दी।" साधु जी ने सरलता से कहा 'तब मैं स्वयं गुड़ खाता था, उस वक्त मेरे कहने में क्या बल हो सकता था ? उस दिन के बाद मैंने स्वयं गुड़ खाना छोड़ दिया, इसलिये आज इसे कहने में समर्थ हुआ हूँ।' शब्दों के पीछे यदि अनुभव और जीवन की सत्यता है तो उनमें निसन्देह और ही बल आ जाता है इस तथ्य को हम आज कम ही अनुभव करते हैं। वास्तव में सत्य को बुद्धि से समझ लेना और वाणी में उसका निरूपण कर सकना एक बात है, उसे चरितार्थ करना हृदयंगम करना बिल्कुल भिन्न बात।

उपनिषदों के आध्यात्मिक शिक्षण तथा आध्यात्मिक विकास में चार क्रमों का विशेष वर्णन मिलता है श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार। गुरु के कुल के वातावरण में, गुरु की अध्यात्म-प्रेरणा के प्रभाव में रहते हुए शिष्य गुरुके

उपदेश का श्रवण करता है। उसका विशेष रूप से मनन करता है, फिर उसके तथ्य को ध्यान द्वारा अपने चित्त में अङ्कित करता है, अन्त में उसका उसे साक्षात्कार हो जाता है।

ये वास्तव में क्रम हैं आत्म विकास के। जिज्ञासु व्यक्तियों के लिये ये बड़े महत्वपूर्ण हैं। सद् ग्रन्थों का अत्यधिक स्वाध्याय, कथा वार्त्ता का अत्यधिक श्रवण अपने आप में मानसिक क्रिया और चेष्टा की वृद्धि करते हैं। श्रवणकी अपेक्षा निश्चय ही मनन-पूर्वक विषय के अर्थ ग्रहण करने का प्रयत्न अधिक होना चाहिये। फिर जब कोई सत्य मन में काफी स्पष्ट हो जाय तो उसे ध्यान द्वारा हृदयंगम करने की कोशिश और भी अधिक। और वास्तव में, जब सभी मानसिक चेष्टा शान्त हो और व्यक्ति सहज रूप से अपने को संतुष्ट, प्रसन्न और प्रकाशित अनुभव करे। आत्म विकास की दृष्टि से वह घड़ी सबसे अधिक शुभ होती है।

[इस लेख सुयोग्य के लेखक श्री डा० इन्द्रसेन जी एम० ए०, पी० एच० डी ने आध्यात्मिक शिक्षण की आवश्यकता और उसके प्रकार पर जो विचार इस लेख में प्रकट किये हैं वे अत्यन्त मननीय तथा आचरण में लाने योग्य हैं। भारतीय संस्कृति के आदर्शों को जिन में आध्यात्मिक दृष्टि से प्रत्येक विषय पर विचार करना अत्यावश्यक है जब तक शिक्षा में समाविष्ट नहीं किया जायगा तब तक हमारी शिक्षा वस्तुतः सार्थक न हो सकेगी तथा वह नैतिक उत्तम जीवन के विकास में सहायक न हो सकेगी। इस आध्यात्मिक शिक्षण की जो धर्म शिक्षा का अनिवार्य अङ्ग है उपेक्षा का ही परिणाम आजकल के अनेक युवक युवतियों का नैतिक पतन होता है। अतः राजनैतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के साथ इस विषय की ओर विशेष ध्यान देना और सब विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में आध्यत्मिक शिक्षण की समुचित व्यवस्था करना शासकों का विशेष कर्तव्य है। शिक्षकों को अपनी गम्भीर उत्तरदायिता को अनुभव करते हुए अपने जीवनों को निर्व्यसन पवित्र तथा आदर्श रूप बनाने का विशेष प्रयत्न करना चाहिये ताकि वे विद्यार्थियों के सम्मुख उत्तम उदाहरण रख सकें।

सम्पादक सा० दे०]

विश्व वन्द्य बापू !

[रच०—विद्या वारिधि रुद्र मित्र जी शास्त्री "कमलेश"]

बापू तू प्रेम पथ गामी !
राष्ट्र पिता ! हे जन नायक ! युग पुरुष ! दीन के स्वामी !!
मोहन ! मौर्य मुकुट मणि मानव महा महिम मति मानी !
दास दिव्य देवाधिदेव के, दया दान के दानी !!
'कर्म' वीर ! कर्मठ करुणाकर कलि के कृष्ण मुरारी !
चन्द्र ! चन्द्रमुख, चरखा चालक चारु चरित चित चारी !!
गांधी ! गीता गान के गायक, क्रिया शील अविरामी !!

शान्ति रूप थे, शान्ति दूत थे, सुखद शान्ति के धाता।
शान्ति देव, अवतार शान्ति के, परम शान्ति के दाता॥
शान्त चित्त, स्थिर प्रेज्ञ पुरुष थे, कर्म योग के योगी।
राग द्वेष वियुक्त, मुक्त मन, जीवन्मुक्त, वियोगी॥
सुख दुःखादि द्वन्द्व रहित ! हे पूर्ण काम निष्कामी !!

तुम भारत स्वातन्त्र्य समर-अध्वर के आदि प्रणेता।
तुम "कमलेश" विजेता अन्तिम नेताओं के नेता।
विश्व विदित भारत मख के यजमान निपुण संयोता।
तुम ब्रह्मा थे, ऋग्-उद्गाता, हवि थे, हवि के होता॥
तुम विसूक्ष्म दर्शी स्रष्टा तत्वज्ञ पुरुष परिणामी !!

तेरा दर्शन शास्त्र विलक्षण तव अध्यात्म विलक्षण।
"त्यागवाद" मय जीवन तेरा तू था पुरुष विचक्षण॥
तू आदर्श पुरुष जगती का मानवता का पुजारी।
सत्य अहिंसा-व्रती यती था, तू अध्यात्म विहारी॥
मुक्तिमार्ग-अनुगामी बापू ! तुझे नमामि नमामि !!

ऋषि दयानन्द और महात्मा गांधी

[लेखकः—डा० सूर्यदेव जी शर्मा साहित्यालङ्कार, सि० शास्त्री
एम. ए. एल. टी. डी. लिट्, अजमेर]

आधुनिक काल में संसार में जितने महान् पुरुष हुए हैं उनमें ऋषि दयानन्द और महात्मा गांधी का स्थान बहुत ऊंचा है। इसको दैवयोग ही समझना चाहिए कि इन दोनों महान् आत्माओं ने भारत के एक ही प्रान्त गुजरात में जन्म लिया और दोनों ही साधारण परिवार में उत्पन्न होने पर भी संसार की महा-विभूतियां बन गईं। वे विभूतियां केवल अपने प्रांत में अथवा अपने देश में ही पूजित और आदरणीय रही हों सो नहीं किन्तु संसार के समस्त देशों के विद्वान् इन अपने समकालीन महान् आत्माओं के सन्मुख नत मस्तक होते रहे। केवल सार्वदेशिक ही नहीं किन्तु सार्वकालिक महत्ता भी इन दोनों महान् पुरुषों ने प्राप्त की। जहाँ संयुक्त प्रान्त को यह गौरव प्राप्त है कि वहां राम और कृष्ण तथा बुद्ध भगवान ने प्राचीन काल में जन्म धारण किया जो सार्वकालिक और सार्वदेशिक ख्याति को प्राप्त कर सके, वहां आधुनिक काल में गुजरात प्रान्त को यह गौरव प्राप्त है कि उसकी पावन गोद में ऐसी दो महान् आत्माएं खेल चुकी हैं जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। युक्त प्रान्त के पश्चात् गुजरात प्रान्त को ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि उसके दो नगरों टङ्कारा और पोरबन्दर में ऐसे दो महान् दिग्गज नेता और युग निर्माता उत्पन्न हुए।

ऋषि दयानन्द का जन्म गुजरात के टङ्कारा नगर में सन् १८२४ में हुआ और महात्मा गांधी का जन्म सन् १८६६ में २ अक्टूबर को पोरबन्दर में हुआ। मैंने यह दोनों स्थान देखे हैं और उन गृहों को भी बड़ी श्रद्धा और भक्ति से अवलोकन किया है जिनमें ये महान् आत्माएं इस धराधाम पर अवतीर्ण हुई थीं और जो अब एक तीर्थ का रूप धारण कर चुके हैं। इन दोनों स्थानों में इन दोनों महा पुरुषों के कोई महान स्मारक बनाने के लिए कई बार प्रस्ताव हो चुके और हो रहे हैं लेकिन अभी तक कोई क्रियात्मक कदम नहीं उठाया गया। वैसे तो इन अमर आत्माओं की अमर कीर्ति ही उनका स्मारक है किन्तु उनके जन्म स्थान पर उनके स्मारक का निर्माण होना उनकी विभूति बढ़ाने के लिए नहीं किन्तु उन स्थानों के गौरव बढ़ाने का कारण होगा।

इसको भी दैवयोग ही समझना चाहिये कि एक ही प्रान्त में उत्पन्न इन दोनों महापुरुषों का अन्त भी एक ही प्रकार से हुआ। दोनों ही अन्त तक सत्य के पुजारी रहे और दोनों ही अपने दृढ़ विश्वास और अटल सिद्धान्तों की वेदी पर अपने जीवन का बलिदान कर गये और वह बलिदान भी किसी विदेशी और विधर्मी के हाथ से नहीं किन्तु उसी हिन्दू जाति के दो कृतघ्न पूतों के हाथ से किया गया जिस जाति और देश के उद्धार के लिए वे दोनों महात्मा जीवन भर प्रयत्न करते रहे। इसको विधि की विडम्बना और इतिहास का दुःखद प्रतीप न कहें तो क्या कहें? ऋषि दयानन्द के घातक जगन्नाथ ने उनको विष देकर और महात्मा गान्धी के घातक नाथूराम विनायक जैसे हत्यारों ने क्रमशः ५६ और ७६ वर्ष की आयु में इन महा पुरुषों की जीवन लीला समाप्त करके राष्ट्र और संसार को कितनी क्षति पहुँचाई है इसको वे घातकी क्या समझ सके होंगे? किन्तु इन दोनों महात्माओं के बलिदान निष्फल नहीं गये। जितना काम उन्होंने अपने जीवन में किया शायद उससे अधिक काम उनके बलिदानों से हुआ और होगा परन्तु हमारी जाति पर उनकी हत्या का कलङ्क तो लग ही गया।

एक उर्दू कवि ने ठीक कहा है:—

ऐ क़ौम! तेरे दामन से अब न छुटे दाग़। गुल तूने अपने हाथ से अपना किया चिराग़॥

ऋषि दयानन्द और महात्मा गान्धी के जन्म और बलिदान समान होने पर भी उनके कार्य क्षेत्रों में और कार्य प्रणालियों में बहुत कुछ अन्तर रहा। यद्यपि दोनों ही महा पुरुष आजन्म सत्य के पुजारी रहे, दोनों ही अपने सिद्धान्तों पर अटल रहे। चाहे जितने विघ्न बाधाओं का सामना क्यों न करना पड़ा हो, दोनों ही देश और राष्ट्र के अपने समय के सबसे बड़े हित, चिन्तक रहे, दोनों ही ने देश और जाति का महान् कल्याण किया, और दोनों के ही मार्ग में अनेक विघ्न बाधायें उपस्थित हुईं, फिर भी दोनों में कई बातों में अपनी २ विशेषता रही। महात्मा गान्धी ने अपने गृहस्थ जीवन को समाप्त करके पूर्णतया ब्रह्मचर्य का पालन किया, वहाँ ऋषि दयनन्द ने आदित्य ब्रह्मचारी की भांति जन्म भर ब्रह्मचर्य को धारण किया जिसकी प्रशंसा महात्मा गांधी जी ने भी मुक्त कण्ठ से की थी। दोनों के जीवन सीधे सादे और विचार ऊँचे रहे। Simple living and High Thinking दोनों का आदर्श रहा किन्तु महात्मा गांधी की शारीरिक शक्ति ऋषि दयानन्द की शारीरिक शक्ति की तुलना में कोई समता नहीं रखती। जहाँ ऋषि दयानन्द अपनी हुंकार मात्र से शत्रुओं का दिल दहला देते थे, वहां महात्मा गांधी अपने अहिंसा के प्रभाव से शत्रु को जीतने का यत्न करते थे और बहुत कुछ अंशों में सफल भी हो जाते थे।

ऋषि दयानन्द का कार्य क्षेत्र मुख्य रूप से धार्मिक और सामाजिक रहा परन्तु महात्मा गांधी का कार्य क्षेत्र मुख्य रूप से राजनैतिक और सामाजिक रहा। ऋषि दयानन्द अपने धार्मिक क्षेत्र में कभी भी समझौता (Compromise) करने को तैयार न थे। वेदों की अटल चट्टान पर उनका धार्मिक विश्वास का दुर्ग निर्मित हुआ था और उससे वे एक इञ्च भी डिगने वाले न थे। उधर राजनैतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी की भावना समझौते Compromise की सदा रही। ब्रिटिश सरकार के साथ तो यह भावना सभ्यतापूर्ण तथा सफल रही लेकिन मुस्लिम लीग के साथ इस भावना ने देश के लिए विभाजन का बीज बो दिया जो अन्त में पाकिस्तान के रूप में फली भूत ,होकर रहा। इन दो प्रकार की भावनाओं को जड़ों को यदि देखा जाय तो उनसे ऋषि दयानन्द का यह सिद्धान्त कि "सबके साथ यथायोग्य व्यवहार करना चाहिये" तथा महात्मा गांधी का यह सिद्धान्त "अहिंसा सब कालों और सब देशों में व्यवहार में लानी चाहिए," ये ही दोनों सिद्धान्त हैं जिनकी विस्तृत विवेचना मैंने अपनी हाल ही में प्रकाशित "युद्ध नीति और अहिंसा" नामक पुस्तक में की है।

धार्मिक जगत् में सर्वाधिक जागृति करने का श्रेय एकान्ततः जहां ऋषि दयानन्द को है वहां राजनैतिक क्षेत्र में जागृति करने का सर्वाधिकांशतः महात्मा गांधी को है जिन्होंने भारत की सदियों की दासता दूर करके स्वतन्त्रता का दिव्य दर्शन कराया। ऋषि दयानन्द राजनीतिक क्षेत्र से बिलकुल अलग रहे हों, ऐसी बात नहीं। विदेशी शासन को प्रत्येक दशा में त्याज्य और स्वराज्य को सर्वप्रथम अपना उद्देश्य घोषित करने का श्रेय स्वामी दयानन्द को ही है। इसी प्रकार सामाजिक सुधारों के क्षेत्र में भी ऋषि दयानन्द ने दलितोद्धार, स्वदेशी वेश भूषा, राष्ट्रीय शिक्षा, कुरीतियों का खंडन आदि जिन बातों का बीज वपन किया उन्हीं को महात्मा गांधी ने प्रबल रूप में देशके सामने उपस्थित कर किया। बहुत से विद्वानों का मत है और वह ठीक ही है कि यदि ऋषि दयानन्द समाज सुधार का क्षेत्र तैयार न कर देते तो महात्मा गांधीको उसमें इतनी शीघ्र सफलता मिलनी असम्भव होती।

यद्यपि किन्हीं दो महापुरुषों की तुलना करना अशोभनीय होता है और उनकी तुलना की भी नहीं जा सकती, फिर भी मैं यदि एक शब्द में कहना चाहूँ तो फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् रोमा रोलाँ के शब्दों में यही कहूँगा कि ऋषि दयानन्द वेदों की अटल चट्टान पर और महात्मा गांधी अहिंसा की अटल चट्टान पर अपने

जीवन भर रहे जहाँ से संसार की कोई शक्ति उनको डिगा नहीं सकी। धार्मिक क्रान्ति के जन्मदाता ऋषि दयानन्द की जय हो! भारतीय स्वतंत्रता के विधाता महात्मा गांधी की जय हो!

दैनिक संध्या व हवन के सम्बन्ध में

धर्मार्य सभा (सार्वदेशिक सभान्तर्गत) की घोषणाएँ

धर्मार्य सभा की घोषणा के अनुकूल दैनिक सन्ध्या व हवन की विधि सन्ध्या व हवन मंत्रोंके सहित सर्वसाधारण के लाभार्थ पुस्तिका रूप में प्रकाशित कर दी गई है। मूल्य ―) प्रति है। १०० प्रतियां एक साथ लेने पर ५) में दी जायंगी। डाक व्यय कीमत से पृथक् होगा।

आर्डर देने में शीघ्रता करें।

मिलने का पता—
सार्वदेशिक सभा देहली।

सौराष्ट्र के दो अमर शहीद

[लेखक—आचार्य पं० चन्द्रकान्त जी वेदवाचस्पति गुरुकुल विद्यामंदिर सूपा, नवासारी]

सौराष्ट्र की वीर भक्त प्रसविनी भूमि ने इस एक शताब्दी में संसार को दो इतने बड़े महापुरुष दिये हैं कि उनके ऋण से सदियों तक संसार उऋण नहीं हो सकता। ये महापुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती और महात्मा गांधी जी थे। एक ने मोरवी स्टेट के टंकारा गांव में जन्म लेकर अजमेर में देह छोड़ा, दूसरे का जन्म पोरबन्दर में हुआ और राख दिल्ली में पड़ी, महर्षि आजन्म कुमार नैष्ठिकब्रह्मचारी थे, और संन्यासी थे, महात्मा जी गृहस्थी बन कर साधु बने महात्मा बुद्ध के समान महर्षि ने यौवन में ही संसार की जंजीरों को तोड़ कर महानिष्क्रमण किया था और महात्मा जी ने थोड़े अहिंसक वीरों को लेकर अहमदाबाद से डांडी की ओर महाप्रस्थान किया। महर्षि ने सत्य के देवयान मार्ग से प्रेममन्दिर में भगवान को देखा और संत गांधी ने अहिंसा के राजमार्ग पर सत्यमय प्रभु की झांकी ली। स्वामी दयानन्द ने ब्रह्मानंद को ठुकरा कर अनाहत नादकी जगह गौवों का रुदन,विधवाओं का करुण क्रन्दन और दुःखी भारत का आर्तनाद सुना। कर्मवीर गांधी जी ने भारत की स्वतंत्रता को अपने कल्याण में साधन बनाया। स्वामीजी की आर्ष दृष्टि में सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्रान्ति का ही विशेष स्थान था,स्व० ला०लाजपतराय भी यही कह-करते थे Political Subjection is the punishment of Social evils and national crimes. महर्षि की सांस्कृतिक क्रान्ति द्वारा तैय्यार किये हुए क्षेत्र में महात्मा जी ने अहिंसात्मक असहयोग और सत्याग्रह के द्वारा राजनैतिक स्वतंत्रता का बीज बोया। वही बीज आज स्वतंत्र भारत का वटवृक्ष बन गया है। महर्षि की दृष्टि में राजनीति धर्म का अंग था वे धर्म के बिना अर्थ और काम को निस्सार समझते थे। पाश्चात्य संस्कृति में राजनीति को धर्म अलग समझा गया है पर तपस्वी महात्मा ने राजनीति में धर्म का पुट लगा कर हिन्दु संस्कृति की महा सेवा की है इन दोनों महापुरुषों के ग्रन्थों की एक एक पंक्ति में सत्य एवं धर्म का विजय हो रहा है।

इस सदी में सब से पूर्व महर्षि ने हमें "स्वराज्य" "स्वदेश" "स्वभाषा" "स्वभूषा" का सन्देश दिया और बताया कि चीन, जापान, ईरान, अफरीका, एवं अमेरिका उस "सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्व" वारा सर्वग्राही भारतीय संस्कृति के ऋणी हैं।

ईसा, मूसा, जरदुश्त लूट्फ और कफ्यूशियस वैदिक ऋषियों के वारिस हैं पारसीमत इस्लाम, ईसाइयत, सबके सब मतमतान्तर वेदधर्म के स्रोत से निकले हैं। आज का संपूर्ण वैज्ञानिक एवं दार्शनिक जगत् वेद एवं उपनिषदों का गुणगान गा रहा है। रोमां रोलां के शब्दों में महर्षि ने गुलाम भारत की नर्सों में शेर का खून भर दिया है, महावन भारत को बृहत्तर भारत का रूप दिया, हिन्दुस्थान को आर्यावर्त ब्रह्मावर्त तथा भारतवर्ष का स्मरण कराया, हिन्दुओं को "आर्य" बना कर उनमें वह अस्मिता और आत्म श्रद्धा भरदी।कि वे विश्व के सम्राट् बन गये। "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का नारा सुनाया। परन्तु हाय ! आज हमारा वह स्वप्न महल टूट चुका है। भारतमाता की गोद में पालित और पोषित इस्लाम ने ईसा के शिष्यों की सहायता से भारत माता की छाती को विदीर्ण कर दिया है। इस चीज को न चाहते हुए भी अहिंसा के प्रचारक गांधी जी को मानना पड़ा। महर्षि ने सर सैय्यद अहमद को गले लगाया, हुतात्मा श्रद्धानन्दजी ने डा० अन्सारी तथा हकीम अजमलखांन की गोद में सिर रक्खा; अशरावी वेगम को शान्तिदेवी बनाया पर अन्त में अब्दुलरशीद की गोली से शहीद हुए। इनके पीछे चलने वाले आर्य समाज ने इस्लाम की प्यास को अपने खून से तृप्त किया। महात्मा ने इस्लाम की रक्षा के लिये कलकत्ता और देहली में अनशन करके जीवन की बाजी लगाई ५५ करोड़ रुपये ही नहीं अपितु अपने अमूल्य जीवन का, छाती में गोली खाकर इस्लाम के लिये बलिदान दिया। महर्षि दयानन्द समझते थे कि वैदिक सूर्य से इस्लाम के चाँद ने रोशनी पाई है इस लिये मुसलमान भाइयों को भी वेद गंगा में नेहला कर पवित्र कर लेना चाहिये। ऋषि की दृष्टि में न मन्दिर की आवश्यकता थी न मसजिद की न बांग की न बाजे की वे हृदय के मन्दिर व मसजिद में अणु अणु और रोम रोम में प्रभु की मोहिनी मूर्ति को देखा करते थे। संत गांधी जी कहते थे कि यदि मन्दिर रहेंगे तो मसजिदें भी रहेंगी अन्यथा कोई भी नहीं रह सकते। इसी लिये यह यह सत्य है कि महर्षि ब्राह्मण संस्कृति के ज्योतिधर थे तो गांधी जी श्रमण संस्कृति के।

अछूतपन के कलंक को दूर करने के लिए स्वामी जी सहभोज (Inter-dining) तथा अन्तर्जातीय विवाह (Inter-marr, iage) को विशेष महत्त्व देते थे, हरेक व्यक्ति गुणकर्म के अनुसार ऊंचा एवं नीचा बना करता है। शूद्र ब्राह्मण हो सकता है और ब्राह्मण शूद्र कहा जा सकता है। हरेक को धर्म की पवित्र गंगा में डुबकी लगा कर पवित्र बनने का हक है। "प्रजातंत्र" की भावना की पराकाष्ठा ही अस्पृश्यता निवारण है। महात्मा जी ने हरिजनों को अलग सत्ता देकर उनके लिये मन्दिर और

कुएं खुलवाये परन्तु अभी तक अनेक हिन्दुओं के हृदय मन्दिर उनके लिये बन्द के बन्द ही हैं। ऋषि "आर्य" एवं "अंार्येतर" (दस्यु) दो ही शब्दों में कहा करते थे। उन्होंने सारे संसार को इन दो शब्दों में ही समाया हुआ था। दोनों के हृदयों में साम्य धर्म रमा हुआ था, दोनोंके हृदयों में मानव जाति के लिये करुणा और प्रेम की गंगा बह रही थी।

महर्षि की दृष्टि में स्वदेश का किसी भी प्रकार का राजा विदेशी राजा से हरकदर अच्छा था "सत्यार्थप्रकाश" रूपी अमर ग्रन्थ के षष्ठ समुल्लास में लिखी हुई राजनीति का अमल करने से ही संभवतः सरदार पटेल ने राजाओं के हृदयों की जीतकर सौराष्ट्र की एकता का स्वप्न सिद्ध किया है। महर्षि जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, के रेगिस्तान में भटक कर राजाओं को उनका धर्म बता कर संघटित करना चाहते थे। आज हमें उन का स्वप्न सिद्ध होता देखकर हर्ष होता है।

महर्षि समझते थे कि विश्वशान्ति के लिये सत्यसनातन वेद धर्म के प्रकाश में मतमतान्तर रूपी तारों को हतप्रभ हो जाना चाहिये। महात्मा गांधी जी की दृष्टि में "सर्व धर्म समभाव" ही नहीं अपितु 'सर्व धर्म मम भाव' हो जाना चाहिये। संसार का भावी इतिहास कहेगा कि महर्षि ने संसार के विचार जगत् पर आत्मिक विजय पा कर भारतवर्ष को विजयी बनाया था और महात्मा जी ने भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता को सिद्ध करके दुनिया में अपना नाम रोशन किया है। स्वामी जी की कृपा न होती तो मुसलमान, ईसाई, यहूदी, जैन तथा सनातन भाइयों को अपने धर्म की महत्ता भी समझ में नहीं आती। इसी प्रकार यदि महात्मा जी की कृपा दृष्टि न होती तो शायद हिन्दुस्तान में एक भी मुसलमान न रह पाता। दोनों वीर तलवार, विष, बाम्ब और गोली के साथ खेले और हंसते हंसते शहीद हो गये। हिन्दुधर्म बचाने के लिये जीये और मरे।

महर्षि को जगन्नाथ पाचक ने विष का प्याला, और महात्माको नाथुराम गोडसे ने गोली से बींधा, इन दोनों महान् "आर्यों" के हत्यारे दो हिन्दु ही बने। दयानन्द के देह के "फफोले प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो" को अमर पुकार कर गये, नास्तिक गुरुदत्त विद्यार्थी को आस्तिक बना गये। वे चाव हिन्दु जाति की छाती पर दीपक बन जल रहे हैं और हमारे पापों को जला रहे हैं।

जिस जनवरी के अन्तिम सप्ताह में रावी नदी के तीर पर पूर्ण स्वतंत्रता का झंडा फहराया गया था, उसी जनवरी में यमुना के राजघाट पर स्वतंत्रता की देवता महात्मा गांधी की राख डाली गई। महर्षि की राख अजमेर में पड़ी और कविराज श्यामलदास ने ऋषि की आज्ञानुसार उसे

खेत में डाल दिया और सर्वमेध यज्ञ पूर्ण किया। महात्मा जी की राख दिल्ली की राजधानी मे पड़ी परन्तु वह हजारों नदियों-नगरों व स्थानों में ले जाई जाकर मन्दिरों और विजयस्तम्भों की नीव में डाली गई, आज अजमेर और दिल्ली में महर्षि और महात्मा के फफोले और गोली के निशान हमें कह रहे हैं कि हिन्दुजाति ने सौराष्ट्र के दो वीरों के खून की होली खेली है, क्या अब भी हिन्दुधर्म का कल्पवृक्ष फूलेगा फलेगा नहीं ? The blood of the martyrs is the seed of the church" प्रभु करे कि इन दो शहीदों की शहादतों को मन्दिरों के पत्थरों के नीचे हम न दबा दें—प्रत्युत अपने खून से और अधिक रोशन बना दें।

शोक सभाएं

पूज्यपाद महात्मा गांधी जी की अमानुषिक हत्या पर भारत और विदेशों की समस्त आर्य समाजों और आर्य कुमार सभाओं में शोक सभाएं की गईं जिन में महात्मा जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए निम्न प्रस्ताव स्वीकृत किया गया:—

"यह आर्य समाज / आर्य कुमार सभा सत्य और अहिंसा के परम उपासक सर्वमान्य नेता महात्मा गांधी जी की हत्या पर घोर घृणा प्रकट करती है और उनकी आत्मा की शाश्वत शान्ति के लिये परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करती है साथ ही ऐसी पैशाचिक प्रवृत्तियों के प्रति शोक और निन्दा प्रकट करती है कि जिन के द्वारा प्रेरित हो कर विचार भेद अथवा विरोध के आधार पर इस प्रकार के आततायीपन का अनुसरण किया जाता है।

यह आर्य समाज / आर्य कुमार सभा परम पिता परमात्मा से यह भी प्रार्थना करती है कि वे हम को सुबुद्धि दें ताकि देश इस प्रकार की जघन्य प्रवृत्तियों से सुरक्षित रहे।"

ऐसी शोक सभाओं की सूचना हमारे पास प्रकाशनार्थ भारत के सभी प्रदेशों से आई है किन्तु खेद है कि स्थानाभाव के कारण हम उन सब आर्य समाजों आर्य संस्थाओं और आर्य कुमार सभाओं के नाम देने में असमर्थ हैं।

सम्पादक सा० दे०

नरेशों को इस युग का सन्देश

[लेखक—श्री स्वामी महामुनि जी परिव्राजक]

एक वह युग था जबकि समस्त भूमण्डल पर आर्यावर्तीय (भारतीय) नरेशों का चक्रवर्ती साम्राज्य था। वह चला गया, क्यों चला गया ? पारस्परिक असंगठन से आपस की फूट से "सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्यकुल में ही हुए थे, महाराजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्ध पर्यन्त यहां के राज्याधीन सब राज्य थे। आपस की फूट से कौरव पाण्डव और यादवों का सत्यानाश होगया। ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी अपनी पूर्व दशा में नहीं आया" (स्वामी दयानन्द)। महाभारत के पश्चात् उसी पारस्परिक असंगठन आपस की फूट से भारत की स्वतन्त्रता भी भारतीय नरेश अपने हाथों से खो बैठे "विदेशियों का आर्यावर्त्त में राज्य होने का कारण आपस की फूट है, वही दुष्ट दुर्योधन गोत्रहत्यारे स्वदेशविनाशक नीच के फूट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःखों को बढ़ा रहे हैं" (स्वामी दयानन्द)। अब भारी बलिदान के पश्चात् परमेश्वर की कृपा से विदेशियों की दासता से भारत विमुक्त और स्वतन्त्र हुआ, अब यह भारत की स्वतन्त्रता का युग है। यह युग भारतीय नरेशों को सन्देश दे रहा है कि भारत परतन्त्र हुआ था पारस्परिक असंगठन से, इस लिये अब भारतीय नरेशों को पूर्णरूप से संगठनसूत्र में बन्धना चाहिये। काठियावाड के राज्यों का तो एकीकरण हो ही गया और उनका जिस रूप में एकीकरण हुआ वैसा होना आवश्यक था क्योंकि वहां छोटे छोटे राज्य बहुत हैं जबतक उनका वैसा एकीकरण न हो तब तक उनका और भारत का हित सिद्ध नहीं हो सकता। अन्य बड़े बड़े राज्यों का वैसा एकीकरण नहीं तो कम से कम सैनिक एकीकरण तो होना ही चाहिये अर्थात् जब बाहिरी शक्ति का किसी राज्य पर आक्रमण हो तो उसका सामना करना उसी राज्य की सेना तक ही सीमित न रहे किन्तु समस्त राज्यों की सेनाओं को उस में जुट जाना होगा, उस समय किसी भी नरेश को यह अधिकार न हो कि वह अपने राज्य की सेना को साथी राज्यकी रक्षा में भाग लेने से रोक सके। अपने अपने राज्य की आन्तरिक व्यवस्था करने में तो अपनी २ सेनाका उपयोग नरेश ले सकेंगे किन्तु अन्य सब बातों में राज्यों की सेनाओं पर नियन्त्रण केन्द्रिय सरकार का हो, जब किसी एक राज्य पर

बाहिरी शक्ति का आक्रमण हो तो उस से संघर्ष लेने को समस्त राज्यों का सेनासूत्र हिल पड़े। इस प्रकार केन्द्रिय सरकार के साथ राज्यों का अङ्गाङ्गीसम्बन्ध बन जाने से भारत सुरक्षित रह सकेगा नरेश भी सुख की नींद ले सकेंगे।

दूसरा सन्देश इस युग का नरेशों को यह है कि राजा को राज्य में सर्वथा मनमानी करने का अधिकार न होगा, वैदिक दृष्टि से तो राजा को प्रजा ही बनाती है "त्वां विशो वृणतां राज्याय" (अथर्व० ३।४।२६) अर्थात् तुझे प्रजा राज्य के लिये वरे-राजा बनावे। स्वामी दयानन्द ने भी ऐसा ही कहा है "जो सब में सर्वोत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त श्रेष्ठ पुरुष हो उसे राजसभा का पतिरूप मैं मानके सब प्रकार की उन्नति किया करें" (सत्यार्थ प्रकाश)। राजा जब प्रजा का हित न साधेगा-मनमानी करेगा तो प्रजा उसकी शत्रु बन जायगी और उसे त्याग देगी। राजपद से हटादेगी "अरक्षितारं राजानं जह्यात्" [विदुर] रक्षा न करने वाले राजा को प्रजा हटा दे, यह ऐसा विदुर जी ने कहा भी है। बाहिरी आक्रमणकारी शत्रु से तो राजा लोग पारस्परिक संगठन से बच सकेंगे पर अपने अन्याय आदि अयोग्य व्यवहार के कारण शत्रुरूप बनाई हुई प्रजा से बचना सुगम नहीं इस प्रजारूप शत्रु से तो इतनी बड़ी अंग्रेजी। राजशक्ति भी न बच सकी उसे भी राज्य छोड़ कर भागना पड़ा। इस लिये अपनी प्रजा को शत्रु बना कर कोई भी राजा राज्य न कर सकेगा, प्रजा की अनुकूलता में रहना और उसे उत्तरदायी शासन देना ही होगा। विक्रमादित्य आदि पुरातन नरेश भी अपनी प्रजा का दुःख स्वयं रात तक में घूम घूम कर जाना करते थे। प्रजा को सर्वथा सुखी सन्तुष्ट रखना भी राष्ट्र को समृद्ध करने का साधन है, वास्तव में वही राष्ट्र समृद्ध हो सकता है जिसका बाहिरी और भीतरी शत्रु न हो, वेद में कहा है-"इमं देवा असपत्नं सुबध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्यायमहते जानराज्यायेन्द्रिस्येन्द्रियाय (यजु० ६।४०) (महते क्षत्राय) महान् राज के लिये (महते ज्यैष्ठ्याय) महान चक्रवर्ती साम्राज्य के लिये (महते जान-राज्याय) महान् सार्वजनिक भूमण्डलभर राज्य के लिये इस राष्ट्र देश को (असपत्नम्) शत्रु रहित—बाहिरी भीतरी शत्रुओं से रहित बनाना आवश्यक है। राजा और प्रजा का परस्पर अङ्गाङ्गी-सम्बन्ध है राजा अङ्गी है तो प्रजा अङ्ग है और प्रजा अङ्गी है तो राजा अङ्ग है, स्वामी दयानन्द ने अच्छा कहा है, "राजा जो सभापति तदधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे" (सत्यार्थ प्रकाश)। इस प्रकार प्रजा का हितसाधक जो राजा होगा वह बड़ा भाग्य शाली होगा।

तीसरा सन्देश यहां के नरेशों को इस युग का यह है कि भारत के नरेश आर्य नरेश हैं इनके अन्दर आर्य-आचार आने चाहियें, ये अपने व्यक्तित्व को प्रजा के लिये आदर्श बनावें, वेद में कहा है--"वेदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा" (ऋ० ५।३।३) राजा अपनी सारी इन्द्रियों को अपने आदेश में रखें—लोलुप न होने दे—इन्द्रियों का दास न बने। जो राजा इन्द्रियों का दास बनेगा वह औरों का भी दास बन जायगा। इन्द्रियों की दासता में आकर पूर्व नरेश अपनी और अपने राज्य की स्वतन्त्रता खो बैठे। नरेशों को एक पत्नीव्रत का सेवन करना उचित है, वंशोच्छेदन का प्रसङ्ग हो तो एक से अधिक विवाह करने रूप आपद्धर्म का आदेश राजाओं को राज धर्म के शास्त्रों में है अन्यथा नहीं। लण्डन के सम्राट् को भी एक सम्राज्ञी है। "स्वस्तिदा विशां पतिः सोमपा अभयङ्करः" (अथर्व० ११।२।१) आर्य राजा सोमपान करने वाला हो सुरापान करने वाला (शराब पीने वाला) नहीं। सोम विशेष औषधि का नाम है पर सामान्य रूप से औषधि मात्र को भी सोम कहते हैं, हरी ताजी औषधि-फूल-फल के ताजे स्वरस अर्थात् फूल गुलाब, सन्तरे अंगूर, अनार आदि का ताजा स्वरस मधु सुगन्ध सार डाल कर पान करे जो कि ऊर्जा, कान्ति, स्फुर्ति, ओज, तेज बल, बुद्धि और जीवनीय शक्ति का देने वाला है। न कि उनको सड़ा कर मादक (नशीला) सुरा (शराब) बना कर पीना, आर्य राजाओं को सुरापान त्याज्य है। तथा आर्य नरेशों को अपनी संस्कृति और अपने धर्म में निष्ठा रखनी चाहिये। पुरातन आर्य नरेशों की भांति विद्वान संन्यासी महात्माओं का सत्सङ्ग उपदेश श्रवण करना भी अपने जीवन का उद्देश्य और राजकाज का अङ्ग समझें अन्यथा अधर्म में प्रवृत्ति हो जाने से प्रजा के प्रति न्याय न कर सकेगा। प्रमाद, दीर्घसूत्रता और व्यसनों को छोड़ अवसर के अनुसार राज्य कार्य में तत्पर रहे इसके लिये किसी ज्योतिषी से मुहूर्त पूछने की आवश्यकता नहीं।

चौथा सन्देश इस युग का यह भी है कि अपने राज्य में राष्ट्र विनाशक विरोधी शक्ति (पाकिस्तानी अणु) से सावधान रहें और केन्द्रिय सरकार के सहयोग से अपनी सैनिक शक्ति को उन्नत करें।

एक बात हम यहां यह भी कह देना चाहते हैं कि अपने इस शेष भारत में हैदराबाद आदि राज्यों के जो मुसलमान नरेश [नवाब] हैं यदि उनमें भी भारत के प्रति भक्ति है और वे प्रजा को उत्तरदायी शासन दे दें तो हम उन्हें भी [अंशतः] आर्य-नरेश कहने को तैयार हैं यदि ऐसा न कर के पाकिस्तान की ओर दृष्टि लगाये हुए हैं तो फिर इसमें कुछ सन्देह नहीं एक दिन उन्हें अपनी राजसत्ता से वञ्चित होना पड़ेगा।

———

हुतात्मा गांधी जी की पुण्य स्मृति में

[लेखिका—श्रीमती सुशीलादेवी चन्द्रकान्त विद्यालंकृता गुरुकुल विद्या मन्दिर, सूपा]

दिल्ली की विशाल नगरी में कुछ साल हुए एक संन्यासी का भव्य शव-यात्रा निकली थी, जिस पर नगरी की अटारियों से हिन्दू-मुसलमान-पारसी-सिक्ख-आबाल वृद्ध फूलों की वृष्टि कर रहा था। ये संन्यासी हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी थे। संन्यासी की राख यमुना में वह गई परन्तु संन्यासी की अमर आत्मा भारत के आकाश में मन्डरा रही है। उसी दिल्ली में भारत के तारण-हार की भव्य शवयात्रा निकलती है जिस पर देव वृष्टि कर रहे थे। दुनियां के शहनशाह मुग्ध हो रहे थे। ये हुतात्मा गांधी जी थे। ये दोनों ही हुतात्माएं हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिये जीईं और मरीं: एक को पागल मुसलमान ने गोलियों से बींधा दूसरे को पागल हिन्दु ने। दोनों की शहादत हिन्दुस्तान के इतिहास में अमर है।

महात्मा जी ने गत ३५ वर्षों में इस देश का काया कल्प किया है देश की डग-मगाती नौका को हजारों तूफानों में से बचा कर स्वतंत्रता के मन्दिर तक पहुचाया है। निश्शस्त्र हिन्दुस्तान की गरीब और गुलाम प्रजा को सत्याग्रह का शस्त्र देकर तोप-टैंक और अणु बमों के सामने ला खड़ा किया है। क्रान्तिकारियों को शान्ति-मय क्रान्ति का, साम्यवादियों को गीता के साम्य धर्म का मन्त्र सुनाकर भारतीय "संस्कृति का नाम उज्ज्वल किया है। "अक्रोधेन जयेत् क्रोधम् असाधुं साधुना जयेत्" के सिद्धान्त को, प्रेम एवं अहिंसा के रहस्य को सामाजिक क्षेत्र में लगा कर जगत् को शान्ति का अमर सन्देश दिया है। बुद्ध एवं ईसा के अहिंसा तथा प्रेम-राज्य के स्वप्न को अपने जीवन में मूर्त बना कर इस महान् पुरुष ने ३५ करोड़ मुर्दा प्रजा को जिन्दा किया है। अब-लाओं, दलितों तथा गरीबों का तारणहार बन कर इन्हें अहिंसात्मक प्रतिकार करने का बल पैदा कर दिया है। इस महा पुरुष के स्पर्श से पेशावर के क्रूर पठानों के पत्थर दिल करुणा से पिघल उठे। बारडोली, खेड़ा और चंपारन के किसान वीरता के मारू राग जपने लगे—डांडी के नमक के सत्याग्रह ने दुनियां को बुद्ध के महाभि-निष्क्रमण का दृश्य दिखाया। क्या क्या कहूँ? दस दस वर्ष में हिन्दुस्तान को झटके देकर गहरी नींद से जगाने वाले इस कर्म योगी ने अलौकिक जादू किया है। संसार ने देखा कि गांधी जी हंसते थे तो हिन्दुस्तान हंस उठता था— रोते थे तो हिन्दुस्तान रो उठता था — गांधी जी की

आहों में हिन्दुस्ता की आहें थीं और गांधी जी की वाहवाह में हिन्दुस्तान की वाहवाह थी। क्या आज वह मधुर ध्वनि न सुनाई देगी ? क्या उनके दिव्य-दर्शन नहीं हो सकेंगे ? क्या वह ज्योति हमें अब प्रकाश न दिया करेगी ? क्या बालकों के साथ खेलने वाले गांधी आज नहीं हैं ? क्या हमारे नेता सरदार और जवाहर के गुरु बापू जी आज नहीं हैं ? क्या मानवता की आवाज़ बन्द हो गई है ? क्या राजाओं के राजा भारत के बेताज बादशाह गांधी जी आज नहीं हैं ? क्या बहते खून के भयङ्कर समुद्र में प्रकाशस्तम्भ महात्मा जी आज नहीं हैं ? क्या करुणा की पुकार स्तब्ध हो गई है ? क्या गरीबों एवं अनाथों के आँसू पोंछने वाले हमारे हृदय सम्राट् आज नहीं हैं ? जिस दधीचि ने हरिजनों के लिए पूना में आमरणान्त उपवास करके अपने जीवन की बाजी लगाई थी—जिसने हिन्दू और मुसलमान भाइयों की एकता के लिये कायदे आज़म जिन्ना के दरवाजे खटखटाते हुए अपमान के विष का घूंट पिया—जिसने अपनी जीवन संगिनी भारत की माता कस्तूर बा के वियोग को हँसते हँसते सहन किया—क्या वे उदात्त महात्मा आज नहीं हैं ? जिस कृष्ण ने ३० वर्ष तक ३५ करोड़ भारतीयों के भारत को अपनी अंगुलियों पर रक्खा हुआ था—जिस राष्ट्र पिता ने अपने जीवन में ही भारत की स्वतन्त्रता का स्वप्न सिद्ध किया था—जिस पुण्यात्मा ने अपने जीवन की अन्तिम सांस लेते हुए कन्ट्रोल को हटवा कर भूखों को भोजन दिलवाया, नंगों को वस्त्र पहिनाया था, बालकों को मीठा दूध पिलाया था (मेरी पांच वर्ष की बच्ची ने जब इस दुर्घटना को सुना तब यही कहा कि अरे ! जब गोलियां छूटीं तब कोई आगे क्यों न आ गया, हमको खांड खिलाने वाले गांधी जी बच जाते) भारत के एक एक व्यक्ति की जबान पर जिसका नाम हर समय रहता था। हा ! आज वही पिता हमें अनाथ कर चल बसे हैं। और वह भी कैसे ? एक पागल हिन्दू ही की गोलियों से बींधे जाकर और कब ? प्रार्थना के पवित्र समय में। हिन्दु धर्म एवं हिन्दु जाति पर इससे बड़ा कलङ्क क्या हो सकता है ? जिस हिन्दु जाति ने महर्षि दयानन्द को विष पिलाया—जिस हिन्दु जाति ने अपने तारणहार को गोली का शिकार बनाया—जिस हिन्दु व्याध ने भगवान् कृष्ण को बींध डाला उसका उत्थान कैसे हो सकता है महात्माजी तो मर कर अमर हो गये हैं। महात्मा जी ने सन्यासी श्रद्धानन्द जी की शहादत पर कहा था "I envy his death" अर्थात् उनकी मृत्यु से मैं ईर्ष्या करता हूँ, पर महात्मा गाँधी जी की मृत्यु पर दुनियाँ भर के शहीद कहेंगे "We envy his death" यदि सुकरात विष पीकर अमर हुए हैं— यदि ईसा मसीह अपने ही शिष्यों के द्वारा

शूली पर चढ़ाये जाकर शहीद हो गये हैं—यदि अब्राहम लिङ्कन अमेरिका को स्वतन्त्र करने के बाद ही अपने ही भाई की गोली खाकर अमर हुवे हैं तो महात्मा गांधी जी की अपने हिन्दु भाई के हाथ से ५ गोली खाना सच्ची शहादत नहीं तो क्या है?

जब सारा भारतवर्ष महात्मा जी के अस्तित्व को पल पल के लिए तरस रहा था, नोवाखाली, कलकत्ता के चमत्कारों का प्रसंग पञ्जाब--नहीं! नहीं!! पाकिस्तान पर हो सके इसकी प्रतीक्षा में था। जब सारी दुनिया अणुबम्ब के सामने इस आत्मिक बम्ब के विजय की प्रतीक्षा कर रही थी—तब इस प्रकाश का एक नव युवक की गोली से रोका जाना कितनी करुण घटना है? परन्तु बर्नार्ड शा ने ठीक ही कहा कि भलाई की अति का यही परिणाम होता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि सन्तों की महत्ता को संसार अभी तक समझने के योग्य नहीं बना है। सारा संसार प्रतीक्षा कर रहा है कि महात्मा जी करांची और लाहौर में जाकर रामनाम की ऐसी धुन लगावेंगे जिसमें राम-रहीम एक बन जावेंगे। जिससे भारत मां की अखण्डता गूंज उठेगी, अमेरिका और एशिया के अणुबम्ब का प्रत्युत्तर होगा। परन्तु हाय! हमारी यह कल्पना स्वप्न ही रह गई। आज दुनिया ने यह देख लिया कि महात्मा हिन्दु जाति के तारणहार होते हुए भी इस्लाम के लिए बलिदान हुए। मृत्यु से पूर्व किये जाने वाले उपवास ने दुनिया को बता दिया कि मुसलमानों के खलीफा महात्मा गांधी जी हैं मि० जिन्ना नहीं। इतिहास पुकार कर साक्षी देता रहेगा कि मुसलमान भाइयों के अधिकारों की रक्षा के लिये की गई सात शर्तों ने अहिंसा के अवतार की छाती पर हिंसा के चार दाग लगवाये हैं। शहीद के ये चार दाग चारों दिशाओं में पुकार रहे हैं कि यज्ञमया जीवन का अवसान बलिदान की ज्वालाओं में होता है।

यमुना के राजघाट पर धधकती महाराजाधिराज गांधी की चिता कोटि कोटि जिह्वाओं से "महात्मा गांधी की जय" पुकार रही है। इस महापुरुष की राख में से वह लपट उठेगी जो सम्प्रदायवाद को जलाकर मानवता को प्रज्वलित करेगी।

* इति शुभम् *

पूज्य राष्ट्र पिता की स्मृति में

[लेखक—श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा, देहली]

बिड़ला भवन १०-२-४८

यहां देवता वह रहता था,
जिसे पूजता सब संसार।
किया किन्तु इक नर पिशाच ने,
जिसका अति निर्दय संहार॥
देश विदेशों से आते थे,
जन जिसका लेने सन्देश।
जिसमें आत्मा दिव्य अलौकिक,
रहती थी पर सादा वेश॥
सारे सन्तापों को हरती,
थी जिसकी अद्भुत मुस्कान।
प्रश्न विकट जब सन्मुख आते,
जिस पर जाता सबका ध्यान॥
घोर आंधियों के भी भीतर,
जो न कभी होता था म्लान।
शान्त वदन सुस्मित नित रहता,
जिसकी एक निराली शान॥
एक फूंक से उड़ने वाले,
जिसके तन में अद्भुत शक्ति।
जिसे हिला सकती नहिं आंधी,
ऐसी जिसमें अविचल भक्ति॥
सत्य अहिंसा प्रेम दया की,
जिसकी आत्मा निर्मल खान।
पर्वत टूटें विपदाओं के,
पर न जिसे चिन्ता का भान॥

कहां गया वह देव हमारा,
कहां गया प्राणों से प्यारा ?
ऐसे सन्त महात्मा को हा,
उठा गया नाथू हत्यारा॥
नहीं कर सके जब उस उत्तम,
निधि की रक्षा मिल कर सारे।
क्या तुम दर्शन करने आते,
भस्म अस्थि उत्सुकता मारे ?॥
हाय कौन अब राजनीति में,
धर्म भाव को लाएगा ?
कौन विशाल हृदय है ऐसा,
जिसमें विश्व समाएगा।
निर्भय होकर कौन बुराई,
सारी दूर भगाएगा ?
लाग लपेट बिना अब सच्ची,
बातें कौन सुनाएगा ?
अब नहि दर्शन होंगे उसके,
जो भारत की सच्ची शान।
जिसके पावन जीवन ने था,
रक्खा जग में भारत मान।
खो बैठे अब अपने हाथों,
भारतीय जनता की जान।
क्या इससे अब खाक छानते,
फिरते देखें उसका स्थान ?॥

उससे बढ़ कर सच्चा ब्राह्मण,
कौन आज है इस जग में ?
परमेश्वर का चिन्तन जिसके,
होय समाया रग रग में ॥

सच्चे ब्राह्मण की हत्या कर,
नरक घोर तुम पाओगे ।
काला मुख अपना करके क्या,
दुनिया को दिखलाओगे ? ॥

ऐ दानव क्या तुमने पाया,
उसे मार जो बना विदेह ?
उसकी आत्मा अधिक शक्ति से,
काम करेगी निस्सन्देह ।

सारे जग के सज्जन मिल कर,
देते हैं तुमको अभिशाप ।
ऐ पाषाण हृदय क्या तुमको,
नहिं होता अब पश्चात्ताप ? ॥

नहिं रोने धोने से मतलब,
हुआ सन्त का महा प्रयाण ।
करें कृपा जगदीश्वर हो इस,
पीड़ित भारत का कल्याण ।

बनें महात्मा के अनुगामी,
पर उपकारी धीर बनें ।
हो सौहार्द सभी में अविचल,
देश भक्त सब वीर बनें ॥

[बिड़ला भवन नई देहली में १०-२-४८ को पूज्य महात्मा जी के वासस्थान को देख कर निर्मित]

धर्मदेव

महर्षि दयानन्द वचनामृत

(१) एकेश्वरोपासनाः—

जो सब जगत् का कर्ता, सर्व शक्तिमान, सब का इष्ट, सब के उपासना के योग्य, सब का धारण करने वाला, सब में व्यापक और सब का कारण है, जिस का आदि अन्त नहीं और जो सच्चिदानन्द स्वरूप है, जिस का जन्म कभी नहीं होता और जो कभी अन्याय नहीं करता, इत्यादि विशेषणों से वेदादि शास्त्रों में जिस का प्रतिपादन किया है उसी को इष्ट देव मानना चाहिये और जो इस से भिन्न को इष्ट देव मानता है उस को अनार्य अथवा अनाड़ी कहना चाहिये।

[ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका वेद विषय विचार]

(२) ईश्वर विश्वासः—

मैं तो अपना तन मन धन सब कुछ सत्य के ही प्रकाशार्थ समर्पण कर चुका। मुझ से खुशामद कर के अब स्वार्थ का व्यवहार नहीं चल सकता, किन्तु संसार को लाभ पहुंचाना ही मुझे चक्रवर्ती राज्य के तुल्य है।

मैंने इस धर्म कार्य का सर्व शक्तिमान सत्यग्राहक और न्याय सम्बन्धी परमात्मा के शरण में शीश धर के उसी के सहाय के अवलम्ब से आरम्भ किया है।"

[भ्रान्ति निवारण भूमिका पृ० १]

(३) ईश्वरोपासना का फलः—

जैसे शीत से आतुर मनुष्य का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इससे परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना अवश्य करनी चाहिए। इससे इसका फल पृथक् होगा। परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरायेगा और सब को सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है?

(सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समु०)

(४) प्रार्थना से लाभः—

प्रार्थना करने से अभिमान का नाश, आत्मा में आर्द्रता, गुण ग्रहण में पुरुषार्थ और अत्यन्त प्रीति का होना प्रार्थना का फल है।"

(आर्योद्देश्य रत्न माला)

(५) धर्म का त्याग कभी न करोः—

मनुष्यों को योग्य है कि कामसे अर्थात् झूठ से कामना सिद्ध होने के कारण से वा

निन्दा स्तुति आदि के भय से भी धर्म का त्याग कभी न करें न लोभ से, चाहे झूठ और अधर्म से चक्रवर्ती राज्य भी मिलता हो तथापि धर्म को छोड़ कर चक्रवर्ती राज्य को भी ग्रहण न करें। धन्य वे मनुष्य हैं जो अनित्य शरीर और सुख दुःखादि के व्यवहार में वर्तमान होकर नित्य धर्म का त्याग कभी नहीं करते।

(संस्कार विधि गृहस्थाश्रम प्रकरण)

(६) सब जगत् की प्रतिष्ठा धर्म ही है:-

धर्मात्मा का ही लोक में विश्वास होता है, धर्म से ही मनुष्य लोग पापों को छुड़ा देते हैं, जितने उत्तम काम हैं वे सब धर्म में ही लिए जाते हैं। इस लिये सबसे उत्तम धर्म को ही जानना चाहिए।

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका वेदोक्तधर्म-विषय)

(७) देश का सौभाग्यः—

"जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या और वेदोक्तधर्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान् होता है।"

(सत्यार्थ प्रकाश ३ य समु०)

(८) सुखमूल ब्रह्मचर्यः—

जिस देश में इसी प्रकार विवाह की विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य विद्याभ्यास अधिक होता है, वह देश सुखी और जिस देश में ब्रह्मचर्य-विद्याग्रहण रहित बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है क्योंकि ब्रह्मचर्य विद्या के ग्रहण पूर्वक विवाह के सुधार से ही सब बातों का सुधार और बिगड़ने से बिगाड़ होता है।"

(सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समु०)

"ब्रह्मचर्य जो कि सब आश्रमों का मूल है उसके ठीक ठीक सुधरने से सब आश्रम सुगम और बिगड़ने से नष्ट हो जाते हैं।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका वर्णाश्रम विषय)

(९) सत्य का ग्रहण और प्रचारः—

"विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।"

(सत्यार्थप्रकाश भूमिका)

(१०) मानवताः—

जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर पर हानि मात्र करता रहता है। वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।

(सत्यार्थ प्रकाश भूमिका)

(११) सत्याग्रह और असहयोगः—

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानिलाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी

डरता रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व-सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुण रहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति और प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महा बलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्याय-कारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे, इस काम में चाहे उसको कितना ही घना दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक् कभी न होवें।

(सत्यार्थप्रकाश स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश)

(१२) धर्मात्माओं का लक्षण:—

वे ही धर्मात्मा जन हैं जो अपने आत्मा के सदृश सम्पूर्ण प्राणियों को मानें, किसी से भी द्वेष न करें और मित्र के सदृश सब का सदा उपकार करें।

(यजुर्वेद भाष्य ३६। १८ भावार्थ)

॥ इति ॥

महात्मा गांधी वचनामृत

(१) ईश्वरीय सहायताः—

जब मैं सब आशाएं छोड़ चुका हूँ, दोनों हाथ समेट कर बैठ गया हूँ, तब कहीं न कहीं से मुझे सहायता मिल ही गई है। यही मेरी जान कारी है। स्तुति करना, उपासना करना या प्रार्थना करना कुसंस्कार नहीं है। हमारा खाना पीना, चलना फिरना और उठना बैठना जितना सत्य जान पड़ता है, यह उससे भी अधिक सत्य है।

(आत्म-कथा पृ. ११७)

(२) प्रार्थना उपासना का फलः—

यह उपासना या प्रार्थना कुछ शब्दों का आडम्बर नहीं है। प्रार्थना के उच्चारण का स्थान कण्ठ नहीं बल्कि हृदय होना चाहिये। इसीलिये यदि हम अपने हृदय को निर्मल बना लें, हृदय के तारों को ठीक लय में साध लें, तो उससे जो स्वर निकलेगा वह अपने आप ऊपर की ओर जायगा। वह स्वाभाविक एक अद्भुत वस्तु है। विकार रूपी मलिनता को दूर करने के लिये उपासना एक महौषधि है इस विषय में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। पर उस कृपा को प्राप्त करने के लिये अपने अन्दर पूर्ण मात्रा में और सच्ची ।म्रता लाने की आवश्यकता है।

(आत्मकथा पृ. ११७)

(३) ईश्वर व्यक्ति नहीं है। वह तो सर्व-शक्ति मान तथा घट घट व्यापी है। जिस के हृदय में ईश्वर का निवास होगा, उस के चेहरे से तेज टपकता दिखाई देगा। राम नाम ब्लैक मैजिक नहीं है और न वह गणित का फ़ारमूला है। केवल तोते की भांति राम नाम रट लगाने से शक्ति नहीं मिलेगी। उस के लिये तो एकाग्रचित्त हो कर ईश्वर का ध्यान धरना पड़ेगा। परमात्मा का नाम जपने के लिये महात्मा का रूप धारण करना पड़ेगा।

("दिल्ली में गाँधी जी" पृ. ७१ से उद्धृत)

(४) जीवन का ध्येय ईश्वर साक्षात्कारः—

मेरा जीवन क्या है—यह तो सत्य की एक प्रयोग शाला है। मेरे सारे जीवन में केवल एक ही प्रयत्न रहा है—वह है मोक्ष की प्राप्ति—ईश्वर का साक्षात् दर्शन। मैं चाहे सोता हूँ या जागता हूँ, उठता हूँ, या बैठता हूँ, खाता हूँ या पीता हूँ, मेरे सामने एक ही ध्येय है। उसीको लेकर मैं जिन्दा हूँ। मेरे व्याख्यान या लेख और मेरी सारी राजनैतिक हलचल, सभी उसी ध्येय को लक्ष्य में रखकर गतिविधि पाते हैं। मेरा यह दावा नहीं है कि मैं भूल नहीं करता। मैं यह नहीं कहता कि मैंने जो किया वही निर्दोष है। पर मैं एक दावा

अवश्य करता हूँ कि मैं ने जिस समय जो ठीक माना उस समय वही किया। जिस समय जो "धर्म" लगा उस से मैं कभी विचलित नहीं हुआ। मेरा पूर्ण विश्वास है कि सेवा ही धर्म है और सेवा में ही ईश्वर का साक्षात्कार है।

("बापू" पृ. १० में उद्धृत)

(५) शान्ति अन्दर है:—

शान्ति बाहर की किसी चीज से, जैसे दौलत से या महलों से नहीं मिलती। शान्ति अपने अन्दर की चीज है। जब आदमी को इस तरह की शान्ति मिल जाती है तो उस की आंखों, उस के शब्दों और उस के कामों सबमें वह शान्ति टपकने लगती है। इस तरह का आदमी झोंपड़ी में रह कर भी सन्तुष्ट रहता है और कल की चिन्ता नहीं करता। कल क्या होगा वह भगवान् ही जानते हैं। श्री रामचन्द्र को, जो हमारी तरह आदमी थे यह पता नहीं था कि ठीक उस वक्त जब उनके गद्दी पर बैठने की आशा थी उन्हें वनवास दे दिया जाएगा। पर वे जानते थे कि सच्ची शान्ति बाहर की चीजों पर निर्भर नहीं है, इसी लिये वनवास के खयाल का उन पर कुछ भी असर न हुआ।

(म० गांधी का ३०-१२-४७ का प्रार्थना भाषण "हरिजन सेवक" ११-१-४८)

(६) ब्रह्मचर्य का फल:—

पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन का अर्थ है-ब्रह्म दर्शन। ब्रह्मचर्य में ही शरीर रक्षा, बुद्धि रक्षा और आत्मा की रक्षा निहित है। अब ब्रह्मचर्य मेरे लिये कठोर साधना की वस्तु के रूप में नहीं रहा, बल्कि यह एक अपूर्व रसास्वादन का विषय बन गया और उसी के आश्रय में मेरा जीवन परिचालित होने लगा। जब से मुझे उसके सौन्दर्य में नित्य नवीनता दिखाई देने लगी। इस व्रत का ग्रहण करना, तलवार की धार पर चलने के बराबर है, इस बात का अनुभव भी मै नित्य प्राप्त करता हूँ। इसके लिये आज भी सदा सजग रहने की आवश्यकता है।"

(आत्म कथा पृ० ३१३)

(६) मुझे तो ब्रह्मचर्य हीन जीवन शुष्क और पशुवत् मालूम होता है! पशु स्वभावतः ही असंयमी होते हैं। लेकिन मनुष्य का मनुष्यत्व ही यह है कि वह स्वेच्छा से संयम के अधीन होकर रहे। जिस ब्रह्मचर्य में इतनी अद्भुत शक्ति है वह कोई हंसी खेल का विषय नहीं, वह केवल शारीरिक वस्तु नहीं। शारीरिक संयम के द्वारा तो केवल ब्रह्मचर्य का श्री गणेश होता है। परन्तु शुद्ध ब्रह्मचर्य में विचार तक में मलिनता न होनी चाहिये। पूर्ण ब्रह्मचारी के विचार स्वप्न में भी विकार युक्त नहीं होते। जब तक विकार युक्त स्वप्न आते रहें तब तक यह समझना चाहिये कि ब्रह्मचर्य अभी दूर है।

(आत्म कथा २य भाग पृ० ६४)

(८) न्याय युक्त व्यवहारः—

मेरे अनुभव मुझे बताते हैं कि यदि विपक्षी के साथ न्याय का बर्ताव किया जाता है तो अपने पक्ष के लिये न्याय का पाना सहज हो जाता है।'

(आत्म कथा प्रथम भाग पृ० २७३)

(६) ईश्वरार्पित जीवनः—

'ईश्वर जो हुक्म करता है वही मैं करता हूँ। मैं किसी के कहने से कैसे भाग सकता हूँ? किसी के कहने से मैं खिदमतगार नहीं बना। किसी के कहने से मिट नहीं सकता। ईश्वर की इच्छा से मैं जो हूँ, बना हूँ ईश्वर को जो करना है करेगा। ईश्वर चाहे तो मुझे मार सकता है। मैं समझता हूँ कि मैं ईश्वर की बात मानता हूँ। मै हिमालय क्यों नहीं जाता? वहां रहना तो मुझे पसन्द पड़ेगा। ऐसा नहीं कि मुझे वहां खाना, पीना, ओढ़ना नहीं मिलेगा—वहा जाकर शान्ति मिलेगी। मगर मैं अशान्ति में से शान्ति चाहता हूँ नहीं तो उस अशान्ति में मर जाना चाहता हूँ। मेरा हिमालय यहां है। आप सब हिमालय चलें, तो मुझ को भी अपने साथ लेते चलें।

(२६-१-४८ को अर्थात् हत्या से १ दिन पूर्व महात्मा गांधी जी के प्रार्थना सभा में दिये महत्त्व पूर्ण भाषण से उद्धरण हरिजन सेवक ८-२-४८)

(१०) "I will not be a traitor to God to please the whole world" (.Harijan I8 Feb. 1933)

अर्थात् मैं सारे संसार को प्रसन्न करने के लिये भी ईश्वर से द्रोह या उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन न करूंगा।

(११) सत्य का पूर्ण आचरणः—

मैं स्वयम् एक विद्यार्थी हूँ। मुझे कोई स्वार्थ नहीं और जहां कहीं मैं सत्य देखता हूँ उसे मैं ग्रहण कर लेता हूँ और उस पर आचरण करने का प्रयत्न करता हूँ।

I am a learner myself, I have no axe to grind, and wherever I see a truth, I take it up and try to act upto it"

(The mind of Mahatma Gandhi P. 20)

(१२) व्यावहारिक पवित्र जीवनः—

अतिशय तृष्णा त्यागो, पड़ोसी की सेवा करना सीखो, व्यवहार में सचाई सीखो, सहिष्णु बनो। ईश्वर में विश्वास रखो। किसी पर लोभवश आक्रमण न करो। यदि कोई दुष्टता से आक्रमण करता है तो बिना मारे मरना सीखो। कायरता और अहिंसा एक वस्तु नहीं हैं। शौर्य की आत्यन्तिकता का ही दूसरा नाम अहिंसा है। क्षमा बलवान् ही कर सकता है, इस लिये अत्यन्त शूर बनो। अत्यन्त शूर बनने के लिए जिन गुणों की जरूरत है उनकी वृद्धि करो। यदि इतना कर पाओ और ईश्वर में श्रद्धा है तो निर्भय विचरो।"

("बापू" पृ० २० में उद्धृत)

बापू !

" श्री बालकृष्ण शर्मा "

वज्रपात-सा हुआ हृदय पर सुन बापू का दुखद निधन ।
हा सहसा अक्षय-निधि खोकर भारत आज हुआ निर्धन ॥
हे भारत स्वातन्त्र्य समर के सफल अहिंसक सेनानी ।
ओ ! नवयुग निर्माण कला के सिद्धहस्त वर विज्ञानी ॥

युग ने आज मिटाया तुमको, तुमने युग निर्माण किया ।
जन्म दिया जिस मानवता को हाय उसी ने प्राण लिया ॥
कहां आज निस्पृह समदर्शी बापू जैसा राष्ट्र-पिता ।
योग्य-अयोग्य सभी पुत्रों पर एक समान रखी ममता ॥

सरल यत्न से सुलझा देते ग्रन्थि उलझती जब आकर ।
विचलित भाव संभल जाते थे बापू का सम्बल पाकर ॥
दुर्बल-दलित वर्ग की रक्षा कौन करेगा दुख सह कर !
किसे पुकारें समय पड़े पर हा बापू ! बापू कह कर ॥

क्षमा, दया, सद्भाव, अहिंसा, सत्य, प्रेम, संगठन महा ।
परहित-साधन, देवाराधन जीवन का उद्देश्य रहा ॥
मन-मोहन के हाथ रही थी कभी महा-भारत की जय ।
मोहन ही के हाथ रही फिर भारतीय स्वातन्त्र्य विजय ॥

सत्य सनातन आदर्शों का कोटि हृदय कर रहे चयन ।
देव तुम्हारे पद-चिह्नों पर लगे आज शतकोटि नयन ॥
तिमिर जाल की व्यापकता पर जब न सफलता प्राप्त हुई ।
दिव्य-ज्योति बापू के तन की विश्व-ज्योति में व्याप्त हुई ॥

हिन्दू जाति पिता घातक पर युग युग अश्रु बहायेगी ।
यह कलंक की अमिट कालिमा कभी नहीं धुल पायगी ॥

प्राचीन आर्य नाम क्यों न हों

[लेखकः—श्री ज्ञानेश्वर जी भूलियान 'विद्यानिधि', उदयपुर]

ता० ३० जनवरी सन् १९४८ ई० शुक्रवार का दिन संसार के इतिहास में महानतम कलङ्कित दिवस माना जावेगा क्योंकि उस दिन महान् आत्मा का खून करके हिन्दुत्व के नाम पर या हिन्दू राष्ट्र के नाम पर कलङ्क का टीका लगाया गया है। इस बलिदान से समस्त संसार शोक निमग्न हो गया है। संसार का प्रत्येक वह प्राणी जो कि समझदार है, दुनियां की जानकारी जिसको है, वह तो इस बलिदान से क्षुब्ध हो उठा है।

जिस हिन्दुत्व को कुछ लोग सहिष्णु कहते हैं जिसके लिये यह कहा जाता रहा कि इस धर्म में प्रत्येक विचारों का व्यक्ति सुख पूर्वक बिना किसी आत्मग्लानि के जीवित रह सकता है आज उसमें ही आत्मत्यागी, परम सहिष्णु महात्मा को कत्ल कर दिया गया। इसकी प्रतिक्रिया भयंकर रूप में देश व्यापी हो रही है जो कि स्वाभाविक ही है।

इस समय 'हिन्दू' एक ऐसा अजगर है जो संसार की समस्त बुराइयों को अपने में समेटे बैठा है। अच्छाइयों को अपने पास नहीं फटकने देता। भारत में जो भी सुधार करने का उद्योग किया जाता है वह सब इसकी विषाक्त फुंकार से नष्ट हो जाता है। यह हिन्दुत्व तो विषैली नमक की खान बना हुआ है। दुनियां से जो भी अच्छी या बुरी वस्तु इस में आती है वह विषाक्त खारी ही बन जाती है। जो इसको खाता है वह भी तुरन्त ही समाप्त हो जाता है। अब तो आमूल संशोधन की परम आवश्यकता है।

मैं स्वयं सन् १९४३ ई० में हिन्दुत्व के नाम पर चलाई गई राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ नामक संस्था के निकट सम्पर्क में जानकारी के भाव से पहुंचा था। उस समय इस संस्था से हिन्दुत्व का प्रचार इस लिये किया जाता था कि भारत में समस्त यवनों को समाप्त कर हिन्दू राष्ट्र स्थापित किया जाय। मुझ को उस समय भी इस हिन्दू राष्ट्र के अन्तस्तल में मराठा राज्य की गन्ध आई थी। उस समय भी मैं अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को यह कहा करता था कि यह मराठा राज्य कायम करने का प्रयास है। इसमें उत्तर भारत के हिन्दुओं को बेवकूफ बनाया गया है और बनाया जा रहा है।

मुझको तिथि तो स्मरण नहीं, परन्तु सन् १९४३ ई० में किसी दिन नया बांस दिल्ली के आर्य समाज मन्दिर में एक

दिन प्रातः काल आर्य वीर दल की साप्ताहिक रेली हो रही थी। उसमें मुझको भाषण देने के लिये कहा गया। मैं वैसे तो कोई वक्ता नहीं तो भी भाषण देने खड़ा हो गया।

उस भाषण में मैंने यह ही कहा था कि हम को हिन्दू राष्ट्र के लिये या हिन्दू शब्द के लिये उद्योग नहीं करना चाहिए। क्योंकि हिन्दू नाम से जो भी इतिहास हमारे सामने है, वह कोई उज्ज्वल या प्रशंसनीय इतिहास नहीं है।," इत्यादि।

हम भारतीयों का हिन्दू नाम मुसलमानों ने रक्खा है। उनके शब्द कोष में इस शब्द का शब्दार्थ देखें तो पता चलेगा कि इसका तात्पर्य चोर, डाकू, लुटेरा और बदमाश है। यह शब्द हम पर बल-पूर्वक यवन सम्राटों द्वारा थोपा गया है, जब से यह नामकरण मुसलमानों द्वारा किया गया तब से ही 'यथा नाम तथा गुणाः' वाली कहावत पूर्ण रूप से चरितार्थ हो रही है। तब से हम में अनेक ईश्वरों, अनेक सम्प्रदायों, अनेक धर्मग्रन्थों और अनेक पूजा की पद्धतियों की सृष्टि हो गई। हिन्दूधर्म का मानने वाला कूप मण्डूक हो गया। चौके चूल्हे तक ही धर्म की सीमा निर्धारित हो गई। हिन्दू-धर्म में बहिष्कार २ ही रह गया। श्री० डा० भगवान् दास जी के भावों में कहा जाय तो "हिन्दू वह है जो कि अपने को, अपने विचारों को, धर्म को, जाति को, संस्कृति को ऊँचा समझता हो। इसके विपरीत दूसरों को उसके धर्म को, विचारों को, जाति को, संस्कृति को नीचा समझता हो।" अपने आप चाहे जड़ मूर्ख हो, काला अक्षर भैंस बराबर, कनिष्ठ वर्ण के बर्तन मांजता हो, उसके जूते झाड़ता हो तो भी आज का हिन्दू कनिष्ठ वर्ण के विद्वान् से भी अपने को ऊँचा ही समझेगा।

मेरे वहां पर एक वृद्ध हिन्दू ब्राह्मण आता है जो कि पढ़ा लिखा नहीं है। हमारे यहां भी उसने बहुत समय तक खाना बनाया है, दूसरे स्थानों पर या तो उसने चौकीदारी की है या चपरासगिरी की है और इस समय भी वह श्रीमान ताऊ जी (पिता के बड़े भाई) के पास फाटक का चौकीदार है। श्रीमान् ताऊ जी से उमर में छोटा है, परन्तु वह जब हमारे घर में आता है तो हम सब को आशीर्वाद देता हुआ आता है। स्वयं वह किसी को भी अभिवादन नहीं करता। वह हम ब्राह्मणों को भी अपने से नीच समझता है।

ऐसी भावनाओं से यह प्रकट होता है कि जब से हमारा हिन्दू नाम रखा गया है तब ही से हमारे में श्रेष्ठता के गुणों का ह्रास होता जा रहा है। जो हमारे में आर्य्यत्व के गुण थे वे सब लुप्त हो गये।

जब से हमारा हिन्दू नाम पड़ा तब से हम विशृङ्खल हो गये। हम भाई भाई से घृणा करने लगे। मानवता का लोप हो गया। हमारे में यह विचार घर कर गया

कि ब्राह्मण चाहे कितना ही दुराचारी, पतित और मूर्ख हो वह सदाचारी ऊँचे विचारों वाले विद्वान् क्षत्रिय से ऊँचा है। वह दुराचारी मूर्ख ब्राह्मण उस क्षत्रिय को आशीर्वाद ही देगा । इस प्रकार से हिन्दू नामधारी भारतीय का प्रत्येक दिशा में पतन हुआ है । जिस प्रकार से चोर, डाकुओं का नैतिक मापदण्ड कुछ नहीं होता उसी प्रकार से अनेक हिन्दुओं का भी नैतिक मापदण्ड कुछ नहीं रहा ।

हमारे प्राचीन आर्य इतिहास में (जो कि इतिहास एक अरब सत्तानवे कोटि वर्षों से भी अधिक पुराना है) जो महत्ता मिलती है वह हमारे हिन्दू काव्य के इतिहास में नहीं मिलती है। हिन्दू का तो धर्म, दर्शन, विज्ञान, राजनीति तथा चरित्र का दिवाला ही पिट गया है । आर्यों के इतिहास में मनु, सत्य हरिश्चन्द्र, रघु, राम, हनुमान, भरत और भगवान् कृष्ण जैसी विमल विभूतियां हैं वे हिन्दू इतिहास में कहाँ ? हिन्दू काल के इतिहास के महाराणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह जी तथा छत्रसाल आदि तो गिरे हुए काल के सम्राट् अशोक, सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य और विक्रमादित्य की भी तुलना में नहीं ठहर सकते । कुछ लोग कहेंगे कि सन्त कबीर, तुलसीदास, गुरु नानक, रामानुजाचार्य तथा समर्थ गुरु रामदास जी जैसी अनेक विभूतियां हुई हैं । परन्तु यदि ध्यान से देखा जावे तो इन सन्तों, दार्शनिकों या राजनैतिक गुरुओं ने किसी भी विशेष बात का उपदेश नहीं दिया । ये तो अत्रि, भृगु, वशिष्ठ, विश्वामित्र, बाल्मीकि, कणाद, गौतम, व्यास, श्री कृष्ण, विदुर, शुक्राचार्य तथा कौटिल्य चाणक्य के बताये मार्ग का भी पूरा पूरा अनुकरण नहीं कर सके। जब कि भारत में आर्य वैदिक ज्ञानमय धर्म का लोप होकर बौद्ध धर्म का प्रसार हो रहा था तब उन बौद्धों ने धर्म परिवर्तन तो अवश्य किया परन्तु स्वकीय जाति का नाम आर्य ही रक्खा ।

विगत चौदह सौ साल में हिन्दू नामधारी जाति ने कोई गौरव पूर्ण इतिहास संसार के सामने नहीं रक्खा । कलंकित इतिहास तो भरा पड़ा है। जिससे संसार के सामने नतमस्तक होना पड़ता है। अब इस हिन्दू ने इस महान आत्मा की हत्या करके अपने को और भी कलंकित कर लिया है । अब तो हिन्दू कहलाना भारतीय के लिये लज्जास्पद है। अब तो प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है कि वह हिन्दू नाम की अपेक्षा आर्य नाम को चुने क्योंकि इसका इतिहास भी उज्ज्वलतम है। आर्य नाम का जो इतिहास है वह संसार में अपना समकक्ष नहीं रखता है। उस पर जो यह लाञ्छन लगाया जाता है कि आर्यों ने भारत में आकर द्राविड़, कोल और भील आदि जातियों को परास्त करके उनसे राज्य छीना था उनको दास बना कर रक्खा इसमें न कोई तथ्य ही है और न कोइ इसमें प्रमाण ही मिलता है।

हमारे ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, रामायण और महाभारतादि ऐतिहासिक ग्रंथों में कहीं भी इसका पता नहीं चलता। नाहीं पारसियों, यहूदियों, बौद्धों, नास्तिकों, ईसाइयों और मुसलमानों के किसी धार्मिक या ऐतिहासिक ग्रन्थ में इसका प्रमाण मिलता है। यह तो अंग्रेजों की झूठी कल्पना थी। यह कल्पना इस लिये की थी कि भारतीय आपस में लड़ते रहें। हम राज्य करते रहें।

अतः यह अधिकार पूर्वक कहा और लिखा जा सकता है कि आर्यों का इतिहास उज्वल है। हमें उस प्राचीन नाम को ही अपनाना चाहिये।

इसी नाम से हम ईरानियों और अफगानियों आदि को शीघ्र ही अपने साथ मिला सकते हैं। बौद्ध तो हमारे साथ ही हैं। क्योंकि वे भी आज तक जाति में अपने आप को आर्य ही मानते हैं। ईरान का परशिया नाम हटा कर ईरान नाम रखना इसी का द्योतक है। अभी इस मास पूर्व दिल्ली के पुराने किले में एशिया के २९ राष्ट्रों की एक कान्फ्रेंस हुई थी। उसमें हमारे पड़ौसी अफगानिस्तान के काबुली विश्वविद्यालय के वाइसचान्सलर श्री डा० अब्दुल मजीद खान अफगान प्रतिनिधि के रूप में पधारे थे। जो कि Asian Relation Organisation के सत्ताईस सदस्यों में से एक सदस्य हैं। यह भी स्मरण रहे कि इस एशियन रिलेशन आर्गेनाइजेशन के दो साल के लिये प्रधान श्री पण्डित जवाहरलाल जी नेहरू सर्व सम्मति से निर्वाचित किये गये हैं। श्री डा० अब्दुल-मजीद खान ने एक वक्तव्य में कहा था कि हम लोग आर्य जाति से हैं। जब हम पर अरब के मुसलमानों ने हमला किया था तब हम बौद्ध धर्म में दीक्षित थे। तब हमको बलात् तलवार के जोर से मुसलमान बनाया गया था। वास्तव में हम आर्य जाति से हैं। इसी लिये मैं 'आर्याना', नाम का समाचार पत्र निकाल रहा हूँ।

सारांश यह है कि यदि हम हिन्दू शब्द को तिलाञ्जलि देकर गौरवमय "आर्य" शब्द को अपनावें तो अधिक श्रेयस्कर होगा। हमारा परिवार बड़ा होगा, गौरव भी बढ़ेगा।

आङ् उपसर्ग पूर्वक ऋ-गतौ धातु से भाव में ण्यत् प्रत्यय करने पर 'आर्य' शब्द बनता है। गतौ से तात्पर्य ज्ञान, गमन और प्राप्ति है। अर्थात् प्रथम प्रत्येक वस्तु का ज्ञान, दूसरे मानव लक्ष्य के लिये गमन अर्थात् गति—उद्योग करना, तीसरे उस लक्ष्य को प्राप्त कर लेना। इतना विशाल और ऊंचे भावों वाला जाति बोधक शब्द संसार में दूसरा नहीं है। उदाहरण के रूप में ले लीजिये।

(१) मुसलमानः—जो मुसल्लाए ईमान हो अर्थात् दृढ़ विश्वासी हो।

(२) ईसाईः—जो ईसा का अनुयायी हो।

बौद्धः—जो बुद्ध का अनुयायी हो।

इस प्रकार से सारे धर्मों, सम्प्रदायों और जातियों के नाम हैं। सारे शब्द या तो एकार्थक हैं या किसी व्यक्ति विशेष के बोधक हैं। आर्य शब्द के समान भावपूर्ण विशाल अर्थों वाले नहीं हैं।

किन्हीं व्यक्तियों का विचार है कि "मानव जाति", एक नया नामकरण किया जाय। यह शब्द भी एकार्थ का ही बोधक है। अर्थात जो मनन करता हो या विचारक हो। यह भी मनुष्य के एक अङ्ग का ही दिग्दर्शन कराता है। आर्य शब्द के समान सर्वाङ्गीण एवं भाव पूर्ण नहीं है। दूसरे नया नामकरण करना भी एक नया सम्प्रदाय चलाने के समान ही है। इस नयेपन के प्रेम ने ही आज इतनी अशान्ति फैला रक्खी है।

अतः सारांश यह है कि हम को भाव हीन, नीचता के द्योतक, गौरवमय इतिहास से शून्य हिन्दू शब्द को छोड़ कर भावपूर्ण, उच्चता के द्योतक, गौरवमय इतिहास वाले 'आर्य', शब्द को ही अपनाना चाहिए।

इति।

सार्वदेशिक के ग्राहकों से

सार्वदेशिक पत्र सम्बन्धी पत्र-व्यवहार करते समय कृपया अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी

(धार्मिक, सामाजिक, दार्शनिक, राजनैतिक दृष्टि से तुलनात्मक अनुशीलन)

[लेखक—पं० धर्म देव जी विद्यावाचस्पति स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा देहली]

अद्भुत समानताएं

[१]

महर्षि दयानन्द और महात्मा मोहन दास गांधी ये दोनों कलियुग की उज्ज्वल विभूतियों में से हैं जिनका नाम जगत के धार्मिक और राजनैतिक इतिहास में सदा आदर की दृष्टि से लिया जाएगा। इन दोनों महा पुरुषों के जीवन, कार्य और शिक्षाओं के विषय में अनेक आश्चर्य-जनक समानताएं स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरणार्थः—

(१) ये दोनों महापुरुष गुजरात प्रान्त और काठियाड़ में उत्पन्न हुए। महर्षि दयानन्द का जन्म टङ्कारा और महात्मा गांधी का पोरबन्दर में हुआ।

(२) दोनों के पिता रियासतों के अधिकारी थे। महर्षि दयानन्द के पिता श्री कर्षन जी त्रिवेदी मौरवी राज्य के कर विभाग के एक अधिकारी और महात्मा मोहन दास गान्धी जी के पिता श्री कर्मचन्द जी गान्धी राजकोट पोरबन्दर आदि रियासतों के दीवान रह चुके थे।

(३) दोनों पक्के ईश्वर विश्वासी थे। दोनों महा पुरुष ईश्वर के सच्चे भक्त थे। भगवद् गीता में प्रतिपादित

अद्वेष्टा सर्वभूतानां, मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः, समदुःखसुखः क्षमी॥
सन्तुष्टः सततं योगी, यतात्मा दृढ़निश्चयः॥

अर्थात् किसी भी प्राणी से द्वेष न करना, सब को मित्र समझना, दुःखितों पर दया, ममता और अहङ्कार का परित्याग, सुख और दुःख में समानता, क्षमा, प्रत्येक अवस्था में सन्तुष्ट रहना, सफलता और असफलता में समता, संयम, दृढ़ निश्चय आदि सच्चे ईश्वर भक्त के लक्षण दोनों महात्माओं में समानरूप से पाए जाते थे। दोनों महा पुरुषों के जो वचनामृत इसी अङ्क में अन्यत्र संगृहीत किये गये हैं उन से यह स्पष्ट है कि उनका ईश्वर पर विश्वास कितना अचल था।

(३) दोनों महात्मा ईश्वर भक्त होने के अतिरिक्त आदर्श कर्म योगी थे। वेदादि सत्यशास्त्रों के आधार पर भगवद्-गीता में सात्विक कर्ता का जो लक्षण पाया जाता है किः—

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी, धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्धय सिद्धयोर्निर्विकारः, कर्ता सात्विक उच्यते॥ १८॥

अर्थात् सात्विक कर्ता वह कहाता है जो आसक्ति रहित है, जिस में अहङ्कार नहीं, जो धैर्य और उत्साह से सम्पन्न है, तथा सफलता अथवा असफलता से जिस में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता। यह लक्षण दोनों महात्माओं मे पूर्णतया चरितार्थ होता था, इस लिये दोनों आदर्श कर्म योगी थे। जीवन पर्यन्त समाज और देश की सेवा में दोनों ने अपना तन मन धन समर्पित कर दिया था।

(४) दोनों महात्माओं का जीवन सरलता, निर्भयता, नम्रता, सत्य, अहिंसा और तप से परिपूर्ण था:—

सत्य के निर्भयता पूर्वक प्रचार के कारण महर्षि दयानन्द के कई विरोधी हो गये थे जिन्होंने उन्हें कई बार विष देकर मारने तथा अन्य प्रकार से सताने का प्रयत्न किया और अन्त में इसी विष के कारण उनका बलिदान हुआ पर उन्होंने सत्य के प्रचार में कभी संकोच न किया। महात्मा गांधी जी का सबसे अधिक बल सत्य पर था और वे ठीक ही कहा करते थे कि मेरे अन्दर जो कुछ शक्ति है वह सत्य के व्रत के पूर्णतया धारण के कारण है। ईश्वर पर पूर्ण विश्वास के कारण दोनों महात्मा सर्वथा निर्भय होकर कर्तव्य पालन में तत्पर थे। दोनों अत्यन्त सरल और नम्र थे। अपनी त्रुटि स्वीकार करने में वे संकोच न करते थे। महर्षि दयानन्द अपने समय के सबसे बड़े वेद शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् थे किन्तु जब एक १३, १४ वर्ष के संस्कृत पाठशाला के विद्यार्थी ने उनके भाषण में एक अशुद्धि का निर्देश किया तो उन्होंने उसे सरल स्वभाव से स्वीकार कर के धन्यवाद दिया। महात्मा गांधी जी भी सरल स्वभाव से अपनी ब्रह्मचर्यादि विषयक त्रुटियों का स्पष्ट निर्देश करने में संकोच न करते थे। उदाहरणार्थ 'ब्रह्मचर्य के अनुभव' नामक पुस्तक में महात्मा जी ने सरल भाव से लिखा है कि:—पूर्ण ब्रह्मचारी पूर्णतया निष्पाप होते हैं। इस लिये वे परमात्मा के निकट होते हैं। वे परमात्मा के समान होते हैं। ब्रह्मचर्य का ऐसा पूर्ण पालन सम्भव है इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। मुझे यह कहते खेद होता है कि इस प्रकार की पूर्णता मैं प्राप्त नहीं कर पाया हूँ किन्तु उसे प्राप्त करने के लिये मैं अनवरत उद्योग कर रहा हूँ और इस जीवन में ही इसे प्राप्त करने की आशा मैंने कभी नहीं छोड़ी है। जागने की दशा में मैं अपनी चौकसी पर रहता हूँ। मैंने शरीर पर शासन प्राप्त कर लिया है। वाणी में भी मेरा काफी संयम है किन्तु विचारों के सम्बन्ध में मुझे अभी बहुत कुछ करना बाकी है। जब मैं अपने विचारों को किसी खास विषय पर जमाना चाहता हूँ तब दूसरे विचार भी मुझे छेड़ते रहते हैं और उनमें आपस में

टक्कर होती है। फिर भी मैं जागने के घण्टे में उनकी टक्कर को रोक लेता हूँ। यह कहा जा सकता है कि मैं उस दशा को पहुंच गया हूँ जहाँ मैं अपवित्र विचारों से मुक्त हूँ किन्तु मैं सोते समय अपने विचारों पर उतना ही संयम नहीं रख पाता हूँ। सोते में हर प्रकार के विचार मेरे मन में घुस आते हैं और मैं ऐसे भी सपने देखता हूँ जिनकी आशा नहीं होती, कभी कभी पहले के भोगे हुए आनन्दों की इच्छा उमंग आती है। जब वे इच्छाएं अपवित्र रहती हैं तब सपने भी बुरे होते हैं, यह पापमय जीवन की निशानी है। मेरे पाप के विचार घायल हो गये हैं लेकिन मरे नहीं हैं। यदि मैंने अपने विचारों पर पूरा काबू पा लिया होता तो पिछले दस साल में जो मुझे प्लूरिसी, डिसेन्ट्री और अपेण्डीसाइटीज की बीमारियां हुई हैं वे न हुई होतीं। मेरी धारणा है कि जब आत्मा निष्पाप होती है तो यह शरीर भी जिसमें वह निवास करती है स्वस्थ रहता है।" (ब्रह्मचर्य के अनुभव—म० गांधी जी कृत पृ० ४-५)

"इसी लिये मैं चाहता हूँ कि मुझ पर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पालन का आरोपण करके कोई मिथ्यावादी न हो। नैष्ठिक ब्रह्मचारी का तेज तो मुझ से अनेक गुण अधिक होना चाहिये। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं। हां यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूँ। (ब्रह्मचर्य के अनुभव पृ० ३१)

"मेरे दूषित स्वप्नों के सम्बन्ध में भी यही समझना चाहिये।" सम्पूर्ण ब्रह्मचारी न होने पर भी यदि वैसा करने का दावा करूं तो उससे संसार को बड़ी हानि होगी उससे ब्रह्मचर्य कलङ्कित होगा। सत्य का सूर्य म्लान होगा। ब्रह्मचर्य का मिथ्या दावा करके मैं ब्रह्मचर्य का मूल्य क्यों घटाऊं? आज तो मैं यह स्पष्ट देख रहा हूँ कि ब्रह्मचर्य के पालन के लिये मैं जो उपाय बताता हूँ वे सम्पूर्ण नहीं हैं। सब लोगों को वे सम्पूर्णतया सफल नहीं होते हैं क्योंकि मैं स्वयं सम्पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हूँ।" इत्यादि (ब्रह्मचर्य के अनुभव पृ० ३८)

तीन प्रकार का जो तप शारीरिक, वाचिक, मानसिक भगवद्गीता के १७वें अध्याय में बताया गया है उसका अनुष्ठान दोनों महात्माओं ने किया था।* उस तप में विद्वानों की पूजा, सरलता, पवित्रता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, प्रिय, हित कारक वचन, स्वाध्याय का अभ्यास, मन की

* देवद्विज गुरु प्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च, शारीरं तप उच्यते॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं, प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव, वाङ्मयं तप उच्यते॥
मनः प्रसादः सौम्यत्वं, मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्, तपो मानसमुच्यते।
गीता ३।१

प्रसन्नता, शान्तता, मुनियों की तरह आत्मा परमात्मा का चिन्तन, आत्म संयम, चित्त शुद्धि इत्यादि सम्मिलित हैं। इनमें से ब्रह्मचर्य के विषय में श्री पूज्य महात्मा गान्धी जी महर्षि दयानन्द जी को आदर्श रूप मानते थे। उन्होंने महर्षि दयानन्द को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए लिखा था कि "महर्षि दयानन्द के लिए मेरा मन्तव्य यह है कि वे हिन्द के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में, श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनका ब्रह्मचर्य, उनकी विचार-स्वतन्त्रता, उनका सबके प्रति प्रेम, उनकी कार्य कुशलता इत्यादि गुण लोगों को मुग्ध करते थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत ही पड़ा है। (दिव्य दयानन्द पृ० ५)

एक दूसरे स्थान पर उन्होंने अंग्रेजी में लिखा कि—

'Dayanand's character is at once my envy and distress." (Quoted in 'An interpretation of Dayananda' by prof. Tarachand M.A. P. 13)

अर्थात् दयानन्दजी का चरित्र मेरे लिये ईर्ष्या और दुःख का विषय है अर्थात् अनुकरणीय है किन्तु खेद का विषय इस लिये कि मै उसका पूर्णतया अनुसरण नहीं कर सका। (क्रमशः)

कन्याओं का यज्ञोपवीताधिकार विवेचन

[लेखक—अनुसन्धान विद्वान श्री ठा० शिवपूजन सिंह जी सिद्धान्त भास्कर, कानपुर]

[गताङ्क से आगे]

कतिपय प्रकाण्ड विद्वानों के विचार

महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं:—"द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य कुल अर्थात् अपनी २ पाठ शाला में भेज दें १६।"

इस पर कविरत्न श्री मेधाव्रताचार्य अपने महाकाव्य १७ में कहते हैं:—

"स यम्महिम्ना महिलाजनः पुनः,

स्ववेदविद्याध्ययनाधिकारवान्। यसुमन्त्र-शिक्षामुपवीतदीक्षया,

प्रपद्य भेजे निज गौरवश्रियम् ॥४७॥'

इसी ऋषि ने स्त्रियों को उपनयन तथा वेदाध्ययन का सम्पूर्ण अधिकार प्रदान किया, और फिर से प्राचीन काल की तरह मातृ समाज को उसके गौरव पद पर पहुँचा दिया।

पुनः महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं:—"कन्या भी सुन्दर वस्त्र से शरीर को आच्छादित और यज्ञोपवीत धारण करके विवाह शाला में आवे १८।"

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने पूना के तृतीय व्याख्यान में कहा था:—

स्त्रीलोग आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर रहती थी और साधारण स्त्रियों के भी उपनयन और गुरुगृह में वास इत्यादि संस्कार होते थे यह सबको विदित ही है। गार्गी सुलभा, मैत्रेयी, कात्यायन्यादि बड़ी २ सुशिक्षिता स्त्रियाँ होकर बड़े २ ऋषि मुनियों की शङ्काओं का समाधान करती थीं १९।"

पुनः सप्तम व्याख्यान में:—

"पुरुषों को विद्यारम्भ के समय उत्साह हो इस उद्देश्य से व्रतबन्ध विषय में विशेष नियम ठहराये हैं। स्त्रियों को भी विद्या

---

१६. सत्यार्थ-प्रकाश' तृतीय समुल्लास.

१७. दयानन्द दिग्विजय' महाकाव्य (प्रथम संस्करण) प्रथमः सर्गः पृष्ठ १६.

१८ "संस्कार-विधि" पृष्ठ १०७ पंक्ति ८. (संवत् १९३३ वि. की मुद्रित)

१९. "उपदेश-मञ्जरी" पृष्ठ २७--२८ (सन् १९११ ई० में महाशय श्याम-लाल वर्मा आर्य बुकसेलर, बांस बरेली द्वारा प्रकाशित)

सम्पादन का अधिकार पहिले था और उसके अनुकूल उनका भी व्रतबन्ध संस्कार पूर्व में करते थे २०।"

महर्षि की इस उदारता पर श्रीयुत रङ्ग अय्यर एम. एल्. ए. ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक फादर इण्डिया" (Father India) में लिखा है:—"In the 19th century Rishi Dayanand Saraswati came as a Massiah to preach the restoration of women to their ancient glory."

अर्थात्—१६ वीं शताब्दी में स्त्रियों की प्राचीन महत्ता तथा गौरव को स्थापित करने के लिए ऋषि दयानन्द ने मसीहा के रूप में जन्म लिया।

श्री स्वामी भूमानन्द जी सरस्वती एम. ए. लिखते हैं:—

That women also were bound to wear sacred thread as a duty and not a privilege, can be gathered from the following texts Tthen the bridegroom, bringing forward the bride wearing the sacred thread and covered with a mantle, should recite.' Ladies wearing the sacred thread as well as those not wearing it."

२०. वही, पृष्ठ १२१.

In Parashara-Madhava and the Harita smriti works of the times when India had fallen from her high position, it is stated that women should wear the sacred thread and study the Vedas.

Bana in his Kadambari describes Mahashveta the principal female character in the work as wearing the sacred. २१

अर्थात्—"स्त्रियों के लिए भी यज्ञोपवीत धारण करना कर्त्तव्य था और कोई विशेष रियायत न थी, जैसा कि निम्न लिखित वाक्यों से प्रकट होता है-"तब वर दुलहिन को जो वस्त्र और यज्ञोपवीत से आच्छादित है उसको आगे लाकर यह मंत्र पढ़े।' (गोभिल गृह्यसूत्र "प्रावृतां यज्ञोपवीतिनी मभ्युदानयन् जपेत १।१।१६) "स्त्रियों के यज्ञोपवीत होते भी हैं, नहीं भी होते।" "स्त्रिय उपनीता अनुपनीताश्च (पारस्कर हरिहर भाष्य पृ. ३२२) पराशर-माधव और हारीत स्मृति भी जो भारत के अधः पतन के समय के ग्रन्थ हैं, वर्णन करते हैं कि स्त्रियों को यज्ञोपवीत पहनना तथा वेदाध्ययन करना चाहिये।

२१. Ecclesia divina' (वैदिकी लोक व्यवस्था) P. 78.

बाणकवि, अपनी कादम्बरी में यज्ञोपवीत धारण की हुई महाश्वेता का वर्णन करता है।

श्री रामकृष्ण अद्वैताश्रम, लक्सा, काशी के मठाधीश श्रीस्वामी गङ्गानन्द जी अपनी पुस्तक २२ में लिखते हैं:—"गोभिल गृह्य-सूत्र तथा और कई एक स्मृति में ब्रह्मवादिनी तथा कुमारी स्त्रियों के लिए भी उपवीत धारण पूर्वक वेदाध्ययनादि की विधि पाई जाती है। यथा-"प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीम् गोभिल २।१।१ इस प्रकार इस विषय मे और भी स्मृति वाक्य हैं, स्थानाभाव से लिखा नहीं जाता। इन सब स्मृति-वाक्यों के अवलोकन करने से विदित होता है कि प्राचीन काल में इस देश की स्त्रियाँ, विशेषतः कुमारी और ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ शास्त्र-विधिके अनुसार यज्ञोपवीत धारण करके वेदाध्ययन और होमादि क्रिया किया करती थीं। उस समय भारतीय विदुषी रमणियों में से गार्गी और मैत्रेयी वेदनामक महान तीर्थ में गोता लगाकर परम पवित्र हुई थीं और जगत् के अशेष कल्याण साधन करके आर्य रमणियों का मुखोज्ज्वल किया करती थीं"

पं० चमूपति एम. ए. लिखते हैं:—

अगर अपनी पत्नी को धर्मके कामों में शामिल करना है, उनकी मदद से फ़ायदा उठाना है तो ख़ाह उनके फ़ायदे के ख्याल से ख़ाह ख़ुदगर्ज़ी के जज़्बा के मातहद उनको अपना यज्ञोपवीत धारण करा देना चाहिये २३।"

श्री काशीशेष वेङ्कटाचल शास्त्री लिखते हैं:—"ब्राह्मणेन षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत तमध्यापयीत इत्यादि। अत्र ब्राह्मण पदं जातिपरम् तेन ब्राह्मणजातीयानां पुंसामिव स्त्रीणामपि तज्जातीयानां तदध्ययनमध्यापनम् उपनयनं च भवति २४।"

अर्थात् ब्राह्मण को छः अङ्ग वाला वेद पढ़ना व जानना चाहिए। आठ वर्ष के ब्राह्मण का उपनयन करावे, और उसे पढ़ावे। यहां पर ब्राह्मण पद जाति परक है। इसलिए ब्राह्मण जातीय पुरुषों की तरह तज्जातीय स्त्रियों का भी अध्ययन, अध्यापन और उपनयन होता है।

वैदिक पुरातत्त्वान्वेषक श्री पं० विश्वनाथ शास्त्री वेद-व्याकरणतीर्थादि अपनी पुस्तक २५ में लिखते हैं:—"इतिहास

२२. "प्राचीन हिन्दू धर्म" द्वितीय संस्करण पृष्ठ ११२-११३.

२३. "वैदिक डिप्लोमा" उर्दू, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ११ कॉलम १.

२४. "कन्योपनयन संस्कारः" पृष्ठ ५७. (विक्रमाब्द १९६५ में धर्म दिवाकर प्रेस, मुरादाबाद में मुद्रित)

२५. "यज्ञोपवीत-मीमांसा" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३१.

के पन्ने अगर खुलासा नहीं, तो सन्ध्या आदि के विधान को कई एक राजपूत समृद्ध शालिनी ललनाओं के द्वारा दिखा कर यह मानने को प्रमाणित करते हैं कि सोलहवीं सदी तक भी भारत में कहीं २ स्त्रियों में यज्ञोपवीत धारण के विधान प्रचलित थे।"

आचार्य रामदेव जी अपने इतिहास २६ में लिखते हैं:—"कन्याओं का यज्ञोपवीत और ब्रह्मचर्य:-जिन ऋषिओं ने वेद की आज्ञा "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दतेपतिम्" (अर्थात् ब्रह्मचर्य के द्वारा ही कन्या युवा पति को प्राप्त करे) को शिरोधार्य कर लिया था उन्होंने समाज के बीच घोषणा कर दी थी कि पुत्रों की तरह कन्याओं को भी ब्रह्मचर्य धारण करने का पूरा अधिकार है। एवं प्राचीन आर्यों की वही कन्याएं विवाह योग्य मानी जाती थीं जिनका ब्रह्मचर्य व्रत पूर्ण हो गया हो। आश्वलायन श्रौत सूत्र में स्पष्ट लिखा है "समानं ब्रह्मचर्यम्" अर्थात् पुत्र और पुत्री दोनों का ब्रह्मचर्य धारण करने में समानाधिकार है।

गोभिल गृह्यसूत्र में लिखा है 'प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयन् जपेत सोमोऽददद् गन्धर्वायेति" अर्थात् जो कन्या वस्त्रादि से अच्छादित यज्ञोपवीत धारण की हुई हो उसे (विवाह मण्डप में) लावे और "सोमोऽददद् गन्धर्वाय........." इस वेद मन्त्र को पढ़े। इस सूत्र से यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मचर्य धारण करने के समान कन्याओं का भी यज्ञोपवीत हुआ करता था। ऐसा न होता तो विवाह मण्डप में जाने वाली कन्या 'यज्ञोपवीतिनी' कैसे कहलाती? पारस्कर गृह्यसूत्र हरिहर भाष्य में लिखा है 'स्त्रिय उपनीता अनुपनीताश्च' अर्थात् स्त्री यज्ञोपवीतिनी तथा बिना जनेऊ धारणकिए हुए हों। इस से बोध होता है कि पारस्कर भाष्य के समय स्त्री शिक्षा का प्रचार कुछ कम हो गया था। वेद मन्त्र की जो शिक्षा थी कि "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" उसका अनुसरण ढीला हो गया था। ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने के समय यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक समझा जाता था अतः जो स्त्री 'अनुपनीता' अर्थात् बिना जनेऊ वाला होती होगी वह विधिवत् ब्रह्मचर्य धारण न करने के कारण विद्यावती भी कम ही होती होगी।'

श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० लिखते हैं:—"....यज्ञोपवीत आदि शेष सभी संस्कार स्त्रियों, पुरुषों आदि सभी मनुष्यों के करने चाहियें २७।"

२६. "भारतवर्ष का इतिहास" (वैदिक तथा आर्ष पर्व, तृतीयावृत्ति, पृष्ठ १२८-१२६.

२७. "वैदिक सिद्धान्त" प्रथम संस्करण पृष्ठ ३२.

पं० राजाराम शास्त्री लाहौर लिखते हैं:—"...वैदिक समयमें कन्याओं का उपनयन होता था, उनको यज्ञोपवीत दिया जाता था, और वे ब्रह्मचर्य धारण कर के वेद पढ़ती थीं। जब प्रचलित भाषा वैदिक संस्कृत से बहुत भिन्न हो गई, और विद्याध्ययन का उत्साह घट गया, तब कोई २ स्त्रियां तो ब्रह्मवादिनी होती रहीं, पर सर्व साधारण को विवाह से पूर्व यथा कथञ्चित् उपनयन की रीति पूरी करके यज्ञोपवीत दे दिया जाता था, जैसा कि इस समय कई जातियों में पुरुषों में भी ऐसी ही रीति पाई जाती है २८।"

डा० भगवान् दास जी एम. ए. काशी लिखते हैं:—"प्राचीन काल में स्त्रियों को भी विधिवत् उपनयनादि करके वेदाध्ययनरूप ब्रह्मचर्य कराया जाता था, पर समय बदलने से यह प्रथा बन्द हो गई है। यदि पुनः बदल कर प्राचीन अवस्था के सदृश अवस्था पुनः उत्पन्न हो जाय, तो वह प्रथा भी पुनः प्रचलित करनी पड़ेगी। जैसा पश्चिम में देख पड़ता है कि लड़कियों की भी विधिवत् शिक्षा होती है। भारतवर्ष में भी इस ओर समाज का ध्यान बढ़ रहा है २९।"

श्रीमदन लाल खेमका, मुंगेर अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ३० में लिखते हैं:— वैदिक संस्कार और उच्च शिक्षा पद प्राप्त करने का भी उन्हें (स्त्रियों को) सम्पूर्ण अधिकार था, कुमारिकाओं के तो उपनयन संस्कार होते थे, जैसा कि यम और हारीत ग्रन्थों के देखने से पता लगता है। यज्ञोपवीत धारण कर वे वेदाध्ययन और अग्निहोत्र की अधिकारिणी बन जाती थीं और यजमान-पत्नी बिना यज्ञ कार्य अधूरा समझा जाता था।"

श्री कर्मयोगी गणेशानन्द जी गीतार्थी लिखते हैं:—वेद व्यास के पिता पराशर ऋषि ने अपने स्मृति शास्त्र में विधान किया है, कि 'सद्योवधूनां तु उपस्थिते विवाहे कथंचित् उपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः"=किन्तु सद्योवधुओं का विवाह के समय नाममात्र उपनयन-संस्कार करा कर विवाह होना चाहिए ३१।" (वस्तुतः यह वचन हारीत धर्म सूत्र का है—सम्पादक)

(शेष अगले अङ्क में)

२८. "शास्त्र-रहस्य" प्रथम भाग पृष्ठ ८६ (सन १९१४ ई० आर्ष ग्रन्थावली, लाहौर द्वारा प्रकाशित)

२९. "समन्वय" (द्वितीय संस्करण दिल्ली) पृष्ठ १४६

३०. "स्त्री-शास्त्र" पृष्ठ ४ (सन १९३४ ई० में चौधरी एण्ड सन्स, नीची बाग काशी द्वारा प्रकाशित)

३१. "यज्ञोपवीत संस्कार रहस्य" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ६०, कालम २,

साहित्य समीक्षा

हैदराबाद सत्याग्रह का रक्त रञ्जित इतिहास

लेखक—पं० जयदेव जी शर्मा विद्यालङ्कार चतुर्वेद भाष्यकार तथा डा० सूर्यदेव जी सिद्धान्त शास्त्री एम० ए० एल टी डी० लिट्, अजमेर।

प्रकाशक—आर्य साहित्य मण्डल अजमेर पृ० ३५३ मूल्य ३)

सन् १९३९ में हैदराबाद रियासत में धार्मिक स्वतन्त्रता की प्राप्त्यर्थ जो अहिंसात्मक सत्याग्रह लग भग ८ मास तक चलता रहा, जिस में १२ हजार से अधिक व्यक्तियों ने भाग लिया और जिस पर आर्य समाज का लगभग ८ लाख व्यय हुआ उसका क्रमबद्ध इतिहास १७ अध्यायों में इस पुस्तक में दिया गया है जो उपयोगी होने के अतिरिक्त अत्यन्त स्फूर्तिदायक है। यह वह सत्याग्रह था जिस की हैदराबाद सरकार द्वारा प्रायः सब मांगों की स्वीकृति के कारण समाप्ति पर महात्मा गांधी ने लिखा था कि "आर्य सत्याग्रह का अन्त मीठा हुआ।' वर्तमान प्रधान मन्त्री श्री पं० जवाहरलाल जी ने लिखा था कि' धार्मिक स्वतन्त्रता का उद्देश्य बिलकुल ठीक उद्देश्य था। ऐसे दुःखद काण्ड के सन्तोषपूर्ण हल पर आर्य समाज और हैदराबाद दोनों धन्यवाद के पात्र हैं।"

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने कहा था कि 'आर्य समाज अपने त्याग, कार्य्य दक्षता और संयम के लिये और हैदराबाद उन मांगोंको न्याय्य मान कर स्वीकार करने के लिये बधाई का हकदार हो जाता है। इस लिये बड़े हर्ष और सन्तोष का समय है।" लोकनायक श्री० अणे वर्तमान गवर्नर विहार ने लिखा था कि "यह ऐसी विजय है जिस पर आर्य समाज को गर्व करना बिलकुल उचित है।"

ऐसे शानदार आर्य सत्याग्रह का क्रमबद्ध विस्तृत इतिहास सरल और प्रभाव जनक भाषा में लिख कर श्री पं० जयदेवजी विद्यालङ्कार और डा० सूर्यदेव जी एम० ए० डी० लिट् ने एक प्रशंसनीय कार्य किया है। आर्य सत्याग्रह के ८ सर्वाधिकारियों के कार्य विवरण तथा चित्रों के अतिरिक्त अन्य भी सभी प्रमुख कार्यकर्ताओं तथा संस्थाओं के कार्य का संक्षिप्त विवरण चित्र सहित इस ग्रन्थ में दे दिया गया है। दुर्भाग्यवश हैदराबाद की धार्मिक और राजनैतिक परिस्थिति अब भी पर्याप्त असन्तोष जनक है अतः आर्य सत्याग्रह का यह रक्त रञ्जित इतिहास अनेक अंशों में मार्ग दर्शक का कार्य देगा तथा स्फूर्तिदायक होगा ऐसा हमारा विश्वास है। अतः प्रकाशन में अनिवार्य कारणवश विलम्ब

होने पर भी इसकी उपयोगिता में सन्देह नहीं। प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक स्वतन्त्रता के प्रेमी को इसकी एक प्रति अपने पास रखनी चाहिये।

युद्ध नीति और अहिंसा

लेखकः—श्री डॉ सूर्यदेव जी एम. ए. एल. टी, डी. लिट् अजमेर

प्रकाशकः—आर्य साहित्य मण्डल अजमेर

पृष्ठ संख्या १६० मूल्य १)

यह एक अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है जिस में सुयोग्य लेखक महोदय ने महाभारत से अब तक की गई भयङ्कर राजनैतिक भूलों का ऐतिहासिक आधार पर निर्देश करते हुए उनसे शिक्षा ग्रहण करने पर बल दिया है। उन्होंने बड़ी ओजस्विनी भाषा में इस विषय का सप्रमाण प्रतिपादन किया है कि "हमारी आपस की फूट, पारस्परिक विद्वेष, हमारे मे से कुछ लोगों का देशद्रोह और अपने राष्ट्र और राजा के साथ विश्वासघात, हमारी जातिपांत का भेदभाव, हमारा मिथ्याभिमान तथा विलासप्रियता आदि ऐसे कारण हैं, जिनसे हमारे हिन्दू राष्ट्र की जड़ खोखली हो गई हमने इन दुर्गुणों में फंसकर सच्चे क्षात्र धर्म को त्याग दिया और ऐसी ऐतिहासिक भूलें कीं जिन का फल हमारे देश और जाति के लिये बड़ा भयङ्कर सिद्ध हुआ।"

अनेक वीर राजपूतों की दुष्ट शत्रुओं के प्रति दिखाई गई अनुचित उदारता वा दया के अतिरिक्त जो देश के लिये अत्यन्त घातक सिद्ध हुई (जिस के बहुत से उदाहरण इस ग्रन्थ में दिखाये गये हैं) हमारे मिथ्या विश्वासों और जातिभेद जन्य संकुचित भावों ने किस प्रकार देश का नाश किया इस के उदाहरण विशेषरूप से पढ़ने योग्य हैं। उदाहरणार्थ दक्षिण भारत के एक राजा चेरामन पीरूमल को स्वप्न आया कि चांद के दो टुकड़े हो गये हैं। उस ने इसका अर्थ पण्डितों और एक मुसलमान व्यापारी से पूछा धूर्त मुसलमान व्यापारी के बताने पर कि मुहम्मद साहेब ने चाँदके २ टुकड़े किये थे अतः आपको उनकी शरण में जाना चाहिये वह बूढ़ा राजा मुसलमान बन गया और उस ने राज्य के कोष से मौलवियों द्वारा इस्लाम का खूब प्रचार करवाया। जिस काश्मीर राज्य की समस्या ने अब इतना विकट रूप धारण किया हुआ है और जहां इस समय ८५ प्रतिशत मुसलमानों की आबादी है उसके विषय में ऐतिहासिक आधार पर बताया गया है कि तुर्किस्तान से सिकन्दर नामक तुर्की सरदार ने चढ़ाई करके काश्मीर को जीता। वह किसी धर्म को नहीं मानता था। उसने घोषणा की कि जो लोग अपने धर्म के सिद्धान्त मुझे समझा देंगे उनके ही धर्म को मैं स्वीकार कर लूँगा। उस समय के काश्मीरी पण्डितों ने उसे म्लेच्छ बता कर

धर्म का उपदेश करने से इन्कार कर दिया। तब पंजाब के एक मुसलमान फ़कीर बुलन्द-शाह ने उसके पास पहुँच कर इस्लाम के सिद्धान्त उसे समझाये । राजा सिकन्दर पक्का मुसलमान हो गया और उसने काश्मीर में इस्लाम को हर प्रकार से फैलाने की आज्ञा दी। जिसने इस्लाम को स्वीकार नहीं किया उस तलवार के घाट उतार दिया गया। इसका यह परिणाम हुआ कि काश्मीर में ८५ प्रतिशत हिन्दू मुसलमान हो गये । ऐसे ही सोमनाथ मन्दिर की रक्षार्थ जब हिन्दू सेना तैयार की गई तो ज्योतिषियों ने कहा कि अभी लड़ाई के लिये ग्रह ठीक नहीं हैं युद्ध न करना चाहिए। पानीपत के युद्ध में सदाशिवराव भाऊ ने अपने ब्राह्मणत्व के अभिमान में मल्हारराव होल्कर और सूरजमल जाट का अपमान किया जिससे वे पृथक् हो गये और मराठों की हार हुई।

ऐसी घटनाओंका उल्लेख करके सुयोग्य लेखक महोदय ने ठीक ही लिखा है कि ऐ जातिपाति के भेदभाव ! तेरा नाश हो।

२य अध्याय में वेद, महाभारत, कामन्दकीय नीति शास्त्र, मनुस्मृति आदि के आधार पर युद्ध नीति का प्रतिपादन करते हुए बताया गया है कि शत्रु पर दया अथवा उदारता न दिखानी चाहिये। इसका परिणाम भयङ्कर होता है। पृथिवीराज, हम्मीर राना कुम्भा आदि की मुहम्मद गौरी महमूद, महमूद खिलजी आदि के प्रति दिखाई उदारता और दया ही भारत की पराधीनता का कारण बनी।

३य अध्याय में वेदादि सत्य शास्त्रों की दृष्टि से अहिंसा का विवेचन करते हुए महात्मा गांधी जी के विचारों से उनकी तुलना करके दिखाया गया है कि महात्माओं, साधु, सन्तों, तथा ब्राह्मणों के लिये जो अहिंसा का स्वरूप है वह क्षत्रियों पर उस मात्रा में चरितार्थ नहीं हो सकता। दुष्ट दमन और समाज तथा देश रक्षार्थ उसका उपयोग आवश्यक है पर यह द्वेष से नहीं कर्तव्य भावना से होना चाहिये । इस प्रकार यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी रोचक और आंखें खोलने वाली है । यह इस योग्य है कि भारत सरकार के समस्त अधिकारियों के हाथ में भी यह दी जाए ताकि वे उन भूलों से बच सकें जो पहले हमारे प्रिय देश की अधोगति का कारण बनीं । उपसंहार में जो 'उद्धार के उपाय' सब के साथ धर्मानुसार यथायोग्य व्यवहार, वीर भावनाओं को जागृत करना, आर्यवीर दल सङ्गठन, शुद्धि, जातिभेद तथा अस्पृश्यता का समूल नाश, गोवध-निषेधादि बताये गये हैं वे विशेष मननीय हैं । पृ० ६१ में कवि प्रकाशचन्द्र जी के शब्द उद्धृत करने के स्थान में महाभारत के वचन ही उद्धृत करने उचित थे। ऐसे ही अन्य कुछ स्थानों पर सुयोग्य लेखक की श्री प्रकाश कवि जी के साथ विशेष मित्रताके उदाहरण मिलते हैं । इस पुस्तक का खूब

प्रचार होना चाहिए । हम इस उत्तमकृति के लिये श्री डा० सूर्यदेव जी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

सरल सर्वोत्तम साधन—

लेखक—श्री आनन्दी प्रसाद जी निगम
मिलने का पता—श्री आनन्दी प्रसाद राजेन्द्र निगम आनन्द निवास बांदा
मूल्य ।)

इस ३२ पृष्ठ की पुस्तिका में ओ३म् की व्याख्या, जप की विधि, ध्यान की विधि, ओ३म् महिमा आदि विषयों का अपने अनुभव के आधार पर प्रतिपादन किया गया है। जैसे कि लेखक महोदय ने लिखा है 'यह कोई नवीन मार्ग नहीं है।' किन्तु शास्त्रोक्त प्रणव जप तथा ध्यान को सरल शब्दों में और सरल रीति से रखने का लेखक महोदय ने सफल यत्न किया है। अव धातु से जो 'ओ३म्' शब्द बनता है उसके वात्वर्थ के अनुसार १९ अर्थ दिये गये हैं जो अत्यन्त उपयोगी हैं। इनके समझ लेने पर ही यह ज्ञात होता है कि किस प्रकार केवल 'ओ३म्' के द्वारा परमेश्वर के सब गुणों का चिन्तन किया जा सकता है। अवगम का अर्थ पृ० १२ में 'मगल स्वरूप होने से सदा मोक्ष दाता' लिखा हैं जो ठीक नहीं, अवगम का अर्थ ज्ञान होता है अतः उसका अर्थ सर्वज्ञ होना चाहिए। पृष्ठ २० में 'चिन्ता स्वरूप ब्रह्म है' यह वाक्य सर्वथा अस्पष्ट है। पृष्ठ २५ में जो दोहे 'सुषुप्ति अवस्था हृदय स्थान, पश्यन्ति वाचा आनन्द भोग जाना। द्रव्यशक्ति तयोः प्रधान' मकारमात्रा प्राज्ञाभिमान आदि दिये हैं उनकी भाषा तथा भाव स्पष्टी करण में पर्याप्त त्रुटि है। उनमें संशोधन की आवश्यकता है। आध्यात्मिक मार्ग के पथिकों के लिए यह छोटी सी पुस्तिका अच्छी उपयुक्त सिद्ध होगी क्योंकि ओङ्कार जपसे उत्तम चित्त की एकाग्रता तथा शान्ति का अन्य कोई साधन नहीं ऐसा हमारा अनुभव-सिद्ध विश्वास है। ध० दे०

Deifica tion And Mahatma Gandhi

(By Pandit Ganga Prasadg Upadhyaya, M. A., General Secretary. International Aryan League, Delhi.)

Mahatma Gandhi, the greatest lover of mankind has been just snatched eway from us by the most cruel hand of the assassin. Our hearts are sore and our heads muddled. We donot know what to feel and what to think. We are simply giving vent to our griefs, each man in his way and according to his temperament. The proposal of constructing his memorial is also on the anvil and it is very likely that in immediate future it will take a definite shape. Considering the devotion with which he is universally looked upon and also the weaknesses of the worshippers in general, it will not be out of place if we make a few observations on the subject and impart to them our most sober consideration Every great teacher loves to perpetuate the memory, not of his name or self so much as of his cause. Mahatma Gandhi himself has written on the subject in the most unequivocal terms possible. A few extracts from his writting may be relevantly cited:—

1. "I lay claim to nothing exclusively divine in me. I donot claim prophetship..........There is already enough superstition in our country. No effort should be spared to resist further addition in the shape of Gandhi-worship. personally I have a horror of all adoration I believe in adoring virues apart from the wearer. And that can be done only after the wearer's death. Form is nothing. It is perishable, virtue persists and incatnates in one person or another..........The very idea of my spirit visiting and possessing any person is repugnant to me. The practice can only do harm

and lead to fraud. I urge co-workers to put down the worship the correspondent describes. It is a sin to let simple folk such as the Gonds encouraged in the practice of superstition."

(Young India, Sept 11, 1924)

2. "I am but an erring mortal and like any of you. I am full of shortcomings, therefore I beseech you to reject them and simply make the best of my capacity for service."

(Young India March 10, 1927)

3. "I have never claimed to be a messenger of God except in the sense in which all human beings are. I am a mortal as liable to err as any other."

4. "I am asked whether I claim to have any special revelation from God. As to this, the latest charge, I must disown it. I pray like every good Hindu."

(Young India May 25 1921.)

5. I have a horror of 'isms', especially when they are attached to proper names. Even if all that you say of me is true, it does not make a new sect. My effort is to avoid not only new sects, but even to do away with old and superfluous ones....... To bring into a new cult is repugnant to AHIMSA, to the very experiment I am making. Thu you will, I hope, see that there is no room for Gandhism."

(Harijan, March 16, 1946.)

These are the outpourings of Mahatma Gandhi's heart and have to be duly regarded by his devotees and admirers if they wish to be sincerely loyal to him and his mission. In raising his memorials, let us do nothing which may lead to his deification, fetish worship, creation of a new 'ism', superstition or fraud. Let us remember Mahatma Gandhiji's words that it is a sin to let simple folk be encouraged in the practice of superstition.

If our devotion or zeal transgresses the due limits, the virtues for which Mahatmaji stood will vanish in due course and the outer form of adoration for which he had horror will survive. He has urged his co-workers to spare no pains to avoid the course which may lead to the evil referred oabove sooner or later.

———

आर्य कुमार जगत्

पूज्य महात्मा गांधी जी की हत्या पर परिषत् का वक्तव्यः—

पूज्य महात्मा गांधी जी की हत्या पर भारत वर्षीय आर्य कुमार परिषत् के प्रधान पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति ने श्री देवदास जी गांधी को परिषत् की ओर से समवेदना का पत्र लिखने के अतिरिक्त निम्नलिखित आशय का वक्तव्य पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजाः—

भारत वर्षीय आर्य कुमार परिषत् निस्सन्देह वर्तमान जगत् के सबसे श्रेष्ठ महापुरुष, सत्य और अहिंसा के मूर्त रूप महात्मा गांधी जी की हत्या के घोर पाप की प्रबल शब्दों में निन्दा करती है। महात्मा जी का एकता की वेदी पर हुतात्मा के रूप में बलिदान हुआ है। वे प्राचीन आर्य संस्कृति के सबसे बड़े प्रेमी थे। भगवान से प्रार्थना है कि विश्व प्रेम और शान्ति की स्थापना का महात्मा जी का पवित्र जीवनोद्देश्य उनके अमर बलिदान के द्वारा पूर्ण हो।

अविवाहित आर्य युवकों सेः—

सार्वदेशिक के गत मास के अङ्क में अपहृता और मतान्तरिता महिलाओं के विषय में सम्पादकीय टिप्पणी देते हुए मैंने अविवाहित आर्य युवकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था कि वे जाति-भेद के भूत को भगा कर इस प्रकार से बलात् मतान्तरिता अथवा शुद्धि शुदा महिलाओं के साथ विवाह में संकोच न करें किन्तु इसे पुण्य कार्य समझें। शुद्धि आन्दोलन जो गत कई मासोंसे पर्याप्त प्रबल रूप में चल रहा है तभी सफल हो सकता है जब युवक युवतियां जाति भेद की दल दल से अपने को ऊपर उठा लें और शुद्ध व्यक्तियों के साथ पूर्ण समानता और प्रेम का व्यवहार करें। जो अविवाहित आर्य युवक इस प्रकार के अन्तर्जातीय अथवा शुद्धि शुदा कन्याओं से विवाह के लिये तैयार हों वे अपनी आयु, योग्यता वृत्ति तथा आय आदि का विवरण मेरे पास निम्न पते पर शीघ्र भेज दें।

धर्मदेव विद्या वाचस्पति
उपाध्यक्ष जातिभेद निवारक
आर्य परिवार संघ
श्री श्रद्धानन्द बलिदान भवन, देहली।

सिद्धान्त शास्त्री और आर्य पौरोहित्य परीक्षाः—

भारतीय आर्य कुमार परिषत् की परीक्षा समिति ने गतवर्ष निम्न प्रस्ताव स्वीकृत किया थाः—

"परिषत् की सिद्धान्त शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना एक पुरोहित की योग्यता प्राप्त करने के लिये उचित माप दण्ड है और इस परीक्षा के माप दण्ड को कुछ और ऊंचा कर दिया जाय तथा साथ ही जो व्यक्ति पुरोहित का प्रमाण पत्र लेना चाहें उनके लिये सार्वदेशिक सभा ५० अङ्कों तक मौखिक परीक्षा लेने का आयोजन करे इस प्रकार सिद्धान्त शास्त्री परीक्षा का महत्व बढ़ जायगा तथा सार्वदेशिक सभा के साथ परीक्षा समिति का गहरा सम्बन्ध हो जाएगा।"

आर्य पौरोहित्य परीक्षा के मुख्य प्रस्तोता श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय की अनुमति से परिषत् की परीक्षा समितिद्वारा इस उपर्युक्त निश्चय को इस परिवर्तन के साथ स्वीकार कर लिया गया है कि मौखिक परीक्षा के अङ्क ५० के स्थान पर १०० होंगे। यह परीक्षा श्रावणी उपाकर्म के दिनों में १९,२० अगस्त के समीप होगी। इस विषयक तिथियों तथा अन्य नियमों की सूचना शीघ्र दी जाएगी। परीक्षार्थी अपने नाम विवरण सहित मेरे पास शीघ्र भेज दें ताकि उचित व्यवस्था की जा सके। पाठ्य पुस्तक सूची तथा नियम भी सार्वदेशिक सभा कार्यालय से मंगवा लें। देश की विषय परिस्थिति वश गत वर्ष परीक्षा स्थगित करनी पड़ी।

धर्मदेव वि० वा०
संयोजक आर्य पौरोहित्य परीक्षा
बलिदानभवन, देहली।

परिषद् की धार्मिक परीक्षायें

प्रति वर्ष भारत वर्षीय आर्यकुमार परिषद् की ओर से देश के विभिन्न भागों में सिद्धान्त परीक्षायें हुआ करती हैं। गत वर्ष से इन परीक्षाओं का मुख्य कार्यालय मेरे पास अजमेर में आगया है। उससे पूर्व सन् १९४६ की परीक्षाओं में कुल १०६ केन्द्रों से लगभग २५०० छात्र छात्रायें बैठी थीं। गत वर्ष डाक विभाग की हड़ताल तथा राजनीतिक क्षुब्ध वातावरण के होते हुए भी हमारे कार्यालय के सतत प्रयत्न से इन परीक्षाओं के केन्द्रों की संख्या १४३ और परीक्षाओं के आवेदन पत्र भरने वाले छात्रों की संख्या लगभग ३२०० हो गई और इस वर्ष हमारे कार्यालय के लिये विशेष प्रयत्न तथा आर्यसमाजों और आर्यकुमारों और परिषद् के कार्यकर्ताओं के सहयोग से केन्द्रों की संख्या १७२ तक पहुँच गई। यह भी तब जब कि इस वर्ष पाकिस्तान बन जाने से पश्चिमी पंजाब और सिन्ध के हमारे सब केन्द्र बन्द होगये और भारत में भी अनेक स्थानों पर गड़बड़ और डाक की भी अव्यवस्था रही। नहीं तो हमारे केन्द्रों और परीक्षार्थियों की संख्या और कभी बढ़ जाती। तो भी परीक्षार्थियों की संख्या इसवर्ष लगभग ४३०० पर पहुंच गई। विभिन्न पीरक्षाओं में परीक्षार्थियों की संख्या इस वर्ष निम्न प्रकार से रही:—

सिद्धान्त सरोज में..............२५१६
सिद्धान्त रत्न में..............१९९१

सिद्धान्त भास्कर में ३२२
सिद्धान्त शास्त्री में १६१

हमें दुःख है कि उपरोक्त संख्या में आवेदन पत्र भरे जाने पर भी पूज्य महात्मा गांधी के स्वर्गवास से देशव्यापी शोक के कारण अनेक विद्यार्थी अपनी इन परीक्षाओं में सम्मिलित नहीं हो सके क्योंकि समस्त परीक्षायें रविवार ता० १ फर्वरी से आरम्भ हुई जो कि महान शोक का दिवस था। आशा है आगामी वर्ष में और भी अधिक छात्र इन परीक्षाओं में सम्मिलित होंगे। विवेदक—

सूर्यदेव शर्मा सि० शास्त्री
साहित्यलंकार एम. ए.
परीक्षा मन्त्री आर्य कुमार परिषत्
अजमेर,

सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड

श्रद्धानन्द बलिदान भवन, देहली

जैसे पहले सूचना दी जा चुकी है यह कम्पनी नियम पूर्वक रजिस्टर्ड हो चुकी है और आजकल इसके हिस्से बिक रहे हैं। प्रत्येक आर्य समाज तथा आर्य सज्जन का यह कर्तव्य है कि इस कम्पनी के हिस्से खरीदे। बहुत सी समाजों और आर्य सज्जनों ने इसके हिस्से खरीद लिये हैं। इस प्रकार लगभग १००००० के हिस्से तो बिक चुके है। इस कम्पनी के कुल २००००० के हिस्से बेचने हैं परन्तु २००००० के हिस्से बिक जाने पर छापा खाना और हिन्दी दैनिक पत्र जारी कर दिये जायेंगे। इसलिये जिन आर्य समाजों और आर्य सज्जनों ने अभी तक इस कम्पनी के हिस्से नहीं खरीदे उन्हें चाहिये कि कम्पनी के कार्यालय से हिस्सों के लिये आवेदन पत्र मंगवाकर तुरन्त ही उन्हें भर दें और कम्पनी के कार्यालय को भेज दें। प्रत्येक हिस्से का मूल्य १०) है। परन्तु आवेदन पत्र के साथ केवल चौथाई धन ही अर्थात् २॥) प्रति हिस्से के हिसाब से भेजना आवश्यक है। १०० हिस्से खरीदने वाले संचालक (Director) के पद के लिये खड़े हो सकते हैं। मन्त्री—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा।

सम्पादकीय

विश्ववन्द्य महात्मा गांधी जी का सच्चा स्मारक:—

सत्य और अहिंसाके मूर्तरूप पूज्य महात्मा गांधी जी के बलिदान से जगत के सभी देशों और सम्प्रदायों के सभी नेताओं तथा व्यक्तियों ने हार्दिक दुःख अनुभव किया है और उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। जहां माननीय श्री पं० जवाहरलाल जी ने उनकी बर्बरता पूर्ण अमानुषिक हत्या के ठीक पश्चात् रेडियो से भाषण देते हुए ३० जनवरी की रात को यह कहा कि हमारे जीवन की रोशनी गायब हो गई है। चारों तरफ अन्धेरा छा रहा है और माननीय सरदार पटेल ने कहा कि "मेरा दिल दर्द से भरा हुआ है, जबान चलती नहीं, आज का अवसर भारत के लिए बड़े दुःख शोक व शर्म का है। इस समय हमारे ऊपर इतना बोझ है कि कमर टूट जाए। महात्मा जी का जीवन तो हमारे लिए एक बड़ा सहारा था, चला गया लेकिन वह हर मिनट हमारे सामने रहेगा।" वहां सुप्रसिद्ध जगद्विख्यात विचारक बर्नाड शा, ब्रिटिश सम्राट्, अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रूमैन ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ऐटली, भारत के गवर्नर जैनरल लार्ड माउंट बेटन, फ्रेंच भारत के गवर्नर श्री बैरन, लार्ड लिस्टोवल, कैन्टबरी के आर्कबिशप, रोम के पोप, जनरल स्मट्स, आस्ट्रेलिया के प्रधान मन्त्री जासफ चीफली,सर स्टैफर्ड क्रिप्स, श्री सोरन्सेन आदि सुप्रसिद्ध विदेशी महानुभावों ने पूज्य महात्मा गांधी जी के पवित्र जीवन और जगत् में शान्ति स्थापनार्थ किए गये प्रयत्नों के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए उनकी मृत्यु को समस्त जगत की हानि बताया क्योंकि वे शान्ति और अहिंसा के सन्देश द्वारा सारे संसार के आध्यात्मिक नेता थे। सर जफरुल्लाखां, फीरोजखां नून, अबुरनश्तर, लियाक़तअली खां चन्द्रीगर आदि पाकिस्तानी नेताओं ने भी महात्मा जी के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि "वे हमारे युगके महापुरुष और शान्ति तथा सद्भावनाओं के दूत थे। उनके रिक्तस्थान की पूर्ति सम्भव नहीं है।" इस आशय के शब्दों मे समर्पित की केवल मि० जिन्ना ने ऐसे शोक जनक अवसर पर भी अपनी अत्यन्त संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचय देते हुए महात्मा गांधी जी को हिन्दुओं का एक महान् नेता बताया। ऐसे विश्ववन्द्य महात्मा

के स्मारक बनाने का प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है और इस समय समाचार पत्रों और सार्वजनिक सभाओं में सर्वत्र इसकी चर्चा है। अनेक स्थानों पर श्रद्धालु लोग दिवंगत पूज्य महात्मा जी के मन्दिर, प्रतिमा, स्तूप इत्यादि का प्रस्ताव रख रहे हैं। जिस रूप में उनकी अस्थिभस्मादि के अवशेष जगत् के एक २ कोने में भेजे गये और जिस प्रकार का अभूतपूर्व समारोह देहली, प्रयाग तथा अन्य भारत और दूसरे देशों के अनेक स्थानों पर देखा गया उससे ऐसा प्रतीत होता है कि महात्मा जी की गणना भी अवतारों में करली जाएगी और उनके नाम पर कई मन्दिरों में मूर्ति पूजा प्रारम्भ हो जाएगी यदि इस विषय में भोली भाली जनता की हानिकारक प्रवृत्ति को अभी से रोका न गया। सुशिक्षित महानुभाव भी वीर पूजा के नाम पर इस प्रवृत्ति को अनेक स्थानों पर प्रोत्साहित करते हुए पाये जाते हैं। अतः पूज्य महात्मा जी के इस विषयक अपने शब्दों और माननीय सरदार पटेल के वक्तव्य की ओर समस्त जनता का ध्यान आकर्षित करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। हमारी पूज्य महात्मा जी के पवित्र जीवन के प्रति श्रद्धा अत्यधिक थी जैसे कि उनकी निर्दय हत्या के ठीक पश्चात् बनाई कविता द्वारा जो सार्वदेशिक के फ़र्वरी अङ्क में प्रकाशित हुई और जो अखिल भारतीय रेडियो से १० फ़रवरी की रात को प्रसारित की गई स्पष्ट है। किन्तु उनके सम्बन्ध में मूर्ति पूजा समर्थक प्रस्तावों को हम महात्मा जी के निम्न स्पष्ट शब्दों में प्रकाशित विचारों के सर्वथा विरुद्ध और अत्यन्त हानिकारक समझते हैं। सन् १६४६ मे महात्मा जी के नाम पर उनके एक भक्त ने बिहार में एक मन्दिर बनवाया था इस समाचार को जान कर महात्मा गान्धी जी ने 'हरिजन सेवक आदि' में जो लेख प्रकाशित कराया उसके मुख्यांश निम्न हैं:—

"एक भाई ने मुझे अखबार की एक कतरन भेजी है। उस में खबर है कि मेरे नाम का एक मन्दिर बनवाया गया है और उसमें मेरी मूर्ति की पूजा की जाती है। इसे मै मूर्ति पूजा का एक बेढंगा रूप समझता हूँ। जिसने यह मन्दिर बनवाया उसने अपने पैसे बरबाद किये, गांव के भोले भाले लोगों को ग़लत रास्ता दिखाया और मेरे जीवन का ग़लत खाका खींच कर मेरा अपमान किया। इससे पूजा का अर्थ नहीं सिद्ध होता उलटे अनर्थ होता है। अपने गुजारे के लिये या स्वराज्य के लिये यज्ञ के रूप में कातना ही मेरे विचार में सच्ची पूजा है। मनुष्य की कमजोरी का नहीं, बल्कि उस के गुणों का सच्चा अनुकरण ही उसकी सच्ची पूजा है।······ सच तो यह है कि अकेला ईश्वर ही मनुष्य के हृदय को जानता है। इस लिये किसी जिन्दा या मरे हुए आदमी

को पूजने के बदले जो पूर्ण है और सत्यस्वरूप है, उस ईश्वर को पूजने और उसी का भजन करने में सुरक्षितता है। यहां यह ख्याल जरूर उठ सकता है कि फोटो रखना भी पूजा का एक प्रकार है या नहीं ? फोटो रखने का रिवाज भी खर्चीला तो है मगर उसे निर्दोष समझकर मैं उस को अब तक बर्दाश्त करता आया हूँ। अगर उसकी वजह से मैं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से मूर्ति पूजा को तनिक भी बढ़ावा देता हूँ तो उसे हास्यास्पद और हानिकारक समझ कर छोड़ दूंगा। मन्दिर के मालिक मूर्ति को हटा कर उस मकान में खादी का केन्द्र खोलें तो वह सब तरह से इष्ट होगा और फिलहाल जो पाप वे कर रहे हैं उस से बच जाएंगे। उस मकान में गरीब लोग मजदूरी के लिये धुनें और कातें। दूसरे यज्ञ के लिये धुनें और कातें। खादी पहनने लगें। यही गीता का कर्म योग है। जीवन में इस का आचरण करने से गीता की और मेरी सच्ची पूजा की जा सकेगी।" ऐसी (मूर्ति आदि की) पूजा हानि कारक है और इस लिये छोड़ने लायक है।"

ये शब्द इतने स्पष्ट हैं कि इन पर किसी प्रकार की टिप्पणी सर्वथा अनावश्यक है। पूज्य महात्मा जी के इस विषयक विचार इतने स्पष्ट होते हुए मन्दिर, मूर्ति व प्रतिमादि विषयक प्रस्ताव सर्वथा अस्वीकार्य होने चाहिये। २१ सितम्बर १९४७ के अंग्रेजी 'हरिजन' में पूज्य महात्मा जी ने लिखा था :—

"I must dissent emphatically from any proposal to spend any money on preparing a statue of me, specially at a time when people do not have enough food and clothing...wise use of ten lakhs of Rupees will consist in its being spent on some public utility. That would be the best statue."

(Harijan 2I—9—1947)

अर्थात् अपनी प्रतिमा बनाने के किसी भी प्रस्ताव का मैं प्रबल प्रतिवाद करता हूँ विशेषतः जबकि लोगों के पास खाने पीने और पहनने के लिए पर्याप्त धन नहीं है। इन १० लाख रु० का (बम्बई में गांधी जी की प्रतिमा बनवाने के लिए जिस राशि को व्यय करने प्रस्ताव किया गया था) बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग उन्हें किसी सार्वजनिक उपयोगिता के कार्य में व्यय करना होगा। वही सब से उत्तम प्रतिमा होगी। सार्वदेशिक सभा के मान्य मन्त्री श्री पं॰ गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय के इसी अङ्क में प्रकाशित अंग्रेजी लेख के अन्य उद्धरण भी इसी आशय के हैं। महात्मा जी के इन विचारों को दृष्टि में रखते हुए भारत के सुयोग्य उप प्रधान मन्त्री माननीय सरदार पटेल ने ४ फरवरी को

प्रकाशित अपने वक्तव्य में ठीक ही कहा है कि "अब शोक की अवधि समाप्त हो गई है और वह उन कार्यों की ओर संकेत कर रही है जो गांधी जी के अपने थे और उन्हें जारी रखना हमारा पवित्र कर्तव्य है। इस समय एकान्तभाव और सम्पूर्ण ध्यान से महात्मा जी के अधूरे कार्य को पूरा करना ही हमारा लक्ष्य है।

साथ ही मैं बल पूर्वक कह देना चाहता हूँ कि गांधी जी की स्मृति में **मन्दिर व ऐसे स्मारक खड़े किये न जाएं जिनसे मूर्तिपूजा की गन्ध आती हो।** मुझे विश्वास है कि यदि ऐसे प्रयत्न किये गये तो गांधी जी की आत्मा को बड़ी व्यथा होगी। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने विचार असंदिग्ध शब्दों में प्रकट किये थे। इसलिये मेरी यह प्रार्थना है कि जिन लोगों का वैसा करने का विचार है वे उससे दूर रहें। गांधी जी के लिए प्रीति-जन्य सबसे सुन्दर स्मारक होगा उनकी शिक्षाओं का अनुसरण तथा उनके रचनात्मक विचारों की कार्यरूप में परिणति। और तभी हम गांधी जी की मूर्ति अपने हृदयों में स्थापित कर सकेंगे और उसके लिये वह ही उपयुक्ततम स्थान है।" ('नव भारत' १५ फरवरी)

हम माननीय पटेल के इन महत्त्वपूर्ण शब्दों का प्रबल समर्थन करते हुए जनता से यही निवेदन करते हैं कि वे महात्मा जी द्वारा प्रवर्तित ग्रामोद्योग, चर्खा प्रचार, हरिजन सेवा, सब सम्प्रदायों के लोगों में सच्चे प्रेम और सौहार्द की स्थापनार्थ प्रयत्नादि शुभ कार्यों की प्रगति बढ़ाने का प्रयत्न निरन्तर करते रहें। यही दिवंगत महात्मा गांधी जी का सच्चा स्मारक होगा।

हिन्दू महासभा का राजनीति से संन्यास:—

हिन्दू महासभा की कार्य-कारिणी ने अपने गत अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा अपने राजनैतिक कार्य को स्थगित करने का निश्चय किया है। देश की वर्तमान परिस्थितियों में तथा नाथूराम विनायक गोड़से नामक व्यक्ति द्वारा जिसे हिन्दू महासभा पूना का एक अधिकारी बताया जाता है विश्ववन्द्य महात्मा गांधी जी की अमानुषिक हत्या के फल स्वरूप राष्ट्रीय स्वयं सेवक सङ्घ तथा हिन्दू महासभा के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया जनता में उत्पन्न हो गई है इस प्रकार का निश्चय अनिवार्य सा था। अमर धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज हिन्दू महासभा के प्रवर्तकों और प्रमुख संचालकों में से थे। उनका यह विश्वास था कि हिन्दू महासभा का मुख्य कार्य हिन्दुओं के संगठन को दृढ़ करना, बाल्यविवाह, बाधित वैधव्य, जाति-भेद, अस्पृश्यतादि अत्यन्त हानिकारक कुरीतियों को जिनके कारण हिन्दू समाज जीर्ण शीर्ण अवस्था में है दूर करना तथा वैदिक आदर्शों की ओर इसे अग्रसर करके सब

प्रकार से उन्नत करना होना चाहिये। सङ्गठन, शुद्धि, दलितोद्धार आदि आन्दोलनों को उन्होंने इसी उद्देश्य से चलाया था किन्तु कुछ ही समय में जब उन्होंने अनुभव किया कि इन सामाजिक सुधार के वास्तविक कार्यों की ओर हिन्दू महासभा के अनेक प्रमुख नेताओं का उचित ध्यान नहीं और "स्वामी श्रद्धानन्द" नामक उत्तम जीवन चरित्र के लेखक पण्डित सत्यदेव जी विद्यालङ्कार के शब्दों में 'महासभा के नेता शुद्धि तथा सङ्गठन का काम न करके महासभा को अपनी संकुचित राजनैतिक आकांक्षाओं का साधन मात्र बनाना चाहते हैं, तब आप (स्वामी श्रद्धानन्द जी) उससे अलग हो गये।"

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का यह विश्वास था कि हिन्दुओं के सङ्गठन के प्रबल होने और जातिभेद, अस्पृश्यता, बाधित-वैधव्य, बाल्यविवाहादि कुप्रथाओं के मिट जाने से आर्य (हिन्दू) जाति ऐसी शक्तिशालिनी बन जाएगी कि अन्य सम्प्रदायों के लोग भी उस के साथ मित्रता से रहना ही पसन्द करेंगे और इस प्रकार सच्ची हिन्दू मुसलिम एकता स्थापित होगी। यदि हिन्दू महासभा ने चुनाव इत्यादि लड़ने में अपनी शक्ति का उपयोग न कर के इन समाज सुधार के कामों की ओर अधिक ध्यान दिया होता तो जैसे कि हमारे सहयोगी Indian Social Reformer Bombay ने लिखा है देश की परिस्थिति परिवर्तित रूप में दिखाई देती। उस का यह कथन ठीक ही है कि 'More danger has been caused by the dividing power of caste than even by communal divisions.' अर्थात् जातिभेद की विभाजक शक्ति ने साम्प्रदायिक विभाजनों की अपेक्षा भी अधिक हानि पहुंचाई है। अबभी यदि हिन्दू महासभा के नेता अपनी शक्ति जातिभेद, अस्पृश्यतादि अत्यन्त हानिकारक कुप्रथाओं के निवारण और पीड़ित शरणार्थियों की सेवा, अपहृता अथवा मतान्तरिता महिलाओं की रक्षा और हिन्दू समाज में उन्हें सम्मान पूर्वक वापिस लेने तथा विधर्मियों को भी प्रेम और समानता पूर्वक अपने समाज में प्रविष्ट करने में लगादें तो बड़ा लाभ हो सकता है। राजनैतिक दृष्टि से भी इन आन्तरिक सुधारों के कारण उस का बल बहुत बढ़ जाएगा इस में सन्देह नहीं।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक सङ्घ पर प्रतिबन्धः—

भारत सरकार तथा प्रायः सभी रियासतों ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक सङ्घ को अवैध घोषित करके उसके संचालकों तथा प्रमुख कार्य कर्ताओं को पकड़ लिया है। जब तक महात्मा गांधी जी की हत्या विषयक अभियोग न्यायालय में चल कर उस का निर्णय नहीं हो जाता तब तक यह कहना उचित न होगा कि इस सङ्घ के कई संचालकों तथा कार्य कर्ताओं का महात्मा जी की हत्या के अत्यन्त निन्दनीय कार्य में कोई हाथ था या नहीं किन्तु सम्भवतः प्रबल प्रमाण उपस्थित होने के कारण ही भारत सरकार ने ऐसा कदम उठाना उचित समझा होगा। उसके साथ ही साम्प्रदायिक

विष फैलाने वाली मुसलिम नेशनल गार्ड नामक मुसलिम संस्था को भी अवैध घोषित कर दिया गया है जिससे सरकार पर पक्षपात का दोष न लगाया जा सके। सार्वदेशिक सभा की नीति प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक सङ्घ के सम्बन्ध में आर्यों के असहयोग की रही है जिस का कारण उसके कार्यक्रम में मूर्ति पूजादि अवैदिक पद्धतियों का भाग तथा अवतार-वादादि का उसके प्रामाणिक साहित्य में समर्थन था। इसके अतिरिक्त आर्य समाज संकुचित साम्प्रदायिकता तथा आतङ्कवाद का सदा प्रबल विरोधी रहा है। जिन आर्य सज्जनों तथा संस्थाओं ने शिरोमणि सभा के इस विषयक आदेशों की अवहेलना का घोर अपराध किया था उन्हें अब अवश्य पश्चात्ताप होगा। उनमें से अनेकों को सभा के आदेश विरुद्ध राष्ट्रीय स्वयं सेवक सङ्घ के साथ सम्बन्ध के कारण कई प्रकार के कष्ट भी उठाने पड़ गये हैं जिनका हमें खेद है किन्तु यह लिखे बिना हम नहीं रह सकते कि वे यदि प्रतिष्ठित सभा के आदेश और अनुशासन का पालन करते तो उन्हें यह दिन न देखना पड़ता। अभी इस विषय में इस से अधिक लिखना हम अनावश्यक समझते हैं।

माननीय पुरुषोत्तम दास जी का अत्यन्त अभिनन्दनीय प्रयत्नः—

माननीय पुरुषोत्तम दास जी टण्डन भारत माता के उन सुपुत्रों में से हैं जो जनता की उन्नति के लिये निरन्तर प्रयत्न शील रहते हैं और निर्भयता पूर्वक सत्य का प्रचार करने कराने में कभी संकोच नहीं करते। हमें प्रयाग के 'Crisis' आदि पत्रों द्वारा यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि प्रयाग में गत माघ मेले के अवसर पर माननीय टण्डन जी ने [illegible] संस्कृति सम्मेलन का उद्घाटन किया और समस्त प्रमुख पण्डितों के साथ विचार विनिमय और शास्त्रचर्चा करके उन से कर्मणा वर्णः अर्थात् वर्णव्यवस्था का आधार कर्म पर है इस विषयक व्यवस्था पर हस्ताक्षर करवाए हैं। यह ज्ञात हुआ है कि १५० से अधिक प्रसिद्ध पण्डितों के हस्ताक्षर इस व्यवस्था पर हो चुके हैं और अभी अन्यों के करवाये जा रहे हैं। इस व्यवस्था में आर्य धर्म को सार्वभौम बताते हुए 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' इस वैदिक आदर्श को सामने रखने तथा कण्व काश्यपादि प्राचीन ऋषियों की तरह अनार्यों की भी शुद्धि का स्पष्ट समर्थन है। मनु महाराज के [illegible]

"ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थ एक [illegible] ति तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः।

इस आदेश के अनुसार केवल ४ वर्णों को मानने, किसी को भी पञ्चम वा अस्पृश्य न समझने तथा इन वर्णों का आधार कर्म पर मानने की व्यवस्था है। इस टिप्पणी को लिखते हुए इस व्यवस्था का 'Crisis' के १६ फरवरी के अङ्क में प्रकाशित अंग्रेजी अनुवाद हमारे सम्मुख है जिसे हम अत्यन्त [illegible] समझते हैं। हम माननीय श्री पुरुषोत्तम दास जी के इस प्रयत्न का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं कि सभी प्रान्तों के विद्वान निष्पक्षपात दृष्टि से शास्त्रों का अनुशीलन करते हुए इस व्यवस्था पर न केवल हस्ताक्षर करदेंगे प्रत्युत इसे क्रियात्मक रूप देते हुए समाज के संगठन को सबल बनाएंगे जो जन्मानुसार वर्ण व्यवस्था, कल्पित जाति भेद तथा अस्पृश्यतादि के कारण सर्वथा जीर्ण शीर्ण हो रहा है। ध.दे

श्री पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस" श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित

॥ ओ३म् ॥

सार्वदेशिक



श्री प्रोफेसर सुधाकरजी एम० ए० भू० पू० मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा जिनका १६ जून की रात्रि को देहावसान हुआ।

आषाढ़ सं० २००५ वि०
जुलाई १९४८ ई०

सम्पादक—
श्री पं० धर्मदेव जी सिद्धान्तालङ्कार
विद्यावाचस्पति, साहित्यभूषण

वार्षिक मू० स्वदेश ५)
विदेश १० शि०
१ प्रति का ।।)

विषय-सूची

संख्या पृष्ठ

१. वैदिक प्रार्थना— २०५

२. अध्यात्म सुधा—स्वामी विद्यानन्द जी २०६

३. क्या यज्ञों में पशु हिंसा वेद विहित है ?—ब्रह्मचारी उषर्बुध जी आर्य ... २१०

४. जातिभेद निवारक आर्य परिवारसंघ की संक्षिप्त रिपोर्ट—आचार्य भद्रसेनजी (संचालक) २१५

५. महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी—श्री पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति, स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा २२०

६. आर्य समाज का नया दृष्टिकोण-श्री पं० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति, प्रधान सार्वदेशिक सभा २३५

७. दान-सूची २३८

८. स्वर्गीय श्री प्रो० सुधाकर जी एम० ए०—श्रीमान् निरञ्जन नाथ जी स० मन्त्री पंजाब प्रतिनिधि सभा ... २३९

९. श्री प्रो० सुधाकर जी की पुण्य स्मृति में—श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक ... २४३

१०. आर्य जगत् २४५

११. साहित्य समीक्षा २४७

१२. सम्पादकीय— २४९

॥ ओ३म ॥

सार्वदेशिक

* सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष २८ } जौलाई १९४८ ई०] आषाढ़ २००५ दयानन्दाब्द १२५ { अङ्क ५

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः ।
पुनानो वर्ध नो गिरः ॥ ऋ० ९।६१।२३

शब्दार्थः—हे (मीढ्वः सोम) सुख वर्षक शान्ति मूल परमेश्वर (वयम्) हम (सुवीरासः) उत्तम वीर बन कर (धना जयेम) सब भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान, शास्त्र्यादि ऐश्वर्यों को जीतें। (पुनानः) हमें पवित्र बनाते हुए तुम (नः गिरः) हमारी वाणियों की शक्ति को (वर्ध) बढ़ाओ।

विनयः—हे परमात्मन !) तुम ही सुख,शान्ति और आनन्द की वर्षा करने वाले हो। तुम हमें शारीरिक, मानसिक आत्मिक सब प्रकार का बल प्रदान करो जिससे उत्तम वीर बन कर हम समस्त ऐश्वर्य का उचित उपभोग कर सकें। आप हमारी वाणियों को भी सर्वथा पवित्र बनाएं। हमारी वाणी से सदा सत्य, प्रिय और और हित कारक वचन निकलें जिससे उस की शक्ति बढ़े। हमारी वाणी ओजस्विनी बने। समस्त शक्ति के भण्डार आप हैं अतः आपसे ही हम पुनः बल की याचना करते हैं।

अध्यात्म सुधा

सुख और शान्ति की प्राप्ति का उपाय

वेद ईश्वरीय ज्ञान है जो सृष्टि के आदि में मनुष्यों के हितार्थ ४ ऋषियों द्वारा प्रभु से प्रकाशित हुआ वही सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सर्वाङ्गपूर्ण और निर्भ्रान्त है। उसके आदेशानुसार आचरण व्यवहार करना और कर्तव्य पालन धर्म है। यतो धर्मस्ततोजय:

ओ३म् .दृते दृँह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥यजु०३६-१८

भाव यह है संसार के सब मनुष्य आत्म-विचार से परस्पर भाई हैं। काले और गोरे, हब्शी और सभ्य, पूंजीपति और श्रमी, पौरस्त्य, पाश्चात्य, ब्राह्मण और दलित, हिन्दू और मुसलमान, जापानी और अमरीकन सब भाई बहन हैं, सब प्राणियों को अपने समान उनके कल्याण की भावना रख सब से प्रीति पूर्वक यथा योग्य वर्तना चाहिये इस में ऊंच नीच समझना अज्ञान है। यह शरीर जड़ पदार्थ है और वास्तव में वैसा ही है, जैसा जलाने के लिये अर्थी पर उठा ले जाया जाता है। इस समय (जीवित अवस्था में) यह मुर्दा इसलिये नहीं दीखता कि आत्मा ने अपनी चेतनता इसमें बसा रक्खी है। आत्मा इस जड़ भौतिक शरीर से भिन्न है। आत्मा तो चेतन नित्य है। एक निश्चित अवधि के लिये आत्मा और शरीर का संयोग हुआ है, उस अवधि के बाद वियोग होना निश्चित है। और इसको निश्चित रूप से जानने की योग्यता मनुष्य में ही है।

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय ॥ ऋग्वेद ५-६०-५ ॥
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषाम् समाचरेत् ॥

हमें समझ लेना चाहिये कि मनुष्य स्त्री और पुरुष हर हालत में आत्म ज्ञान के बल पर अपने आपको अवश्य सुखी रख सकते हैं। शारीरिक ज्ञान के आधार पर निर्भर रहने के बजाय आत्मा और आत्म ज्ञान के आधार पर जीवित रहने की कला हम सब को सीखनी होगी। यह वस्तु इतनी सरल है कि एक साधारण बालक भी इसे आसानी से समझ सकता है। इसका समझना तो कठिन नहीं है, लेकिन उस पर आचरण करना अवश्य कठिन है। वस्तुतः—

१ अपने आपको जान लेने पर फिर किसका भय, शोक। आत्मा ही के द्वारा हम में शक्ति और बल की प्रेरणा मिलती है। यदि हमें आत्मा का ज्ञान होजाय तो जीवन मरण, संयोग, वियोग कोई वस्तु नहीं रहती। २—निर्भयता, बल, उत्साह साहस धैर्य और शक्ति प्राप्त करने का अमोघ उपाय

को आत्म ज्ञान हो है। ४—आत्मा को जानो और सब व्यर्थ की बकवाद छोड़ दो। यही ज्ञान की पराकाष्ठा है, और परम उच्च अवस्था है। जैसा कि शास्त्रों में कहा है:—

आत्मानं वा विजानीयात् । अन्यां वाचो विमुञ्चथ ॥

मनुष्य को संसार का सारा वैभव प्राप्त हो जाय और वह अपने आत्मा तथा आत्मज्ञान को खो बैठे तो क्या लाभ? आज हमारा सारा का सारा जीवन शरीर-प्रधान हो रहा है। हम चाहे सुन्दरता के बारे में सोचते हों, चाहे बल के बारे में चाहे अन्य भोग सामग्री जुटाने के बारे में, हमारी दृष्टि शरीर प्रधान ही रहती है। जब तक यह शरीर-परायणता रहेगी, तब तक मनुष्यों के मन में डर कायम हो रहेगा अत्याचारियों ने लोगों की इस शरीर परायणता से बहुत लाभ उठाया, लोग शरीर और शरीर के सुखों की रक्षा के लालच से अत्याचारियों के आगे झुक जाते हैं। शरीर परायणता में से भय का निर्माण होता है। "तरति शोकमात्मवित्" आत्म-ज्ञान का ज्ञानी शोक मोह और दुःखों से मुक्त हो जाता है। दृढ़ संकल्प और प्रबल इच्छा-शक्ति के द्वारा ही मनुष्य महान् दुःख और विपत्ति के प्रसंगों में जरा भी नहीं घबड़ाता, न उद्विग्न होता है। उसमें प्रबल धैर्य और उच्च प्रकार का ज्ञान तथा बल होता है, जिससे किसी भी अवस्था में हृदय की शान्ति और धैर्य भंग नहीं होता।

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत्।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति॥
कठ० ६-६

जब तक मनुष्य अपने को इंद्रियों का समूह शरीर समझता है तब ही तक अनेक दुःख और शोक रहते हैं, क्योंकि इन्द्रियां उत्पन्न होने वाली होने से विकार युक्त हैं। जिस वक्त मनुष्य को यह विचार हो जाता है कि मैं जीवात्मा नित्य हूँ और यह शरीर उत्पन्न और नाश होने वाला है यह मेरा स्वरूप किसी प्रकार नहीं हो सकता। क्योंकि कोई उत्पन्न होने वाली वस्तु नित्य के स्वरूप में प्रविष्ट नहीं हो सकती अतः यह शरीर मेरे से पृथक् है, तो इसके विकारों से मेरी हानि लाभ क्या है। मैं नित्य हूँ मुझ में तो कोई विकार नहीं अतः मुझे अपने कर्तव्य का यथावत् पालन करना चाहिए है। शरीर के विकारों में लिप्त होना नितांत भूल है।

संसार में तो पद-पद पर दुःख आते हैं उनका सामना करना पड़ता है। सारा विश्व दुःख से परेशान है। सांसारिक ज्ञान से दुःखों का अभाव कभी नहीं हो सकता। आत्म-ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। आत्म-ज्ञान से ही आनन्द, शांति, उत्साह, साहस और प्रसन्नता हर समय रह सकती है। किस प्रकार आप इस सुगम और अत्यन्त सरल साधन से विश्व शांति और कल्याण में सहायक हो सकते हो, कैसा अनन्त बल तुम्हारी आत्मा में है आत्म-ज्ञान प्राप्त करने पर यह स्पष्ट अनुभव होने लगता है।

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्। अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥ श्वेताश्वतर २।१५॥

अर्थात् जब सावधान होकर आत्मतत्त्व को देखता है, तब वह अजन्मा, अटल, कूटस्थ सारे तत्त्वों से शुद्ध देव को, जिसको मन वाणी इन्द्रियां नहीं पहुँचती किन्तु जो केवल आत्म-तत्त्व से जाना जाता है, जानकर जीवात्मा सारे फांसों से छूट जाता है और भी कहा है:—

तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद् यदात्मविदो विदुः ॥

ब्रह्म को वही मनुष्य जानते हैं जो जीव (अपने) को जानते हैं। जिसको निज के तत्त्व का ज्ञान नहीं उसको परमात्मा का ज्ञान किस प्रकार हो सकता है? जो मनुष्य अपनी आंख को नहीं देख सकता, वह नेत्र के सुरमे को किस प्रकार देख सकता है? अतः वही मनुष्य परमात्मा को जान सकते हैं जो प्रथम जीवात्मा को जान लेते हैं। कंठ उपनिषद् में कहा है:—

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति॥

यद्यपि वह सदैव सब में व्यापक है, परन्तु तो भी उसको केवल वही लोग जान सकते हैं जो मन को शुद्ध और स्थिर करके उसके प्रतिबिम्ब को देखते हैं। अर्थात् मन के एकाग्र होने पर उसके आनन्द को जानने से उसे जान सकते हैं। और भी कहा है:—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ॥

मु० उ० ३-२-४

अर्थात् यदि आत्मिक बल नहीं है तो वह मन के पीछे लग जाता है। यदि ब्रह्म की उपासना करने से आत्मा बलवान् है तो विषयों से हटकर परमात्मा की ओर लग जाता है।

प्रतिबोध-विदितं मतममृतत्वं हि विन्दन्ते ॥

केन उप० २-४ ॥

जो मनुष्य आत्मिक शक्ति से रहित है, वह किसी धर्म सम्बन्धी काम को यथार्थ नहीं कर सकता: उसकी आत्मिक निर्बलता के दूर होने का उपाय आत्म-ज्ञान है।

अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः। शुची रोचत आहुतः ॥

ऋ० ८-४४-२१

इस अग्निआत्मदेव से बढ़कर इस संसार में और कोई पवित्र वस्तु नहीं। वह ऐसा शुचिव्रत है कि इसके संस्पर्श में आकर कोई वस्तु अपवित्र नहीं रह सकती। यह संसार निःसंदेह महा मलिन है, पर इस आत्मदेव के कारण यह भी उपादेय हो गया। आत्मदेव रहित हो जाने पर इस देह को छूने पर शौच करना पड़ता है। परमात्मा तो कभी दूर ही नहीं हो सकता है। वह आत्मदेव शुचि ज्ञानी है, शुचि कवि है इसी आत्मा के ज्ञान से जो काव्य निकलता है वह पवित्र ही होता है। उसकी तो प्रत्येक दीप्ति प्रकाश शुचि पवित्र ही होती है। तुमने कभी आहुति देते हुये आत्मदेव के दर्शन किये उस समय उसकी इस रोचमान मूर्ति की पवित्र छवि देखने योग्य होती है। ओह! आत्मदेव की इस पावनी मूर्ति पर सौ सौ बार बलि जावे इसकी इन पवित्र ज्वालाओं में कोई अपवित्रता कैसे ठहर सकती है। मनुष्यो! यदि तुम्हें पवित्रता प्राप्त करनी है तो तुम इस अग्नि देव की आराधना क्यों नहीं करते? इस अपने

अन्दर के अग्नि आत्म देव का प्रदीपन क्यों नहीं करते ?

इंद्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः।
इंद्रं वाणीरनूषत समाजसे ॥ऋ०८-१२-२१

देव लोग वृत्रासुरवध के लिये इन्द्र को आगे करते हैं। यह इन्द्र ही है जो वृत्रासुर को वध कर सकता है। जैसे आधिदैविक जगत् में सूर्य-इन्द्र मेघ-वृत्र का वध किया करता है, जैसे आधिभौतिक जगत् में विद्वान् लोग राजा द्वारा पापियों का विनाश करते हैं, वैसे यहां अध्यात्म में आत्मा इन्द्र है, जो पाप रूपी वृत्रासुर को हनन करता है। पाप हम पर हमेशा आक्रमण करता रहता है और प्रायः सफल होता रहता है। हम जानते हैं, यह पाप है, नहीं करना चाहिये, मन से विचार करते, बुद्धि से निश्चय करते हैं, पर फिर भी हम पाप करने से रुक नहीं सकते इसका कारण यह है कि हम आत्मा द्वारा पाप का नाश नहीं करते हैं। हमने आत्मा को पीछे डाल रखा है, देखो ! इन्द्रियों से परे मन है, मन से परे बुद्धि से भी परे जो है वह हमारा असली आत्मा है । अगर हम उस आत्मा को आगे ले आवें, पुरोहित करलेवें, इन्द्रियादि देवों को इस आत्मा का अनुयायी बना लेवें, तो फिर वृत्रासुर कभी दुबारा हमारे सामने न आ सके। इसका समूल नाश हो जावे। यह काम वासना स्वार्थ जो सब पापों की जड़ है, आत्मप्रकाश हो जाने पर इस स्वार्थ का हम में कुछ काम नहीं रहता। यह विलीन हो जाता है। आत्म राज्य हो जाने पर इन्द्रियादि हमारे देव आत्मिक ओज के अधिष्ठान बन जाते हैं। वृत्र का अंधकार हट कर हमारे अन्दर आत्म-सूर्य का ओज चमकने लगता है। और ये देखो आत्मा के इस ओज को प्रकट करने के लिये वेद वाणियां सहायक होती हैं। जब हम सुनते हैं, स्वाध्याय करते हैं या स्वयं गाते हैं कि आत्मा की शक्ति इतनी महान् है तो इससे आत्मा का ओज जागृत होता है। हिंसा असत्यादि दुष्कर्म और सब प्रकार के पापकर्म छूट जाते हैं। वेद मंत्र जो आत्मा की स्तुतियों से भरे पड़े हैं, वे इसलिए हैं कि हम इस दिव्य वाणी के नित्य के स्वाध्याय द्वारा आत्मिक ओज को अपने में भर लेवें और इसके द्वारा महाबली वृत्र का संहार कर देवें। अतः आओ भाइओ ! हम भी इन्द्र को पुरोहित कर अपने में वृत्र का समूल नाश कर लेवें और इसके लिए अपने में आत्मिक ओज को स्तुति प्रार्थनाओं द्वारा सम्यक्तया भर लेवें, । इसी में हमारा कल्याण अर्थात् जीवन की सफलता है । यही सुख शांति का असली नुस्खा है।

विश्व हितैषी
विद्यानन्द संन्यासी
सार्वदेशिक दयानन्द वानप्रस्थ संन्यास मंडल
ज्वालापुर, हरिद्वार

ऋग्वेदीय अश्वमेध सूक्त (१।१६२।)

क्या यज्ञों में पशुहिंसा वेदविहित है ?

[लेखक — ब्रह्मचारी उष र्बुध जी आर्य]

[गताङ्क से आगे]

उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म,
देवानामाशा उप वीतपृष्ठः।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति,
देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥७॥

अनर्थः—(वीतपृष्ठः) पृष्ठ लोक-पृथिवी-लोक को छोड़कर स्वर्गलोक को जाने द्वारा (मन्म) माननीय, फल स्वरूप घोड़ा (मे) मुझे (उप प्रगात्) बलि देने के लिये प्राप्त हुआ है, जिस को कि मैंने (अधायि) धारण कर लिया है। ऐसा अश्व (देवानामाशाः) देवताओं की आशाएं पूर्ण करने के लिये मुझे और भी प्राप्त हो। ऐसे (सु बन्धुं) यूप=बन्धनस्तम्भ से, अच्छे प्रकार बन्धे हुए, घोड़े को (देवानां) उसकी आशा करते हुए देवताओं की पुष्टि के लिए (चकृम) हम बलिकरें। (विप्राः) (ऋषयः) विद्वान ब्राह्मण ऋषि "उचित किया" ऐसा कह कर (तमनु मदन्तु) हमारी की हुई इन यज्ञक्रियाओं का अनुमोदन करते हुए, हर्षित हों ॥

सत्यार्थः—(वीतपृष्ठः) कार्यों का विशेष गति से पालन करने द्वारा (षष्ठ मन्त्र में प्रोक्त, कार्यकर्त्ताओं का सहायक व्यक्ति) (देवानामाशाः) देवों=विद्वानों की निर्दिष्ट दिशा में, अर्थात् उनके आदेशानुसार (मन्म) अपने विचार और कर्म (उपाधायि) रखता है, (एनं) इसके प्रति (विप्राः) विद्वान (ऋषयः) यज्ञकर्ता ऋषि (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं, अतः हम (देवानां पुष्टे) यज्ञादि कर्मों में विद्वानों के कार्यों की पुष्टि-सहायता करने में अपने को (सुबन्धुं चकृम) विद्वानों का बन्धु बना कर सुबन्धु बनें।

* पञ्चम से सप्तम मन्त्रों की सङ्गति *

(प्र०) इस सूक्त में पशुविद्या का वर्णन किया गया है। इस विषय में सूक्त के प्रथम चार मन्त्रों की सङ्गति, पञ्चम से सप्तम, तीन मन्त्रों से कुछ उचित प्रतीत नहीं होता। क्योंकि प्रथम चार मन्त्रों में तो कहा गया, कि, अश्व, बकरी आदि पशुओं के शरीरों में, दुग्धादि में अमुक २ गुण वर्त्तमान हैं, एवं अश्वादि पशुओं का क्या २ उपयोग, किस २ कार्य में होना चाहिये। इत्यादि। परन्तु चतुर्थ मन्त्र में जब कि अश्वमेध यज्ञ में, अश्व के उपयोग का प्रकरण आ गया, तो पञ्चम मन्त्र यज्ञ की क्रियाओं ही का विषय प्रारम्भ कर दिया गया इन मन्त्रों की उचित सङ्गति क्या है ?

(उत्तर) वेद के सूक्तों की अन्य विशेष शैलियों में से, एक साधारण शैली यह है कि सूक्त के प्रथम, तीन चार मन्त्रों में, सम्पूर्ण सूक्त में वर्णनीय पदार्थ के गुणों या कर्मों, उपयोगों, का सामान्य वर्णन कर दिया

जाता है, ततः उन सामान्यगुणों में से, एक २ गुण वा कर्म को लेकर उनकी व्याख्या कर दी जाती है, इस प्रकार से सूक्त के प्रथम चार मन्त्रों में अश्व तथा बकरी, के गुणों को सामान्य रूप में वर्णित कर, अश्व की यज्ञ में उपयोगिता के गुण, कर्म की व्याख्या, एवं उपयोग की विशेष विधि का, विवरण करना प्रारम्भ कर दिया, जिस में कि अश्वमेध यज्ञ की क्रिया को बतलाते हुए, (१) ओषधि रस का लेना (२) यूप (पशुबन्धनस्तम्भ) आदि बनना (३) राजा की ओर से अश्वमेध यज्ञ के कार्य-कर्ताओं की नियुक्त का वर्णन, क्रमशः, इन तीन मन्त्रों में किया गया। यह इन मन्त्रों की सङ्गति है। अब सूक्त का अष्टम मन्त्र देखिये:—

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो,
या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणं,
सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८॥

अनर्थः—(यत्) जो (वाजिनः) घोड़े की (दाम) गले पर बन्धी हुई, रज्जु है, जो (सन्दानं) पैर पर बन्धी हुई रज्जु है, तथा जो (अस्य) इस घोड़े की (शीर्षण्या रशना रज्जुः) सिर पर बन्धी हुई रस्सी है (ते) तुम्ह से सम्बन्धित (देवेष्वस्तु) देवताओं के ही होवें।

सत्यार्थः—......................................

सम्बन्धित (देवेष्वस्तु) दिव्य गुणों से युक्त हों॥ जब राजा अश्वमेध यज्ञ में छोड़े को छोड़े, तब घोड़े को उत्तम भूषणों से सज्जित कर उसके लिये शक्तिदायक भोज्य पदार्थों का, तथा (बाज) सेना द्वारा, सुरक्षा का प्रबन्ध करके ही घोड़े को छोड़े। ऐसा इस मन्त्र का विधान है॥

॥ ६॥ यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश, यद्वा
स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते
अपि देवेष्वस्तु ॥ ६॥

अनर्थः—(यत्) जो (अश्वस्य क्रविषः) घोड़े का मांस (मक्षिका) मक्खी ने बैठ कर (आश) खा लिया है, अथवा जो काटने आदि में हस्त वा नख आदि पर लिप्त हो गया है, वह सभी कुछ देवताओं के सन्तोष के लिये हो॥

सत्यार्थः—(क्रविषः) [अश्वमेध यज्ञ में] राजा को, प्रजाओं के लिये पृथिवी का दान कराने हारे (अश्वस्य) अश्व का, जो (मक्षिकाशः) इच्छानुसार गमन है (यद्वा) तथा जो [स्वरौ स्वधितौ] अश्व के रक्षक सैनिकों के शस्त्रास्त्रों में [रिप्तमस्ति] छिपा शक्ति है, तथा जो [हस्तयोश्शमितुः] अन्त में युद्ध को शान्ति देने वाले सेनानी के [नखेषु] छिद्र रहित अर्थात् यथोचित क्रिया कलापों में गति है, [तानि सर्वाण्यपि] वह सभी कुछ (देवेष्वस्तु) विद्वानों के आदेशानुसार हो।

॥ १० ॥ यदूवध्यमुदरस्यापि वाति, य
आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं
शृतपाकं पचन्तु ॥ १०॥

अनर्थः—[यत्] जो अश्व के [उदरस्य] उदर में का [ऊवध्यं] पुरीषमल है, और जो [आमस्य] क्रविषः अधकचे मांस की [गन्धोऽस्ति] गन्ध है, [शमितारः] पकाने वाले [तत्]

उसे। दूर कर [सुकृतं कृएवन्तु] देवताओं के बलि भोजन को दोष से रहित कर देवें। [शृतपाकं मेध पचन्तु] यथोचित रूप से, बलि को उत्तम बनावें कच्चा या जला हुआ न कर देवें ॥

सत्यार्थः—[यत्] जो केवल [उदरस्योव-ध्यं] जाठराग्निमात्र को [अपवाति] दूर करता है ऐसे [आमस्य] रोग जनक [क्रविषः] मांस की जो गन्ध है [तच्छमितारः] उसको शान्त करने वाले [सुकृतानि कृएवन्तु] सुकर्म करते हैं, अथवा मनुष्यों का यह कर्त्तव्य है कि जो व्यक्ति [शृत पाकं मेध पचन्तु] मांस को पकाते हैं तथा मांस की दुर्गन्ध से वायु को दुर्गन्धित कर नाना प्रकार के रोग फैलाते हैं, उन दुष्टों को सदा के लिये शान्त कर सुकर्म के भागी बनें ॥ इस मन्त्र में परमप्रभु ने, इस स्पष्टीकरण के लिये कि कोई व्यक्ति इस सूक्त का आश्रय ले कर यज्ञों में पशुहिंसा न करने लग जावे, पशुहिंसा को स्पष्ट शब्दों में निषेध कर दिया है ॥

॥ ११ ॥ यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि
शूलं निहतस्यावधावति ॥
मा तद् भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु
॥ ११ ॥ देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥

अनर्थः—हे अश्व (यत्) जो (ते) तुम (निहतस्य, मारे हुए) के (अग्निना) पच्यमानात् अग्नि द्वारा पकाये जाते हुए। (गात्रात्) शरीर से (शूलं) रस (अभि अवधावति) निकल बहता है (तत्) वह (भूम्याम्) पृथ्वी पर (मा आश्रिषत्) न गिर जावे (मा तृणेष्वाश्रिषत्) कुशा आदि पर भी न गिर जावे वह सब (उशद्भ्यः) उसकी इच्छा करने वाले देवताओं के लिये (रातमस्तु) दान कर दिया जावे ॥ देवताओं को बलि देने के लिये मांस सरस बनाना चाहिये ॥

सत्यार्थः—(हे अश्व! (यत्) जो (ते) तुम (निहतस्य) प्राप्त किये हुए गतिमान् की (शूलं) गति (अग्निना पच्यमानात् गात्रात्) परिपक्व आग्नेयशक्तियुक्त भोज्य पदार्थों से प्राप्त होती है वह गति शक्ति, अश्व शक्ति (मा) मुझे (भूम्यां) राज्यसत्ता रूप में प्राप्त हो, (तृणेषु) प्रजा को वितरण के लिये प्राप्त हो, तथा, सब शक्ति यज्ञ में विद्वानों के लिये दान हो।

॥१२॥ ये वाजिनं परि पश्यन्ति पक्वं
यईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासते,
उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥

अनर्थः—(ये) जो (वाजिनं) घोड़े को (पक्वं) पका हुआ (परि पश्यन्ति) देखते हैं, और जो (सुरभिर्निर्हरेति) मांस की सुगन्धि आरही है, ऐसा बतलाते हैं। (ये च) और जो (अर्वतः) घोड़े के (मांस भिक्षामुपासते) हुता-वशेष की मांस की भिक्षा मांगते हैं, उन के वे विचार हमें भी प्राप्त हों ॥

सत्यार्थः—(ये) जो यज्ञ में (वाजिन) अश्व-मेधयुद्ध से लौटी हुई सेना को (पक्व) परिपक्व, दृढ़ रूप में देखते हैं तथा जो, (सुरभिर्निर्हरेति) युद्ध विजय से, विद्वान् प्रसन्न हैं, उनसे कोई भय नहीं ऐसा कहते हुए हैं तथा जो (अर्वतो मांसभिक्षामुपासते) अश्व को [युद्ध से लौटे हुए को] मन को प्रसन्न करने हारे, शक्ति दायी भोजन प्रदान करते हैं, हम उनके उद्यम में सहायक हों ॥

सङ्गति करण, भावार्थ

॥७॥ राजा अश्वमेध यज्ञ के लिये कार्य कर्त्ताओं को नियुक्त करे, वे कार्यकर्त्ता यज्ञकार्यों को पुरोहितादि की आज्ञानुसार करें ॥८॥ तत्पश्चात् राजा अश्व की रक्षा के लिये सेना को नियुक्त करे। सेना तथा अश्व के लिये उत्तम भोजनादि का प्रबन्ध रखे, अश्व को वस्त्राभूषणादि से सुसज्जित कर उपयुक्त घोषणाएँ सार्वभौम सभी राजाओं के लिये देकर अश्व को छोड़ देवें। रक्षक सेना उस अश्व के साथ रहे ॥६॥ अश्व को यथेष्ट मार्ग से जाने दिया जावे, यदि कोई राजा आदि अश्व को रोकना चाहे, तो सेना बल से युद्ध कर विजय प्राप्त करें।

॥१०॥ यदि कोई व्यक्ति उस अश्व को मारना चाहे तो, उसको प्राण दण्ड दिया जावे ॥११॥ अश्व को आग्नेय गुण युक्त भोज्य पदार्थों से गतिशक्ति प्राप्त होती है, सेना विदेशों से इस प्रकार के राजयज्ञ के उपयुक्त पदार्थों को भी विजय के फलस्वरूप प्राप्त कर के साथ लौट कर उन पदार्थों का, सामान्य प्रजा तथा, विद्वानों को वितरण कर दिया जावे ॥१२॥ जब सेना विजय प्राप्त कर, आवे, तो यज्ञ के क्षत्रिय कार्यकर्त्ता तथा राजा सेना का निरीक्षण करें, विद्वान् यज्ञ कर्त्ता वीरों विजेताओं को आशीर्वाद, पुरस्कार आदि से प्रसन्न करें ॥ यह मन्त्रों का सुसङ्गत भावार्थ है ॥

स्पष्टी करण

(प्र०) सप्तम मन्त्र में "वीत पृष्ठ" शब्द का अर्थ कौन से आधार पर है ?

(उ०) वि = विशेष, इत = गति । [इण् गतौ] धातु से [नपुंसके भावे क्तः । पा० अ० ३ । ३ । ११४] सूत्र से भावार्थ में क्त प्रत्यय होकर, इत शब्द सिद्ध है, वि = विशेष इत = गति = वीत विशेष गति [विशिष्टमितं वीतम्। विशिष्टा गतिरुच्यते । वीतेन पिपुरति, पालयन्ति, पूरयन्ति तत्क्रियाः । पोषयन्ति, साहाय्यं कुर्वन्ती त्यर्थः । विशिष्टकार्यसहायका वीतपृष्ठाः प्रोच्यन्ते ।] इस प्रकार से वीत पृष्ठ शब्द का अर्थ "कार्यों का विशेष गति से पालन करने द्वारा [पृष्ठ मन्त्र में प्रोक्त, कार्यकर्त्ताओं का सहायक व्यक्ति" सिद्ध है ॥

(प्र०) नवम मन्त्र में 'क्रविः ।' शब्द का अर्थ "राजाओं के लिये पृथिवी का दान कराने द्वारा" ऐसा अर्थ किस प्रकार हो सकता है ?

(उ०) "क्रविः" शब्द कु राजन् रा विश्, इन चारों शब्दों से सम्मिलित होकर निरुक्त से, सिद्ध होता है क्रविः कस्मात् ? कुं राज्ञे राति विड्भ्यः । कुर्भूमिः । क्वचिदुन्नता भवति अवनता क्वचिदित्यर्थः । विशः प्रजा उच्यन्ते । तस्मात् क्रवि निरुच्यते ।]

(प्र०) इसी नवम मन्त्र में "मक्षिकाश" शब्द का जो अर्थ "इच्छानुसार गमन" किया गया है - वह तो किसी भी प्रकार नहीं हो सकता, यह, किस धातु से कर लिया गया है ?

(उ०) मक्षिकाश । माक्षतेः काङ्क्षार्थात् । मक्षिकाऽपि सैव निरुक्ता । मक्षिकया स्वयत्ति इच्छया गच्छति मक्षिकाशः ।] इच्छार्थक माक्षि धातु से मक्षिका शब्द सिद्ध होता है, मक्षिका

शब्द का अर्थ इच्छा है। मक्षिका शब्द पूर्वक गत्यर्थक श्वि धातुसे निर्वचन द्वारा मक्षिकाश शब्द सिद्ध होकर, इस शब्द का अर्थ "इच्छानुसार" गमन है॥

(प्र०) रिप्त शब्द का अर्थ तो लेप किया हुआ है। "हिंसा" अर्थ किस आधार पर है?

(उ०) [रिफ कत्थन युद्ध निन्दा हिंसा दानेषु] हिंसार्थक रिफ धातु से भावार्थक क्त प्रत्यय होकर रिप्त शब्द सिद्ध होकर, इसका अर्थ हिंसा शक्ति है॥

(प्र०) "हस्तयो श्शमितुः।" ये दो शब्द है, इनका अर्थ शान्त करने वाले, वा काटने वाले के हाथों में है, इनका अर्थ "अन्त में युद्ध को शान्ति देने वाले के" अर्थ किस प्रकार हुआ?

(उ०) "शमितुः" शब्द का अर्थ "शान्ति देने वाले के" है। "हस्तयोः" हस्त शब्द का रूप नहीं है। हस्तयु शब्द का रूप है। ह—निश्चय रूप से, स्त=अन्त=समाप्ति कर्म। ह, निश्चयेन स्यति, अन्तङ्करोति स्तमन्तं या तीति हस्तयुस्तस्य हस्तयोः।] इस प्रकार यह अर्थ सिद्ध है।

(प्र०) नख शब्द का अर्थ "छिद्ररहित" किस प्रकार किया गया?

(उ०) [खं छिद्रम्। अविद्यमानछिद्रमत्रेतिनखम्।] न ख शब्द का अर्थ गोपथ ब्राह्मण के अनुसार छिद्र है। जहां छिद्र न हो उसको नख कहते हैं।

(प्र०) "आम' शब्द का अर्थ "रोग जनक" किस धातु से है।

(उ०) रोगार्थक अम धातु से इस शब्द की सिद्धि होकर इसका अर्थ "रोग जनक' है।

(प्र०) एकादश मन्त्र में "शूल शब्द का अर्थ गति, तथा (भूमि) शब्द का अर्थ राज्य सत्ता किस आधार पर है?

(उ०) टु ओश्वि, गत्यर्थक धातु से बाहुलक लक् प्रत्यय सम्प्रसारण होकर शूल शब्द सिद्ध है, अतः शूल शब्द का अर्थ गति है। [भूस्सत्ता। महती भू भूमिः। महती सत्ता राज्यशक्तिस्तस्माद्भूमी राज्यसत्ता।] भू शब्द का अर्थ सत्ता है, महती सत्ता, भूमि कहलाती है, अतः भूमि शब्द का अर्थ राज्यसत्ता है॥

(प्र०) द्वादश मन्त्र में "सुरभिर्निर्हृतेति" का अर्थ "विद्वानों से कोई भय नहीं" ऐसा किस प्रकार हो सकता है?

(उ०) [सुरेभ्यो भीर्निर्हृतेति।] इस प्रकार विग्रह कर "विद्वानों से कोई भय नहीं" यह सुसिद्ध है। (क्रमशः)

जाति-भेद-निवारक-आर्य परिवार संघ"

की

संक्षिप्त रिपोर्ट

इस संघ की स्थापना वर्तमान जाति भेद को दूर करने, आर्य जाति में परस्पर गुण कर्मानुसार विवाह सम्बन्ध कराने तथा सहयोग और सहानुभूति द्वारा आर्यों में परस्पर भ्रातृभाव उत्पन्न करने और आर्य परिवारों को सच्चा आर्य परिवार बनाने के लिए आर्य सार्वदेशिक सभा के संरक्षण में दिसम्बर १९४५ में हुई थी। इतने स्वल्प काल में ही साधनों की बहुत कमी होते हुए भी संघ ने आशातीत कार्य किया है।

१ देहली, २ कानपुर (यू. पी.), दमोह (सी.पी.), पटना (बिहार) में संघ की शाखाएं खुल चुकी हैं। देहली शाखा के अध्यक्ष श्रीमान पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति हैं, तथा संचालक म० गोविन्दराम हासानन्द जी हैं। कानपुर शाखा के अध्यक्ष श्रीमान् बा० अम्बाप्रसाद जी एडवोकेट तथा संचालक आचार्य मेधार्थी जी हैं दमोह शाखा के संचालक श्रीमान् पं० काशिव जी हैं। तथा पटना शाखा के संचालक श्रीमान् पं० विश्वनाथ जी आर्य हैं।

अब तक संघ के ३०० से ऊपर सदस्य तथा ६० के करीब सहायक सदस्य बन चुके हैं। इस समय संघ के सदस्यों के ७० लड़के ५० लड़कियां तथा १० विधुर विवाह योग्य हैं। संघ इनके विवाह सम्बन्ध का भरसक प्रयत्न कर रहा है। किन्तु कतिपय कारणों से संघ विवाह सम्बन्ध कराने में पूर्ण सफल नहीं हुआ उनमें मुख्य २ कारण निम्न हैं—

१. संघ के सदस्यों की संख्या पर्याप्त न होना

२. प्रायः लोगों की मनोवृत्ति देखी गई है कि अपनी जन्म बादरी में लड़के लड़की का चाहे आकाश पाताल का अन्तर भी क्यों न हो वह अपने लड़के लड़कियों का सम्बन्ध बड़ी खुशी से कर देते हैं। किन्तु अन्तर्जातीय सम्बन्ध करते समय पूछताछ में बाल की भी खाल निकाल लेते हैं। इतने पर भी सब प्रकार से गुण कर्म स्वभाव आदि मिल जाने पर भी यदि किञ्चिन्मात्र भी उनकी दृष्टि में न्यूनता रह गई तो झट सम्बन्ध से इन्कार कर देते हैं। और संघ द्वारा किया सब परिश्रम तथा व्यय व्यर्थ चला जाता है। इस समय डाक-विभाग में सब से अधिक व्यय डाक विवाह सम्बन्धी पत्र व्यवहार में हो रहा है। तथा संचालक का समय भी सब से अधिक इसी कार्य में ही व्यय होता है। पुनरपि उपर्युक्त कारणों से अन्तर्जातीय विवाहों में संघ को जितनी सफलता मिलनी चाहिये उतनी नहीं मिली।

अन्तर्जातीय विवाहों में एक और भी बाधक कारण है। लोग प्रायः यह चाहते हैं कि हमारा या हमारे पुत्र पुत्रियों का अन्तर्जातीय विवाह तो हो किन्तु हो अपने ही प्रान्त में, और वह भी अपने आस पास के ही स्थानों में इसलिये कन्या के गुण कर्म स्वभाव सर्वथा मिल जाने पर भी यदि स्थान की कुछ दूरी

होती है तो भी वह सम्बन्ध करने से इन्कार कर देते हैं।

उपयुक्त कारणों के होते हुए भी संघ तथा संघ की शाखाओं द्वारा अभी तक २० विवाह सम्बन्ध हो चुके हैं। इनमें कई विवाह सम्बन्ध तो बहुत ही महत्व रखते हैं। कई विवाह सम्बन्ध ऐसे भी हुए है जो न केवल अन्तर्जातीय ही हैं प्रत्युत अन्तः प्रान्तीय भी हैं। जैसे एक विवाह यू० पी० और सी० पी० में हुआ है। कन्या के पिता श्रीमान् डा० प्यारेलाल जी फिरोजाबाद जि० आगरा के रहने वाले हैं तथा जन्म से राजपूत कहलाते तथा वहां के प्रसिद्ध कार्य कर्ता हैं। वर महोदय दुर्ग सी०पी० के ही उत्साही आर्य युवक जन्म से श्रीवास्तव कायस्थ हैं। इस अन्तर्जातीय विवाह का जिसे कि आचार्य भद्रसेन संचालक संघ ने कराया युवकों पर इतना अच्छा प्रभाव पड़ा कि विवाह संस्कार समाप्त होते ही उसी समय पांच युवक संघ के सदस्य बन गए और एक युवक ने तो जो आगरा कालिज में पढ़ता है यहां तक कहा कि हालां कि मेरा विवाह सम्बन्ध (वाग्दान) मेरी विरादरी में हो चुका है किन्तु मैं इस सम्बन्ध को तोड़ कर भी अपना अन्तर्जातीय विवाह करूंगा। दूसरा अन्तर्जातीय विवाह ६ दिसम्बर सन् १९४७ को सोगत रिया० जोधपुर में हुआ है। कन्या के पिता श्रीमान् म० पन्नालाल जी नेत्र वैद्य जोधपुर स्टेट निवासी हैं और अब कुछ वर्षों से हिगोली हैदराबाद में नेत्रों की चिकित्सा के साथ २ वैदिक धर्म प्रचार में पूर्ण उत्साह से भाग ले रहे हैं। तथा आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद के अन्तरंग सदस्य हैं। तथा जन्म से भटनागर कायस्थ हैं। और वर महोदय श्रीमान् पं० मेधार्तिथि जी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक तथा जन्म से मेड़वाह क्षत्रिय हैं। कन्या के उत्साही पिता ने विवाह के अवसर पर श्रीमान् पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति, श्रीमान् पं० सुरेन्द्र जी काव्य तीर्थ, श्रीमान् पं० भगवान्-स्वरूप जी न्याय भूषण आदि प्रसिद्ध विद्वानों तथा मुझे बुला कर लगातार तीन दिन तक वैदिक धर्म तथा संघ के उद्देश्यों का प्रचार कराया जिसका जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। कन्या के पिता ने जिनके दान से शायद कोई ही आर्य संस्था खाली हो इस अवसर पर ८७) और श्रीमान् पं० मेधार्तिथि जी ने ३०) रुपये संघ को दान दिये तथा उभयपक्ष ने अन्य आर्य संस्थाओं को भी पर्याप्त दान दिया। इस प्रकार दो विवाह सम्बन्ध यू० पी० और राजपूताना में हुए हैं।

अभी ९ एक आदर्श अन्तर्जातीय श्रीमान् बा० पीतमलाल जी एडवोकेट अलीगढ़ निवासी भूतपूर्व मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त, सदस्य जाति भेद निवारक आर्य परिवार संघ की सुपुत्री का श्रीमान् म० राममोहन जी मन्त्री आर्य कुमार परिषद् के साथ समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ है।

इस प्रकार के अन्तर्जातीय विवाह अधिक संख्या में होने से जहां संघ अपने एक मुख्य उद्देश्य को पूर्ण करता है, वहां ऐसे विवाहों के अवसर पर उभय पक्ष से संघ को आर्थिक सहायता भी मिल जाती है। जिसके द्वारा संघ

अपने कई प्रोग्रामों को जो धनाभाव से अधूरे पड़े हैं पूर्ण कर सकता है। अतः संघ के सदस्यों को अन्तर्जातीय विवाहों की संख्या बढ़ाने में संघ को विशेष यत्न करना चाहिए। उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के दो मुख्य साधन हो सकते हैं।

१. प्रथम—संघ अपने उद्देश्यों के प्रचार तथा सदस्य आदि बनाने के लिए योग्य उपदेशकों को नियुक्त करे। स्थान २ पर जाकर जहां वे संघ के उद्देश्यों का प्रचार तथा संघ के सदस्य बनाएँ, वहां जनता को विशेष कर युवकों को अन्तर्जातीय विवाहों के लिए भी प्रोत्साहित करें।

२. द्विती—य भारत के मुख्य २ स्थानों में संघ की शाखाएं खोली जाएं। जो उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्ण उत्साह से कार्य करें।

हर्ष की बात है कि संघ के सदस्यों में कई ऐसे पुरुष तथा स्त्रियां भी है जो अन्य मतों से शुद्ध होकर वैदिक धर्म में प्रविष्ट हुई हैं। संघ के कार्यालय में कई स्थानों से इस आपस के पत्र प्राप्त होते रहते हैं कि अमुक परिवार शुद्ध होकर वैदिक धर्म में प्रविष्ट हो चुका है। आप इन के पुत्र पुत्रियों के विवाह करें। उससे जहाँ आर्य जाति की कमजोरी का पता लगता है, वहां जनता संघ से कितनी आशाएं लगाए हुए है। यह भी स्पष्ट हो जाता है। इन सब को संघ की ओर से यही उत्तर दिया जाता है कि संघ ऐसे सज्जनों के पुत्र पुत्रियों के विवाह के लिए अवश्य प्रयत्न करेगा इस की चिन्ता न करें। और संघ ऐसे प्रयत्नों में सफल भी हुआ है।

संघ ने बड़े शरणार्थी शिविरों के मैनेजरों को पत्र द्वारा सूचित किया है कि यदि कोई देवी असहाय तथा बलात् धर्मपारिवर्तित हो तो इसकी सूचना संघ को दें। संघ ऐसी देवियोंके विवाह का सम्बन्ध अपने सदस्यों के योग्य वीरोंसे करने का अवश्य प्रयत्न करेगा संघ ने इसी आशय की सूचनाएं भी साप्ताहिक तथा दैनिक पत्रों में निकाली है। यदि जनता ने संघ को दिल खोलकर अपना सहयोग दिया तो संघ शुद्धि की समस्या को जो कि वर्तमान जात पात के कारण एक जटिल समस्या बन रही है बड़ी सुगमता से हल कर देगा।

संघ की ओर से आर्य समाज दीवानहाल देहली के उत्सव के अवसर पर श्रीमान् पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति की अध्यक्षतामें जाति भेद निवारका आर्य परिवार सम्मेलन भी हो चुका है। जिसमें जनता ने बहुत उत्साह से भाग लिया और आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वानों तथा नेताओं के भाषण तथा कई उपयोगी प्रस्ताव पास हुए। सम्मेलन भोजन के अवसर पर जहाँ कई सज्जन संघ के सदस्य बने वहाँ उसी समय देहली में संघ की शाखा भी स्थापित हो गई।

संघ के अध्यक्ष श्रीमान् प० गंगाप्रसाद जी रि० चीफ जज, श्रीमान पं०धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति उपाध्यक्ष तथा संचालक संघ ने संघ के तथा वर्तमान जाति बन्धन के सम्बन्ध में कई उपयोगी लेख तथा सूचनाएं भी पत्रों में निकाली हैं। मुझे-खेद से लिखना पड़ता है

कि कुछ आर्य तथा सुधारक पत्र भी संघ के आन्दोलन के लिए जितना सहयोग देना चाहिए उतना नहीं दे रहे। किन्तु जिन पत्रों ने संघ को अपना सहयोग दिया है, उन्हें हम हृदय से धन्यवाद देते हैं। और भविष्य में भी वे हमें पूर्ण सहयोग देंगे। ऐसी पूर्ण आशा है।

मैं जहाँ सुधारक तथा आर्य पत्रों के सम्पादकों से सानुरोध प्रार्थना करूंगा कि वे संघ की उद्देश्य पूर्ति में हमें पूर्ण सहयोग दें और संघ की सूचनाएं तथा लेख शीघ्र छाप देने की कृपा करें, वहाँ उदार दानी महानुभावों से भी प्रार्थना करूंगा कि वह संघ को दिल खोल कर अधिक से अधिक सहयोग दें। जिससे संघ अपने उद्देश्यों के प्रचार और आन्दोलन के लिए एक मासिक या साप्ताहिक पत्र निकाल सकें।

संघ ने अपने उद्देश्यों के प्रचार, संघ के सदस्य बनाने तथा आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए कुछ उत्साही महानुभावों को नियुक्त किया है अतः जिन महानुभावों के पास संघ के प्रमाण पत्र हों वह जहां भी जाएँ जनता से प्रार्थना है कि वह उन्हें हर प्रकार से अपना पूर्ण सहयोग दे।

जिन सज्जनों ने संघ को आर्थिक सहायता देकर उसकी उद्देश्य पूर्ति में हमारा हाथ बटाया है। संघ उनका हार्दिक आभारी है।

संघ को दस रुपये या दस से अधिक सहायता देने वाले महानु भावः—

१. „ श्रीमान् सेठ रामप्रताप जी आर्य सांभर
२. „ पं० गंगा प्रसादजी रि० चीफजज
३. „ स्वर्गीय बा० प्यारेलाल जी रि० सेशन जज
४. „ म० पन्ना लाल जी आर्य हिंगोली हैदराबाद दक्षिण
५. „ डा० प्यारे लाल जी फिरोजाबाद
६. „ म० आर्य कुमार जी दुर्ग सी० पी०
७. „ मेधातिथि जी, लाहौर
८. „ म० जोधराज जी सांभर
९. „ अर्जुन लालजी
१०. „ पूनमचंद जी

आर्य समाज के परमोत्साही कार्य कर्त्ता श्रीमान् म० इन्द्रसेन जी प्रेमी उपदेशक द्वारा सिन्ध प्रान्त के बीसियों सज्जनों ने संघ को आर्थिक सहायता दी है। इस के लिए जहां सिन्ध के दानी सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं, वहां संघ श्रीमान् म० इन्द्रसेन जी प्रेमी को भी हार्दिक धन्यवाद देता है। जिन के पुरुषार्थ से जहां सिन्ध में संघ के उद्देश्यों का प्रचार हुआ बीसियों सिन्ध के आर्य आदि संघ के सदस्य बने वहां उनके द्वारा संघ को सिन्ध से अच्छी आर्थिक सहायता भी प्राप्त हुई, यदि देश में पाकिस्तान की दुःखद परिस्थिति उत्पन्न न हो जाती तो श्रीमान् म० इन्द्रसेन जी द्वारा जहां सिन्ध प्रान्त के पर्याप्त संख्या में आर्य संघ के सदस्य बनते वहां सिन्ध से पर्याप्त आर्थिक सहायता भी मिलती—

सिन्ध प्रांत के कतिपय दस रुपये से ऊपर दान देने वाले सज्जनः—

१. „ सेठ जीवर मल जी, गोधरो
२. „ श्रीमान सेठ बुलन्द राम जी गोधारो
३. „ पूज्य पंचायत „ इत्यादि

निम्न सज्जनों ने संघ के सदस्य बनाने में हमें अपना पूर्ण सहयोग दिया है अतः संघ हृदय से उनको भी धन्यवाद देता है।

संघ के सदस्य बनाने वाले महानु भावः—

१. श्रीमान म० बाबूराम जी अमरोहा यू. पी.
२. „ „ काशिव जी दमोह सी. पी.
३. „ „ तुलसीराम जी आर्य समाज धोई बाड़ा परेल बम्बई,
४. „ „ नीलकण्ठ जी मन्त्री आर्य समाज बिलासपुर सी. पी.
५. „ „ आचार्य मेधार्थी जी कानपुर
६. „ पं० शीतलचन्द्र जी शीतल कविरत्न
७. „ „ जवाहिरलाल जी नागर—इत्यादि

सेठ राम प्रताप जी आर्य ने जहां अपनी उदारता से संघ को समय २ पर आर्थिक सहयोग देने की कृपाकी है, वहां संघ के सदस्य बनाने में भी अपना पूर्ण सहयोग दिया है। इसके लिए जहाँ संघ उन्हें हृदय से धन्यवाद देता, वहां उनसे पूर्ण हिन्दू आशा करता है कि भविष्य में भी वे संघ को अपना पूर्ण सहयोग देते रहेंगे।

अन्त में हम जनता और विशेष कर आर्य जनता से साग्रह प्रार्थना करते हैं, कि वह संघ को तन, मन, धन से अपना पूर्ण सहयोग देकर और संघ के स्वयं सदस्य बन तथा अन्यों को बनाकर देश जाति तथा समाजकी अवनति के मुख्य कारण वर्तमान जातपात के समूल नष्ट करने में संघ को अपना सहयोग देकर यश के भागी बनें।

जो सज्जन अपना सहयोग संघ के सदस्य बनाने तथा आर्थिक सहायता करने में देना चाहें वह संघ के कार्यालय अजमेर से छपी हुई अपील, संघ के उद्देश तथा सदस्यता के फार्म आदि मँगा लें। सदस्यता का चंदा तथा सहायता का धन सेठ राम प्रताप जी आर्य सांभर लेक (राज पूताना) कि अथवा संघ के कार्यालय अजमेर में भेजने की कृपा करें। प्रारम्भि से जनवरी १६४८ तक संघ में १४८०) रुपये आया तथा १२४२) व्यय हुए हैं।

आचार्य भद्रसेन (संचालक)

महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी

(३)

वर्णाश्रम व्यवस्था, जाति भेदादि सामाजिक विषयों पर तुलनात्मक अनुशीलन

(लेखक—पं० धर्म देव जी विद्यावाचस्पति स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा देहली)

—:o:—

'सार्वदेशिक' के मार्च और अप्रैल सन् १६४८ के अङ्कों में मैंने महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी जी के जीवन, कार्य तथा सत्य, अहिंसा, पवित्रतादि विषयक कुछ अद्भुत समानताओं और स्वाध्याय विषयक विभिन्नता का उल्लेख किया था। इस लेख में मैं सामाजिक दृष्टि से 'वर्णाश्रम धर्म, जातिभेद, अस्पृश्यतादि विषयक दोनों महात्माओं के विचारों का तुलनात्मक अनुशीलन पाठक महानुभावों के सन्मुख रखना चाहता हूँ। महात्मा गाँधी जी के लेखों तथा पुस्तकों से उद्धरण देने के अतिरिक्त मैं उनसे अपने पत्र व्यवहार और भेंटों का भी स्थान २ पर उल्लेख करूंगा जिससे यह ज्ञात होगा कि पूज्य महात्माजी के विचारोंमें समय २ पर परिवर्तन होता रहा और अन्त में उनके विचार महर्षि दयानन्द के विचारों से प्रायः सर्वथा समान हो गये थे। यह निर्देश करने की आवश्यकता इस लिये है कि महात्मा जी के लेखादि से उद्धरण लेकर जो संग्रह प्रकाशित हुए हैं उनके अध्ययन से भी इन विषयों में अनेक महानुभावों को भ्रम बना रहता है। इन परस्पर विरोधों (Inconsistencies) के विषय में पूज्य महात्मा गांधी ने जुलाई १६४० के हरिजन (अंग्रेजी) में लिखा है था कि:—

'I am not at all concerned with appearing to be consistent. In my pursuit after truth, I have discarded many ideas and learnt many new things. Old as I am in age, I have no feeling that I have ceased to grow inwardly and that my growth will stop with the dissolution of the flesh What I am concerned with, is my readiness to obey the call of truth, my God, from moment to moment" (Harijan 6th July 1940)

अर्थात् मुझे सम्बद्ध प्रतीत होने की बिल्कुल चिन्ता नहीं है सत्य की खोज में मैंने बहुत से पुराने विचारों का परित्याग कर दिया है और बहुत सी नई चीजें सीखली हैं। यद्यपि मैं आयु में वृद्ध हूँ तथापि मैं यह अनुभव नहीं करता कि मेरा आन्तरिक विकास रुक चुका है अथवा मृत्यु के साथ ही मेरा विकास समाप्त हो जायगा। जिस वस्तु के साथ मेरा विशेष संबन्ध है अथवा जिसकी मुझे विशेष चिन्ता है वह यह है कि मैं सत्य अथवा अपने परमेश्वर की आज्ञा का प्रतिक्षण पालन करने को उद्यत रहूँ।

महात्मा गांधी जी के पुराने लेखों को इस विवेक दृष्टि से पढ़ना अत्यावश्यक है। २६ अप्रैल सन् १६३३ के हरिजन (अंग्रेजी) में महात्मा गांधी जी ने इसी बात को निम्न शब्दों में रक्खा था:—

'In my search after truth, I have discarded many ideas and have learnt many new things. Therefore when any body finds any inconsistency between any two writings of mine, he would do well to choose the latter of the two on the same subject.'

(Harijan, 29th April 1933)

अर्थात् मैं ने सत्य की खोज में अनेक विचारों का परित्याग कर दिया है और कई नई चीजें सीखी हैं। इस लिये जब किसी को मेरे दो लेखों में परस्पर विरोध प्रतीत हो तो वह अच्छा होगा कि वह उसी विषय पर लिखे गये लेखों में से पिछले को चुन ले।

इतने प्राकथन के पश्चात् अब मैं महात्मा गान्धी जी के वर्णाश्रम धर्म, जाति भेदादि विषयक विचारों की महर्षि दयानन्द जी के विचारों से तुलना करना चाहता हूँ।

महर्षि दयानन्द जी ने आर्योद्देश्य रत्न माला, में वर्णाश्रम व्यवस्था के विषय में लिखा ४३ वर्ण—जो गुण और कर्मों के योग से ग्रहण किया जाता है वह वर्ण शब्दार्थ से लिया जाता है। ४४ वर्ण के भेद—जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि हैं वे वर्ण कहाते हैं। ४५ आश्रम जिन में अत्यन्त परिश्रम करके उत्तम गुणों का ग्रहण और श्रेष्ठ काम किये जाएं उनको आश्रम कहते हैं।

४६—आश्रम के भेद-जो सद्विद्यादि शुभ गुणों का ग्रहण तथा जितेन्द्रियता से आत्मा और शरीर के बल को बढ़ाने के लिये ब्रह्मचारी, जो सन्तानोत्पत्ति और विद्यादि सब व्यवहारों को सिद्ध करने के लिये गृहाश्रम, जो विचार के लिये वानप्रस्थ और जो सर्वोपकार करने के लिये संन्यासाश्रम होता है वे चार आश्रम कहाते हैं।

इन वर्णाश्रमों की सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ और पञ्चम समुल्लासों में विस्तृत व्याख्या करते और इनकी आवश्यकता पर उत्तम प्रकाश डालते हुए महर्षिदयानन्द ने 'स्वमन्तव्यामन्तव्य' में लिखा कि 'वर्णाश्रम गुणकर्मो की योग्यता से मानता हूं।" (मन्तव्य सं० १६) 'संस्कार-विधि' के गृहस्थाश्रम प्रकरण में महर्षि ने इतना और लिखा कि 'यदि गुण कर्मों के योग ही से चारों वर्ण हों तो उस कुल देश और मनुष्य समुदाय की बड़ी उन्नति होवे और जिनका जन्म जिस वर्ण में हो, उसी के सदृश गुण, कर्म, स्वभाव हों तो अति विशेष है।"

महर्षिदयानन्द जी क्योंकि वेदादि सत्य-शास्त्रों के पूर्ण पण्डित थे इस लिये अपना इस विषयक सिद्धान्त उन्होंने सप्रमाण सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकादि ग्रन्थों में लिख दिया जिसका सारांश ऊपर उद्धृत किया गया है। महात्मा गांधी ने 'यंग इण्डिया' पत्र के २९ सित० १९२० के अङ्क में 'हिन्दूधर्म' पर लेख लिखते हुए अपने 'वर्णाश्रम धर्म' विषयक मन्तव्य को निम्न शब्दों में प्रकट किया था:—

I believe in the Varnashrama Dharma in a sense in my opinion strictly Vedic, but not in its present popular and crude sense."

"Varnashrama is in my opinion, inherent in human nature and Hinduism has simply reduced it to a science. It does attach to birth. A man can not change his Varna by choice. Not to abide by one's

Varna is to disregard the law of heredity. The division however into innumerable castes is an unwarranted liberty taken with the doctrine. The four divisions are all sufficing.

(Young India 29-9-1920)

अर्थात् 'मैं वर्णाश्रम धर्म को मानता हूँ, परन्तु अपनी समझ के अनुसार ठीक वैदिक अर्थ में। आज कलके अपूर्ण और प्रचलित अर्थ में नहीं वर्णाश्रम व्यवस्था मनुष्य की प्रकृति के लिये स्वाभाविक है। जन्म के साथ उसका सम्बन्ध अवश्य है। कोई मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार अपना वर्ण बदल नहीं सकता; अपने वर्ण के अनुसार न चलना आनुवंशिक प्रभाव के नियम को न मानना है। हां, जो छोटी २ जातियां बन गई हैं यह तो उस सिद्धान्त का अनावश्यक और केवल मनमाना व्यवहार करना है। चार वर्ण ही सब तरह से काफी हैं। मैं इस बात को नहीं मानता कि सहभोज और अन्तर्विवाह से किसी मनुष्य का जन्मजात दर्जा अवश्य ही छिन जाता है।" (नवजीवन ७ अक्तू० १६२१)

इसी लेख में महात्मा गांधी जी ने दूसरे स्थान पर लिखा "ये चार विभाग मनुष्य के व्यवसाय के सूचक हैं। वे सामाजिक व्यवहार की मर्यादा नहीं बनाते। ये चारों तो कर्तव्य का निर्णय करते हैं।......मेरी सम्मति में तो यह बात हिन्दू धर्म के सनातन तत्व के विपरीत है कि एक को तो श्रेष्ठता दी जाए और दूसरे को कनिष्ठ बनाया जाए।"...... ब्राह्मणकुल में जन्म होने के कारण वह प्रधानता से ज्ञानशील है आनुवंशिक रूप से तथा शिक्षा और अभ्यास के कारण वह दूसरे को ज्ञान देने के लिये सब से अधिक पात्र है। फिर ऐसी कोई बात नहीं है जो किसी शूद्र को यथेच्छ ज्ञान प्राप्त करने से रोक सके...... परन्तु जो ब्राह्मण अपने ज्ञान के अधिकार के बल पर अपने उच्च और श्रेष्ठ होने का दावा करता है उसका पतन हो जाता है।" (नव जीवन ७ अक्तू० १६२१)

इन उद्धरणों में महात्मा जी ने केवल ४ वर्णों को ही सर्वथा पर्याप्त बताते हुए वर्तमान जाति भेद का जिसने हिन्दू समाज को असंख्य जाति उपजातियों में विभक्त कर रक्खा है स्पष्ट विरोध किया है किन्तु वर्णों को ४ मानते और वर्तमान जातिभेद का जो ऊँच नीच के भाव का स्पष्टतया समर्थक है विरोध करते हुए भी महात्मा गांधी जी ने जन्म के साथ उसका सम्बन्ध और उसकी अपरिवर्तन शीलता मानी थी।

४ जनवरी सन् १६३१ के Young India में महात्मा जी ने इस सम्बन्ध में अपने विचार इन शब्दों में प्रकट किये थे:—

'I do, however, believe in Varna which is based on hereditary occupations. Varnas are four, to mark four universal occupations-imparting knowledge, defending the defenceless, carrying on agriculture and commerce, and performing service through physical labour. These occupations are common to all mankind, but Hinduism having recognised them as the law of being, had made use of it in regulating social relations and conduct. When Hindus were seized with inertia,

abuse Of Varna resulted in innumerable castes, with Un necessary and harmful restrictiions as to inter-marriage and inter— dining. The Varna has nothing to do with these restrictions. People of different Varnas may inter-marry and inter-dine- A Brahman who marries a Shudra girl ar vice versa, commits no offence against the law af Varna."

(Young India 4thJan.. 1931)

अर्थात् मैं आनुवंशिक व्यवसाय वा वृत्ति पर आश्रित वर्णों में विश्वास रखता हूँ। ज्ञान देना, निर्बलों की रक्षा करना, कृषि या व्यापार करना और शारीरिक श्रम द्वारा सेवा करना इन चार सार्वभौम व्यवसायों वा वृत्तियों को सूचित करने के लिये वर्ण चार हैं। ये चार व्यवसाय मनुष्य मात्र में सामान्य हैं किन्तु हिन्दू धर्म ने सामाजिक सम्बन्ध और आचार व्यवहार को नियमित बनाने के लिये वर्ण व्यवस्था का उपयोग किया। जब हिन्दुओं के अन्दर अकर्मण्यता आ गई तो वर्णों के दुरुपयोग का परिणाम असंख्य जातियों का निर्माण हुआ जिनमें अन्तर्जातीय विवाह और सह भोजनादि विषयक अनावश्यक और हानि कारक प्रतिबन्ध लगाये गये। वर्ण का इन प्रतिबन्धों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। भिन्न २ वर्णों के लोगों का परस्पर विवाह और भोजनादि हो सकता है। एक ब्राह्मण जो शूद्रा कन्या के साथ विवाह करता है अथवा इस के विपरीत एक शूद्रा जो ब्राह्मण के साथ विवाह करती है वर्ण नियम के विरुद्ध कोई अपराध नहीं करती।

इस उद्धरण में भी पाठक देखेंगे कि महात्मा गांधी जी ने वर्तमान जातिभेद और अन्तर्जातीय विवाह और सहभोजनादि विषयक प्रतिबन्धों को सर्वथा अनावश्यक और हानिकारक तथा वर्णों का आधार आनुवंशिक वृत्ति वा कर्म पर जो ४ प्रकार के ही हो सकते हैं माना है।

अपने वर्णाश्रम धर्म विषयक विचारों की वर्तमान जाति भेद और विवाहभोजनादि विषयक प्रतिबन्धों से भिन्नता प्रकट करते हुए महात्मा गांधी जी ने ब्राह्मण अब्राह्मण समस्या पर कडलोर (मद्रास संस्थानान्तर्गत) में भाषण करते हुए कहा था:—

'It (Varnashrama) has nothing to do with superiority or inferiority. The customs about eating, drnking and marriage are no integral part of Varnashrama Dharma. "Fight by all means the *monster* that passes for Varnashrama to day, and you will find me working side by side with you. My Varnashrama enables me to dine with any body who will give me clean food, be he Hindu. Muslim, Christian, Parsi, what ever he is. My Varnashrama accomodates a pariah girl under my own roof as my own daughter. My Varnashrama acomodated many Panschama families with whom I dine with the greatest pleasure; to dine with whom is a parivilege."

Quated from" The Teaching of Mahatma Gandhi P. 580

अर्थात् वर्णाश्रम का ऊंच नीच से कोई सम्बन्ध नहीं। खान पान और विवाह विषयक प्रथाएं वर्णाश्रम धर्म का कोई आवश्यक भाग नहीं हैं। आज कल जो राक्षस वर्णाश्रम के

नाम से माना जाता है उस के विरुद्ध सब साधनों से युद्ध करो और तुम मुझे अपने साथ कार्य करते हुए पाओगे। मेरा वर्णाश्रम मुझे किसी के भी साथ जो मुझे शुद्ध भोजन दे चाहे वह हिन्दू मुसलमान, ईसाई या पारसी हो, खाने की अनुमति देता है। मेरा वर्णाश्रम मुझे अपनी ही पुत्री बनाकर एक अस्पृश्य माने जाने वाली कन्या को अपने घर में रखने की अनुमति देता है। मेरा वर्णाश्रम बहुत से पञ्चम परिवारों को अपने पास रखने और उन के साथ अत्यधिक हर्ष के साथ भोजन करने का मुझे अधिकार देता है।

वर्ण व्यवस्था, जातिभेद और अस्पृश्यता का सम्बन्ध

इन ऊपर उद्धृत उद्धरणों से पाठकों को महात्मा जी के सन् १९३१ तक के विचारों का आभास मिलेगा जिनमें वर्तमान असंख्य जातियों का विरोध करते हुए भी ४ वर्णों का आधार जन्म पर भी माना गया था। सन् १९३२ में मुझे पूज्य पाद महात्मा जी से इन विषयों में पत्र व्यवहार और दो बार भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिस के कुछ अंशों का उस प्रसङ्ग में उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है।

१० दिसम्बर १९३२ को बंगलौर से पूज्य महात्मा गान्धी जी को (जो उन दिनों यरवदा जेल में थे) पत्र भेजते हुए मैं ने लिखा कि:—

अस्पृश्यता निवारण विषयक प्रचार करते हुए मेरा यह दृढ़ निश्चय हुआ है कि जब तक जन्म मूलक ऊंच नीच का भाव लोगों के दिलों मे जमा रहेगा और उसे निमूल करने का यत्न किया जाएगा तब तक अस्पृश्यता निवारण के प्रचार से काम न चलेगा। यह लिखने की कृपा करें कि आप का इस विषय में क्या विचार है। क्या आप यह नहीं मानते कि अस्पृश्यता का भाव जन्म मूलक जाति भेद की ही भावना का परिणाम स्वरूप है अतः उसका समूल नाश तभी हो सकता है जब कि जन्ममूलक ऊंच नीच के भाव को ही दूर किया जाए। कृपया अपना विचार लिख कर अनुगृहीत करें।"

१४ दिसम्बर सन १९३२ को यरवदा जेल से इस पत्र का उत्तर देते हुए महात्मा जी ने लिखा:—

"यद्यपि जाति के विषय में आप ने जो लिखा है वह तथ्य है तदपि आज जो कार्य हो रहा है उसके साथ जाति सुधार को नहीं मिला सकते हैं। इस बारे में मेरे विचारों को लिखने का अभी मुझे समय नहीं है। समय पाने पर मैं अवश्य लिखूंगा।"

५-१-३३ को बंगलौर से पुनः पत्र भेजते हुए मैं ने पूज्य महात्मा जी को लिखा:—

"१०-१२-३२ के पत्र में मैंने आप की सेवा में निवेदन किया था कि 'जब तक जन्म मूलक ऊंच नीच का भाव लोगों के दिलों में जमा रहेगा और उसे निर्मूल करने का यत्न न किया जाएगा तब तक केवल अस्पृश्यता निवारण से काम न चलेगा इत्यादि। इस विषय में अपने विचारों को सूचित करने की मैं ने आप से प्रार्थना की थी। आपने इसका संक्षिप्त उत्तर देते हुए यह लिखने की कृपा की थी कि 'इस बारे में मेरे विचारों को लिखने

का अभी मुझे समय नहीं है। समय पाने पर मैं अवश्य लिखूंगा।"

इस बीच में मुझे 'हमारा कलङ्क, इस नाम से प्रकाशित आपके कुछ लेखों के संग्रह को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। किन्तु मुझे खेद है कि आपके वर्णाश्रम धर्म विषयक विचार मुझे सर्वथा अस्पष्ट प्रतीत होते हैं। किसी लेख में आप वर्ण व्यवस्था जन्म पर आश्रित मानते हैं और किसी दूसरे लेख व भाषण में उसका आधार आप गुण कर्म पर बताते हैं जिससे क्षमा करें पाठकों के हृदय पर ऐसा प्रभाव होता है कि आप इस विषय में किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँच सके अथवा आपके विचारों में परिवर्तन होता गया है। इस विषय में आपके विचार को जानना जनता के लिये आवश्यक है क्योंकि यदि आप वर्ण-व्यवस्था को जन्म मूलक मानते हैं जैसे कि [illegible] ma does attach to birth. A man can not change his Varna by choice." (Young India Oct. I2 192.,) इत्यादि शब्दों से प्रतीत होता है तो संकर मूलक जातियों के अस्तित्व अथवा अस्पृश्यता आदि से भी पूर्ण इन्कार नहीं किया जा सकता जिनका नई नवीन स्मृतियों आदि में वर्णन पाया जाता है। इस लिये क्या मैं आपकी सेवा में फिर निवेदन करूं कि इस विषय में अपनी स्थिति को स्पष्ट करने की कृपा करें क्योंकि अनेक सुशिक्षित सज्जनों को भी इसके बारे में सन्देह बना हुआ है।" इत्यादि।

७-१-३३ को यरवदा जेल से इस पत्र के उत्तर में पूज्य महात्मा गांधी जी ने यह लिखने कृपा की :—

भाई धर्मदेव।

तुम्हारा पत्र मुझे बहुत ही अच्छा लगा है। वर्णाश्रम धर्म के विषय में जो मेरे लेख आज तक निकल चुके हैं उन पर से किसी को मेरा निश्चयात्मक अभिप्राय नहीं मिल सकेगा यह तुम्हारा कहना वास्तविक है। क्योंकि जितना निश्चय मैं लेखों में बता सका हूं उससे आगे मैं नहीं पहुंच सका था। अब कुछ ज्यादा निश्चय पर अवश्य पहुंचा हूं और सम्भव है जब मेरे सामने चित्र स्पष्ट दीख पड़ता है। मैं संशयात्मक भाषा में लिख रहा हूँ क्योंकि अबतक मैंने आज तक के मेरे विचार नहीं लिखे हैं तब तक मुझ को पता नहीं चलेगा। मेरा इरादा अवकाश मिलने से इसी आन्दोलन के लिए वर्णाश्रम पर एक लेख लिखने का हो रहा है। इत्यादि।

यह पत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसमें पूज्य महात्मा जी ने सरलतापूर्वक इस बात को स्वीकार किया है कि उनके वर्णाश्रम धर्म विषयक विचार ७ जनवरी १६३३ तक अनिश्चित थे और वे इस विषय में किसी निश्चित परिणाम पर न पहुंच सके थे। इस लिए तब तक के उनके इस विषयक लेखों को प्रामाणिक मानना ठीक नहीं।

१२-१-१६३३ को उपर्युक्त पत्र का बंगलौर से उत्तर देते हुए मैंने लिखा कि "आपने जिस उत्तम रूप में मेरे पत्र में निर्दिष्ट बातों को

लिया है और जिस सरलता से उसका उत्तर दिया है वह आप जैसे पूज्य महात्माओं में ही पाई जाती है। यह जान कर अत्यन्त हर्ष हुआ कि वर्णाश्रम धर्म के विषय में अब आप अधिक निश्चय पर पहुँचे हैं और शीघ्र ही इस विषयक एक लेख लिखने वाले हैं। एक वेदादि सत्य शास्त्र प्रेमी के रूप में इस विषयक निम्न बातों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने की धृष्टता करता हूँ, जिसके लिये आशा है क्षमा करेंगे और उन पर यथोचित विचार करेंगे।

(१) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण हैं जातियां नहीं। यदि ये परस्पर सर्वथा भिन्न जातियां हों तो आकृति देखते ही उनकी पहचान की जा सके जैसे कि गाय, बैल, गधे, घोड़ इत्यादि की की जा सकती है क्यों कि "आकृतिजाति लिङ्गाख्या", "समानप्रसवात्मिका जातिः" यही गौतम मुनिकृत न्यायदर्शन में जातिका लक्षण बताया है। उस अवस्था में ब्राह्मण की क्षत्रिया स्त्री से सन्तान ही न हो सके किन्तु वर्णों में इस प्रकार का कोई भेद नहीं पाया जाता। वर्ण शब्द का अर्थ ही 'व्रियन्ते गुणकर्म स्वभावादिभिरिति वर्णाः' यह है अर्थात् गुण कर्म स्वभावादि से जिनका वरण अथवा चुनाव किया जाए। जाति-मनुष्य जाति-एक है अथवा पुरुष और स्त्री जाति। वर्ण ४ हैं।

(२) ब्राह्मण, क्षत्रियादि शब्द ही विशेष गुणों को सूचित करते हैं उदाहरणार्थ ब्राह्मण का अर्थ—ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः अथवा-ब्रह्म-ईश्वर और वेद के यथार्थ स्वरूप को जानने वाला यह है। क्षत्रिय का शब्दार्थ ही क्षत अर्थात् आपत्ति से त्राण-रक्षा करने वाला ऐसा है। वैश्य शब्द का अर्थ एक देश से दूसरे देश में व्यापारादि के लिये प्रवेश करने वाला है। शूद्र का अर्थ 'शुचा द्रवतीतिशूद्रः। शोक मोहादि युक्त हो कर आजीविकार्थ इधर उधर दौड़ने वाले का है। इस प्रकार ये शब्द भी वर्ण व्यवस्था के गुण कर्मानुसार होने की सूचना देते हैं।

(३) वर्ण व्यवस्था का आधार गुण कर्म स्वभाव पर है और वर्ण परिवर्तन संभव है इस के स्पष्ट प्रमाण मनुस्मृति, गीता, महाभारत, उपनिषत्, पुराणादि में पाये जाते हैं तथा ऐतिहासिक उदाहरण भी प्राचीन ग्रन्थों में बहुत से मिलते हैं जिनमें से कुछ का नीचे उल्लेख करता हूँ।

"शूद्रो ब्राह्मणतामेति, ब्राह्मण श्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु, विद्याद् वैश्यात्तथैव च॥"
(मनु अ. १०-४७)

यहां वर्णपरिवर्तन का स्पष्ट प्रतिपादन है। भगवद्गीता के (चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं, गुणकर्म स्वभावशः॥ ४॥

तथा 'शमो दमस्तपः शौचम्' (१८)

इत्यादिश्लोक इसी का समर्थन करते हैं।

महाभारत वनपर्व अ. १८८, ३१२ के यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में स्पष्ट शब्दों में बताया गया है कि:—

(सत्यं दानं क्षमा शीलम्, आनृशंस्यं त्रपा घृणा।
तपश्च दृश्यते यत्र, स ब्राह्मण इति स्मृतः॥
"यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प, वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः।
यत्रैतन्न भवेत्सर्प, तं शूद्रमिति निर्दिशेत्॥"
न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च सन्ततिः।

कारणानि द्विजत्वस्य, वृत्तमेव तु कारणम् ॥
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि,ब्राह्मणत्वं स गच्छति ॥
न कुलेन न जात्या वा, क्रियाभिर्ब्राह्मणो भवेत् ।
चण्डालोऽपि हि वृत्तस्थो ब्राह्मणः स युधिष्ठिर ॥

इत्यादि महाभारत के सैकड़ों श्लोकों से वर्ण व्यवस्था का आधार जन्म पर नहीं किन्तु गुण-कर्म पर है, यह बात स्पष्टतया ज्ञात होती है। इसी विषय को शुक्रनीति में

'न जात्या ब्राह्मणश्चात्र, क्षत्रियो वैश्य एव न ।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभिः ॥
भविष्य पुराण, भागवत, विष्णु पुराणादि में
'जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्याश्च पराशरः ।'

इत्यादि वर्ण परिवर्तन के सैकड़ों उदाहरण दिये हैं जिनमें व्यास जी के पिता पराशर जी को चण्डाल स्त्री का पुत्र होते हुए भी ब्राह्मण ऋषि माना गया है । आनुवंशिक प्रभाव (Heredity) से सर्वथा इन्कार नहीं किया जा सकता किन्तु यह तभी संभव है जब ब्राह्मणादि अपने २ धर्म का पालन करने वाले हों न कि आज कल जब कि लाखों ब्राह्मण वंशज भी रसोइये इत्यादि बन कर शम-दम-स्वाध्यायादि से सर्वथा वंचित दिखाई देते हैं।

शेष आप से मिलने का सौभाग्य प्राप्त होने पर जिसके लिये कल जेल सुपरिन्टेण्डेण्ट साहेब को लिखा है कि १७ जनवरी ३ बजे मध्याह्न आप से मुलाकात की आज्ञा दी जाए। मैं विशेष कारणवश कुछ समय के लिये उत्तर भारत जा रहा हूँ अतः आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त करना चाहता हूँ। आशा है आप भी अनुमति देने की कृपा करेंगे।

१७ जनवरी सन १९३३ को यरवदा जेल में पूज्य महात्मा जी से लगभग २ घण्टे तक भेंट का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिसके जातिभेद, वर्णव्यवस्था और अस्पृश्यता विषयक मुख्य निम्न अंश इस प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय हैं।

भेंट का संक्षिप्त विवरण

मैंने भेंट के प्रारम्भ में अपने पत्र व्यवहार का निर्देश करते हुए महात्मा जी से अपने विचारों को स्पष्ट करने की प्रार्थना की विशेषतः यह कि वर्ण व्यवस्था का आधार जन्म पर है या गुण कर्म पर। मैंने उन का ध्यान 'हमारा कलङ्क' नाम से प्रकाशित उन के लेख संग्रह के पृ० ६५ की ओर आकर्षित किया जिस में लिखा है 'मैं वर्णाश्रम को मानता हूँ और उसके विषय में जन्म और कर्म दोनों को मानता हूँ। अब आप किस निश्चय पर पहुंचे हैं यह मैंने प्रश्न किया क्या आप का मतलब यह है कि जिसका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ है उसके अन्दर ब्राह्मणों के गुण कर्म न होते हुए भी वह ब्राह्मण समझा जाना चाहिये।

पूज्य महात्मा जी ने इस का उत्तर देते हुए कहा कि मेरी साधना अभी समाप्त नहीं हुई। पर जन्म से मेरा तात्पर्य यह है कि जो जिस कुल के अन्दर उत्पन्न हुआ है उसके अन्दर वैसी ही स्वाभाविक झौक (इसी शब्द का महात्मा जी ने प्रयोग किया फिर अंग्रेजी के Tendency शब्द का प्रयोग किया) होती है इसी अर्थ में मैं वर्णाश्रम में जन्म को मानता हूँ। उन्हों ने यह भी इस प्रसङ्ग में कहा कि मेरे विचार में जिस का जन्म जिस कुल में हुआ

है उसे उसी के धर्म का पालन करना चाहिये अन्यथा वह पतित समझा जाना चाहिये। यदि एक बढ़ई भङ्गी का कामकरने लगे(जो स्वयम् एक बड़ी उत्तम सेवा का कार्य है)"तो भी ठीक नहीं क्यों कि समाज के लिये दोनों की आवश्यकता है। जो ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी ब्राह्मणों के गुण कर्म नहीं रखता उसे आप क्या कहेंगे? इस के उत्तर में महात्मा जी ने कहा कि उसे पतित ब्राह्मण कहेंगे केवल इसलिये कि उसे अपने आदर्श का ध्यान रहे। इस पर मैं ने निवेदन किया कि वह स्वाभाविक प्रवृत्ति तभी सम्भव है जब कि माता पिता ब्राह्मण धर्म का पालन करने वाले हों न कि आज कल, जब कि उनमें से बहुतों ने रसोइये इत्यादि बनकर अपने गुण कर्मों का सर्वथा परित्याग कर रक्खा है। "जो जिस कुल में पैदा हुआ है उसे उसी के धर्मों का पालन करना चाहिये अन्यथा मैं उसे भी पतित समझता हूँ।" महात्मा जी के इस कथन पर मैं ने निवेदन किया कि यह कोई आवश्यक नहीं। आप का जन्म वैश्य कुल में हुआ बतलाया जाता है तो क्या इसका यह अर्थ है कि आप व्यापारादि में ही लगे रहें और अब आप जो सच्चे ब्राह्मण धर्म का आदर्श जगत् के सामने रख रहे हैं यह अनुचित कर रहे हैं? 'ब्राह्मण' जैसे पवित्र शब्द का प्रयोग जिसका अर्थ ही यह है कि 'ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः' अर्थात् ईश्वर और वेद को जानने वाला, एक ऐसे व्यक्ति के लिये कैसे उचित हो सकता है जो इन गुणकर्मों से सर्वथा रहित हो?

इस पर महात्मा जी ने कहा कि आज कल तो न वर्ण हैं न आश्रम। प्रायः सभी शूद्र वा वायडाल हो गये हैं। इस लिये आज कल तो जो जिस तरह समाज की सेवा कर सकता है उसे वैसे करनी ही चाहिये। इससे मैं सहमत हूं कि जब वर्णाश्रम धर्म का पालन होता है तभी सन्तान के अन्दर वैसी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। ब्राह्मणों को अपनी सन्तान को ब्राह्मण बनाने का ही यत्न करना चाहिये क्योंकि मुख्य तो आत्मिक जीवन है न कि आजीविका। .... मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कि आप तो अन्तर्जातीय भोजन और अन्तर्जातीय विवाह के पक्ष में है नां? महात्मा जी ने कहा कि हां, मेरा आश्रम इस का प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस पर मैं ने निवेदन किया कि आपको स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर देनी चाहिये कि मैं वर्णाश्रम को मानता हूँ जो गुण कर्मानुसार होता है किन्तु जन्म सिद्ध जाति भेद को नहीं। जैसा कि 'हमारा कलङ्क, के पृ० ३२ में आपने लिखा है कि 'वर्णाश्रम और जाति में कोई मेल नहीं है। जाति तो हिन्दू धर्म पर एक बोझ है।' किन्तु खेद और आश्चर्य की बात तो यह है कि आप के ही लेखों में इससे विरुद्ध भाव भी कहीं २ पाये जाते हैं जो सन्देह में डालते हैं उदाहरणार्थ "हमारा कलङ्क" पृ० १४८ पर लिखा है कि 'ब्राह्मण जन्म से होते हैं लेकिन ब्राह्मणत्व जन्म से नहीं होता।" इस पर पूज्य महात्मा जी ने कहा कि पूर्वापर या आगे पीछे की सङ्गति जोड़ लेनी चाहिये। अनुवाद में भी अशुद्धि संभव है। महादेव भाई मेरे साथ इतने वर्षों से हैं पर कभी २ इन से भी अनुवाद में अशुद्धि हो जाती है ब्राह्मणत्व जन्म से नहीं होता यही मेरा कथन है। मैंने 'जन्मना जायते शूद्रः' इस

सुप्रसिद्ध वाक्य को भी प्रस्तुत किया जिस पर महात्मा जी ने कहा कि कई बार मेरी भाषा में अस्पष्टता रह जाती है उसका समन्वय कर लेना चाहिये। मैं ने निवेदन किया कि आप के एक एक शब्द को बहुत से लोग वेद वाक्यवत् मानते हैं अतः आपको भाषा का प्रयोग करते हुए अधिक जिम्मेवारी को काम में लाना चाहिये।

जातिभेद और अस्पृश्यता का सम्बन्धः—

जातिभेद और अस्पृश्यता के सम्बन्ध की ओर मैं ने महात्मा जी का ध्यान आकर्षित किया और कहा कि अस्पृश्यता वस्तुतः जन्मसिद्ध जातिभेद का ही परिणाम है अतः अस्पृश्यता को निर्मूल करने के लिए जन्मसिद्ध जातिभेद अथवा Hereditary Caste-sytem का ही विरोध करना आवश्यक है। इस पर महात्मा जी ने कहा कि दोनों ही बुरी प्रथाएं हैं। पर जाति भेद को मैं Centiped (कन खजूरे) या बिच्छू के समान और अस्पृश्यता को सर्प के समान मानता हूँ। इसी लिए अस्पृश्यता निवारणार्थ अभी अपने ध्यान को केन्द्रित करना चाहता हूं। मेरा यह भी विश्वास है कि अस्पृश्यता के दूर हो जाने से जातिभेद का भाव भी बहुत कुछ दूर हो जाएगा। मैं ने निवेदन किया कि आप जैसे महात्माओं के प्रयत्न से चाहे अस्पृश्यता कुछ समय के लिये दूर हो जाए किन्तु उसका समूल नाश असम्भव है जब तक जन्म सिद्ध जातिभेद की भावना लोगों के दिलों में जमी हुई है।

हरिजनों को मन्त्र—दीक्षादि

इस के बाद हरिजनों को मन्त्र दीक्षा देने आदि के विषय में बात चली। मैंने प्रश्न किया कि आपके कई लेखों में यह विचार पाया जाता है कि हरिजनों को शूद्र समझा जाए। क्या यह उचित है कि जो हरिजन भाई बहुत सुशिक्षित सदाचारी और निर्मल हैं उन्हें भी शूद्र ही समझा जाए?

इस पर महात्मा जी ने कहा कि इस विषय में मेरे विचारों में परिवर्तन हुआ है जैसे कि मैं पहले कह चुका हूँ मेरी साधना अभी चल रही है वह समाप्त नहीं हुई है अतः इस विषयक विचार परिपक्व न हुए थे। अब तो मेरा यही विचार स्थिर हुआ है कि हरिजनों को अस्पृश्य वा पञ्चम न समझा जाए। किस वर्ण में उनको प्रविष्ट किया जाए इस का कोई नियम नहीं बनाया जासकता, इस पर मैं ने निवेदन किया कि

"न कुलेन न जात्या वा, क्रियाभिर्ब्राह्मणो भवेत्।
चण्डालोऽपि हि वृत्तस्थो ब्राह्मणः स युधिष्ठिर॥

इत्यादि महाभारत के वचनानुसार चण्डाल तक ब्राह्मण बन सकते हैं, यदि वे ब्राह्मणोचित गुण कर्म धारण करें फिर आज कल अस्पृश्य समझे जाने वालों की तो बात ही क्या है! इत्यादि

इस महत्वपूर्ण भेंट के पश्चात् ५-२-१६३३ को पेशावर छावनी से पूज्य महात्मा जी को पत्र लिखते हुए मैं ने निवेदन किया:—

आपने ५-१-१६३३ के अपने कृपा पत्र में जिस वर्णाश्रम धर्म विषयक लेख को लिखने का इरादा प्रकट किया था कृपया सूचित करें कि उसे लिखने का अभी आपको अवकाश मिला या नहीं। मुझे अभी तक उसे पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ इस लिये पूछ रहा हूं। यदि वह प्रकाशित हो चुका हो तो सूचित करने का कष्ट उठाएं, यदि नहीं तो मैं आपकी सेवा में

सविनय निवेदन करना चाहता हूँ कि उसे लिखने से पूर्व 'सत्यार्थ प्रकाश' के ४ थे समुल्लास के वर्णाश्रम विषयक लेख को जिसमें थोड़े से पृष्ठ हैं फिर एक बार पढने की कृपा करें जिस में सप्रमाण विचार किया गया है। यह विषय शास्त्रीयहोने के कारण गहन है और आप के एक एक अक्षर को वेद वाक्य वत् प्रमाण मानने वालों की संख्या बहुत अधिक है इसलिये मैं आपकी सेवा में निवेदन करता हूँ कि उस लेख को संशयात्मक वा सन्देह जनक भाषा में न लिखें जैसे कि ब्राह्मण जन्म से होते हैं लेकिन ब्राह्मणत्व जन्म से नहीं होता । (हमारा कलङ्क पृ० १४८) इत्यादि जिनका मैंने बातचीत में निर्देश करने की धृष्टता की थी । उस लेख की भाषा सर्वथा स्पष्ट होनी चाहिये तथा उसमें स्पष्ट शास्त्रीय प्रमाणों का भी मेरे विचार में अवश्य उल्लेख होना चाहिये। जन्म के प्रभाव का यदि निर्देश करना आप अनिवार्य और अत्यावश्यक समझते हैं तो यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि वह तभी सम्भव है जब माता पिता वर्ण धर्म का पालन करने वाले हों, आज कल के जाति भेद और वर्ण व्यवस्था में आकाश पाताल का अन्तर है और जैसे कि 'हमारे कलङ्क' पृ० ३२ में लिखा है 'वर्णाश्रम और जाति में कोई मेल नहीं है। जाति तो जरूर ही हिन्दू धर्म पर एक बोझ है।' मैं यह निवेदन इस लिये कर रहा हूँ कि आपका स्थिति शास्त्र और तर्क की दृष्टि से सर्वथा स्पष्ट हो जिसका प्रत्येक विवेकशील और विवेकी धर्म प्रेमी समर्थन करके इस पवित्र आन्दोलन को सफल बनाने में अपनी सारी शक्ति का उपयोग कर सके। भाषा के गोलमाल होने से वह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता।"

महात्माजी का सरलतापूर्ण उत्तर

१०-२-१९३३ को इस पत्र का अपने कर कमलों से उत्तर देते हुए पूज्य महात्मा जी ने यरवडा जेल से लिखने की कृपा की।

"भाई धर्मदेव,

तुम्हारा खत मिला है अब तो हरिजन साप्ताहिक निकल रहा है उस में वर्णाश्रम के बारे में कुछ न कुछ लिखा करूंगा उसे देखा करो।

सत्यार्थ प्रकाश आश्रम से मंगवा कर मैं ४र्थ समुल्लास पढ़ लूंगा। जो कुछ मैं लिखता हूँ वह स्पष्ट रूप से लिखने की चेष्टा करता हूँ। जिस बारे में मुझे संदेह रहता है वह निश्चयात्मक भाषा कैसे निकालूं?" मोहनदासके आशीर्वाद

इसके बाद पूज्य महात्माजी के हरिजन,(अंग्रेजी) में जो लेख वर्णाश्रम धर्म विषयक निकले उनमें इस बात को स्पष्ट कर दिया गया था कि वर्णाश्रम जाति भेद से सर्वथा भिन्न वस्तु है और जाति भेद को शास्त्रीय समर्थन प्राप्त नहीं है। वर्णाश्रम का आधार गुण कर्म पर है इस बात को भी उन लेखों में पर्याप्त स्पष्ट कर दिया गया था यद्यपि जाति भेद का किसी अंश में थोड़ा सा समर्थन उन में अवश्य था जिसके विषय में मुझे अपने विचार शास्त्रीय दृष्टि से पेशावर से १७-२-१९३३ को लिखे निम्न पत्र के रूप में प्रकट करने आवश्यक प्रतीत हुए।

"हरिजन" में तथा अन्यत्र प्रकाशित आप के महत्वपूर्ण लेखों को सच्ची श्रद्धा के साथ बार २

पढ़ा करता हूं। उनके बार २ पढने में जो आनन्द आता है वह वर्णनातीत है। डा० अम्बेडकर के १३ फर्वरी १६३३ के वक्तव्य के उत्तर में वक्तव्य देते हुए आपने जो भाव वर्णाश्रम धर्म के विषय में प्रकाशित किये हैं वे शास्त्रीय दृष्टि तथा सामान्य बुद्धि के इतने अनुकूल हैं कि उनकी प्रशंसा मेरी शक्ति के बाहर है। उन्हें पढ़ कर मेरा हृदय उछल पड़ा आपने "Out of that spirit of service, it is posaible to revive spiritual knowladge ··· and then those who are in possession of that knowledge and the will to use it for society will be Brahmans."·

इत्यादि भाव पूर्ण शब्दों में वर्णाश्रम धर्म का जो सारांश दिया है यह वही है जिसको मैंने आप के सामने रखने की चेष्टा की थी और जिसे मैं वैदिक धर्म का तत्त्व समझता हूँ।

वरेन्ड स्टेन्ली जोन्स के प्रश्न के उत्तर में में भी आपने वर्णाश्रम धर्म और जातिभेद की भिन्नता को

'For me, the Caste-system is not the same as Varnashrama Dharma. Varnashrama is based upon the Hindu Scriptures. Not so the Caste-system."

(अर्थात् मेरे लिये जाति भेद वही वस्तु नहीं जो वर्णाश्रम धर्म है। वर्णाश्रम का आधार हिन्दू शास्त्रों पर है जाति भेद का नहीं) इत्यादि स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित कर दिया है। किन्तु 'हरिजन' के प्रथमाङ्क में प्रकाशित डा० अम्बेडकर के सन्देश पर आपने जो टिप्पणी की है मुझे यह लिखने की आज्ञा दें कि वह सन्तोष जनक नहीं है और क्षमा करें, उस की कई बातें मुझे ठीक नहीं प्रतीत होती। डा० अम्बेडकर का दूसरा (१३वा०) का वक्तव्य निकलने से पूर्व जिस में उन्होंने 'चातुर्वर्ण्य' को भी 'जातिभेद' के साथ मिलाने की सख्त गल्ती की है मैं समझता था कि मैं उनके विचार से इस विषय में पूर्ण सहमत हूं कि 'The out-caste is by-product of the castesystem, (अर्थात् अस्पृश्य जाति भेद का ही परिणाम स्वरूप या उद्भव है)

उस के उत्तर में आपका वर्णाश्रम का समर्थन करना सर्वथा न्याय्य और युक्ति संगत था किन्तु आप का कुछ अंश तक वर्तमान जाति भेद को भी उचित ठहराने का प्रयत्न तथा यह लेख कि

I do not believe the caste system, even as distinguished from Varnashrama, to be an odious and vicious dogma.'

······There is nothing sinful about it.'

अर्थात् मैं जाति भेद को वर्णाश्रम से भिन्न रूप में भी एक निन्दनीय और हानिकारक सिद्धान्त नहीं मानता।.........इस में कोई पापमय चीज नहीं।

क्षमा करें मुझे माननीय नहीं प्रतीत होता। आप अस्पृश्यता निवारण का जो उद्देश्य बताते हैं कि इस जन्मके ऊंच नीच भावको दूर किया जाए

"The attack on un-tonchability is thus an attack upon this 'high and low' ness'

वह वर्तमान जातिभेद का आवश्यक अङ्ग है यह मैं आपकी सेवा में सप्रमाण निवेदन करना चाहता हूँ। मैं आप के इस विचार से पूर्णतया सहमत हूं कि 'वर्ण धर्म' में यह जन्मगत उच्चता नीचता वा घृणा की भावना नहीं किन्तु जन्म सिद्ध जाति भेद (Hereditary Caste-system) में यह अवश्य पाई जाती है।

दो तीन प्रसिद्ध स्मृतियों के निम्न वचनों का इस सम्बन्ध में उल्लेख करना पर्याप्त होगा यद्यपि ऐसे सैंकड़ों वाक्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं कि किस प्रकार जन्म सिद्ध जाति भेद की भावना ऊंच नीच तथा उच्चजातियों के नीच जातियों विशेषतः शूद्रोंसे घृणाकी स्पष्ट समर्थक है:

वर्तमान मनुस्मृति के अ० ६ के ३१७-३१६ श्लोकों में लिखा है।

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च, ब्राह्मणो दैवतं महत्। प्रणीतश्चाप्रणीतश्च, यथाग्निर्दैवतं महत् ॥३१७॥
एवं यद्यप्यनिष्टेषु, वर्तन्ते सर्व कर्मसु। सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः, परमं दैवतं हि तत् ।३।३१६

यहां बताया गया है कि जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ है वह विद्वान् हो वा केवल मूर्ख हो परम देवता है। ब्राह्मण चाहे सब प्रकार पाप कर्म करने वाले हों तो भी वे सर्वथा पूज्य और परम देवता हैं। अब आप ही कहिये यहां केवल जन्म के कारण उच्चता और पूज्यता का भाव पाया जाता है वा नहीं? क्या आप इस से इन्कार कर सकते है?

पराशर स्मृति के (जिसे 'सनातनी' भाई कलियुग के लिये सब से अधिक प्रामाणिक मानते हैं) निम्न लिखित २ श्लोक इस विषय में द्रष्टव्य हैं:—

"ब्राह्मणा यानि भाषन्ते, मन्यन्ते तानि देवताः।
सर्वदेवमयो विप्रो, न तद्वचनमन्यथा ॥
लघु पराशरस्मृति ६। ६२

दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रियः।
कः परित्यज्य गां दुष्टां, दुहेच्छीलवतीं खरीम् ॥
पराशर स्मृति ८। ३३

इन में से प्रथम में ब्राह्मण को 'सर्व देवमय' और देवताओं का प्रतिनिधि बताते हुए दूसरे में स्पष्ट कहा है कि ब्राह्मण कितना भी दुराचारी क्यों न हो उसकी पूजा करनी चाहिये न कि जितेन्द्रिय शूद्र की। कौन मूर्ख है जो गाय को छोड़ कर क्यों कि वह दुष्टा है सीधी साधी गधी को दोहने लगेगा?

इन श्लोकों में दी उपमा पर भी कृपया ध्यान दीजिये और फिर विचारिये कि जन्मसिद्ध जाति भेद उच्च नीचत्व और घृणा के भाव का (जिसे आप निर्मूल करना चाहते हैं) स्पष्ट समर्थक है वा नहीं? वर्तमान गौतम स्मृति के उन वचनों को आप अवश्य सुन चुके होंगे जिन में कहा है कि, अथ हास्य शूद्रस्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां कर्णपरिपूरणम् उदाहरणे जिह्वाच्छेदः, धारणे शरीरभेदः (अ० १२) अर्थात् शूद्र वेद मन्त्र सुन ले तो उसके कानों में सीसा भर देना चाहिये। उच्चारण करे तो उसकी जिह्वा काट देनी चाहिये। याद करे तो उसको मार डालना चाहिये इत्यादि।

पूज्य पाद महात्मा जी! मैं समझता हूं इन वाक्यों से (जिन को हम वेद, न्याय और तर्क विरुद्ध होने से अप्रमाण और प्रक्षिप्त मानते हैं) आप को स्पष्ट ज्ञात हो जाएगा कि जन्म सिद्ध जातिभेद स्वयम् (यदि अस्पृश्यता को छोड़ भी दिया जाए) उस उच्च नीच भावना और घृणा का प्रबल पोषक है जिसके बारे में आप बिल्कुल ठीक कहते हैं कि

'The idea of inferiority and superiority is to be demolished.'

अर्थात् उच्च नीचता के भाव को नष्ट कर देना चाहिये।

इस जातिभेद Caste-ystem को किसी भी रूप में आपका समर्थन करना और यह कहना कि वह पापमय नहीं है (There is nothing sinful about it) मेरे तुच्छ विचार में संगत और उचित नहीं है। इसी लिये आप के इस लेख से भी कि

"Untouchability is therefore the product not of the Caste system, but of the distinction of the high and low that has crept into Hinduism,"

अर्थात् अस्पृश्यता जाति भेद का परिणाम नहीं है किन्तु उच्च नीच भेद भाव का जो हिन्दू धर्म में घुस गया है।

मैं उपर्युक्त कारण से सहमत नहीं हो सकता। मैं आपसे फिर सविनय निवेदन करना चाहता हूँ कि आप वर्णाश्रम धर्म का प्रबल समर्थन करते हुए यह सर्वथा स्पष्ट कर दें कि आप जन्मसिद्ध जाति भेद का समर्थन नहीं कर रहे जो उस से सर्वथा भिन्न हो गया है और यदि जन्मगत उच्च नीचता और घृणा की भावना को आप पापमयी मानते हैं तो मुझे कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि आप जन्म जाति भेद को वैसा कहने में क्यो संकोच करें। आशा है अब आश्रम से 'सत्यार्थ प्रकाश' मंगवा कर आपने चतुर्थ समुल्लास का वर्णाश्रम व्यवस्था प्रकरण पढ़ लिया होगा। अन्य आवश्यक विषयों को भी [विशेषतः ११ वें समुल्लास के 'मूर्ति पूजा' प्रकरण को) यथा समय अवश्य पढ़ने की कृपा करें। मैं मार्च के प्रथम सप्ताह में बगलौर लौटते हुए संभवतः ४ मार्च को ३ बजे मध्याह्न कुछ समय के लिये आप के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त करना चाहता हूं आशा है आप भी अनुमति देने की कृपा करेंगे।

इसके उत्तर में पूज्य महात्मा जी ने अपने मन्त्री श्री महादेव जी देसाई के द्वारा २४-२-३३ को यरवदा जेल से निम्न पत्र भिजवाने की कृपा की

"श्री धर्म देवजी

आप ४ तारीख को ३ बजे अवश्य आइये।
आप का महादेव देसाई।

अनिवार्य कारण वश मैं ४ मार्च को पूना न पहुंच सका। ६ मार्च सन् १९३३ को मध्याह्न पूज्य पाद महात्मा जी से भेंट का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ जिसके मुख्य अंशों का जो जाति भेद विषयक थे अगले लेख में उल्लेख करूंगा। मूर्ति पूजादि विषयों पर भी उस भेंट में चर्चा हुई थी जिनका उस प्रकरण में उल्लेख होगा।

श्री तत्त्व विज्ञान आश्रम, गजरौला, जि० मुरादाबाद का संदेश

"जब तक यह देश वेदाज्ञाओं का पालन न करेगा, तब तक परस्पर का महायुद्ध कैसे रुकेगा। जब तक आपसी युद्ध यहाँ नहीं रुकेगा, तब तक कोई व्यक्ति भी सुख से न रहेगा।"

जब श्री तत्ववेत्ता रामचन्द्र मुनि जी ने यहाँ की सभी जनता को ईश्वर और उसका भक्ति की खोज में अनेक मत मतान्तरों में विभक्त होकर अपने २ मत की सिद्धि के राग द्वेष में आपस में कलह व सिरकटा करते २ अपनी शक्ति खोकर, सुखकी जगह उल्टा दुःख भोगते पाया, तो उनको धर्म के वास्तविक मर्म जानने की लग्न उत्पन्न हुई। तब खोजते २ श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती के वाक्यानुसार, कि सब सत्य विद्या, और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है। वेद ही सब सत्य विद्याओं का भण्डार है, इसी का पढ़ना व पालन करना सब श्रेष्ठ मनुष्यों का परम धर्म है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सब को सर्वदा तैयार रहना चाहिये। इत्यादि वाक्यों से मुनि जी ने देशोद्धार के लिये वेदानुसार मानव धर्म की खोज में अपनी समाधि लगाई और बहुत समय के पश्चात् उसी दयामय परमात्मा की कृपा से यह सार मालूम हुआ, कि यदि जनता को ईश्वर के नाम, रूप व गुणकर्मस्वभाव और इस सृष्टि का उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय का यथावत क्रम तथा जीवों के सुख भोगने, व ईश्वर की उपासना करने व मोक्ष पाने का नियम क्रम ऐसी सरल देश की भाषा में समझा दिया जाय, कि फिर जनता की कोई शंका ही शेष न रहे तो जनता उसे समझ कर एक वैदिक मत की होकर आपसी राग द्वेष व युद्ध करना छोड़ कर, सुख का जीवन व्यतीत करने लगेगी और सहज ही भूमण्डल में वैदिक ज्ञान का प्रचार हो जायगा। क्योंकि वेद क्लिष्ट भाषा में होने से सब की समझ में ठीक पालन करने योग्य नहीं आ पाता॥ अतः इन्हीं समस्याओं की पूर्ति के लिये मुनि जी ने जगद्गुरु श्री तत्वोपनिषद् या मूल दर्शन नामी ऐसा अनुपम धर्म शास्त्र सरल हिन्दी भाषा में रचा, कि जिसके प्रथम काण्ड के १५ अध्यायों में ब्रह्म, जीव, प्रकृति का वास्तविक स्वरूप और इस सृष्टि का आदि उत्पत्ति क्रम। दूसरे काण्ड के २२ अ० में सृष्टि का स्थिति क्रम, सब दुःखों की उत्पत्ति के कारण, व समस्त सुखों के साधन, वर्ण, आश्रम, शिक्षा, ईश्वर व देव उपासना, नारी धर्म, स्वस्थ रहने के साधन, व सुराज्य स्थापना की अकाट्य शैली। २० अ० में शारीरिक व रोगियों का पाँच तत्वों द्वारा चिकित्सा क्रम। तीसरे काण्ड के ३ अ० में सृष्टि का प्रलय क्रम। और चौथे काण्ड के ४ अ० में जीवों का मुक्ति सम्बन्धी कार्य। अर्थात् उपर्युक्त सभी बातें ६३० विषयों व ३२०० अंगों में हैं। २-समाजी व्यवहार के सुधार के लिये संस्कार पद्धति। ३-मृतक के ज्ञान को मृतक विज्ञान पुराण। ४—ईश्वर व देव उपासना और त्योहारों के सुधार के लिये भारतीय त्योहार पद्धति। ५—नित्य कर्म के लिए भाषा पञ्चयज्ञ विधि। ६-हिन्दुओं को प्रमाणार्थ भगवद्गीता। ७-रोगों के सस्ते व उत्तम लाभार्थ बायोकेमिक विज्ञान चिकित्सा बड़े उत्तम ग्रन्थ हिन्दी व उर्दू देशी भाषा में रचदिये हैं, और इस आश्रम ने बढ़िया कागज पर छपा दिये हैं, जिनका गुण पढ़ने ही पर ज्ञात होगा। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपना तथा अपनी सन्तान की या समाज या राष्ट्र भर की उन्नति के लिये इन्हीं को पढ़ना उत्तम होगा प्रचारार्थ इन सब पुस्तकों की भेंट २०) रु० २) रु० डाकखर्च लिया जायगा। और पृथक २ इनका कन्ट्रोल भाव यह है, सं १ का १२॥) २ का ४) ३ का ।||)४ का २)५का ।|≈) ६का १।|)७का २)रु० डाक खर्च पृथक् होगा फिर भी समाजों को कोई १० पुस्तक मंगाने पर १५)५० पर २०) रु० सैकड़ा व्यावसायिक कमीशन दिया जायगा। पत्र व्यवहार जवाबी पोस्टेज भेज कर करें।

उमाशंकर शर्मा, मैनेजर

आर्य समाज का नया दृष्टि कोण

(श्री पं० इन्द्रजी विद्या वाचस्पति प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का वक्तव्य सं० २)

भारत की बदली हुई परिस्थिति ने आर्य समाज के सामने जो विशाल कार्य क्षेत्र खोल दिया है, और जो उत्तरदायित्व उस पर डाल दी है, मैंने पहले वक्तव्य में उनकी ओर संकेत किया था। मैंने यह भी बतलाया था कि सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा ने नई परिस्थिति के अनुसार आर्य समाज के दृष्टिकोण का, तथा भावी कार्यक्रम का निश्चय करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण समितियां बना दी हैं जिन की रिपोर्टों के अनुसार सार्वदेशिक सभा की प्रबन्ध समिति (अन्तरङ्ग सभा) विस्तृत कार्यक्रम तैयार करेगी। यह विचार है कि वह कार्यक्रम अखिल भारतीय आर्य सम्मेलन के उस अधिवेशन में उपस्थित किया जायगा, जो इस वर्ष की समाप्ति के पूर्व भारत के किसी भाग में किया जायगा।

यह सारा कार्य तो समयापेक्ष है, परन्तु दो सुझाव ऐसे हैं, जिनकी ओर आर्य जगत् का ध्यान इसी समय आकृष्ट करना आवश्यक है। मैं इस वक्तव्य में संक्षेप से उनका निर्देश करूंगा और आशा रखूंगा कि आर्य नरनारी व्यक्तिगत रूप से और समूह रूप से उन पर विचार करेंगे।

(१) सबसे पहली और आवश्यक बात, जिसकी ओर मैं ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं, यह है कि अब हमारा दृष्टिकोण बदल जाना चाहिये। जिस समय ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की थी, उस समय आर्य जाति की दशा शत्रुओं से घिरे हुए दुर्ग की सी थी। आर्य जाति पर अनेक सदियों से विदेशी सभ्यता और संस्कृति के आक्रमण हो रहे थे। इस्लाम हमारे किले के अन्दर पूरी तरह घुस चुका था, और ईसाइयत रही सही दीवारों को तहस नहस करने का उद्योग कर रही थी। उस समय महर्षि ने सोई हुई जाति को झकझोर कर जगाया और दुर्ग की रक्षा के लिये सन्नद्ध किया। वह समय संग्राम का था। आर्य सभ्यता का जीवन संकट में था। स्वभावतः आर्य समाज को सिपाही बनकर मैदान में उतरना पड़ा। खण्डनकी नीति और शास्त्रार्थों का यही रहस्य था।

अब परिस्थिति बदल गई है। उस जीवन संग्राम का पहला दौर समाप्त हो गया है। उस दौर में इस्लाम और ईसाई मत को हार खाकर भारत की सीमाओं से विदा होना पड़ा। अब हमारा देश ऐसा किला नहीं रहा जिसकी दीवारों के अन्दर विदेशी सभ्यता घुसी हुई हो। अब वह ऐसा किला है जिससे शत्रु तो विदा हो चुके हैं, परन्तु उनकी की हुई बरबादी पूरी तरह विद्यमान है।

ऐसी स्थिति में आर्य समाज के कार्य क्रम की दशा में परिवर्तन होना आवश्यक है। अब हमें कन्धे पर बन्दूक रखने की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी हाथमें कुदाली लेकर खंडहरों को

साफ करने और फिर नये भवन के निर्माण करने में लग जाने की। अब हमारा कार्य मुख्य रूप से रचनात्मक होना चाहिये। हमारा यत्न होना चाहिये कि हम स्वतंत्र भारत के धार्मिक भवन का निर्माण करें।

२—दृष्टिकोण के अनुसार ही हमारे कार्य क्रम में भी परिवर्तन होना चाहिये। शुद्धि, शास्त्रार्थ आदि शब्द युद्धकाल के द्योतक हैं। अब तो हमारा सम्पूर्ण कार्य क्रम 'एक प्रचार' इस शब्द के अन्तर्गत हो जाएगा। वह प्रचार कई प्रकार से औ. कई उपायों से होगा यथा—

क. लेख द्वारा

ख. व्याख्यानों द्वारा

ग. संस्थाओं द्वारा

घ. जीवनों द्वारा

लेख द्वारा प्रचार के अनेक रूप हो सकते हैं। समाचार पत्र, पत्रिका, पोस्टर, हैंड बिल आदि।

इन सब उपायों से प्रचार का यत्न करना चाहिये।

वाणी द्वारा प्रचार के भी अनेक प्रकार हैं। व्यक्तियों से मिलकर, सभाओं में, गांव, और गली कूंचे में जाकर वाणी द्वारा प्रचार हो सकता है। प्रेम से सेवा से समझा कर हम अन्य मतालम्बियों को वैदिक धर्म का विश्वासी बना सकते हैं। प्रचार के कार्य में शुद्धि शब्द का प्रयोग वांछनीय नहीं है। इस शब्द द्वारा हम अपने और दूसरे के बीच में एक खाई खोद लेते हैं जिसे लांघना कठिन हो जाता है। मानों हम महान् शुद्ध हैं, और दूसरा घोर अशुद्ध है। जिसे हम शुद्धि का नाम देते हैं वह भी तो प्रचार है। अधिक से अधिक उसे हम धर्म प्रवेश कह सकते हैं। शुद्धि शब्द भ्रमात्मक और चुभने वाला है। इसी प्रकार सार्वजनिक सभाओं में प्लेट फार्म बनाकर एक दूसरे के खण्डन द्वारा भी धर्म प्रचार नहीं हो सकता। उससे वक्ता की वाक् शक्ति का परिचय मिलता है और दर्शकों का मनोरंजन भी हो सकता है, परन्तु किसी का मत परिवर्तन नहीं हो सकता।

इस दृष्टि से हमारे प्रचार की विधि में परिवर्तन होने की आवश्यकता है वह परिवर्तन नये दृष्टिकोण पर अवलम्बित होना चाहिये।

इस प्रसंग में यह ध्यान में रखना भी आवश्यक है कि अपने देश के लोकतंत्र स्वराज्य के साथ आर्य समाज का संबन्ध निजूपन का होना चाहिये। जब तक राज्य की ओर से आर्य समाज के किसी वैध कार्य में अनुचित हस्तक्षेप न हो तब तक आर्य समाज को प्रत्येक देश में वहां के लोकतन्त्रात्मक राज्य के साथ अनुकूलता का व्यवहार रखना चाहिये। राष्ट्रीय शासन को वैदिक धर्म का तो आशीर्वाद ही मिलना चाहिये।

यह मैंने उस विस्तृत कार्य क्रम की पृष्ठ भूमि प्रदर्शित की है, जो बदलती हुई परिस्थितियों और नये दृष्टिकोण के आधार पर बनाया जायगा। जो चित्र मैंने उपस्थित किया है, वह सर्वथा पूर्ण नहीं है, अधूरा है, यह भी आवश्यक नहीं कि जब हम कार्य क्रम के संबन्ध में अन्तिम निर्णय करें तो इस अधूरे चित्र तक ही परिमित रक्खें। मैंने आर्य जगत् के सम्मुख ये विचार इस उद्देश्य से रक्खें हैं, कि वे उनपर गंभीर चिन्तन करें, उनसे लाभ उठावें, और भावी काय

पद्धति के निर्माण के सम्बन्ध में अन्तिम निश्चय करते हुए इन्हें दृष्टि में रक्खें। हमें अपने कार्य क्षेत्र को विस्तृत करना है। केवल रेल की लाइन पर न चलकर कच्चे रास्तों पर जाना है और ग्रामों की गहराई और पर्वतों की ऊंचाई पर पहुंचना है। देश की लोक तन्त्रात्मक सरकार से अपने कार्य में पूरी सुविधा लेनी है, और उसके कार्य में यथोचित सुविधा देनी है। इस प्रकार विवेकपूर्वक अपने कार्य क्रम का निर्माण करके यदि हम तेजस्विता से उसपर अमल करेंगे, तो आर्य समाज का कार्य आशातीत उन्नति कर सकता है।

मध्य प्रान्त के लिये प्रचारकों की आवश्यकता

मैं २३ से २५ मई तक आर्य्य समाज जबल पुर के उत्सव पर गया था। वहां मध्य प्रान्त के प्रतिनिधि सभा के मंत्री महोदय से उस प्रान्त के प्रचार तथा अन्य योजनाओं के विषय में विस्तृत बात चीत होती रही। मध्य प्रन्त में प्रचार की बहुत कमी है। सभा के पास केवल एक भजनीक है। समाजों की कमी के कारण शक्ति भी नहो है। श्री मंत्री जी उत्साही सज्जन हैं। वे काम करना चाहते हैं परन्तु उपदेशक नहीं मिलते। आर्य-समाज पंजाब के उपदेशकों और विशेष कर संन्यासी महात्माओं से प्रार्थना है कि यदि वे कुछ समय मध्यप्रान्त को दे देवें तो समाजो में जागृति आसकती है। मध्यप्रान्त न तो निर्धन है न शक्ति हीन। इस में पर्य्याप्त बीज शक्ति है। परन्तु चतुर कार्य्य कर्त्ता चाहियें। जो सज्जन पाकिस्तान में कार्य कर रहे थे। वे यदि इधर कुछ समय दे दें तो बड़ा काम होजाय।

कई वानप्रस्थी महोदय भी यथाऋतु और यथा रुचि कुछ समय देवें तो बड़ी कृपा हो। जो सज्जनउद्यत हों वे मुझे लिखें।

गंगा प्रसाद उपाध्याय
मन्त्री सार्व देशिक सभा देहली

दान सूची सार्वदेशिक सभा देहली

दान स्थापना दिवस

गताङ्क से आगे

२) श्री वजीर चन्द्र जी चेलवी हाल बाजार लुधियाना

५॥=) आर्य समाज

१८॥) " " जलाहबी बंगलौर कैम्प

५६) " " १६६ विगनडेट रंगून (ब्रह्मा)

१६) " " देहली शाहदरा

८६) " " १६६ विगेनडेर रंगून (ब्रह्मा)

३६॥) " " जौनपुर

१०) " " फीरोजपुर कैण्ट

६) " " पुरवा (उन्नाव)

१५) " " गाजियाबाद (मेरठ)

११) " " कैराना (मुजफ्फर नगर)

८) " " देवास

८) " " ईश्वर चन्द्र जी धुरी (पंजाब)

५) " " बदली (रोहतक)

२॥) " " सावर अजमेर

१३॥) " " सीसा मऊकानपुर

२०) " " अमरावती (सी० पी०)

६॥) " " फैजाबाद

७॥=) " " अमरोहा (मुरादाबाद)

३४०॥)

८८) गत योग

३६८॥)

दान दाताओं को धन्यवाद। जिन समाजों का भाग अभी तक अप्राप्त है उन्हें वे शीघ्र से शीघ्र भेजना चाहिए।

मन्त्री सभा

विविध दान

११) डा० रूपचद जी कटड़ा बड़ियां देहली (सार्वदेशिक पत्र के लिए)

१०) श्री गंगाधर जी आर्य द्वारा आ० स० हिडौन (जयपुर) (अपनी सुपुत्री विद्यावती के विवाहोपलक्ष में)

१२) श्री पं० मंजुनाथ जो शैनई कार्कल उपदेशक सभा द्वारा संस्कारों के अवसर पर प्राप्त

३३)

२०१) गत योग

२३४)

पंजाब पीड़ित सहायता

५००) आर्य समाज १६६ विगेबडेट रंगून (ब्रह्मा)

दान दाताओं को धन्यवाद

—मन्त्री सभा

—*—

आर्य समाज के उज्ज्वल रत्न—

स्वर्गीय श्री प्रो० सुधाकर जी एम० ए०

[लेखक—श्रीमान् निरञ्जननाथ जी सं० मन्त्री पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा]

श्री प्रोफेसर सुधाकर जी का जन्म सन् १८८६ में राजड़ ग्राम तहसील खुशाब जिला शाहपुर में हुआ। पहली तीन श्रेणियों तक पढ़ने के पश्चात् वे खुशाब में अपनी बड़ी मासी जी के पास चले गये और मिडल वहीं जगह पास किया। इस अवसर में वह वजीफा भी लेते रहे। तत्पश्चात् वह रावलपिण्डी में पढ़ने के लिये चले गये, वहां भी वह वजीफा लेते रहे। और आश्रम में रह कर उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास करली। अर्थात् वहां तक पढ़ने में उन्होंने किसी व्यक्ति पर अपने व्यय का बोझ नहीं डाला। वे अपनी इस अवस्था का वर्णन बड़े उत्साह से किया करते थे और उनकी उस समय की सादगी कई विद्यार्थियों के लिये पथ-प्रदर्शक सिद्ध हुई।

कालिज की शिक्षा के लिये वह गार्डन क्रिश्चियन कालिज में दाखिल हुये। उन दिनों पढ़ने के साथ २ वह दूसरे लड़कों को पढ़ा कर गुजारा किया करते थे। चुनाचे उन्हीं दिनों वह रावल पिण्डी की फौजदारी के सुप्रसिद्ध वकील दीवान दौलतराम साहब के सुपुत्र दीवान चमन लाल को पढ़ाया करते थे। इनके सत्संग से दीवान चमनलाल के विचारों में भारी परिवर्तन हुआ।

इन्हीं दिनों में स्वर्गीय श्री केशवदेव जी शास्त्री अपनी पैतृक सम्पत्ति छोड़ छाड़ कर रावल पिण्डी में प० सीताराम जी शास्त्री से संस्कृत पढ़ने गये थे। दोनों स्वावलम्बी थे। दोनों के सात्विक स्वभाव में समानता थी। दोनों में सामाजिक सेवा की लगन एकसी थी। सुधार के काम में लोग भले ही नाराज हों। इर ये दोनों सुधार के कार्यों में समझौता compromise करना नहीं जानते थे अतः जब दोनों का मेल हुआ तो उसके पीछे दोनों ने मिल कर तथा पृथक २ होकर अपने भावी जीवन को उज्ज्वल रूप में संसार के सामने पेश किया।

उधर श्री केशवदेव जी शास्त्री ने शास्त्री परीक्षा पास करके कलकत्ता में औषक शिक्षा प्राप्त की और फिर काशी में चिकित्सा कार्य प्रारम्भ कर दिया। श्री सुधाकर जी भी काशी पहुंच गये और शास्त्री जी के वहां अष्टाध्यायी रटनी शुरू की। चुनाचे डा० चिरञ्जीव भारद्वाज मौरिशस जाते हुए काशी ठहरे और उन्होंने शास्त्री जी की इस अष्टाध्यायी की श्रेणी का अवलोकन करके अपने भावों को प्रगट किया। इससे पूर्व मेरा लड़का दिवाकर काशी पहुंच चुका था जिसे मैंने शास्त्री जी से अपना इलाज कराने के लिए भेजा था यह सन् १६०८ की बात है। उन्हीं दिनों इन लोगों ने अपना नाम संस्कार कराया अर्थात् सीताराम जी सुधाकर बने। लोकनाथ से दिवाकर हुआ और पिण्डी दास से सिद्धेश्वर जी कहलाने लगे।

काशी में ही भारत वर्षीय आर्य कुमार परिषद् की योजना की गई और उसका पहला

अधिवेशन रावल पिण्डी में किया गया। इसी कारण शास्त्री जी के साथ प्रो० सुधाकर जी भी रावल पिण्डी पहुंचे और फिर प्रो० साहब ने लगातार युवक समाजों को स्थापित करके युवकों में जोर शोर से काम किया।

पिण्डी में इन्होंने कुछ समय के लिये डी० ए० वी० हाई स्कूल में अध्यापक का कार्य किया। वह युवकों में सर्व प्रिय और मान्य हो गये! क्योंकि साधारण शिक्षा के साथ २ वह उनको आत्मिक भोजन का स्वाद भी चखाते रहे।

पिण्डी से लाहौर चले गये और एम० ए० की तैयारी करने लगे तथा च फिलासफी में एम० ए० पास कर लिया।

जब हमारे प्रसिद्ध स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक अमरीका से लौटे तो देहरादून हाई स्कूल के मुख्याध्यापक नियत हो गये। पर ये अपने नेत्र रोग के कारण पढ़ाई का काम नहीं कर सकते थे। पढ़ाई का काम प्रो० सुधाकर जी को बुला कर उनके सुपुर्द किया गया। प्रोफेसर साहब ने वहां भी विद्यार्थियों में बड़े लग्न से काम किया। (उस समय मैं वहां आश्रम का प्रधान अधिष्ठाता था)

एम० ए० पास करने के पीछे वे १९१३ की गरमियों में गुरुकुल कांगड़ी चले गये थे। वहां अध्यापन कार्य जिस लग्न से किया था उस समय के विद्यार्थी और उनके साथी प्रोफेसर आज भी स्मरण करके अपना गौरव मानते हैं। यह कार्य उन्होंने निःस्वार्थ भाव स किया, उनको पैसे में प्रेम नहीं था, यह भाव उस समय के आचार्य स्वामी श्रद्धानन्द जी अपनी चिट्ठी में इस प्रकार से वर्णन करते हैं।

श्रीमान प्रो० सुधाकर जी नमस्ते!

आपने जिस उच्च भाव से प्रेरित होकर यहां से दी हुई वेतन वृद्धि को अस्वीकार करके पूर्व वेतन पर ही निर्वाह करने का निश्चय किया है उससे मेरे हृदय को सन्तोष और आल्हाद हुआ है।

मैंने आपकी आज्ञानुसार कार्यालय में सूचना देदी है। मैं आशा करता हूँ कि आप से महानुभावों के सहयोग और प्रयत्न से गुरुकुल के कार्य में उन्नति होती रहेगी।

आपका मंगलाभिलाषी

श्रद्धानन्द

मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य

वे अपने विषय फिलासफी के पूरे पंडित थे और हिन्दी के साथ उनका गहरा प्रेम था। इसी लिये उन्होंने हिन्दी में सब से पहली पुस्तक मनोविज्ञान पर लिखकर छपवाई। जिस पर उनको १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषक प्राप्त हुआ और उधर पंजाब युनिवर्सिटी से भी उनको एक विशेष पारितोषिक प्राप्त हुआ।

सन् १९१६ में डेरा इस्माईल खान के रहने वाले एक सच्चरित्र धार्मिक पुरुष सज्जन मलिक धर्म चन्द्रजी की सुपुत्री विदुषी श्रीमती कौशल्या देवी संस्कृत विशारदा जी के साथ उनका विवाह हुआ। इस देवी ने संसार में सचमुच हर प्रकार से एक आदर्श आर्य देवी और गृहपत्नी बन कर दिखाया। यह विवाह उन्होंने जाति

के कड़े बन्धनों को तोड़ कर किया। इस पुण्य जोडे के फलस्वरूप आज हम उनकी सन्तान में हर प्रकार केसद् गुणों को देख रहे हैं।

गुरुकुल छोड़ कर १६२१—१६२२ में वे देहली आगये और कमर्शल कालिज बरखेवा-लान में प्रधान संचालक और अध्यापक का काम किया। उन्हीं दिनों में सर श्री राम जी इनके गुणों को देख कर इन पर मोहित हो गये थे।

इस के पीछे तीन वर्ष तक वे लाहौर में रहे। जब दीवान चमनलालजी ने लाहौर में दैनिक "नेशन" अंग्रेजी में निकाला तब प्रो० साहब उसके सम्पादक थे। उसके साथही उन्होंने प्रेस का काम भी सम्भाला। पर सहायक अच्छा नहीं मिलने से वह काम घाटे पर चलने लगा उन्हीं दिनोंमें आय समाज का एक शिष्टमंडल उन से चन्दा मागने पहुंचा। इन्होंने अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान दे दिया पर एक सज्जन जो इनके पास बैठे थे बोल उठे, क्यों जी! आप तो घाटे पर चल रहे हैं आपने चन्दा कैसे दे दिया। ये बोले जिस घाटे से दूसरे सब काम भोजन आदि चलरहे हैं उसी घाटे में समाज को भी चन्दा देना ही चाहिये।

१६२५ में मथुरा शताब्दी के पीछे ये महाराजा शाहपुरा धीश के निमन्त्रण पर शाह पुरा चले गये और उनके पौत्र के जो आजकल शाहपुरा की गद्दी पर बिराजमान हैं शिक्षकनियत हुए। पाँच छ साल तक इन्होंने इस काम को जिस उत्तमता से निभाया वह उन्हीं का काम था। रियासतों का वातावरण संसार में निराला ही होता है। राजों महाराजों के आस पास रहने वाले अनोखे प्रकृति के हुआ करते हैं। कई प्रकार के दल हुआ करते हैं। सीधा साधा आदमी किसी न किसी काँटे में फंस जाता है, पर हमारे प्रोफेसर साहब मनोविज्ञान के पण्डित थे। शुद्धाचारी आर्य जीवन महर्षि के आदेशानुसार धारण किये हुए थे। अतः उन्होंने ऐसे वातावरण की नींव डाली जो उनके अपने शिष्य के लिये उनके पूज्य पिता जी और मान्य शाहपुराधीश के लिये तथा जन साधारण के लिये बड़ा ही सुखदायी सिद्ध हुआ। आज उन्हीं के शिष्य शाहपुरा की गद्दी पर बिराजमान हैं।

पंजाब में रहते हुए आर्य प्रति निधि सभा के सदस्य रूप में आर्य समाज को अपनी सेवायें अर्पित कीं।

देहली में आकर प्रो० साहब ने पुस्तकों की रचना शुरू की। जिन में प्रसिद्ध पुस्तकें बच्चों के लिये जीवनामृत, आनन्दामृत, पुरुषार्थामृत उपदेशामृत आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। इन पुस्तकों में बच्चों के लिये आवश्यक विषयों की बड़ी सरलता से लिखा गया है और हर विषय के लिये वेद का सहारा लिया गया है। इन अनोखी पुस्तकों का युवकों में पर्याप्त आदर हुआ है।

इसी स्थान में उन्होंने शारदा मन्दिर की नींव डालकर कई अत्युत्तम पुस्तकों को छपवाया और लोगों के सामने पेश किया जिस से आर्य जगत ने भारी लाभ उठाया है। ४ वर्ष तक वे देहली क्लौथ मिल में वेल्फेयर आफिसर के रूप में काम करते रहे। वहां ग़रीब मजदूरों की सब प्रकार की उन्नति और हित का वे सदैव पूरा २ ध्यान रखते थे।

सन् १६३३ से १६४६ तक उनका सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ

अधिकतर प्रधान मन्त्री के रूप में सम्बन्ध रहा। हैदराबाद रियासत में सुप्रसिद्ध आर्य सत्याग्रह उनके ही मन्त्रित्वकाल में हुआ और उसको सफल बनाने के लिये उन्होंने जो दिन रात परिश्रम किया वह सर्व विदित है। उसकी सफलता का बहुत अधिक श्रेय प्रो० सुधाकर जी को देना सर्वथा उचित ही है। वैदिक धर्म के प्रचार के लिये वे उत्तमसाहित्य के निर्माण को अत्यावश्यक समझते थे और इस विषय में उन्होंने स्वयं अनेक पुस्तकें लिखीं तथा प्रकाशित करवाई थीं। विदेश प्रचार की ओर भी उनका विशेष ध्यान था और अपने मंत्रित्व में उन्हों ने अनेक प्रचारक विदेशों में प्रचारार्थ भिजवाए थे।

* * *

स्वावलम्बी होते हुए भी वे दूसरों की सेवा में सदा तत्पर रहते थे। अपने कुटुम्बियों की तरह तरह से सहायता करते रहते थे। जब यह कुछ कमाने लगे थे तो इन के चाचा जी के सिर पर कुछ ऋण था। जिस आदमी ने अपनी वही में उन का हिसाब लिख रखा था उसे ये मासिक देने लगे। उसने जो कुछ मांगा ये देते रहे। अपने चाचा जी की बेटी का अपनी भगिनीवत् विवाह करवाया। इसके अतिरिक्त अपने कुटुम्बियों में जहां जब कभी आवश्यकता पड़ी ये सहायता करने से कभी पीछे नहीं हटे। इनका यह गुण अत्यन्त उज्ज्वल और प्रसिद्ध रहा है।

छोटे से छोटे आदमी जो इनके घर आता वह हर प्रकार का मान प्राप्त कर लौटता ॥

अन्त समय में उनका आदेश था कि "रोना नहीं। अपने बच्चों को संसार के बच्चे और संसार के बच्चों को अपने बच्चे समझना।"

श्री प्रो. सुधाकर जी की पुण्य स्मृति में

[लेखक—श्री रघुनाथ प्रसाद जी सार्वदेशिक सभा देहली]

२०-६-४८ की रात को जब यह सूचना मिली कि मान्य प्रोफेसर सुधाकर जी का देहान्त हो गया तो सहसा इस पर विश्वास न हुआ। दूसरे दिन प्रातः काल जब हम उनके मकान (१२ टोडर मल रोड नई देहली) पर गये और सुपरिचित कमरे में प्रवेश किया जहाँ वे प्रायः रोग शय्या पर लेटे रहते थे तब आँखें उनको ढूंढने लग गईं। उस समय ऐसा लगा मानो वे अन्दर गए हैं और शीघ्र ही कमरे में वापस आकर आर्य समाज, सार्वदेशिक सभा और साहित्य—निर्माण की चर्चा करेंगे और विदा होते समय अपने आदेश को दुहरायेंगे कि "मुझ से जल्दी २ मिलते रहना" परन्तु यह एक स्वप्न था। वह प्रकाश पुञ्ज तो लगभग ४८ घंटे पूर्व महाप्रकाश में विलीन हो चुका था।

श्री प्रोफेसर जी गत ३.४ वर्ष से रक्त चाप के रोग से पीड़ित थे। इस रोग ने उनको इतनी बुरी तरह से जकड़ा कि उन्हें चारपाई से न उठने दिया और अन्त में उनके प्राण लेकर गया। गत वर्ष इस रोग के उन्हें कई भयंकर दौरे पड़े जबकि उनका जीवन कच्चे धागे पर झूलता प्रतीत होता था परन्तु क्या पता था कि १६-६-४८ का साधारण सा दौरा असाधारण सिद्ध होकर उनको हमसे सदा के लिए जुदा कर देगा।

श्री प्रोफेसर जी का हमने नाम सुना था। लगभग १४ वर्ष हुए सार्वदेशिक सभा के साधारण अधिवेशन में पहली बार उनके दर्शन हुए जब वे राजस्थान प्रतिनिधि सभा के प्रतिनिधि के रूप में उसमें सम्मलित हुए थे। उनको देखते ही स्व० डा० केशवदेव जी शास्त्री का स्मरण हो आया जिनके चरणों में सन, २५-२६ में बैठने का हमें सौभाग्य प्राप्त हो चुका था। वही वेष भूषा, वही शारीरिक गठन, वही प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व। इसके पश्चात् सन ३३ से लेकर जब वे सभा के मन्त्री पद पर निर्वाचित हुए थे अबतक हम उनके निकट सम्पर्क में रहे। उनको भीतर से और बाहर से देखा और जी भर कर देखा। प्रारम्भ में उनके व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा और स्नेह का जो अंकुर जमा था वह उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता हुआ आज एक विशाल वृक्ष के रूप में विद्यमान है। इस काल में कदाचित् ही कोई अवसर आया हो जब उनके प्रति आकर्षण और श्रद्धा में कमी आई हो वा उनके प्रति असद् विचार उत्पन्न हुआ हो। उनके व्यक्तित्व की यही छाप हम पर अंकित हुई और निरन्तर बनी रही।

हमने उनसे बहुत कुछ सीखा है और आज वह हमारी एक अमूल्य निधि हैं। जटिल से जटिल समस्या को हँसते हुए ग्रहण करके हँसते हुए ही उसमें से गुजरना, और अपने उच्च सिद्धान्तों की रक्षा के लिए बड़े से बड़ा त्याग कर देना, यह उनके जीवन का मूल मन्त्र था।

चरित्र उनका बल मधुर भाषिता, निराभिमानिता और निष्कपटता उनकी प्रेरक शक्ति थी। मनुष्य जीवन की सफलता का मापदण्ड क्या है? जो व्यक्ति संसार के हर्ष समुदाय में जितना अधिक योग देकर यहाँ से विदा होता है उतना ही अधिक वह जीवन में सफल समझा जाता है। इस सुनहरे सिद्धान्त की कसौटी पर यदि प्रोफेसर जी के जीवन की सफलता आंकी जाय तो सचमुच वह उसमें बहुत अधिक सफल माने जायेंगे।

उनके साथ हमारा जो साहित्यिक सम्बन्ध स्थापित हुआ था उससे हमें अत्यन्त लाभ हुआ।

भाषा सौष्ठव, शैली और शब्दचयन की दृष्टि से उनके लेख इत्यादि बड़े महत्व पूर्ण होते थे। Short और sweet संक्षिप्त और मधुर शैली के वे पोषक थे और इसमें सिद्धहस्त भी थे। अंग्रेजी भाषा पर भी उनका बहुत बड़ा चढ़ा अधिकार था। शोलापुर कांग्रेस के अवसर पर प्रधान के भाषण के पश्चात् सब से पहले दिन की कार्यवाही समाप्त हुई तो लोग उठने लगे माननीय घनश्याम सिंह जी ने श्री प्रोफेसरजी की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा 'सुधाकर जी आपने Case of Arya Samaj in Hyderabad पुस्तक के लिखने में जो कमाल दिखाया है उस पर मैं मुग्ध हूँ।"

उनको आर्य समाज के उत्तम साहित्य विशेषतया अंग्रेजी "साहित्य की कमी बहुत खटकती थी। अपने शारदा मन्दिर के द्वारा वे इस कमी को दूर करने का यत्न करते थे और भविष्य की बड़ी २ योजनाएं उनके मस्तिष्क में थीं परन्तु रक्त चाप ने उन्हें न लिखने के लिये विवश कर दिया था और इस पर उन्हें बड़ी पीड़ा हुआ करती थी। श्री नारायण स्वामी जी कृत वैदिक संध्या का Daily Prayer of an Arya के रूप में स्वतन्त्र अनुवाद करने के पश्चात् जो देश विदेश में पर्याप्त लोक प्रिय हुआ उन्होंने गत वर्ष स्वामी जी कृत 'आर्य समाज क्या है।' का अंग्रेजी अनुवाद प्रारम्भ किया था। बीच में कई बार बीमारी के कारण लेख का काम रोकना पड़ा और दुर्भाग्य से वह काम पूरा न हो सका।

श्री प्रोफेसर जी की सार्वजनिक और आर्य्य समाज के प्रति की गई सेवाओं का सम्यक् वर्णन एक पृथक् लेख का विषय है। इस समय यही कहा जा सकता है कि उनका सार्वजनिक जीवन विशुद्ध था।

आज आर्य समाज अपने एक रत्न से वंचित हो गया है जिसकी आभा, भले ही पूर्ण रूप से प्रजा की आंखों के सामने न हो, परन्तु फिर भी वह सदैव अपना अदृष्ट प्रकाश फैलाती रहेगी।

आर्य कुमार जगत

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् (परीक्षा विभाग अजमेर)

सिद्धान्त शास्त्री परीक्षाफल १९४८

सिद्धान्त शास्त्री परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों की सूची निम्न प्रकार है:—

[नोट—प्रत्येक नाम के पहले छात्र के रौल नम्बर तथा पीछे श्रेणी जिसमें वह उत्तीर्ण हुआ है दी गई है ।]

अजमेर (डी० ए० वी०)—१२२. रमेशचन्द्र बंसल (३), १२३ रमेशचन्द्र गुप्त (२), १२६ हेमेन्द्र सिंह (३) १२७, गोपालकृष्ण (२), १२८, गुरुप्रेमदास (१) १२९, विश्वनाथ तिवारी (२), १३१, राजनलाल शर्मा (३) १३४ कमलासुख शर्मा (१) १३५, उर्मिला राजोत्या (२), १३६, पं० ब्रह्मदत्त (२) १५५, नाथूलाल व्यास (३) अमरावती—१४० देवदत्त शर्मा (३), अकोदिया—२४ शवप्रसाद पाडिया (२) अलीगढ (ब्रह्म विद्यालय)—६५ हजारीलाल आर्य (३) आसनसोल (हिन्दी साहित्य परिषद्) १ बद्रीनारायण पांडे (३) आंवला—२८ हीरालाल आर्य (३) उझियानी (पी० ए० वी० ,—१२ पं० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा(३), २३, महेशचन्द्र गुप्त (३), कानपुर (डी० ए० वी०)—६३ रमाकान्तसिंह (१), कानपुर (सोमामऊ)—५२ विन्ध्येश्वरी प्रसाद (२), ५३, लक्ष्मणकुमार [२) काशी (डी० ए० वी०)-१२७ रामदेवसिंह (३) काशी (दुलानाला)—९८ धर्मपाल (१) ९९, रमाकान्त मिश्र (३) खानपुर—८६ उषादेवी (२), प्रियम्वदा (२) ८८ सुखमा (३) ८९ गायत्री (३), गाजियाबाद—९४ विजयपाल शर्मा (२), ९५ किशनदत्त शर्मा (२) ९६ महावीरसिंह वर्मा (१) घटकेश्वर—२५, तुलजाप्रसाद [३) २६ सोहनलाल (२) २७ ब्र० ओंप्रकाश (३) चित्तौड़—८ इन्द्रदेव (३) जावरा—२ रामनारायण शर्मा मिलिन्द (१) ठाकुरद्वारा—७५ ओंप्रकाश (३), ७७, सत्यदेव (२) ७८ भगवानदास (३), ७९ छोटेसिंह (३), ८० शारदाप्रसाद (३) डुडवा—१५ केशवप्रसाद त्रिपाठी (२) देवरिया—१० ब्र० हरिदेव आर्य (२), ११ ब्र० वेदप्रकाश (३), देहली (सीताराम बाजार)—४६ नरेन्द्रकुमार (३), ४५ जगन्नाथ (२) ५१ ओम्प्रकाश व्यास (३), धौलडी—८१, गायत्रीदेवी (३) नवाबगंज ५४ बजरंगशरण (२) नागौर—५८देवकरणशर्मा (१), ५९ राजाराम आर्य (१) नोनापुर—९ गयाप्रसाद विद्यार्थी [१) पीलीभीत—३ भानेश्वरी देवी (३) पुखरायां—३८ राजबहादुर सिंह (३) ३९ श्रीनारायण दीक्षित (२) पूरनपुर—१३८ लक्ष्मीनारायण (३) १३९ वेदवती देवी (२) फुलेरा—३१ भंवरलाल शर्मा (१) बरेली (मूड)-७१ माया देवी (३) ७२ विद्यादेवी वर्मा (३) ७१ गुलाब देवी (३), बागपत—१०२ रामचरण गर्ग (३) १०३ जानकी देवी गुप्त (२) बाराबंकी—४६ अम्बाशङ्कर आर्य (२) बिरालसी—१४४ ब्र० देवेन्द्रनाथ (२) १४७ पं० मूलचन्द्र शर्मा (२) १४९ भूपालसिंह प्रवासी (१) बिलासपुर

(यू० पी०)—४२ हरिशङ्कर गुप्त (२) बिजनौर—१५१ ईश्वरदयाल आर्य (२) १४२ रघुवरदयाल आर्य (१) बुलन्दशहर (सेवा समिति (पाठशाला) ८७ बाबूलाल वर्मा (२), बेबर—१०१ सूबेदार आर्य (२)बेरी—१५१ हरिश्चन्द्र विशारद (२), महेश्वर (गुरुकुल)—१०४ रत्नाकर (१) मुजफ्फर नगर (डी० ए० वी०)—१५६ ओम्प्रकाश (३) १५८ मामचन्द्र (३) १५६ शिवदत्त (३) मुरसान ५६ राधावल्लभ (२) मुरादाबाद—५६ सत्यदेव (३) मैनपुरी—६४ कुलभूषणसिंह वर्मा (१) रनियाँ—१७ रामलालसिंह मेहता (२) रामपुर मन्हारन—५ ओंकारसिंह (३) लोहारू—४० वेदप्रकाश (२) शामली—८४ रहतूलाल गुप्त (२) ८५ देवानन्द शर्मा (२) सुजानगढ़—१२ सूरजमल आर्य (१) सैदपुर—१०६ ओम्प्रकाश शर्मा (३) १०७ गंगाशरण शर्मा (३) १०८ लक्ष्मणसिंह (३) १०६ रणजीत सिंह (२) ११० राजपाल सिंह (३) ११३ महेन्द्रपाल सिंह (३) १२४ करनसिंह (३) ११६ रामकुमार (३) ११८ महानन्द वर्मा (३), १२० प्रियतमचन्द्र गौड़ (२) १११ जगवीर सिंह (३) १७६ सुशबन्शकुमारी (२) हरिद्वार (कन्यागुरुकुल)३३ दैवतकुमारी (३)३४ विद्यावती (३) ३५ लक्ष्मी देवी (३) हवेली खड्गपुर—३२ आशुतोषपाल (३) चंदावल—१६२ पुष्पेन्द्रकुमार लाला (२) हरदोई—१५२ रामनारायणलाल (३) देहरादून (डी० ए० वी०) १५३ सुरेशचन्द्र भारती (३) छीपाडीह — १६० विद्यादेवी (२)

डा० सूर्यदेव शर्मा, एम० ए० डी० लिट,
परीक्षा मन्त्री,
भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद्, अजमेर

[हम समस्त परीक्षार्थियों को आर्य कुमार परिषद तथा सार्वदेशिक सभा की ओर से हार्दिक बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि वे पौरोहित्य परीक्षा में भी सम्मिलित होकर अपनी योग्यता बढ़ायेंगे।

धर्मदेव विद्यावाचस्पति
प्रधान आर्य कुमार परिषद्

साहित्य समीक्षा

आर्य समाज के महाधन (सचित्र)-लेखक श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली द्वारा प्रकाशित पृष्ठ लगभग ४००, मूल्य ३॥)

इस पुस्तक में श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने उन६५ धर्मवीरों व हुतात्माओं का संक्षिप्त जीवन चरित्र सरल भाषा में दिया है जिन्होंने वैदिक धर्म की वेदि पर अपने प्राणों की आहुति दे दी। इन में से कुछ तो महर्षि दयानन्द जी, पं० लेखराम जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी म० राजपाल जी आदि आर्य जगत् में सुप्रसिद्ध हैं कई सरदार धुन्ना सिंह जी, ला० विद्यासागर जी, भक्त अरूड़ामल जी, ब्र० रामनाथ जी, श्री जयराम जी आदि प्रसिद्ध नहीं हैं किन्तु श्री स्वामी जी ने बड़े परिश्रम से उनके विषय में जानकारी प्राप्त करके इस पुस्तक में यथा सम्भव चित्र सहित दे दी है। हैदराबाद सत्याग्रह के सब धर्म वीरों का चरित्र भी इस में दिया गया है। इस प्रकार यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी और स्फूर्तिदायक है किन्तु हमें खेद है कि पुस्तक का नाम आकर्षक नहीं और न इससे विषय का स्पष्ट बोध होता है। सार्वदेशिक सभा के अनेक कार्यकर्ताओं के इस निर्देश को की पुस्तक का नाम 'आर्यसमाज के धर्मवीर व हुतात्मा' रक्खा जाए लेखक महोदय ने स्वीकार नहीं किया। निःसन्देह ऐसे धर्मवीर किसी भी समाज के महाधन के रूप में होते हैं किन्तु जब तक पुस्तक का नाम स्पष्ट न हो उसके उत्तम होते हुए भी जनता का ध्यान उधर जाना कठिन होता है। आशा है इस अत्यन्त उपयोगी पुस्तक को जनता भली भांति अपना कर लाभ उठायेगी।

आर्यसमाज स्थापना दिवस की अपील

नगर आर्य समाज अजमेर का अनुकरणीय यत्न

उक्त आर्य समाज के मंत्री महोदय सार्वदेशिक सभा के मन्त्री को लिखते हैं:—"आर्य्य समाज स्थापना दिवस की अपील का धन आपकी सेवा में भेजा जा रहा है।

विलम्ब क्यों हुआ? कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रथम तो आज कल शुभ कार्य के लिए धन संग्रह करना सरल नहीं रह गया है। स्थानीय आवश्यकताएं ही पूरी नहीं होतीं। दूसरे यह हमारे सदस्यों के लिए सर्वथा नई सी चीज थी। जहाँ गए प्रायः यही सुनने को मिला कि आप ही ऐसे मन्त्री हैं जिन्होंने सदा के लिए भी धन मांगा है और समाज ने न दिया तो घर मांगने चले आए।" ···फिर भी आपने हमारी समाज से जितने करकी मांग की है उससे भी दुगुना अर्थात् २५) के स्थान पर ५०) आपकी सेवा में भेजा जा रहा है इसी आशा से कि वेद प्रचार घर-घर में हो और ऋषि ऋण हल्का हो।"

इस्लामी त्योहार और उत्सवः—

लेखक—श्री प्रो० महेशप्रसाद जी मौलवी आलिम फ़ाजिल हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस। पुस्तक मिलने का पताः—आलिम फ़ाजिल बुकडिपो इलाहाबाद मूल्य १।।)

श्री प्रो० महेशप्रसादजी हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में अरबी फारसी विभाग के अध्यक्ष और भारत भर में विख्यात मुस्लिम साहित्य के विद्वान् हैं। उन्होंने इस लगभग १०० पृष्ठ की पुस्तक में मुहर्रम, बारावफ़ात, मेराज, शबरात, ईद, बकरीद इन इस्लामी त्योहारों व उत्सवों पर प्रामाणिक मुस्लिम साहित्य और इतिहास के आधार पर प्रकाश डाला है। अन्त में 'गाय और कुरान' पर एक अप्रमाण्य लेख है। यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। किसी भी मत के सिद्धान्तों और उत्सव त्योहार आदि के विषय में ठीक २ परिचय रखना प्रत्येक सत्यप्रेमी के लिये आवश्यक है। इस्लामी त्योहार के विषय में निष्पक्षपात निश्चय और प्रामाणिक सूचनाएं इस पुस्तक में जितनी अच्छी तरह दी गई हैं उतनी मैंने किसी पुस्तक में नहीं देखीं। इस लिये इस की उपयोगिता में कोई सन्देह नहीं हो सकता। विभिन्न सम्प्रदायों में परस्पर प्रेम उत्पन्न करने की दृष्टि से भी एक दूसरे के धार्मिक सिद्धान्तों और उत्सवादि क्रियाकलाप को समझना लाभकारक है। आशा है इस पुस्तक का यथेष्ट प्रचार होगा।

सं० सा०

सम्पादकीय

मैसूर में गोवध तथा पशुबलि निषेध:—

हमें यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि मैसूर की धारा सभा में गोवध और पशुबलि निषेध विषयक प्रस्ताव स्वीकृत हो चुके हैं और इनको शीघ्र ही विधान वा कानून का रूप मिलने वाला है। इन विषयों में आन्दोलन अनेक वर्षों से किया जा रहा था किन्तु इतने वर्षों के पश्चात् उसका उत्तम फल मिलने वाला है यह भी हर्ष की बात है। भारतीय विधान में भी इस विषयक धाराओं का चतुर्थ भाग में जहां राष्ट्रीय नीति के मूल भूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन है ४१ वी ४२ वीं धारा के रूप में समावेश करना अत्यावश्यक और सर्वथा उचित है क्योंकि गोवध के कारण देश की भयङ्कर साम्पत्तिक हानि के अतिरिक्त दूध, घी आदि वस्तुओं की शुद्ध रूप में प्राप्ति न होने से स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है जो राष्ट्रीय उन्नति में बड़ा बाधक है। हमारा भारतीय विधान परिषत् के सदस्यों से सानुरोध निवेदन है कि गोवध और पशुबलि निषेध विषयक धाराओं का समावेश भारतीय विधान में अवश्य ही करवा कर पीड़ित जनता के धन्यवाद और पुण्य, कीर्ति के भागी बनें। हम मैसूर धारा सभा के सदस्यों का इस प्रस्तावों के स्वीकृत करने पर हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

भारत-हैदराबाद वार्ता भङ्ग:—

यह वस्तुतः खेद की बात है कि गत अनेक मासों से भारत और हैदराबाद सरकार के मध्य जो समझौते की चर्चा चल रही थी वह निजाम के दुराग्रह के कारण गत १७ जून को भग्न हो गई। भारत सरकार ने बहुत ही नर्म शर्तें (जिनकी डा० पट्टाभिसीतारमैय्या जैसे कांग्रेस कार्य कारिणी के सदस्य ने भी कड़ी आलोचना की है) इस उद्देश्य से प्रस्तुत की थीं कि अधिक संघर्ष में न पड़ना पड़े यहां तक कि रजाकारों के अत्यन्त उपद्रवकारक संगठन को समाप्त करने के लिये भी उसने ३ मास का समय दिया था। हैदराबाद के भारत सङ्घ में तत्काल मिल जाने पर भी उस में बल न दिया था, इस पर भी निजाम ने उस सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर करना स्वीकृत नहीं किया यद्यपि अब भी वार्ता जारी रखने की इच्छा उस ने अवश्य प्रकट की है। भारत के प्रधान मन्त्री श्री पं० जवाहिर लाल जी ने १७ जून की सायं प्रेस कान्फ्रन्स में घोषित किया कि 'भारत सरकार अब हैदराबाद से बात चीत न करेगी। निजाम चाहें तो प्रस्तावित समझौते पर हस्ताक्षर कर दें। यह आखिरी फैसला है। निजाम इसे अच्छी तरह समझ लें। उन्होंने यह भी कहा कि हैदराबाद को भारत सङ्घ में शामिल होने के अतिरिक्त दूसरा कोई चारा नहीं है। निजाम को उत्तरदायी सरकार की स्थापना करनी होगी। रजाकारों पर तत्काल पाबन्दी लगानी चाहिये। उनके जुल्मों को सहन नहीं

किया जा सकता । परिस्थितियों के अनुसार हम अगला कदम उठाएंगे । मध्यान्तर में हम आर्थिक घेरा बन्दी और रक्षात्मक दोनों कदम उठाएंगे । ... "हिन्द सरकार किसी भावना से प्रेरित होकर नहीं वरन् व्यावहारिक दृष्टि से कभी यह सहन नहीं करेगी कि हैदराबाद अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाता रहे और मनमानी करे। भौगोलिक दृष्टि से हैदराबाद को हिन्द का हिस्सा बनना ही पड़ेगा। हम को हैदराबाद किसी प्रकार का धोखा या चकमा नहीं दे सकता। हैदराबाद यह कान खोल कर सुन ले । अगर वहां परिस्थिति बिगड़ती है तो परिणाम हैदराबाद अच्छी तरह जानता है यह हमारी चेतावनी है ।।" इत्यादि

हम माननीय प्रधान मन्त्री जी की इस साहस पूर्ण स्पष्ट घोषणा का अभिनन्दन करते हैं किन्तु यह लिखे बिना नहीं रह सकते कि 'लातों के भूत बातों से नहीं मानते' वाली कहावत ऐसी ही परिस्थिति में चरितार्थ होती है। सय्यद कासिमरजवी ने १० जून को भारत सरकार को हैदराबाद प्रदेश में भारतीय सेना के प्रवेश करने की आज्ञा पर मत प्रकट करते हुए कहा 'मुझे खुशी है कि अनिश्चितता दूर हो गई है मै चाहता हूँ कि वह धमकी को कार्यान्वित करे किन्तु मैं जानता हूँ कि वह ऐसा नहीं करेगी। यदि हैदराबाद पर आक्रमण हुआ तो पुनः सभी स्थानों पर पानीपत की लड़ाई लड़ी जायगी । जिस देश का भाग्य बातचीत से नहीं उसकी ताकत से बना है वह तलवार के बल पर ही अपना निर्णय करता है। चलो हम दक्षिण से उत्तर की ओर चलें और दिल्ली के लाल किले पर आसफजाही भण्डा फहराएं और भारत का नया मानचित्र और नया इतिहास बनाएं।' इत्यादि कासिम रजवी के ऐसे उन्मत प्रलाप और रजाकारों के पाशविक अत्याचार दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। हैदराबाद स्टेट कांग्रेस की २२ जून को प्रकाशित विज्ञप्ति के अनुसार १ और १५ जून के मध्य रजाकारों ने भारत संघ के ११६ सीमावर्ती गाँवों को लूटा है इनमें से ५८ गाँव कर्णाटक में, ५० महाराष्ट्र में और २८ आन्ध्र में हैं। रजाकारों ने इन गांवों पर किये आक्रमणों में ३७ लाख रु०, २५५ तोला सोना' काफी बड़ी मात्रा में चाँदी और ५०० बोरी अन्न लूटा। इसके अतिरिक्त इन हमलों में १०० ग्रामीण मारे गये और इससे कहीं अधिक घायल हुए।

हमें भारत सरकार की शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। हम तो यही चाहते हैं कि अब आर्थिक प्रतिबन्ध के अतिरिक्त अन्य भी ऐसी कठोर कार्यवाही करनी चाहिये जिस से इन उपद्रवियों को निश्चय हो जाए कि भारत सरकार 'गीदड़ भभकियां ही नहीं दे रही जैसे कि अब तक उन्होंने समझ रखा है किन्तु उपद्रवों को शान्त करने की पूर्ण शक्ति उसके पास विद्यमान है। यह कहाँ का न्याय है कि १४ प्रति शतक हैदराबाद के मुसलमानों को ८६ प्रतिशतक हिन्दुओं के समान अधिकार तथा प्रतिनिधित्व देने के असंगत सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाय जैसे कि हैदराबाद सरकार चाहती है। हमें पूर्ण निश्चय है कि अब शिथिलता से नहीं बड़ी क्षमता से भारत सरकार कार्य ले कर

अपने गौरव की रक्षा करेगी। उसके साथ पूर्ण सहयोग देना सारी जनता का कर्त्तव्य है। अखिल भारतीय आर्य वीर दल समिति ने आवश्यकतानुसार कम से कम ५ हजार स्वयं सेवक वीर वहां भेजने का निश्चित वचन दे रक्खा है।

द० अफ्रीका की नई सरकार की निन्दनीय नीतिः—

दक्षिण अफ्रीका के नये वैदेशिक मन्त्री डा० डोंगेस ने १० जून को एक भेंट में स्पष्ट किया कि नई राष्ट्र वादी सरकार की नीति चुनाव घोषणा पत्र के अनुसार ही रहेगी जिसके अनुसार भारतीयों को पार्लियामेन्ट में जगह नहीं दी जाएगी। एशियायिक लैंड टैन्योर कानून की दूसरी धारा उठा दी जायगी और पार्लियामेन्ट में तथा नैटाल प्रान्तीय कौन्सिल में भारतीय प्रतिनिधित्व को रद्द कर दिया जायगा। नये प्रधान मन्त्री डा० मलान के विषय में कहा जाता है कि वे भारतीयों को अधिक से अधिक संख्या में अफ्रीका से निकालने की कोशिश करेंगे। हम दक्षिण अफ्रीका की नवीन सरकार की इस भारतीयों से घृणा सूचक नीति को अत्यन्त निन्दनीय समझते हैं। प्रधान मन्त्री जनरल स्मट्स की नीति भी इन विषयों में अच्छी नहीं थी और हम इन स्तम्भों में उस का कई बार विरोध कर चुके हैं किन्तु प्रतीत होता है कि नई सरकार की नीति तो और भी अधिक निन्दनीय होगी जिसके विरुद्ध सत्याग्रह आन्दोलन को पुनः चलाने का वहां की कांग्रेस ने निश्चय किया है। हमारा दक्षिण अफ्रीका की सरकार से अनुरोध है कि वह इस निन्दनीय नीति का परित्याग कर के उदारता और समानता के उच्च सिद्धान्त को अपनाए।

एक मान्य आर्य महानुभाव का शोक जनक देहावसानः—

पाठकों को इस अङ्क के मुख्य पत्र और अन्यत्र प्रकाशित लेखों से यह जानकर अत्यधिक दुःख हुआ होगा कि सार्वदेशिक सभा के भूत पूर्व सुयोग्य और उत्साही मन्त्री श्री प्रो० सुधाकर जी एम० ए० का गत १६ जून की रात्रि को देहावसान हो गया। उनके पितृवत् पूज्य श्रीमान् निरञ्जननाथ जी ने जिनका दिवंगतमान्य महानुभाव के साथ घनिष्ठ सम्पर्क था उनकी जीवन विषयक अनेक बातों पर अपने लेख में प्रकाश डाला है ऐसे ही श्री रघुनाथ प्रसाद जी ने अपने वैयक्तिक अनुभव के आधार पर अनेक बातें लिखी हैं जिनसे पाठकों को ज्ञात हो सकता है कि उनका जीवन कितना उच्च था तथा आर्योचित गुणों को वे किस प्रकार अपने अन्दर धारण करने का सदा प्रयत्न करते रहते थे। मुझे भी श्रीमान्य प्रो० जी के घनिष्ठ सम्पर्क में आने का अनेक वर्षों तक सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में जब वे उपाध्याय थे तो उनसे अंग्रेजी और मनोविज्ञान का अध्ययन करते हुए मैंने उन्हें आदर्श शिक्षक के रूप में पाया जो शिष्यों के प्रति सच्चा प्रेम रखते हुए उन्हें सदा प्रोत्साहित करते थे। सार्वदेशिक सभा के उनके मन्त्रित्वकाल में भी दक्षिण भारत में प्रचारक रूप में कार्य करते हुए मैंने उनकी वैदिक

धर्म के प्रचार के प्रति आस्था को विशेष रूप से अनुभव किया। उनका साहित्य निर्माण पर बड़ा बल रहता था। स्वयं उन्होंने अनेक अत्यन्त उपयोगी पुस्तकें लिखीं और प्रकाशित कराई थीं। उनकी प्रेरणा पर मैंने भी "वैदिक धर्म आर्य समाज प्रश्नोत्तरी, Cateohism on Vedio Dharmand Arya Samaj The Glory of the Vedas, भक्ति कुसुमाञ्जलि, वैदिक संस्कार भास्कर, वैदिक स्वाध्याय मञ्जरी आदि पुस्तकें लिखी थीं जिनमें से प्रथम ४ उन्होंने अपने 'शारदा मन्दिर' की ओर से प्रकाशित करवाई थीं। अन्य विद्वानों को भी वे सदा ऐसी ही प्रेरणा करते रहते थे क्योंकि उत्तम साहित्य निर्माण की प्रचारार्थ आवश्यकता को वे प्रबलता से अनुभव करते थे। उनका स्वभाव बड़ा मधुर था। आर्य कुमार परिषत् के द्वारा युवकों में कार्य स्व० डा० केशवदेव जी शास्त्री के साथ मिल कर उन्होंने ही पहिले प्रारम्भ किया था। हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के संचालन में उन्होंने जिस तत्परता और दक्षता से काम लिया यह आर्य जगत् में सर्वविदित है। ऐसे एक मान्य आर्य महानुभाव के हृदय रोग द्वारा देहावसान से आर्य जगत् को बड़ी क्षति पहुंची है। हम उनकी दिवंगत पवित्र आत्मा की सद्गति के लिये भगवान से प्रार्थना करते हुए उनके शोक सन्तप्त परिवार के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट प्रकट करते हैं और आर्य जनों से निवेदन करते हैं कि वे भी स्वर्गीय प्रो० सुधाकर जी की तरह आर्योचित गुणों को अपने अन्दर धारण करते हुए समाज सेवा में सदा तत्पर रहें।

ध० दे०

Books To Be Had From Sarvadeshik Sabha, Delhi

श्री पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिण्टिङ्ग प्रेस" श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित

सार्वदेशिकसभा पुस्तक भण्डार की उत्तमोत्तम पुस्तकें

नाम पुस्तक लेखक व मूल्य

(१) वैदिक सिद्धान्त स० (सार्व० सभा) १)
(२) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर ,, १।)
(३) आर्य सिद्धान्त विमर्श ,, १॥)
(४) सार्वदेशिक सभा का इतिहास ,, अ० २)
(५) आर्य डायरेक्टरी ,, अ० १
(६) आर्य विवाह ऐक्ट की व्याख्या ,, ।)
(७) आर्यसमाज के महाधन सचित्र २॥)
(स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी)
(८) स्त्रियों का वेदाधिकार
(पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति) १।)
(९) आर्य वीर दल बौद्धिक शिक्षण
(पं० इन्द्रजी वि. वा.) ।=)
(१०) यम पितृ परिचय पं० प्रियरत्न जी आर्ष २)
(११) अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र ,, २)
(१२) वैदिक ज्योतिष शास्त्र १॥)
(१३) वैदिक सूर्य विज्ञान ,, =)
(१४) वेद में असित्‌शब्द ,, -)।
(१५) ऋग्वेद में देवृकामा ,, -)
(१६) वेद में दो बड़ी वैज्ञानिक शक्तियां ,, १)
(१७) विमान शास्त्र ,, ।=)॥
(१८) वैदिक राष्ट्रीयता (स्वामी ब्रह्म मुनि) ।)
(१९) स्वराज्य दर्शन सजिल्द
(पं० लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित) १)
(२०) नया संसार श्री पं० रघुनाथप्रसाद पाठक ≡)
(२१) मातृत्व की ओर ,, ,, अ० १।)
(२२) आर्य जीवन गृहस्थ धर्म ,, ॥=)
(२३) आर्य शब्द का महत्व ,, -)॥
(२४) कथा माला (म० नारायण स्वामी जी
की कथाओं के आधार पर ॥)
आर्य समाज का परिचय ≡)
(२५) श्री नारायण स्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ १)
(२६) आत्म कथा श्री नारायण स्वामी जी २।)
(२७) योग रहस्य ,, १)
(२८) मृत्यु और परलोक ,, १।)
(२९) विद्यार्थी जीवन रहस्य श्री न० स्वामी जी ॥)
(३०) प्राणायाम विधि ,, ≡)
(३१) उपनिषद् ईश ।≡) केन ॥) कठ ॥)
प्रश्न ।=) मुण्डक ।≡) माण्डूक्य ≡),
ऐतरेय ।) तैत्तिरीय ॥।)
(३२) श्री नारायण स्वामी जी की संक्षिप्त
जीवनी -)
(३३) नारायण-सुधा सजिल्द १॥)
(३४) शहीदी पत्रिका ।=)
(३५) आर्यसमाज मन्दिर चित्र ।)
(३६) हजरदारेहकीकत
श्री ला० ज्ञानचन्द्र जी आर्य ॥।=)
(३७) बहिनोंकी बातें
(पं० सिद्धगोपाल जीकविरत्न) १)
(३८) भूमिका प्रकाश (श्री द्विजेन्द्रनाथ जी) १।)
(३९) वेद और गोमेध
श्री बा० श्यामसुन्दरलाल जी ≡)
(४०) सत्यार्थ प्रकाश आन्दोलन का इतिहास ।=)
(४१) सत्यार्थ प्रकाश गान
(पं० सत्यभूषण जी योगी) ।=)
(४२) हमारे घर (श्रीनिरंजनलालजी गौतम) ॥=)
(४३) भारतवर्ष में जाति भेद ,, ।)
(४४) सत्यार्थ प्रकाश की सार्वभौमता -)
(४५) आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग का
कार्य क्रम -)
(४६) शाङ्कर भाष्यालोचन सजिल्द
(श्री पं० गङ्गा प्रसाद जी उपाध्याय कृत) ५)
(४७) वीरमाता का उपदेश
(प्रो० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार) ।)
(४८) महाराणा सांगा श्री हरविलास शारदा १)
(४९) एशिया का वैनिस (स्वामीसदानन्दजी) ॥।)
(५०) वैदिक वीर गर्जना
(श्रीरामनाथ वेदालङ्कार) ॥=)।
(५१) सिन्धी सत्यार्थ प्रकाश ४)
(५४) आर्य पर्व पद्धति (पं० भवानीप्रसाद जी



श्रावण सं० २००५ वि०
अगस्त १९४८ ई०

सम्पादक—
श्री पं० धर्मदेव जी सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति

मूल्य स्वदेश ५)
विदेश १० शि०

विषय-सूची

संख्या		पृष्ठ
१.	वैदिक प्रार्थना—	२५३
२.	ऋग्वेदीय अश्वमेध सूक्त—श्री० ब्र० दसवुंध जी	२५४
३.	मनु के उपदेश—श्री०पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०	२५८
४.	महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी—श्री० पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति,	२६१
५.	ऋषि दयानन्द और महात्मा गांधी (कविता)—श्री० डा० सूर्यदेव जी शर्मा एम० ए०	२६८
६.	आर्यसमाज का स्थापना दिवस और चार आने—श्री०मंत्री जी सार्वदेशिक सभा	२६९
७.	अनाथा से सनाथा (कहानी)—श्री आशाराम सिंह जी	२७०
८.	राष्ट्रभाषा की हत्या—श्री० पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति प्रधान सार्वदेशिक सभा	२७४
९.	मोरीशस के साथ भारत का सम्बन्ध—श्री शिवचन्द्र जी	२७७
१०.	आज का भारत और आर्यसमाज—श्री० पं० ब्रह्म प्रकाश जी विद्यावाचस्पति	२८१
११.	आर्य समाज का उदय या क्षय—श्री स्वा० ब्रह्ममुनि जी	२८३
१२.	दान सूची—	२८६
१३.	आर्य जगत्—	२८८
१४.	आर्य कुमार जगत्—	[illegible]
१५.	साहित्य समीक्षा—	[illegible]
१६.	सम्पादकीय—	२९८

शुभ समाचार

पाठकों को ज्ञात होगा कि 'सार्वदेशिक' के जनवरी १९४८ के अङ्क में प्रकाशित 'देश के प्रति मुस्लिम मनोवृत्ति' शीर्षक डा० सूर्यदेव जी एम० ए० डी० लिट् के लेख को आपत्ति जनक समझ कर चीफकमिश्नर देहली ने १०००) की जमानत प्रकाशक श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक और ५००) मुद्रक से मांगी थी। इसके विरुद्ध प्रकाशक की ओर से पञ्जाब हाई कोर्ट शिमला में अपील की गई थी। पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि माननीय चीफ जस्टिस श्री रामलाल जी, माननीय जस्टिस खोसला और जस्टिस फालशा ने अपील को स्वीकार करते हुए जमानत और व्यय को वापिस दिलाने का निर्णय दिया। हाई कोर्ट का पूर्ण निर्णय अगले अङ्क में प्रकाशित किया जाएगा क्योंकि अभी विस्तृत वर्णन प्राप्त नहीं हुआ। —सम्पादक सा० दे०]

॥ ओ३म् ॥

सार्वदेशिक

* सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष २८ } अगस्त १९४८ ई०] श्रावण २००५ दयानन्दाब्द १२६ { अङ्क ६

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदतिद्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥ सामवेद म. ६६६ ॥

शब्दार्थः—(हि) क्योंकि (शक्रः) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही (ईशे) सब का शासन करता है इसलिये (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (अपराजितम्) किसी से भी न हारे हुए (जेतारम्) सब पर विजय करने वाले उस परमात्मा को (हवामहे) हम स्मरण करते हैं। (सः) वह (नः) हमारे (द्विषः) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मात्सर्यादि रूप शत्रुओं और द्वेष भावनाओं का (स्वर्षत्) अच्छी प्रकार विनाश करे। वह परमेश्वर ही (क्रतुः) सब संसार का कर्ता (छन्दः) वेद ज्ञानमय अथवा सबका रक्षक (ऋतम्) स्वरूप और (बृहत्) सब से बड़ा है।

विनय—हे सर्व शक्तिमय परमेश्वर! आप सारे संसार के उत्पादक, सर्वज्ञ, सत्यस्वरूप और सब से बड़े हैं। हम सब सदा आपका सच्चे हृदय से स्मरण करते हैं और यह प्रार्थना करते हैं कि आप हमें काम, क्रोध, लोभ, मोहादि

ऋग्वेदीय अश्वमेध सूक्त

क्या यज्ञों में पशुहिंसा वेद विहित है ?

[ले० ब्रह्मचारी उषर्बुध जी आर्य]

(क्रमागत)

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया, या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधानाश्चरूणामङ्कास्सूनाः परिभूषन्त्यश्वम् ॥ १३ ॥

सायणादि कृत

अन्वयः— (यत्) जो (मांस्पचन्याः) मांस पकाने वाले (उखायाः) स्थाली पात्र का (नीक्षणं) देखना है, और (यूष्ण आसेचनानि) जिन में यूष = मांस रस रखा जाता है, ऐसे (यानि) जो (पात्राणि) पात्र हैं, तथा (ऊष्मणि) मांस के परिपक्व = उष्ण हो जाने पर (अपिधानाः) ढकने के पात्र हैं, तथा (चरूणामङ्काः) चरु मांसादि हव्य पदार्थों के पात्र हैं, (सूनाः) तथा जहां पशुओं को यज्ञ के लिये काटा जाता है, ऐसे सूना गृह = कसाई घर हैं ये सभी (अश्वं) बलि के अश्व को (परिभूषन्ति) भूषित करते हैं ॥

सत्यार्थ — (यत्) जो (मांस्पचन्याः) उत्तम मनोमोहक भोजन निमाण करने के (उखाया) उखा आदि पात्रों का (नीक्षणं) निरीक्षण है, तथा (यूष्ण आसेचनानि) भोजन के उत्तम रसादि रखने के (या) जो (पात्राणि) पात्र हैं, (ऊष्मण्यापिधानाः) तथा भोजनादि निर्माण करने के समय ढकने के पात्र हैं, तथा (चरूणामङ्काः) हव्य पुरोडाशादि के पात्र हैं, तथा जो (सूनाः) ओषधि रस निकालने के स्थान वा पात्र हैं, ये सब (अश्व)अश्व को वा अश्वमेध यज्ञ को (परिभूषन्ति) भूषित करते हैं। इस मन्त्र में यज्ञ में विद्वानों के सत्कार के लिये तथा यज्ञ के लिये आवश्यक सामग्री का वर्णन किया गया है।

(प्र०) मन्त्र में जो "सूना" शब्द प्रयुक्त हुआ है, उसका अर्थ तो पशुओं को काटने का स्थान है "ओषधि रस के अभिषव का स्थान" किस प्रकार हो सकता है ?

(उ०) "अभिषूयन्तेऽत्र वनस्पतयः।" इस निरुक्ति से "षुञ् अभिषवे" धातु से, सूना शब्द सिद्ध होकर इस का अर्थ "ओषधि रस के अभिषव का स्थान" है। ·

शत्रुओं का नाश करने की शक्ति प्रदान करें। आपकी उपासना हमें इन शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की शक्ति दे सकती है। अतः हमें आप अपना सच्चा भक्त बनाएँ ताकि हमारा जीवन आदर्श आर्य जीवन बने। सब प्रकार की द्वेष भावना हम से दूर हो ॥

निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं,
यच्च पड्वीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास ।
सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १४ ॥

अनर्थः—(यत्) जो (अर्वतः) घोड़े का निकलना, आना, जाना है, (निषदनं) बैठना है (विवर्तनं) करवट बदलना है, (यच्च) और जो (पड्वीश) पैर आदि का चलाना हिलाना आदि क्रियाएँ हैं (यच्च पपौ) और जो कुछ जलादि इस ने पिया है तथा जो (घासिं) भोजन (जघास) खाया है, वह सभी (देवेष्वस्तु) देवताओं के सन्तोष के लिये हो।

सत्यार्थः—·········वे सभी क्रियाएं (देवेष्वस्तु) दिव्य गुण युक्त हों, अर्थात् अश्वमेघ यज्ञ में उत्तम गति वाले हृष्ट पुष्ट अश्वादि पशुओं का ग्रहण करना चाहिये। अथ वा० युद्ध विजय से लौट आने के पश्चात् भी, उस अश्व के लिये सब सुविधाओं का विशेष अधिक ध्यान रखना आवश्यक है, ऐसा इस मन्त्र का भावार्थ है।

॥५॥ मा त्वाग्निर्ध्वनयीत्, धूमगन्धि
र्मोखा भ्राजन्त्यभिविक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभि गूर्तं वषट्कृतं
तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥ १५ ॥

अनर्थः—हे अश्व! (त्वा) तुझे (धूमगन्धिः) धुएँ के गन्ध वाली वा, अल्प धूम वाली अग्नि (मा ध्वनयीत्) शब्दित न करे, अर्थात् अश्व का बलि मांस यज्ञाग्नि में आहुति देने पर "चट चट" ध्वनि न करे, तथा (अभि-विक्त-जघ्रिः) भयभीत करने वाली मांस की गन्ध से युक्त (उखा) उखा = स्थालीपात्र तुझे भयभीत न करे, अर्थात् तू उससे भयभीत न हो, ऐसे तुझ (इष्ट) इष्ट (वीत) विशेष गतियुक्त (अभिगूर्त) विशेष उद्यम किए हुए, (वषट्कृत) वषट् स्वाहा आदि शब्दों से बलिदान किये गए (अश्व) अश्व को (देवाः प्रतिगृभ्णन्ति) स्वर्गलोक के देवता ग्रहण करते हैं।

सत्यार्थः—उपर्युक्त क्रिया के पश्चात् यज्ञ किया जावे, यज्ञ में (धूमगन्धिरग्निः) अग्नि से वा उसके धूम से अश्व को कोई कष्ट न होने पावे जिससे वह यज्ञ के मध्य में ध्वनि न करने लगे। (भ्राजन्ती) चमकते हुए सुवर्णादिमय (अभिविक्तजघ्रिः) दीप्तिमान् (उखा) यूपस्तम्भ से भी अश्व को कोई कष्ट न होवे ऐसे (इष्टं) जिसके लिये दानेष्टि की गई है, ऐसे इष्ट (वीत) विशेष गतिमान् (अभिगूर्त) बलवान् होने से उद्यमशील, (वषट्कृतं) जिस के दान के लिये वषट्-स्वाहा आदि पूर्वक यज्ञ किया गया है, ऐसे (अश्व) अश्व को (देवासः) विद्वान् (प्रतिगृभ्णन्ति) ग्रहण करते हैं।

(प्र०) "अभिविक्त जघ्रि" शब्द का अर्थ "दीप्तिमान्" किस प्रकार हो सकता है?

(उ०) विजेश्चलनार्थात् क्ते ऽभिविक्तम्। दीप्त्यर्थात् जिघर्तेर्जघ्रिः। अभिविक्तजघ्रिः कस्मात्? अभिविक्ता जघ्रिरत्र। सञ्चालिता दीप्तिरत्र।" इस निरुक्ति द्वारा "अभिविक्तजघ्रिः" शब्द का अर्थ "दीप्तिमान्" है।

(प्र०) उखा शब्द तो एक पात्र विशेष का वाची है इस का अर्थ यूपस्तम्भ किस प्रकार हुआ?

(उ०) उखा यूपमिति प्राह । उखा कस्मात् उत्खाता भवति । निखाता काविति वा । कुभूमिरिति पुरा ऽथाख्याता । क वर्ण लोपः । खादन्त्यत्र पशवो बद्धा इति वा । उत्खातं वा यथाक्रमत इति वा । उत्खाता शाखा वृक्षस्येति वा । उत्खाता वृक्षस्येति वा । उत्खाता शाखाया इति वा । तस्मादुखा यूपः । इन निरुक्तियों के अनुसार उखा शब्द का अर्थ यूप है ।

(प्र०) "वीत" शब्द का अर्थ विशेष गतिमान् किस प्रकार हो सकता है ?

(उ०) पूर्व लेख में सप्तम मन्त्र के वीतपृष्ठ शब्द की व्याख्या में देखिये ।

॥ १६ ॥ यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्य
धीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
सन्दानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया
देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥

अनर्थ— (यत्)जो (वासः) वस्त्र (अश्वाय) अश्व के लिये (उपस्तृणन्ति) बिछौना बिछाते हैं तथा (अधीवासं) आच्छादन, ओढ़ना देते हैं, तथा (अस्मै) इस के लिये (यानि) जो (हिरण्यानि) सुवर्ण मय आभूषणादि दिये जाते हैं ये सब तथा (पड्वीशं सन्दानं) पैर पर बांधने की सन्दान नामक रज्जु है । तथा (अर्वन्तं) स्वयं घोड़े को (प्रियाणि) इन सब प्रिय पदार्थों को (देवेषु) देवताओं में ही (अपियामयन्ति) पहुँचा देते हैं ।

सत्यार्थः— (यत्) जो (अश्वाय) अश्व के लिये अर्थात् अश्व के उपयोग के लिये (वासः) गति के साधनों, रथ आदि को (उपस्तृणन्ति) विस्तृत करते, बढ़ाते हैं, (अधीवासं) इस के निवास स्थान बनाते हैं । तथा जो इसके उपयोग के लिये (हिरण्यानि) युद्ध साधनों को विस्तृत करते हैं (सन्दानं) (पड्वीशं) तथा प्रजाओं के उपकरण वहनादि के लिये, वा विद्वानों को दान के लिये इसका उपयोग होता है इन सब क्रियाओं को विद्वानों के नियम में करते हैं ।

(प्र०) 'वासः' शब्द का अर्थ "गति का साधन रथ आदि" किस प्रकार किया जा सकता है ?

(उ०) वासो वो गति साधनम् । वातेर्गत्यर्थात् । वानं गतिः । वानं साधयतीति वासो गति साधनम् । इस निरुक्ति से "वासः शब्द" का अर्थ "गति का साधन" है ।

(प्र०) 'हिरण्य' शब्द का अर्थ "युद्ध का साधन" किस प्रकार हो सकता है ?

(उ०) रण इति संग्राम नाम । हिरो रणो हिरणः । हिरणे साधु हिरण्यः । हिरणे यातीति वा । हिरणे युज्यत इति वा । इस व्युत्पत्ति के अनुसार हिरण्य शब्द का अर्थ भी सुसिद्ध है ।

(प्र०) "पड्वीश" शब्द का अर्थ "प्रजाओं के उपकरणादि का वहन" किस प्रकार हुआ ।

(उ०) विशामिदं वैशमुपकरणम् । वहति वैशमिति पड्वीशम् । वस्य पः ।

इस प्रकार "पड्वश" शब्द का अर्थ "प्रजाओं के उपकरणादि वहन" सिद्ध है ।

॥१७॥ यत्ते सादे महसा शूकृतस्य
पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु
सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥१७॥

अनर्थ— (यत) कि जो तुम्ह (महसा शूकृतस्य) महान् परिश्रम से श्रान्त अश्व के

(सादे) बैठ जाने पर तेरी पसली पर (कशया) चाबुक से (तुतोद) पीटा गया है, मैं (तानि) वह सब (अध्वरेषु) यज्ञों में (हविषः स्रु चेव) घृत की स्रु वा के समान (ब्रह्मणा) वेद मन्त्रों के उच्चारण से (सूदयामि दूर करता हूं।

सत्यार्थः—हे अश्व ! (यत्) जो (ते) तुम (महसा शूकृतस्य) शक्ति से गतिशील अश्व को (पार्ष्ण्यो) पसली पीठ आदि पर (कशया तुतोद) चाबुक आदि से मारा गया है, मैं उस पीड़ा को भी यज्ञ में वेदमन्त्र के उच्चारण के साथ ? औषधि द्वारा दूर करता हूं।

अश्वमेधयज्ञादि में अश्व को चाबुक आदि से पीड़ा नहीं देनी चाहिये। यदि किसी कारण से पीड़ा दी भी जावे, तो औषध्युपचारादि द्वारा उसे शीघ्र दूर कर देना चाहिये।

"संगति करण, भावार्थ"

जब सेना विजय प्राप्त कर आवे तो यज्ञ के क्षत्रिय कार्यकर्ता तथा राजा सेना का निरीक्षण करें। विद्वान् यज्ञकर्ता, वीरों विजेताओं को आशीर्वाद पुरस्कार आदि से प्रसन्न करें। यह सूक्त के द्वादश मन्त्र का भावार्थ है, इस के पश्चात् यज्ञ के लिये आवश्यक वस्तुओं का वर्णन किया गया है ॥१३॥ भोजन शाला, भोजन सामग्री पात्र हव्य, पुरोडाशादि, औषधियां, औषधिशाला तथा अश्व के आभूषणादि। ये यज्ञ के आवश्यक उपकरण हैं ॥१४॥

॥१५॥ अश्वों के बन्धन स्तम्भ, उत्तम काष्ठ के बने हुये तथा सुवर्णादि धातु खचित होने चाहिये॥ इसके पश्चात् अश्व के उपयोग का वर्णन किया गया है॥

॥१६॥ अश्वों का उपयोग रथ संचालन कार्य में युद्ध में प्रजाओं के भारादि वहन में किया जाता है ॥१७॥ किन्तु अश्वों के कार्यों में उपयोग लेते हुये उन्हें पीड़ित कर बलात् कार्य नहीं कराना चाहिये, यदि वे कार्य करने में अशक्त हों तो औषधि द्वारा उपचार करना चाहिये॥

(प्र०) सूक्त में तो अश्वमेध यज्ञ का वर्णन किया जा रहा था, फिर यह, घोड़े के कार्यों के उपयोग का वर्णन कहाँ से आगया ?

(उ०) अश्वमेध सूक्त वास्तव में यज्ञ प्रक्रिया का वर्णन करते हुये पशु विद्या का विधायक है, अतः सूक्त में उत्तम संगति पूर्वक यज्ञ प्रक्रिया तथा पशु विद्या दोनों का वर्णन कर दिया गया है। यह बात अग्रिम लेखों में विशेष स्पष्ट हो जायेगी॥

(क्रमशः)

[हिरण्य, पड्बीश, वासः इत्यादि की लेखक महोदय ने जो विरक्त तथा अर्थ लिये हैं उनके लिये प्रमाणान्तर की अपेक्षा है— सम्पादक]

मनु के उपदेश

(१)

अक्षम्य अवहेलना

[लेखक—श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०, मन्त्री सार्वदेशिक सभा देहली।]

ताण्ड्य महा ब्राह्मण में एक बहुत पुरानी लोकोक्ति है कि "यद्वै किंच मनुरवदत् तद् भेषजम्"। अर्थात् मनु महाराज का जो उपदेश है वह समस्त रोगों की ओषधि है। इस में सन्देह नहीं कि मनुकी सूक्तियां इसी प्रकार की हैं। जब मैं उन को पढ़ता हूँ और विचार करता हूं तो मुग्ध हो जाता हूं। गूढ़ से गूढ़ भावों को सरलतम भाषा में अत्युत्तम ढंग से रख दिया गया है। मनु के उपदेशों की पीठ पर अनेक गूढ़, मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मनु भगवान् को मानवीय मस्तिष्क का जितना व्यावहारिक परिज्ञान था उतना अन्य नीति ने शास्त्रज्ञों को प्राप्त न था। वे मनुष्य के मनकी छोटी से छोटी निर्बलता को समझते थे और उन्होंने उनके परिष्कार के लिये उत्तम से उत्तम नियम दिये हैं। हमको यह जान कर दुःख होता है कि मनुस्मृति को वर्तमान युग ने सर्वथा भुला दिया है। मनु के पीछे बहुत सी मध्यकालीन और आधुनिक स्मृतियों का निर्माण हो गया और उनका चलन सर्वप्रिय होने से लोग मनु को भूल गये। परन्तु मेरी धारणा है कि मनु की अवहेलना आर्य जाति के लिये अक्षम्य सिद्ध हुई मनुको विस्मरण करके लोगों ने वैदिक संस्कृति को भुला दिया। आप हिन्दू शास्त्र के जानने वाले वकीलों से पूछें वे मनुका नाम तक नहीं लेते। मनु केवल अन्वेषकों के पुरातत्त्व परिशीलन की चीज रह गया है। मिताक्षरा और दायभाग ही व्यवहार के लिए पर्याप्त समझे जाते हैं और उनके माने मौलिक ग्रन्थों याज्ञवल्क्यस्मृति आदि को भी भुला दिया गया है। मैं वकील नहीं हूं अतः कानून की पेचीदगियों से अनभिज्ञ हूं। मैं नहीं कह सकता कि कानून की दृष्टि से मनु की क्यों अवहेलना की गई और पीछे आने वाली स्मृतियों ने मनु के ऊपर क्या सुधार किया। अच्छा हो कि कोई आर्यसमाजी वकील इस विषय का अच्छा अध्ययन करके इस पर अपनी लेखनी उठावें। परन्तु कानूनी दृष्टि को छोड़ कर मैं आचार तथा संस्कृति सम्बन्धी बातों में मनु को अन्य स्मृतियों से बहुत कुछ उत्कृष्ट समझता हूँ। कानून तो अस्थायी वस्तु है। समाज या राज्य में परिवर्तन होते ही कानून बदल जाता है। परन्तु आचार के सिद्धान्त इतने परिवर्तन शील नहीं हैं। अमर आत्मा के अमरत्व की प्राप्ति का यह साधन रूप है अतः इन में अधिक स्थायित्व है। इस दृष्टि से यदि मनु के उपदेश प्राचीन काल में ओषधिरूप थे तो वे आज भी वैसे ही समझने चाहिये, आधुनिक

काल के सबसे बड़े वैदिक और वैदिक संस्कृति के परम उद्धारक महर्षि दयानन्द ने मनुको भेषज ही समझा है। उनके ग्रन्थों में वेदों से उतर कर मनु के ही अधिक प्रमाण मिलते हैं। ऋषि दयानन्द को मनु पर अत्यन्त श्रद्धा थी। वे मनुको वेदों की कुंजी समझते थे। इसी लिये उन्होंने अपने उपदेशों को मनु स्मृति पर आधारित किया। परन्तु ऋषि के अनुयायियों में मनु के लिये उतना आदर नहीं है। यह ठीक है कि आर्यसमाजी अपने आचार्य दयानन्द का अनुगामी है परन्तु उस पर अन्य प्रचलित प्रगतियों का भी प्रभाव पड़ता ही है। जहां आर्य समाजी प्राचीन संस्कृति का पोषक और भक्त है वहां व्यवहारकी दृष्टि से वह आधुनिक वातावरण का जन्तु है और उसके मस्तिष्क में वर्तमान प्रगतियों के चित्र बोलपट के समान आते जाते रहते हैं। यह स्वाभाविक भी है और उपयोगी भी, क्योंकि जीती जागती संस्था को अपनी वर्तमान परिस्थिति से सर्वथा अभिज्ञ रहना चाहिये. परन्तु इस के साथ ही अपने सांस्थिक भवन की नींव पर भी दृष्टि रखनी ही होगी। कहीं ऐसा न हो कि समाज अन्य प्रगतियों के चुनाव में बह कर अपने मौलिक ध्येयों को छोड़ दे। जब हम ऋषि दयानन्द के समय और उनकी मनोवृत्ति का अध्ययन करते हैं तो हम को एक विशेष बात यह मालूम होती है कि ऋषि दयानन्द समय के प्रभाव में नहीं बहते। वह क्षणिक लाभ को स्थायी लाभ के लिये छोड़ देते हैं। वह समझते हैं कि क्षणिक लाभ के लिये तो अन्य औषधियां उपलब्ध हैं ही। मानव जाति स्वाभाविक आत्म रक्षा की आवश्यकताओं से प्रभावित होकर क्षणिक लाभ का सम्पादन करती ही रहती है। पशु भी चाहता है कि किसी प्रकार वर्तमान कष्ट से बच जाऊं और वह कोई न कोई उपाय सोच ही लेता है परन्तु ऋषियों का सिद्धान्त है।

हेयं दुःख मनागतम्

अर्थात् जो दुःख अभी नहीं आया और आने वाला है उसकी हेयता के उपाय सोचे जावें। उस दुःख की जो आज नहीं, कल नहीं अपितु कई वर्षो में आयेगा परन्तु जिस के बीज आज भी भूमि के भीतर अदृष्ट रूप में उग रहे हैं। बबूल के वृक्ष के तीक्ष्ण काँटों को तो गधे का मस्तिष्क भी जान लेता है। परन्तु जो बबूल के कोमल बीज में बबूल के कांटे का दर्शन करता है वही वस्तुतः ऋषि मुनि या दर्शन कार कहलाने के योग्य है। आने वाले कांटे का बचाव वह ही कर सकेगा। हम देखते है कि आर्य समाजों में मनुस्मृति की कथायें नहीं होतीं न मनु का इतना अध्ययन होता है। इस के अतिरिक्त हम आर्य समाज के बाहर देखते हैं कि मनु स्मृति का खुल्लम खुल्ला अपमान किया जाता है। मनु को भेषज समझने के स्थान लोग विष समझते हैं। समस्त हिन्दू समाज के दुर्गुणों का कारण मनु को समझा जाता है। मनुस्मृतियां कई स्थानों पर सार्वजनिक रूप से जलाई गई हैं। जिस से मनु के लिये जो आदर के भावों लोगों में विद्यमान हैं उनका सर्वथा नाश हो जाय। बहुत से लोग तो इसी बात में अपना गौरव समझते हैं कि मनु के

प्रति घृणा उत्पन्न की जाय। इस का मुख्य कारण है वह विष जो समय समय पर मनुस्मृति में क्षेपक के रूप में मिला दिया गया और जिस ने मनु के उपदेशों को विषाक्त अन्न के समान बना दिया। स्त्री और शूद्रों के पददलित होने का कारण मनु को ही समझ लिया गया। घृणित हिंसा वृत्ति और यज्ञों में पशुवध का उत्तरदायित्व मनु के सिर मंढा गया। जात पात की बुराइयों को मनु के आधार पर समझा गया इस प्रकार मनु के तिरस्कृत करने के अनेक कारण आ उपस्थित हुए। यद्यपि सच्ची बात यह थी कि जिन अविद्या आदि भ्रम मूलक बुराइयों ने हिन्दू जाति पर आक्रमण किया उन्होंने हिन्दू साहित्य और विशेष कर मनु पर भी आक्रमण किया। मनुस्मृति के क्षेपकों का दोष मनु के सिर नहीं है अपितु इस के कारण वे अलौकिक प्रगतियाँ थीं जिनका विष मनु में भी प्रविष्ट हो गया। ऋषि दयानन्द ने कहा कि पानी अगर गदला है तो उस के छानने का उपाय सोचना चाहिये। गदले पन को देखकर पानी से अब असहयोग करना तो मूर्खता होगी। विद्वानों को चाहिये कि अपने ग्रन्थों को शोधें क्षेपकों को को दूर करें और जनता को फिर मनुरूपी भेषज से लाभ उठाने का अवसर देवें।

इस लेख माला में हम मनुस्मृति के उपदेशों का भिन्न भिन्नदृष्टियों से विचार करेंगे। आशा है कि जनता इससे लाभ उठायेगी।

महर्षि दयानन्द और महात्मा गाँधी

(४)

वर्णाश्रम व्यवस्था, जातिभेदादि विषयों पर तुलनात्मक अनुशीलन

[लेखक—श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा, देहली]

—:***:—

'सार्वदेशिक' के जून अङ्क में मैंने इस विषयक लेख देते हुए अन्त में लिखा था कि "६ मार्च सन् १६३६ को पूज्यपाद महात्मा जी से भेंट का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ जिसके मुख्य अंशों का जो जाति भेद विषयक थे अगले लेख में उल्लेख करूंगा।"

यरवडा जेल में ६ मार्च सन् १६३६ की मध्याह्न ३-२० के लगभग मैं पहुंचा। पूज्य महात्मा जी काले कम्बल पर भूमि पर बैठे हुए थे। वर्तमान गवर्नर जनरल श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य जी, श्री शङ्करलाल जी बैंकर आदि अनेक सज्जन भी उनके साथ बैठे हुए थे। मेरे पहुंचने पर पू० महात्मा जी ने मुझे बात चीत प्रारम्भ करने का संकेत किया। मैंने प्रश्न किया कि ऊंच-नीच और घृणा के भाव को आप बुरा और पापमय मानते हैं वा नहीं? महात्मा गांधी जी ने कहा कि मैं इसे घोर पाप मानता हूं। मैंने कहा कि तब आप जातिभेद के विषय में कैसे कह सकते हैं कि—

'There is nothing sinful about it' (अर्थात् इस जातिभेद में कोई पापमय बात नहीं) जब कि उसके अन्दर जन्म गत ऊंच नीच और घृणा के भाव हैं इस बात को सप्रमाण सिद्ध किया जा सकता है जैसे कि

'अविद्वांश्चापि विद्वांश्च, ब्राह्मणो दैवतं महत्॥"
"एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु।
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत्॥"
"दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रियः।"
(पराशर स्मृति)

शूद्रान्नेनोदरस्थेन यदि कश्चिन्म्रियेत यः।
स भवेत्सूकरो नूनं, तस्य वा जायते कुले॥६६॥
गृध्रो द्वादशजन्मानि, सप्तजन्मानि सूकरः।
श्वा चैव सप्तजन्मानि, इत्येवं मनुरब्रवीत्॥६७॥
(वेद व्यास स्मृति अ. ४)

इत्यादि से ज्ञात होता है जिनमें कहा है कि जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ है वह चाहे विद्वान् हो या अविद्वान्, चाहे वह कितने भी पाप कर्म करने वाला वा दुराचारी हो वह परम देवता है। दुष्ट स्वभाव वाला भी ब्राह्मण कुलोत्पन्न पूजनीय है किन्तु जितेन्द्रिय शूद्र पूजनीय नहीं। शूद्र के अन्न को पेट में रख कर यदि कोई मर जाता है तो वह सुअर की योनि में जन्म लेता है। १२ जन्मों में वह गिद्ध बनता है, सात जन्मों में सुअर और फिर सात जन्मों में वह कुत्ता बनता है ऐसा मनु ने कहा है।

इस पर पूज्य महात्मा जी ने कहा कि मैं जाति भेद या Caste system का यह अर्थ नहीं लेता मेरे विचार में जातियां (Castes) Trade

guilds या व्यापार सङ्घ के समान हैं जिन में घृणा का भाव नहीं।

मैंने निवेदन किया कि आप सारस्वत, गौड़ सारस्वत, सरयू पारीण, कान्य कुब्ज आदि ब्राह्मण जातियों को Trade Guilds के रूप में कैसे रख सकते हैं और उनमें इतने प्रतिबन्ध घृणा सूचक नहीं तो क्या हैं कि शूद्र का अन्न खाने पर मनुष्य ७जन्म पर्यन्त गिद्ध, ७ जन्म पर्यन्त सुअर और फिर ७ जन्म पर्यन्त सुअर बनता है। इत्यादि।

इस के उत्तर में पूज्य महात्मा जी ने कहा:-

मैं ऐसे स्मृति वचनों को सर्वथा अमान्य और जलाने लायक समझता हूं। मैं यह कहने को तैयार हूं कि ऐसे वचन चाहे वेद में हों चाहे स्मृतियों में, मैं उन को नहीं मान सकता।

मैंने निवेदन किया—वेद में तो कोई ऐसी बात नहीं पाई जाती जो न्याय और बुद्धि के विरुद्ध हो।

महात्मा जी ने कहा—पर ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं कि वेदों में गो-हिंसादि का विधान है। ऐसे लोगों को मुझे यही कहना पड़ता है कि यदि वेदों में ऐसी बातों का विधान है उन्हें मैं अपौरुषेय और ईश्वरीय नहीं मान सकता। क्योंकि मैं शास्त्रार्थ करने को उद्यत नहीं।

इस पर मैंने निवेदन किया कि आप को ऐसे वचनों का सत्यार्थ बताना चाहिये और दो विरुद्धार्थों में से 'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे' के अनुसार जो अधिक बुद्धि संगत होगा वही अर्थ मान्य समझा जाएगा। यदि आपने वेदों का अधिक अध्ययन नहीं किया तो आप दूसरों से सहायता ले सकते हैं। जो आप की ओर से शास्त्रार्थ करने को तय्यार हों। हम लोग इसके लिये उद्यत हैं। यदि आप इस तरह कहने लगेंगे कि यदि वेदों में ऐसा (पशु हिंसादि) विधान है तो मैं उन्हें अपौरुषेय नहीं मानता तो नास्तिकता फैल जायगी जैसे कि श्री गोतम बुद्ध के स्वयं नास्तिक न होते हुए भी ऐसी स्थिति (Attitude) लेने के कारण उनके शिष्यों में फैली। यह आप का विचार ठीक है कि वे (गोतम बुद्ध) नास्तिक न थे किन्तु उनके अनुयायियों में नास्तिकता फैलने का यही कारण हुआ।

इस पर पूज्य महात्मा जी ने कहा — यह शिष्यों की जड़ता है।

मैंने निवेदन किया — पर ऐसा प्रायः हो जाता है इसी लिये आपको बहुत अधिक सावधान होने और अपनी उत्तरदायिता को अधिक समझने की आवश्यकता है।

पू० महात्मा जी ने इस बात को स्पष्ट किया कि मैं जन्मसिद्ध ऊंच नीच और घृणा के भाव का किसी रूप में भी समर्थन नहीं करता और इस अर्थ में जातिभेद वा Caste system का भी पक्ष नहीं लेता। पर वर्णाश्रम को मानता हूं जिसमें ऊंच नीच की कोई भावना नहीं। सब बराबर हैं। जातिभेद और अस्पृश्यता दोनों बुराइयां हैं किन्तु जातिभेद को दूर करने के लिये समय की अपेक्षा है और उसकी प्रतीक्षा की जा सकती है किन्तु अस्पृश्यता के विष को तो एकदम दूर किया जाना चाहिये। इसको सहन नहीं किया जा सकता। सुरेश बैनर्जी को मैंने लिखा था कि

हां, तुम जातिभेद के विरुद्ध आन्दोलन करते जाओ पर मुझे अपने तरीके पर चलने दो।

इस पर मैंने कहा—इसका मतलब है कि आप नीति के रूप में (As a matter of policy) जातिभेद का सीधा विरोध नहीं करना चाहते।

पू० महात्मा जी ने निस्संकोच भाव से कहा—हां, यह कहने में कोई हर्ज नहीं। नीति (Policy) दो प्रकार की होती है धर्म्म और अधर्म्म। धर्म नीति का ही नाम 'योगः कर्मसु कौशलम्' के अनुसार युक्ति वा योग है जो बुरी चीज नहीं। इस तरह न चलना मूर्खता है।

जात पात तोड़क मण्डल लाहौर के पत्र का निर्देश करते हुए महात्मा जी ने कहा कि वे लोग डा० अम्बेदकर की उक्ति को ठीक बताते हैं जिस बेचारे को मालूम नहीं कि वर्णाश्रम धर्म क्या चीज है। ऐसों को मैं झाड़ देता हूं ताकि आन्दोलन को हानि न पहुंचे। इत्यादि—

इस भेंट में मूर्ति पूजा के विषय में भी बातचीत हुई किन्तु उस का मूर्तिपूजा के प्रकरण में दोनों महात्माओं के विचारों पर तुलनात्मक दृष्टि से विमर्श करते हुए ही उल्लेख करना उचित होगा। अभी वर्णाश्रम धर्म, जाति भेद, अस्पृश्यतादि विषयों पर ही कुछ अन्य बातों का उल्लेख करना प्रसङ्गानुसार होगा।

१३ मई १६३३ के हरिजन (अंग्रेजी) में महात्मा गांधी जी ने Not by birth but by merit "अर्थात् जन्म से नहीं किन्तु गुण से" इस शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया जिस में एक विद्वान् द्वारा प्रेषित निम्न श्लोकों को अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित किया। पाठकों को स्मरण होगा कि इन में से अनेक श्लोकों का मैंने अपनी दो भेंटों और पत्र व्यवहार में उद्धरण दिया था। यह स्पष्ट है कि पूज्य महात्मा गांधी जी इन श्लोकों में स्पष्टतया वर्णित गुण कर्म से वर्ण व्यवस्था के सिद्धान्त से सहमत हो गये थे अन्यथा वे इन श्लोकों को अंग्रेजी अनुवाद सहित उद्धृत करने का कष्ट न उठाते। इस उपर्युक्त शीर्षक लेख में उद्धृत ६ श्लोक निम्नलिखित हैं:—

(१) कर्मभिः शुचिभिर्देवि, शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः।
शूद्रोऽपि द्विजवत्सेव्य, इति ब्रह्माब्रवीत्स्वयम्॥

(२) स्वभावः कर्म च शुभं, यत्र शूद्रेऽपि तिष्ठति॥
विशिष्टः स द्विजातिर्वै, विज्ञेय इति मे मतिः॥

(३) न योनिर्नापि संस्कारो, न श्रुतं न च सन्ततिः।
कारणानि द्विजत्वस्य, वृत्तमेव तु कारणम्॥

(४) सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके, वृत्तेन तु विधीयते।
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि, ब्राह्मणत्वं नियच्छति॥

(५) धर्मार्थं जीवितं यस्य, धर्मो हर्यर्थमेव च।
अहोरात्रौ च पुण्यार्थं, तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

(६) येन केनचिदाच्छन्नो, येन केन चिदाशिनः।
यत्र क्वचन शायी स्यात्, तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥
(महा भारत शान्ति पर्व)

(७) सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म ब्रह्म चेन्द्रिय निग्रहः।
सर्वभूते दया ब्रह्म, एतद् ब्राह्मणलक्षणम्॥
(पराशर स्मृतिः)

(८) योगस्तपो दमो दानं, सत्यं शौचं दया श्रुतम्।
विद्या विज्ञानमास्तिक्यम्, एतद् ब्राह्मणलक्षणम्॥
(वसिष्ठ स्मृतिः ६-२०)

(६) सर्वत्र दान्ताः श्रुतिपूर्णकर्णाः,
जितेन्द्रियाः प्राणिवधान्निवृत्ताः।
प्रतिग्रहे संकुचिताग्रहस्ता।
ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः॥

(वसिष्ठ स्मृतिः ६-२१)

इन श्लोकों का अर्थ निम्न लिखित है:—

(१) जिसने उत्तम कर्मों से आत्मा को शुद्ध कर रक्खा है और जिस ने अपनी इन्द्रियों को जीत रक्खा है वह शूद्र भी ब्राह्मण की तरह है यह स्वयं ब्रह्मा ने कहा है।

(२) जिस शूद्र (कुलोत्पन्न) में भी उत्तम और पवित्र कर्म हैं वह श्रेष्ठ ब्राह्मण है ऐसा मेरा मत है।

(३) ब्राह्मण कुल में जन्म, संस्कार, वेदाध्ययन और ब्राह्मण की सन्तान होना, ये ब्राह्मण होने के कारण नही, ब्राह्मणोचित सदाचार ही उसका कारण है।

(४) इस संसार में उत्तम आचरण से ही सब ब्राह्मण बनते हैं। जो पूर्ण सदाचारी शूद्र (कुलोत्पन्न) है वह भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है।

(५) विद्वान ब्राह्मण उस को जानते हैं जिस का जीवन धर्म के लिये है, धर्म परमेश्वर की आज्ञापालन के लिये है, दिनरात पुण्य कार्य के लिये हैं।

(६) विद्वान ब्राह्मण उस को जानते हैं जो जिस किसी खाने और पहरने की वस्तु से सन्तुष्ट रहता है, जो जहां कहीं सो जाता है। जो ऐसा सन्तोषी तथा निरीह तपस्वी है।

(७) सत्य ब्रह्म है, तप ब्रह्म है, इन्द्रियों को जीतना ब्रह्म है, सब प्राणियों में दयाभाव रखना ब्रह्म है। इस प्रकार के ब्रह्म से जो सम्पन्न होना है यही ब्राह्मण का लक्षण है।

(८) योग, तप, दम (मन को वश में रखना) दान, सत्य, पवित्रता, दया, वेद शास्त्र श्रवण, विद्या, विज्ञान, आस्तिकता यह ब्राह्मण का लक्षण है।

(६) जो ब्राह्मण मन को अपने अधीन रखने वाले हैं, जिन के कान वेद मन्त्रों की ध्वनि से परिपूर्ण हैं, जिन्हों ने इन्द्रियों को जीत रक्खा है, जो प्राणियों की हिंसा से दूर रहते हैं, जिनका हाथ लेने में बहुत संकुचित रहता है वही लोगों को संसार सागर से तराने में समर्थ होते हैं॥

पाठक देखेंगे कि इन श्लोकों में जो महाभारत, वसिष्ठ स्मृति आदि से लिये गये हैं वर्ण व्यवस्था का आधार जन्म पर न मान कर गुण कर्म स्वभाव पर माना गया है इसी लिये पूज्य महात्माजी ने शीर्षक Not by Birth but by Merit (जन्म से नहीं किन्तु गुण से) यह दिया और इन श्लोकों का अंग्रेजी में ऊपर उद्धृत आशय का अनुवाद प्रकाशित किया जिन में से विस्तार भय से केवल चतुर्थ और अष्टम श्लोक के उन के किये अंग्रेजी अनुवाद को उद्धृत करना पर्याप्त प्रतीत होता है:—

(4) "It is good conduct alone which makes one a Brahman. A person of good conduct, even though a Shoodra acquires Brahman-hood."

(8) A Brahman is one possessed of self-restraint, austerity, self-control, charity, truth, purity, compassion, knowledge of the Vadas, learned, wisdom, faith."

(Harijan 13th may 1933)

इन के अतिरिक्त २६ सित० १६३३ के हरिजन (अंग्रेजी) में वर्णाश्रम धर्म पर लेख लिखते हुए पूज्य महात्मा जी ने स्पष्ट लिखा कि:— One does not become a Brahman by calling one self a Brahman Not until a man reveals in his life the attributes of a Brahman can he deserve that name."

अर्थात् अपने को ब्राह्मण कहने से कोई ब्राह्मण नहीं बन जाता। जब तक कोई मनुष्य अपने जीवन में ब्राह्मण के गुणों को प्रकट नहीं करता तब तक वह ब्राह्मण कहलाने के योग्य नहीं हो सकता।

पाठक अनुभव करेंगे कि यह स्थिति महर्षि दयानन्द जी के वेद शास्त्रसम्मत सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल और म० गांधी जी के सन् १६३३ से पूर्व लिखे लेखों व भाषणों में प्रकाशित विचारों से भिन्न है। इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि पूज्य महात्मा गांधीजी के वर्णाश्रम धर्म विषयक विचार अन्त में गम्भीर अनुशीलन के पश्चात् महर्षि दयानन्द जी के मन्तव्य के अनुकूल हो गये थे।

इस के पश्चात् १४ सित० १६४६ को भङ्गी बस्ती नई देहली में जब पूज्यपाद महात्मा जी से मुझे भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो प्रारम्भ में बात चीत जाति भेद निवारक आर्य परिवार सङ्घ के विषय में हुई। मेरे इस आन्दोलन के विषय में आशीर्वाद मांगने पर महात्मा जी ने कहा कि मेरे पृथक् आशीर्वाद की क्या आवश्यकता है ? वह प्रत्येक शुभ आन्दोलन और कार्य के साथ है ही। मेरे पूछने पर कि 'आपकी इस से पूर्ण सहमति है नां ? पूज्य महात्मा जी ने कहा कि मेरी इससे पूर्ण सहमति है। मैं तो अब और भी आगे जाता हूं और कहता हूं कि जन्म से भंगियों तक के साथ उच्च जातिवालों को विवाह कर लेना चाहिये।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पूज्य महात्मा गांधी जी के परिपक्व विचार वर्णाश्रम धर्म और जातिभेद के विषय में वही हो गये थे जो महर्षि दयानन्द जी के थे। वे उन सुधारकंमन्यों में से नहीं थे जो जाति भेद को हानि कारक समझते हुए उस के साथ वर्णाश्रम धर्म को भी भर पेट गालियां देने लग जाते हैं और यह समझते हैं कि हिन्दू धर्म का यह अभिशाप है। इस विषय में महात्मा जी ने अपने विचार प्रकट करते हुए स्पष्ट कहा था कि:—

'I refuse, therefore, to believe that Varnashrama has been the curse of Hinduism as it is the fashion now a days in the South on the part of some Hindus to day. But that does not mean that you and I may tolerate the hideous travesty of Varnashrama that we see about us to-day. There is nothing in common between Varna-

shrama and caste. Caste, if you will, is undoubtedly a drag upon Hindu progress, and untouchabilty is an excrescence upon Varnashrama. It is a weedy growth fit only to be weeded out. In this conception of Varna, there is absolutely no idea of superiority or inferiority."

(The Problem of untouchability in India by Mahatma Gandhi P 65.66)

अर्थात् मैं यह मानने से इन्कार करता हूं कि वर्णाश्रम हिन्दू धर्म का अभिशाप है जैसा कि आज कल दक्षिण के कई हिन्दुओं में कहने का फैशन हो गया है। किन्तु इस का यह अर्थ नहीं है कि आज चारों ओर वर्णाश्रम के नाम से जो अनर्थ हो रहा है उसे तुम और मैं सहन करते रहें। वर्णाश्रम और जाति में कोई समानता नहीं है। जातिभेद निस्सन्देह हिन्दुओं की उन्नति में बाधक है और अस्पृश्यता वर्णाश्रम पर लादी गई एक बाह्य वस्तु है। यह एक अनावश्यक जंगली उपज है जो उखाड़ देने योग्य है। वर्ण की इस कल्पना में ऊंच नीच का भाव लेशमात्र भी नहीं है।

महात्मा गान्धी जी अस्पृश्यता को घोर पाप, हिन्दू धर्म पर अक्षम्य कलङ्क और भयङ्कर विष समझते थे यह सर्वविदित है अतः इस विषय में उनके लेखों से उद्धरण देने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने अस्पृश्यता निवारणार्थ जो अत्यन्त अभिवन्दनीय कार्य किया उस के विषय में भी विशेष रूप से कुछ लिखना मुझे अनावश्यक प्रतीत होता है किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से अनुशीलन करते हुए महात्मा गांधी के महर्षि दयानन्द विषयक इस श्रद्धाञ्जलि का उल्लेख करना महत्त्व पूर्ण है कि:—

'Among the many rich legacies that Swami Dayananda has left to us, his unequivocal pronouncement against the touchability is un doubtedly one."

(Dayananda Commemoration Volume P. I.)

अर्थात् स्वामी दयानन्द ने जो बहुत सी महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति उत्तराधिकार में हमारे लिये छोड़ी है उनकी अस्पृश्यता के विरुद्ध स्पष्ट घोषणा निस्सन्देह उन में से एक है।

इस से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि महात्मा गांधी जी को अस्पृश्यता निवारणार्थ स्फूर्ति महर्षि दयानन्द से प्राप्त हुई थी। महर्षि दयानन्द के इस विषयक कार्य का निर्देश करते हुए जगद्विख्यात विचारक स्वर्गीय रोमां रौलां ने ठीक ही लिखा था कि:—

'Dayananda would not tolerate the abominable injustice of the existence of un touchables and no body has been a more ardent champion of their outraged rights. They were admitted to the Arya Samaj on a basis of equality, for the Aryas are not a caste"

(Life of Rama krishna P. 162)

अर्थात् दयानन्द को अस्पृश्यता के घोर अन्याय की सत्ता असह्य प्रतीत होती थी और उन से बढ़ कर उनके अपहृत अधिकारों का प्रबल समर्थक कोई भी नहीं हुआ। अस्पृश्यवर्ग को आर्यसमाज में समानता के आधार पर प्रविष्ट किया गया क्योंकि आर्य समाज कोई जाति नहीं है।

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के प्रति समर्पित इस श्रद्धाञ्जलि के साथ मैं इस विषयक तुलनात्मक विचार को समाप्त करता हूं। शेष विषयों पर पुनः यथा समय विचार किया जाएगा।

ऋषि दयानन्द और महात्मा गांधी

(ले०--श्री डा० सूर्यदेव जी शर्मा सिद्धान्तशास्त्री, साहित्यालंकार,एम० ए (त्रय),एल० टी०,डी लिट,अजमेर)

(१)

है धन्य २ सौराष्ट्र भूमि जहँ दयानन्द, गांधी खेले।
टंकारा धन्य पोरबन्दर, बन गये तीर्थ यात्रा मेले॥
वे धन्य पिता माता उनके जिनकी कि सुशोभित की गोदी।
है धन्य राष्ट्र जिसकी गहरी परतंत्र कालिमा कुल धो दी॥

(२)

वे "सत्यं शिवं सुन्दरं".के, दोनों सच्चे अवतार बने।
उस पुण्य पुरातन संस्कृति के, वीणा के बजते तार बने॥
भारत नौका जर्जरित हेतु, वे पुष्ट प्रबल पतवार बने।
प्राचीन आर्य आदर्शों के अद्भुत सजीव आगार बने॥

(३)

दोनों जीवन भर सत्य तत्व की ढूंढ खोज में लगे रहे।
दोनों जीवन भर मधुप तुल्य प्रभु-प्रेम पाग में पग रहे॥
दोनों ने जीवन में अनेक, बाधायें संकट विकट सहे।
दोनों पथ से विचलित न हुये, चट्टान सुदृढ़ सम सतत रहे॥

(४)

दोनों ने राष्ट्र धर्म के हित निज,प्राणों का बलिदान किया।
हत्यारे हिन्दू हाथों ने हां ! दोनो का अवसान किया॥
है जब तक "सूर्य" चन्द्र जग में दोनों की कीर्ति अटल होगी।
ऋषिवाणी "सत्य मेव जयते" भूतल पर सत्य सफल होगी॥

आर्य समाज का स्थापना दिवस और चार आने।

आर्य समाज के लिये स्थापना दिवस वही मूल्य रखता है जो किसी स्त्री या पुरुष के लिये उसका जन्म दिन। यह उपमा भी कुछ विषम ही है क्योंकि मनुष्य का जन्म दिन तो केवल एक भौतिक घटना है। परन्तु किसी संस्था का स्थापना दिवस तो दीर्घ काल तक उसके उद्देश्यों का स्मरण दिलाता है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने स्थापना दिवस के उपलक्ष में आर्य नर नारियों से केवल एक छोटी सी मांग की है। वह यह कि प्रत्येक आर्य स्त्री या पुरुष, बालक या बालिका उस दिन सभा के लिये चार आने दान दे। यह दान वर्ष भर में एक बार है और सवा पैसे प्रति मास का औसत पड़ता है। यदि आर्य जनता के जोश का इस साधारण से चार आने मात्र के दान से परिगणन किया जाय तो अत्यन्त ही निराशा होगी। क्योंकि स्थापना दिवस को आज कई मास होगये। उस दिन से कई सप्ताह पूर्व से अब तक सभा के कार्यालय से निरन्तर स्मरण दिलाने तथा आग्रह के सूचक पत्र लिखने पर भी बहुत थोड़े समाजों ने रुपया भेजा और वह भी नाम मात्र। इसका कारण यह नहीं है कि आर्यों में जोश नहीं या समासदों की संख्या कम है या लोगों के पास पैसे नहीं। वर्ष भर में चार आने पैसे तो एक कुली भी दे सकता है। परन्तु इसका मुख्य कारण है कई समाजों के मन्त्री और प्रधानों की अरुचि। यदि वे कटिबद्ध होकर स्थापना दिवस के पूर्व या उसी दिन प्रेरणा करते तो लोग चार आने अवश्य देते। उन्होंने इसके महत्त्व को ही नहीं समझा। भारतवर्ष में ५० लाख आर्य रहते हैं। यदि इनमें से चार लाख भी चार चार आने दे देवें तो एक लाख रुपया हो जाय और एक लाख रु० से तो वैदिक धर्म प्रचार में बड़ी सहायता मिले। कई जटिल समस्याओं का समाधान धन से ही हो सकता है। परन्तु बहुत से मन्त्री तथा प्रधानों को तो पता भी नहीं होगा सार्वदेशिक सभा को चार आने देने हैं। कई समाज तो वसूल करके अपने ही कोष में डाल रखते हैं और सभामें भेजना आवश्यक नहीं समझते। मुझे तो भय है कि मेरा यह कथन आर्य भाई बहनों के कान तक पहुंचेगा या नहीं। क्योंकि साप्ताहिक अधिवेशनों में समाजों के अनेक मन्त्री गण सभाओं की घोषणाओं को नहीं सुनाया करते और हर आर्य के पास पत्र पहुंचता नहीं। जिस वृक्ष के पत्तों का उस वृक्ष के मूल से सम्बन्ध कम हो जाय या जिस वृत्त के केन्द्र का उसकी परिधि के बिन्दुओं से आकर्षण न रहे या जिस केन्द्रीय संस्था से उस संस्था की शाखाओं या सदस्यों का संपर्क न रहे उनके जीवन के लिये तो आशंकित होना ही पड़ेगा। जिन संस्थाओं में अपने केन्द्र के लिये श्रद्धा है उनके यहाँ दान बिना माँगे पहुंचा करता है। एक हिंदू बिना मांगे पैसा मन्दिर में चढ़ा आता है। इस एक एक पैसे से लाखों रुपये जमा हो जाते हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि वह व्यक्ति अपने आत्मा में अपने धर्म के प्रति एक विशेष उत्साह रखता है। यदि प्रत्येक नर नारी समझे कि मुझे स्थापना दिवस पर चार आने देने हैं तो वह उस सम्बन्ध को स्मरण रक्खेगा जो उस व्यक्ति का उस केन्द्र के साथ है। मैं समाजों के मन्त्री महोदयों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं। जिन समाजों ने यह धन भेजा है उनके लिये धन्यवाद है परन्तु इनकी संख्या इतनी कम है कि क्या कहा जाय। क्या हम आशा करें कि समाज गण इस आवश्यक बात की ओर ध्यान देंगे। मन्त्री

सार्वदेशिक सभा, देहली।

कहानी

अनाथा से सनाथा

लेखक—
श्री आशाराम सिंह जी, शिमला

कुरु क्षेत्र शरणार्थी कैम्प से एक फर्लाङ्ग पूर्व की ओर नीम के वृक्ष-तले एक बीस वर्षीया बालिका शोकातुर बैठी विचार-निमग्न है। उसकी गम्भीर मुखाकृति देखने से प्रकट होता है कि वह बहुत दुःखी है और किसी आपत्ति में फंसी हुई उस से छुटकारा पाने का प्रयत्न कर रही है। क्षण क्षण पर अपनी धोती के पल्ले से अश्रु कण पोंछती हुई दीर्घ श्वांस ले रही है। सहसा वह कह उठी, "त्रिलोकी नाथ! यह स्वप्न है या सत्य। दो मास पहले मैं क्या थी? आज क्या हूं और कहां हूँ? कहां लाहौर में पिता का गगन चुम्बी भवन और कहां शरणार्थी कैम्प? कहां मां का लाड़, पिता का दुलार, भाई-भावज का प्यार और सेवक-सेविकाओं का आदर सत्कार और कहां कुरुक्षेत्र का कैम्प, जहां कोई ऐसा नहीं जिसे अपना कह कर पुकारूँ।

रोती बालिका फिर कहने लगी, "आह! क्षण में क्या से क्या हो गया? जीवन के सम्पूर्ण सुख एक एक कर काफूर हो गये। भाई का दंगे में अन्त हुआ। भावज ने शोक में प्राण त्याग दिये। दंगाइयों द्वारा घर बम में फेंकनेसे माता पिता का स्वर्गवास होगया।" इतना कहते कहते बालिका शोक से विह्वल हो उठी और रोते रोते हिचकी बंध गई। थोड़ी देर पश्चात् उसने अपने को संभाला और आंसू पोंछती हुई कहने लगी;

"यदि मैं भी उन्हीं के साथ मर गई होती तो मेरे लिये अच्छा ही होता। जीवित रह कर ही क्या मैं सुखी हूँ? लक्षपति वैश्य परिवार में जन्म पाया,पढ़ लिख कर बी० ए० किया और आज यह दिन सामने आया। यह कर्मों का फल है या लीलामय भगवान् की लीला? इस से तो श्रेष्ठ है कि जीवनान्त करके स्वर्ग में माता-पिता के आश्रम में पहुंच जाऊँ।" कुछ सोच कर फिर बोली, "लेकिन क्या दुःखों से छुटकारा पाने के लिये, दुराचारियों की कुदृष्टि से बचने के लिये और लुटेरों से पिण्ड छुड़ाने के लिये आत्म-हत्या करूँ? यह तो घोर पाप होगा।" फिर कुछ साहस के साथ बोली, "आर्य्य कन्या और आत्मघात! छी:! छी:! कितना कुत्सित विचार! यह नहीं करूँगी। आपत्तियों के पहाड़ को साहस पूर्वक सिर पर उठाऊँगी पर आत्मघात करके कलंकित न हूँगी।" फिर चिन्ता में पड़ गई तब क्या करना होगा? कैसे इस स्वयं सेवक वस्त्रधारी नराधम की कुदृष्टि से बचूँगी? सभी शरणार्थी भी तो समान नहीं। इसमें भी तो बहुत से लुटेरे, अनाचारी और पाखण्डी हैं। इनके नारकीय जीवन से कैसे बचूँगी?

देखो न, मेरा बिस्तर, ट्रंक औरदो चार पुस्तकें जो मेरे पास शेष थीं वह भी एक एक कर सब चुरा लीं। आज मेरे पास कैम्प से मिले वस्त्रों को छोड़ और क्या रक्खा है जिसे अपना कहूँ

फिर इस जीवन से छुटकारा भी कैसे हो ?" कुछ सोच कर, "मैं बी० ए० हूँ। क्या किसी कन्या विद्यालय में अध्यापन का कार्य करके इस जीवन यात्रा को पूर्ण नहीं कर सकती ? कर सकती हूं और ऐसा ही करूँगी।" यह कहते हुये बालिका उठ खड़ी हुई और कैम्प की ओर चल दी।

दिसम्बर की अन्तिम तिथि थी, हावड़ा कालका मेल धूल उड़ता हुआ अपनी तीव्रगति से चला जा रहा था। भारतीय सरकार के उच्च पदाधिकारी पंडित त्रिभुवनपति शर्मा अपनी मोहिनी के साथ फर्स्टक्लास डिब्बे में बैठे स्ट्रेस मेंन पढ़ते जा रहे हैं। यकायक गाड़ी की चाल धीमी पड़ी और गाड़ी कुरुक्षेत्र स्टेशन पर आकर खड़ी हो गई। प्लेट फार्म यात्रियों से ठसाठस भरा था। शीघ्र ही उतरने और चढ़ने का शोर आरम्भ हो गया। शर्मा जी ने पत्र रख दिया। मोहनी ने खूंटी से थरमस उतारा और गर्म-गर्म चाय का एक गिलास शर्मा जी को देकर दूसरे गिलास में स्वयं चाय पीने लगी। यात्रियों के गाड़ी में चढ़जाने से जब शोर कुछ कम हुआ मोहनी ने खिड़की से बाहर सिर निकाला, क्या देखती है कि एक बालिका छोटा सा बिस्तरा हाथ में लिये डिब्बे पर जाती है पर कहीं कोई उसे चढ़ने नहीं देता। सभी डिब्बों से वह दुत्कार दी जाती है। बालिका आगे बढ़ी। ड्योढ़े डिब्बे में भी स्थान नहीं। आगे दूसरे दर्जे का डिब्बा है। सहम गई। बेचारी क्या करे, आगे बढ़ी। फर्स्टक्लास के सामने पहुँची। सोचा, इसमें स्थान है, पर आज मेरे भाग्य में इस में बैठना कहाँ ? टिकट तो तीसरे ही दर्जे का है।" कुछ सोचकर फिर आगे बढ़ी। मोहनी ने क्षण भर में यह सब दृश्य देख लिया। उसके दिल में दया आई। चाय का घूंट भरते हुये बालिका के पास आने पर उसे अन्दर आनेका संकेत किया। बालिका तीसरे दर्जे का टिकट होने के कारण पहले सहमी, पर मोहनी के आग्रह पर वह चढ़ गई। यह कार्य इतना शीघ्र हुआ कि शर्मा जी इसे देख भी न पाये थे। उनका ध्यान दूसरी ओर था। जब दृष्टि फेरी और एक बालिका को अन्दर देखा तो उन्होंने मोहिनी की ओर देखते हुये कुछ कड़े स्वर में कहा, "आप यह क्या अनर्थ कररही हैं ? यदि टी० टी० आइ० आगया तो डबल चार्ज कर लेगा।" मोहिनी ने मुस्कराते हुये कहा, "चिन्ता नहीं, जब बालिका को शरण दी है तो डबल चार्ज भी दे दिया जायगा।" शर्मा जी आगे कुछ न कह सके।

पं० त्रिभुवनपति शर्मा ने दूध वाले को पुकारा और खाली थरमस में गर्म दूध भरवा कर उसे पैसे दे अपने स्थान पर जा बैठे, इतने में गार्ड ने सीटी बजाई और गाड़ी चल पड़ी।

मोहनी ने बालिका को बैठ जाने का संकेत किया और वह कुछ संकोच के साथ बैठ गई। वह भी तो कभी उच्च वंशीय धनपति की लाड़ली कन्या थी। उसने भी तो कितनी ही बार इसी भाँति फर्स्ट क्लास डिब्बे में यात्रा की थी। पर आज अपनी वर्तमान परिस्थिति पर विचार कर उसके हृदय में कुछ संकोच हुआ।

बालिका की अनुपम सुन्दरता और लावण्यमयी मुखाकृति ने मोहिनी को मुग्ध कर लिया। उसने

बालिका को अपने ही पास बिठा लिया। मोहिनी के पूछने पर बालिका ने अपना नाम शान्ता बतलाया। मोहिनी ने उसका अधिक परिचय जानने की जिज्ञासा से उसके सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किये और शान्ता भी जितना वह दे सकी अपना और अपने वंश का परिचय देती गई। मोहिनी चकित रह गई जब उसे शान्ता के वंश परिचय के साथ-साथ यह ज्ञात हुआ कि वह बी० ए० डिग्री भी पाचुकी है। पर शोक! जब शान्ता ने १५ अगस्त के बाद की घटनाओं का उल्लेख किया तो मोहिनी की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। पंडित त्रिभुवनपति भी सुन कर ठंडी सांसें लेने लगे। शान्ता तो अपना साहस ही खो बैठी। वह फूट फूट कर रोने लगी। मोहिनी जितना ही उसे धैर्य बंधाती गई शान्ता उतनी ही अधिक अधीर होती गई और अन्त में संज्ञा शून्य होकर बर्थ पर गिर पड़ी। मोहिनी उठी। शर्माजी के पैर डगमगाने लगे। मोहिनी ने तत्काल शान्ता का सिर अपनी गोद में रख लिया शर्मा जी तुरन्त शान्ता का हाथ उठाकर उसकी नाड़ी देखने लगे। उन्हें ज्ञात हुआ कि नाड़ी धीमी तो पड़ गई है पर चल रही है नियमित चाल से मोहनी ने शान्ता को कपड़ों से ढक दिया और थरमसफ्लास्क कर एक चमच दूध शान्ता के होठों से लगाकर उसे पिलाने का प्रयत्न किया किन्तु वह असफल रही। नारी का हृदय था, मोहिनी बार बार शान्ता के सुन्दर किन्तु मुर्झाये हुवे मुख को देखती, प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरती और उसकी मंगल कामना के लिये भगवान् से प्रार्थना करती।

जब शान्ता की मूर्छा कुछ कम हुई तो मोहिनी ने फिर उसे दूध पिलाने का प्रयत्न किया। शान्ता ने आंखें खोलीं और उसे दूध न पिलाने का संकेत करती हुई हाथ जोड़ कर क्षमा माँगने लगी। अब शान्ता धीमे-धीमे होश में आई। उसकी सुधरी हुई दशा देखकर शर्मा जी ने भगवान का धन्यवाद किया और शान्ता से दूध पीने के के लिये आग्रह किया। शान्ता ने धीमे स्वर में कहा, "पिता जी, मैं आप से प्रार्थना करती हूं कि मुझे आप मर जाने दें। मुझे स्वस्थ करने का प्रयत्न न करें। मुझ दुखिया का इस संसार में अब कौन है जिसके लिये जीने की चेष्टा करूँ।" शर्मा जी को कुछ भी कहने का अवकाश न देती हुई मोहिनी ने शान्ता के मुख को चूमते हुए कहा, "शान्ता जब हमारी शरण में आगई तब तू संसार से इस प्रकार नहीं जा सकती। तुझे दूध पीना ही होगा।" मोहिनी के आग्रह पर शान्ता ने कुछ दूध पिया और कहने लगी, "माता जी, आज आपने मुझे जीवन दान दिया है। आप ही दोनों मेरे धर्म के माता पिता हैं।" मोहिनी ने मुस्कराते हुऐ शान्ता को बात को स्वीकार किया और उसे उठकर अपनी गोद में बिठा लिया। शान्ता का स्वास्थ्य कालका पहुंचते पहुंचते ठीक हो गया। कालका से मोटर द्वारा शर्मा जी शिमला पहुंच गये

* * *

मोहिनी शान्ता को पाकर बड़ी प्रसन्न है। वह उसकी सुन्दरता पर ही मुग्ध नहीं है, शान्ता के गुणों की भी वह भूरि भूरि सराहना करती रहती है। उसकी दृष्टि में वह एक स्वर्गीय देवी है जो शापवश इस भूमि पर अवतीर्ण हुई। जिस दिन

शान्ता ने मोहिनी के घर में प्रवेश किया है उसका घर स्वर्ग से कम नहीं है। मधुरभाषिणी शान्ता ने घर के सब सेवक सेविकाओं को अपने वशीभूत कर रक्खा है। शर्मा जी भी शान्ता की प्रशंसा करने में अघाते नहीं। उसे पाकर वह भी अपने को धन्य समझते हैं। कभी कभी पण्डित त्रिभुवनपति शर्मा और मोहिनी में शान्ता के सम्बन्ध में कुछ कानों कान बातें भी होती रहती हैं, पर न तो शान्ता ही इस बारे में जानती है और न घर का कोई अन्य सेवक।

एक दिन शान्ता दोपहर के समय बैठक में गई तो क्या देखती है कि कुछ पुस्तकें मेज पर तितर-बितर पड़ी हैं। वह उन्हें ठीक से सजाने लगी। पुस्तकों के नीचे उसे एक चित्र दिखाई दिया। शान्ता ने उसे उठाया ध्यान से देखा और फिर मेज पर रख दिया। क्षण भर बाद शान्ता ने उसे फिर उठा लिया बड़े ध्यान से उसे देखा और फिर रख दिया। मोहिनी ने मेज पर पड़ी हुई पुस्तकों को क्रम पूर्वक रखने के लिये ही शान्ता को बैठक में भेजा था। पुस्तकों को संभालती हुई शान्ता के चित्त में ऐसा आया कि वह उस चित्र को एक बार फिर देखे। उसने उसे फिर उठाया, देखा और फिर रखने का प्रयत्न करने लगी किन्तु वह उसे रख न सकी। जभी रखने का विचार करती उसके हृदय में भाव उठता कि वह उसे देखती ही रहे। किन्तु उसे मोहिनी का भी भय था। मन को मार कर उसने चित्र रख दिया और पुस्तकें सजाकर बैठक से बाहर चली गई। न जाने आज मोहिनी ने भी शान्ता को पुस्तकें ठीक करते और चित्र को देखते छिपकर क्यों देखा? उसने शान्ता को देख और देखकर बिना कुछ कहे चुपचाप चली गई किन्तु शान्ता उसे न देख सकी।

सन्ध्या समय पंडित त्रिभुवन पति शर्मा जब घर आये तो मोहिनी ने नजाने उनकेकान में क्या मन्त्र फूंक दिया कि शर्मा जी तुरन्त हँस कर कहने लगे कि अब सब काम ठीक हो जावेगा। दूसरे दिन प्रातः ही उन्होंने अपने एक मात्र पुत्र दिग्विजय कुमार शर्मा को जो दिल्ली में आ० ए० ऐस० में शिक्षा पा रहे थे, तार द्वारा सूचित किया कि वह आगामी शनिवार तक शिमला अवश्य पहुंच जावे। तार पाकर दिग्विजयकुमार ने आठ दिन की छुट्टी ली और शिमला के लिये प्रस्थान कर दिया।

शनिवार का दिन था। पं० त्रिभुवन पति शर्मा आज आफिस नहीं गये थे। दोपहर के समय उनके पुत्र दिग्विजय कुमार घर पहुंचे। पुत्र से मिल कर उन्हें प्रसन्नता हुई। घर के सभी लोग—क्या मोहिनी, क्या सेवक, दिग्विजयकुमार के दर्शनों के लिये आतुर हो उठे। सबने देखा और भरपूर आशीर्वाद दिया। आज पं० त्रिभुवन पति शर्मा ने पुत्र के साथ बैठक में ही भोजन करने का निश्चय किया। भोजन वहीं लाया गया और पिता—पुत्र भोजन करने बैठे। "साग में नमक कम है", सेवकों के होते हुए भी शर्मा जी ने शान्ता को ही नमक लाने का संकेत किया। शान्ता नमक लाकर पहुंची। नव आगंतुका शान्ता को देखकर दिग्विजयकुमार चकित हुये। कई बार पिता से दृष्टि बचाकर उसकी ओर देखा शान्ता नमक देकर चली गई। "पानी का गिलास

साफ नहीं है, दूसरे में पानी लाओ," शान्ता को पंडित जी ने फिर आवाज दी। न जाने अबके बैठक में जाने में शान्ता को क्यों लज्जा मालूम हुई। किंतु पंडित जी की आज्ञा, शान्ता तुरन्त दूसरे गिलास में पानी लाई। दिग्विजय ने शान्ता को फिर देखा। देखा ही नहीं, मन ही मन उसकी कई प्रकार से आलोचना की।

कहा जाता है कि मनुष्य की मुखाकृति देख कर उसके मन के विचार जाने जा सकते हैं। आज दिग्विजयकुमार के मन के विचारों को जानकर पंडित त्रिभुवन पति शर्मा हर्षित हो उठे। तुरन्त मोहिनी से परामर्श कर अपने इष्ट मित्रों को सूचित कर दिया कि कल चिरंजीव दिग्विजय-कुमार का विवाह है। इस तात्कालिक सूचना से उधर मित्र वर्ग आश्चर्य करता रहा और इधर उसी समय से विवाह की तैयारी प्रारम्भ हो गई।

दूसरे दिन ठीक समय पर पुरोहित जी ने विवाह कार्य आरम्भ कर दिया। देवियां मंगलाचार गाने लगीं। बच्चे हर्ष में इधर उधर उछलने कूदने लगे। इष्ट मित्रों से घर ठसा-ठस भर गया। इस प्रकार समारोह पूर्वक दिग्विजय कुमार और शान्ता का पाणिग्रहण संस्कार समाप्त हुआ। चारों ओर से बधाइयों का तांता लग गया। अनाथ कन्या के उद्धार का सिहरा बाँध कर किसी ने उन्हें बधाई दी। किसी ने शरणार्थी कन्या को अपनाने का आदर्श हिन्दू समाज के सामने रख कर उनकी प्रशंसा की। किसी ने अन्तर्जातीय विवाह के इस सुन्दर उदाहरण के लिये उनकी सराहना की।

यह कहना तो कठिन है कि दिग्विजय कुमार के साथ विवाह होने के पश्चात् शान्ता अपने पितृ-वंश के विनाश के दुःख को भुला सकेगी या नहीं किन्तु यह कहा जा सकता है कि आज वह अनाथा से "सनाथ" अवश्य हो गई है।

—※※※—

राष्ट्रभाषा की हत्या

[ले० श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति प्रधान सार्वदेशिक सभा]

जब तक हमारा देश स्वाधीन नहीं हुआ था, तब तक राष्ट्रभाषा सम्बन्धी प्रश्न का रूप यह था कि राष्ट्रभाषा कौन सी हो ? स्वाधीनता प्राप्त कर लेने के पश्चात् जब यह निश्चय होगया कि देश में लोकतंत्र शासन होगा तब प्रश्न का रूप बदल गया। किसी भी लोकतंत्र राष्ट्र की भाषा वही हो सकती है जिसे राष्ट्र के अधिकतम व्यक्ति समझ और व्यवहार में ला सकें। इस कसौटी पर कस कर देखें तो केवल एक ही भाषा है जो राष्ट्र भाषा बनने का अधिकार रखती है और वह देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी है। इसी आधार पर देश के अनेक प्रांतों ने अपने यहाँ हिन्दी का राज भाषा बनाने का निश्चय घोषित कर दिया है। यह निश्चय अमल में आ रहा है। विधान-परिषद् में उपस्थित होने के लिये राष्ट्र के भावी विधान का जो मसविदा तैयार हुआ है, उसमें भी हिंदी को ही राष्ट्र भाषा का पद दिया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राष्ट्र के स्वाधीन होने के साथ ही राष्ट्रभाषा ने जन्म ले लिया है। अब हिंदी राष्ट्रभाषा पद की उम्मीदवार नहीं रही, वह तो सिंहासनारूढ राष्ट्रभाषा बन गई है।

सामान्यरूप से यह बात संतोष जनक होती, परन्तु भारत को जो स्वाधीनता प्राप्त हुई है, वह अधूरी है। इस कारण संतोष भी अधूरा ही है। देश अभी पूर्णरूप से स्वतन्त्र नहीं हुआ। अभी वह डोमीनियम (उपनिवेश) ही है, जिसका अभिप्राय यह है कि वह ब्रिटिश साम्राज्य का एक अंग है। श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य प्रजा के चुने हुये गवर्नर-जनरल नहीं हैं, वह तो इंगलैंड के बादशाह के नियत किये हुए हैं। इस प्रकार हम पर अभी अंग्रेजों और अंग्रेजी का प्रभुत्व पहले की भांति ही विद्यमान है।

एक और प्रकार की दासता से भी हमारा पिंड अभी नहीं छूटा। कई सदियों तक भारत के कई भागों पर मुसलमानों का राजनैतिक प्रभुत्व रहा, स्वभावतः उसका परिणाम यह हुआ कि हमारी संस्कृति पर, हमारी भाषा पर और हमारे मस्तिष्कों पर मुसलमानों का और उनकी भाषा का गहरा प्रभाव पड़ गया। वह मानसिक दासता राजनैतिक दासता से भी अधिक ढीठ सिद्ध हो रही है। राजनैतिक दृष्टि से हम थोड़े बहुत स्वतन्त्र हो भी गये परन्तु सदियों की मानसिक दासता हमारे सिरों पर भूत की तरह सवार है। उसका दृष्टांत आज राष्ट्रभाषा सम्बन्धी प्रश्न के निर्णय में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होकर भी हम स्वतन्त्र रूप से कोई निर्णय नहीं कर सकते। एक ओर से अंग्रेजी और दूसरी ओर से फारसी लिपि और उर्दू हमारे मस्तिष्क पर अधिकार किये बैठी हैं। हम सोच ही नहीं सकते कि हमारी अपनी लोक-भाषा भी राष्ट्रभाषा हो सकती है। हम सोचते हैं कि

वह कैसे सम्भव है। केवल भारत की भाषा तो वह हो सकेगी जिसको अंग्रेज या मुसलमान प्रमाण पत्र दे दें। हमारी इस मनोवृत्ति को यदि आप दासता नहीं कहना चाहते तो 'दासता की प्रतिध्वनि' इस नाम से निर्दिष्ट कर दीजिये, परन्तु है तो दासता ही।

यह दासता हमारी राष्ट्रभाषा की हत्या करने का उद्योग कर रही है। यह विचार मेरे मन में उस समय आया जब मैंने दिल्ली म्यूनिसिपैलिटी के अभिनन्दन के उत्तर में वर्तमान गवर्नर-जनरल श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य का भाषण सुना। भाषण का प्रारम्भ इस प्रकार था 'प्रेसीडेण्ट साहब और हजरात।" इस सम्बोधन से ही आप सारे भाषण की भाषा का अनुमान लगा लीजिये। न वह हिंदी थी न उर्दू और न हिंदी और उर्दू का उचित मिश्रण ही था। एक ऐसे व्यक्ति ने जो हिंदी जानता था, हिंदी की हत्या करके उर्दू के शब्दों का अनगढ़ प्रयोग करने का प्रयत्न किया था। राजा जी मद्रासी हैं, संस्कृत निष्ठ हिंदी इनके लिये तो सुगम थी ही, वह श्रोताओं के लिये भी सरल होती। म्यूनिस्पैलिटी के प्रधान द्वारा पढ़ा गया अभिनन्दन-पत्र सुगम और सुबोध हिंदी का सुन्दर नमूना था। मैं उनके लिये म्यूनिस्पैलटी के अधिकारियों को बधाई देता हूं। उसे सुनकर मुझे जितना हर्ष हुआ, गवर्नर-जनरल साहब का भाषण सुनकर उतना ही दुःख हुआ। मोटे मोटे उर्दू शब्द जो लोक भाषा के सरल शब्दों के बीच में लाकर ऐसे बिठा दिया गया था, जैसे फूलों के हार में केवल इसलिये कांटे लगा दिये जायें कि कहीं कांटों के बाग का माली नाराज न हो जाये। प्रतीत होता है कि उस भाषण के तयार करने में राजा जी ने किसी मौलाना की मदद अवश्य ली होगी।

यदि हिंदी-भाषा पर यह बलात्कार किसी व्यक्ति द्वारा निजी हैसियत से किया गया होता तो अधिक दुःख की बात न होती; भारत के प्रथम भारतीय गवर्नर-जनरल द्वारा राजधानी के केन्द्र में लोक-भाषा में दिये गये अभिनन्दन-पत्र के उत्तर में विकृत खिचड़ी भाषा का प्रयोग दु:खदायी भी था और चिंतनीय भी। मुझे सुनकर सन्देह होता था कि कहीं यह स्वतन्त्र भारत सरकार की भाषा सम्बन्धी नीति का चिन्ह तो नहीं है। महात्मा गांधी कुछ वर्षों से हिंदी की जगह हिंदुस्तानी के प्रयोग का यत्न करने लगे थे। पं० जवाहरलाल भी प्रायः ऐसी भाषा में बोलते हैं जिसे हिंदुस्तानी कहा जा सकता है। राजा जी ने अपनी भाषा से उनको भी मात दे दी। संस्कृत और हिंदी के शब्दों का वे स्वाभाविक रीति से शुद्धतापूर्वक उच्चारण कर सकते थे उन्हें छोड़कर उन्होंने यत्न पूर्वक कठिन उर्दू शब्दों का प्रयोग करना उचित समझा। राष्ट्रभाषा के भविष्य के लिये यह चिंता उत्पन्न करने वाली घटना है। उससे प्रतीत होता है कि हमने जो स्वाधीनता प्राप्त की है, उसमें अभी बहुत खोखलापन है। पूर्णरूप में स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये अभी बहुत प्रयत्न करना बाकी है। एक इटालियन विचार का यह सिद्धांत सदा याद रखना चाहिए कि "संस्कृतिक और मानसिक स्वाधीनता से शून्य राजनैतिक स्वाधीनता एक भुलावा मात्र है।"

———

मौरीशस के साथ भारत का सम्बन्ध

(ले० श्री शिवचन्द्र जी, भूतपूर्व उपमन्त्री, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली)

एक सौ वर्ष से अधिक व्यतीत हो गये जब कि भारत सन्तान सहस्रों की संख्या में कुली प्रथा के अनुसार मजदूरों के रूप में प्यारी जन्मभूमि के बाहर धोखे और लालच में फंसाकर अंग्रेजों द्वारा कई उपनिवेशों में ले जाई गई। मार्ग में तथा उन स्थानों में पहुंच कर इन भोले भाले भारतीयों को वर्षों तक क्या २ अपमान, अपार कष्ट तथा यातनायें सहनी पड़ीं यह एक लम्बी करुणाजनक कहानी है। जिस धैर्य तथा साहस के साथ भारतीय इन उपनिवेशों में बसे रहे तथा इन्होंने वहां की भूमि को अपने परिश्रम से उर्वरा बनाया अत्यन्त सराहनीय है।

अब जब कि भारतवर्ष स्वतन्त्र हो गया है तो हमारा कर्तव्य है कि हम अपने उन देशवासियों के सम्बन्ध में जो हम से दूर समुद्र पार रहते हैं, अधिक जानकारी प्राप्त करें और उनके साथ अधिक सम्पर्क तथा घनिष्ठता बढ़ायें। इस लेख में मौरीशस उपनिवेश के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाला जायगा।

मौरीशस द्वीप भारत महासागर में भारत से दक्षिण पश्चिम तथा अफ्रीका और मेडेगास्कर के पूर्व में स्थित है। उसकी लम्बाई ३० मील और चौड़ाई २४ मील है। इसके उत्तरीय पश्चिमीय तट पर पोर्ट लुईस नामक बन्दरगाह इसकी राजधानी है, इस द्वीप के पास पास छः और छोटे छोटे द्वीप हैं। यह सब द्वीप समूह अंग्रेजों के अधीन है। मौरीशस की जनगणना चार लाख से अधिक है जिसमें से तीन लाख से अधिक भारतीय हैं। राजधानी पोर्ट लुईस की जनगणना ६६ ४६६ है। मौरीशस में अधिकांश में बिहारी, संयुक्तप्रांतीय, गुजराती तथा मद्रासी भारतीय बसते हैं। यहां पर फ्रेंच भाषा का अधिक प्रचार है, चूंकि मौरीशस अंग्रेजों से पूर्व फ्रांस के अधीन था। साथ साथ अंग्रेजी का भी प्रचार है। घरों में प्रायः भारतीय लोग हिंदी ही बोलते हैं। चहुँ ओर समुद्र होने के कारण न अधिक सर्दी पड़ती है न अधिक गर्मी। जलवायु सुहावना रहता है। फल सस्ते और बहुतायत से होते हैं।

संसार में मौरीशस ही वह उपनिवेश है जहाँ सन् १८३८ में सर्व प्रथम भारतीय कुली के रूप में गये। सात सहस्र भारतीय मजदूर मौरीशस भेजे गये। इसके पश्चात् समय समय पर यह लोग वहां जाते रहे और इनकी संख्या बढ़ती रही। बहुत से लोग सपरिवार गये थे। यह लोग अंग्रेजों के गन्ने (ईख) के खेतों में मजदूरी का काम करते थे। इनमें से बहुत से लोग वहीं बस गये और अपने घर बार बना लिये। इन्होंने अपने अनथक परिश्रम से तथा महान् कष्ट उठा कर वहाँ धन कमाया। इन द्वीपों में तथा भारतवर्ष में घोर विरोध होने के कारण जब कुली प्रथा बन्द हो गई तब इन भारतीयों ने स्वयं अपनी

भूमियां खरीदीं और ईख की खेती करने लगे। अपने मकानात बनाये और व्यापार करने लगे। प्रभु की कृपा तथा अपने पुरुषार्थ से अब इनमें डाक्टर बैरिस्टर, व्यापारी, जमींदार, धनाढ्य तथा शिक्षित वर्ग हैं।

अन्य उपनिवेशों की भाँति मौरीशस में भी भारतीय संस्कृति का ह्रास बड़ी तेजी से हो रहा था। लोग ईसाइयत के प्रवाह में बहे चले जा रहे थे। इनकी कोई भी खबर लेने वाला न था। श्री डा० मणिलाल जी बैरिस्टर पूज्य महात्मा गांधी के निकट संबंधी थे, इन्होंने आर्यसमाज का कुछ साहित्य पढ़ रक्खा था और उन्होंने भारतवर्ष में आर्य समाज द्वारा धार्मिक तथा सामाजिक जागृति का ज्ञान प्राप्त कर रक्खा था। उन्होंने विचार किया कि आर्यसमाज ही एक ऐसी संस्था है जिसके द्वारा मौरीशस में भारतीय संस्कृति की रक्षा हो सकती है। वह आर्यसमाज के कार्यक्रम, संगठन शक्ति तथा प्रचार को मरणासन्न आर्य हिन्दू जाति के लिये संजीवनी बूटी समझ चुके थे। अतः उन्होंने १७ अप्रेल १९११ को पोर्ट लुईस में आर्य समाज की स्थापना करदी परन्तु उनके हृदय में योग्य उपदेशकों का अभाव खटक रहा था। इनको कार्यवश जाना पड़ा. रंगून के प्रसिद्ध भारतीय मेहता जी की कन्या के साथ इनका विवाह हुआ था। उस समय वह वहां डा० चिरंजीव भारद्वाज जी से, जो उस समय रंगून ही में थे, मिले और उन्हें भी मौरीशस चल कर आर्य धर्म का प्रचार करने की प्रेरणा की। डा० भारद्वाज जी ने इसे स्वीकार कर लिया। बैरिस्टर मणिलाल जी ने मौरीशस लौट कर वहां के सज्जनों से डा० भारद्वाज जी के लिये निमन्त्रण भिजवा दिया। निमन्त्रण प्राप्त कर डा० चिरंजीव भारद्वाज सपरिवार मौरीशस पहुँच गये और आर्य धर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सुमंगली देवी जी ने भी स्त्रियों में खूब प्रचार किया। स्वार्थी लोगों ने डा० भारद्वाज जी का काफी विरोध किया परन्तु डाक्टर जी ने विरोध की तनिक भी परवाह न करते हुए बड़े कष्ट उठा कर और त्यागमय जीवन व्यतीत करते हुए आर्य धर्म का प्रचार किया। विदेशों में दाम्पत्य जीवन बिताने वाले प्रचारकों के लिये उपर्युक्त युगल का जीवन अनुकरणीय है। समस्त उपनिवेशों की भांति मौरीशस में भी भारतीय संस्कृति की रक्षा करने का श्रेय आर्यसमाज को ही है। मौरीशस की जनता बैरिस्टर मणिलाल जी तथा डा० चिरंजीव भारद्वाज जी को अब भी बड़ी कृतज्ञता तथा आदर के साथ स्मरण करती है।

स्वतन्त्र भारत के लिये मौरीशस की भौगोलिक तथा राजनैतिक स्थिति बड़ी महत्त्वपूर्ण है। स्वतन्त्र भारत को इस स्थिति का वास्तविक ज्ञान कुछ वर्षों के बाद होगा। इस समय इस विषय में विस्तार में जाना उचित न होगा। सम्प्रति इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि मौरीशस भारत मध्यसागर में स्थित है और ता० १५ सितम्बर १९४७ को जो नया विधान वहां पर घोषित हुआ है उसके अनुसार, वहां की धारा सभा में ३९ सदस्य होंगे, जिनमें से १९ निर्वाचित तथा शेष २० मनोनीत। वोट देने का अधिकार किसी भी २१ वर्ष से अधिक आयु वाले

स्त्री पुरुष को है जो वहाँ की कोई भी प्रचलित भाषायें लिखना पढना जानता हो। यद्यपि इस विधान के अनुसार वहां के शासन विधान में भारतीयों का बाहुल्य नहीं होगा परन्तु एक मुख्य हाथ अवश्य हो सकता है और भविष्य में अधिक अधिकार प्राप्त करने के लिये काफी अनुकूल हो सकता है, यदि वहाँ के भारतीयों को उचित समय पर उचित नेतृत्व तथा परामर्श प्राप्त होता रहे और हमारी भारतीय राष्ट्रीय सरकार की ओर से भेजा हुआ प्रतिनिधि (कमिश्नर) योग्य' विद्वान, अनुभवी, कर्मनिष्ट, गम्भीर तथा राजनीतिज्ञ हो। मौरीशस के भारतीयों का बड़ा सौभाग्य है कि माननीय पं० जवाहर लाल नेहरू ने ऐसे ही गुण सम्पन्न व्यक्ति की नियुक्ति की है पाठकों ने समाचार पत्रों में पढा होगा कि यह सज्जन श्री धर्मयश देव हैं।

श्रीधर्मयशदेव की आयु ३७ वर्ष है। वे बाल्य-काल से ही भारतीय राष्ट्रीयता तथा भारतीय संस्कृति के रंग में रंगे हुए हैं। सन् १६२८ में ये सरदार भगतसिंह के साथ गिरफ्तार हुए थे। उन्होंने सन् १६३२-३६ में विलायत रह कर पत्रकार कला का अध्ययन किया. सन् १६३५-३६ में रहते हुए "ग्रेट ब्रिटेन में हमारे देशवासी" शीर्षक से इन्होंने एक दर्जन लेख लिखे जो भारत के प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रों में प्रकाशित हुए। उसी समय से इन्होंने प्रवासी भारतीयों की समस्या में अभिरुचि दिखाई। बृटिश पार्लीमेंट के भारतीय सदस्य श्री सकलतवाला के साथ एक वर्ष तक विलायत में रहते हुए उन्होंने लंदन, लीडे, लिवरपूल आदि स्थानों में भारतीयों को संगठित करने के उद्देश्य से सामाजिक क्लबों की स्थापना की। सन् १६३७ में लखनऊ के पायनीयर अंग्रेजी दैनिक में सहकारी सम्पादक के पद पर कार्य किया। भारत के कई पत्रों की ओर से सन् १६ ४ में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका वैस्ट इन्डीज, फ्रांस, बेलजियम, इटली तथा इंगलैण्ड की यात्रा की। यहाँ से लौटने के पश्चात् अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के वैदेशिक विभाग के मन्त्री पद पर एक वर्ष तक कार्य किया और "देश के बाहर हमारे देशवासी (our Countrymen abroad) नामक पुस्तक लिखी जिसकी भूमिका श्रीमान् पं० जवाहरलाल नेहरू ने लिखी है। भारतीय प्रवासियों की स्थिति पर दो दर्जन लेख लिखे जो भारत के सब प्रमुख कांग्रेसी पत्रों में प्रकाशित हुए। सन् १६४२ के आन्दोलन में आपने जेल यात्रा की। सन् १६४५, ४६ में जब कांग्रेसी नेता जेल से मुक्त हुए तो यह श्रीमान् सरदार पटेल के निकट सम्पर्क में रहे और कांग्रेस निर्वाचन बोड के निर्वाचन आन्दोलन के अधिष्ठाता रहे। भारतीय विधान परिषद् की जब १६४७ के आरम्भ में स्थापना हुई तो उसी समय से यह डाइरेक्टर आफ पब्लिसिटी नियुक्त हुए। आप अपने कर्तव्य को भली प्रकार समझते हैं और उसका पूर्णतया पालन करते हैं। हमें पूर्ण आशा है कि श्री धर्मयशदेव अपने उत्तरदायित्वपूर्ण कर्तव्य भलीभाँति पालन करेंगे।

इसके साथ साथ हमें अपने मौरीशस के प्रवासी भारतीय भाइयों की सेवा में भी कुछ निवेदन करना है। उन्हें चाहिये कि वे श्री धर्म

यशदेव को अपना पूर्ण सहयोग दें। यह प्रसन्नता की बात है कि मौरीशस को श्री प्रोफेसर वासुदेव विष्णुदयाल एम० ए० जैसे लोक प्रिय, त्यागी और तपस्वी नेता और उन्हें श्री सुखदेव बालगोविन्द और श्री सुखदेव विष्णुदयाल जैसे सहकारी प्राप्त हैं। सब स्थानों की भांति मौरीशस में भी कुछ एक ऐसे भारतीय विद्यमान हैं जो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये वहां की राष्ट्रीय जागृति के विरुद्ध वहाँ की सरकार की चापलूसी करते रहते हैं और अपने भारतीय भाइयों को हानि पहुंचाने से नहीं हिचकते। वे जासूसों का भी कार्य करते हैं. ऐसे लोगों में वहां के कई उच्चकोटि के शिक्षित व्यक्ति भी हैं। ऐसे लोगों से वहाँ के भारतीयों को सावधान रहना चाहिये। मौरीशस की राजनीतिक परिस्थिति में भी अब परिवर्तन होने जा रहा है। अतः ऐसे लोगों को भी अपनी मनोवृत्ति, रीति नीति तथा कार्यप्रणाली में शीघ्र परिवर्तन ले आना चाहिये।

मौरीशस में नये विधान के अनुसार शीघ्र ही निर्वाचन होने वाला है। वहां की जनता को अपना हित अनहित सोचकर ही उस ओर अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये। किसी भी देश की उन्नति के लिये सब से अधिक आवश्यकता इस बात की है कि स्वार्थ तथा व्यक्तिगत हितों को त्याग कर वहाँ के निवासी संगठन सूत्र में बंध जावें! उनकी विचार धारा एक हो! उनकी आवाज एक हो! उनकी कार्य करने की शैली एक हो! जो जातियाँ तथा राष्ट्र इस प्रकार कार्य करते हैं, उनका वर्तमान तथा भविष्य उज्वल रहता है।

एक बात और! उक्त प्रकार की एकता के लिये सांस्कृतिक एकता का लाना अत्यन्तावश्यक है। अतः भारतीय संस्कृति जो आर्य संस्कृति है उसे भी पुनर्जीवित कर व्यवहार में लाना चाहिए! तब ही सच्ची भारतीयता का निर्माण हो सकेगा। आशा है मौरीशस के भारतीय भाई इन बातों की ओर अवश्य ध्यान देंगे।

आज का भारत और ऋषि समाज

(ले० श्री प० ब्रह्मप्रकाश जी विद्यावाचस्पति)

यह सत्य सर्वमान्य और निर्विवाद है कि घने अन्धकार से आच्छादित भारत की पराधीनता का कटु अनुभव ब्रह्मर्षि दयानन्द सरस्वती को ही सर्व प्रथम हुआ और उस तपस्वी धन्वन्तरि ने सूखते हुए वृक्ष की ओर गहरी दृष्टि डाली, सोचा कि—"नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम्" अतः अपने अन्वेषक यन्त्रों से रोग का निश्चय किया और लगे सत्य कुठार से उसकी जड़ों से गन्द निकालने। अपने परिवार को भी अन्त समय में यही कह चले कि जब तक इसकी जड़ों से विषैला कूड़ा करकट न निकल जावे तुम चुप न बैठना। अतः अपने आचार्य के आदेश का शिष्यों ने यथोचित पालन किया और निकाला जड़ों से खोखला कर देने वाले बाल विवाह, वृद्धविवाह, बहु विवाह, अनमेल विवाह के कीड़ों को। हटाया अविद्या डाकिनी को, धकेला जन्म गत जात पात को, मिटाया छुआछूत के भूत को, मिलाया बिछुड़े हुए भाइयों को, पैर की जूती से देवी और लक्ष्मी बनाया मातृ शक्ति को, चुड़ैल और डाकिनी से पूजनीया बनाया दुःखित विधवा को। अनुभव कराया दुःख रोती और बिलखती गऊओं का, इत्यादि अनेक घातक कीटाणुओं का महानाश करते हुए बताया और सिखाया एकेश्वर पूजा का। साथ साथ गुरु के इस मन्त्र ने बताया कि प्रजा को पुत्रवत् पालन करने वाला विदेशी राजा धर्मात्मा भी हो अपने देश के लिये अच्छा नहीं। ऋषि के समाज के ऐसा करते करते राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के रूप में एक पुष्प विकसित हुआ जिसकी गन्ध थी केवल एक मात्र स्वाधीनता, अत दौड़े देशवासी उसकी ओर, और लुभायमान हुए उसकी मीठी गन्ध से। चीज अच्छी थी बुरी नहीं, नियत भी अच्छी थी, परन्तु उस गहरी दूरदर्शिता से भिन्न थी जहाँ पहुंचे थे ब्रह्मर्षि। अतः किसी न किसी तरह अनेक बलिदान देकर वह सुन्दर चीज मिल तो गई परन्तु उस स्वतन्त्रता के फूल खिलाने वालों को भी अब यह अनुभव हुआ कि यह सच्ची स्वतन्त्रता नहीं है। स्वतन्त्रता तो अब हमें लेनी होगी। बनाओ अब कांग्रेस को सामाजिक सुधार करने वाली संस्था और निकालो उन कुप्रथाओं को जो शताब्दियों से घर कर चली हैं समाज में। स्वाधीनता की उस लहर में जो बड़े वेग से चली थी। आर्य समाजी भी काफी बहे थे जोकि स्वाभाविक था। जो हुआ सो अच्छा ही हुआ, स्वाधीनता तो मिली नाम और रूप में ही सही। तरीका कुछ गलत था क्योंकि ऐसी दशा में उसका ठहरना कठिन है परन्तु घर आई लक्ष्मी को फेंकना भी तो बेवकूफी ही है न ? इसलिये उसकी रक्षा तो करनी ही होगी।

अतः आर्य विद्वानो ! सन्यासी महात्माओ तथा आर्यवीरो !!! आखें खोलो और सजग हो

उठो उस प्यारी स्वतन्त्रता देवी की रक्षा के लिये। आप जानते ही हैं कि महर्षि के रोम रोम में स्वाधीनता का समावेश था जो कि उनके अमर ग्रन्थों में हमारे लिये इस समय उद्बोधन है। हमारे माननीय प्रधान मन्त्री जी यह आह्वान कर रहे हैं कि अपनी राष्ट्रीय सरकार के हाथ मजबूत करो। अतएव इस समय आर्य समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने मध्य-काल की भांति सामाजिक कुरीतियों अन्ध विश्वासों के में जी जान से लग कर यह सिद्ध करदे कि उन्मूलन आर्य समाज पूर्व वत् बल्कि उससे भी कहीं अधिक स्वाधीनता की नींव को दृढ़ करने में संलग्न है। वास्तव में यह कुरीतियाँ और अन्धविश्वास ही तो हरे भरे देवताओं के देश को दानवों का देश बनाने वाले हैं। इन्हीं अन्ध विश्वासों के कारण एकेश्वर वाद के वैदिक स्वरूप से भारत वासी विचलित होकर मूर्ति (जड़) पूजा की गहरी खाई में पड़कर आजतक भी अच्छी तरह न निकल पाये थे कि एक अनहोनी घटना और घट गई, वह है इस युग केमहापुरुष महात्मा गान्धी के निधन की जो वापू स्वयं निराकार सर्वशक्तिमान् एक ईश के भक्त थे, लोगों ने उन्हें गलत समझा, उनकी भावनाओं का साक्षात् अनादर आज बहुसंख्यक भारतीय जनता कर रही है। वापू का स्मारक क्या हो इस विषय में राष्ट्रीय नेता अपना मत प्रकट कर चुके हैं और उनके रचनात्मक कार्यों के लिये उन्होंने एक निधि की स्थापना भी कर दी है परन्तु जनता नहीं समझी। स्थान स्थान और नगर नगर उनकी मूर्तियां और मठ मन्दिर बनाने का आयोजन जिसके लिये राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद और पण्डित नहरू ने कई बार कहा कि यदि गान्धी जी होते तो वे ऐसा कभी पसन्द न करते, उनका स्मारक तो ग्रामों में उनका रचनात्मक कार्य ही हो सकता है। इन सुन्दर विचारों के लिये प्रत्येक आर्य समाजी ने अपने माननीय नेताओं का हार्दिक धन्यवाद किया, परन्तु कुछ समझ में नहीं आता कि वे ही महानुभाव जिन्होंने इतने सुन्दर वक्तव्य दिये जिससे मेरे जैसे श्रद्धालुओं के हृदयों में प्रेम गंगा बही और यह मन में आया कि बस अब समय आ गया है वैदिक राष्ट्र के उत्थान का वही आज लाखों रुपया लुटा रहे हैं इस पञ्चभौतिक शरीर की भस्मी को नदी नालों में बहाने के लिये। अनेक स्पेशल ट्रेनें जिनमें टोलियों की टोलियों ने महीनों घूम घूम कर गरीब ग्रामीण भारत का धन पानी में बहाया। यह वही प्रवृत्ति है जिससे भारत में अनेक ईश्वरों की पूजा प्रारम्भ हुई। अधिकांश हिन्दु-जनता जिसमें अन्ध विश्वासों का घुण पहले से लगा हुआ है आज उसे अपने नेताओं की इस प्रवृत्ति का बहानामिल गया है और महात्मा गांधी को भी ईश्वर रूप में पूजने लगे हैं। जाकर देखो राजघाट देहली पर जहां महात्मा जी की अन्त्येष्टि हुई थी। हजारों स्त्री पुरुष समाधि पर सिर रगड़ते और फूल चढ़ाते हैं। नन्हे नन्हे बच्चे जो अपनी माताओं का अनुकरण करते हैं मस्तक रगड़ रहे हैं। कोई बुरा न माने जिस तरह, अविद्या और अन्ध विश्वासों के कारण भारत का पतन हुआ था और अब तक पूर्ण रूप से पतन की इति श्री भी न हो पाई थी कि फिर वही दौर प्रारम्भ हो गया।

शेष अगले पृष्ठ पर

आर्य समाज का उदय या क्षय ?

(लेखक— स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक)

—ॐ—

यदि आर्यसमाज धर्म के रूप में देखा जावे तो आर्य समाज का उदय ही उदय दिखलाई देता है, क्योंकि आर्यसमाज जिन सिद्धांतों का प्रचार करता रहा और करता है उनमें इसे पूरी सफलता मिली है। आज इसके सिद्धांतों को क्या जन साधारण, क्या विद्वान् और क्या राजनैतिक नेता सभी अपना रहे हैं, अर्थात्—

१—ईश्वर के स्थान पर पत्थर पूजने में लोगों को ग्लानि हुई।

२—साम्प्रदायिक पुस्तकों में अश्रद्धा।

३—जन्म की जाति पांति और सम्प्रदायों के झगड़ों से लोगों का मन हट गया।

४—खान पान के भेदों और अछूतपने की अमान्यता हो जाना।

५—स्त्री और शूद्र को भी पढ़ने का अधिकार दे देना।

६—देशभक्ति।

७—दलितोद्धार करना।

८—बालविवाह को बन्द करना।

९—विवाह आदि समारोह में वेश्या आदि के नाच गाने न करना और वेश्यागमन से दूर रहना।

१०—मद्यपान एवं अन्य मादक वस्तुओं का सेवन न करना।

११—गौ आदि पशुओं की हत्या बन्द करना।

पिछली पांच बातें अछूतोद्धार (अछूतपने को मिटाना),बाल विवाह निषेध का भारत सरकार ने नया (कनून) बनाया है। मद्यपान निषेध वेश्या गमन (वेश्या वृत्ति) को रोकने तथा गौ आदि उपयोगी पशुओं की हत्या बन्द करने का भी कानून बनाने का भारत सरकार निश्चय कर रही है। आर्यसमाज ने इन पिछली पांच बातों के रोकने के लिए शास्त्र द्वारा (प्रचार द्वारा) जनता में तत्परता उत्पन्न कर मानवीय भूमिस्थल को योग्य बनाया, अंकुरित किया अब भारत सरकार उसे ही शस्त्र(कानून) के द्वारा रक्षित कर रही है। यह तो आर्यसमाज का उदय एवं उत्थान है जो इसके सिद्धांत सबने अपना लिये हैं यही तो आर्यसमाज भी चाहता है कि इसके सिद्धांतों पर सब चलें।

पृष्ठ २८२ का शेष

अतएव आर्यो ! आओ हम एक बार फिर मिल कर पूरे जोर और जोश के साथ इस अवैदिक मिथ्या अन्धविश्वास को समूलोच्छेदन करने में अपनी शक्ति लगायें। क्योंकि इससे देश सुखी न रह सकेगा और प्राप्त की हुई स्वतन्त्रता का फिर खो जाने का भय है। क्योंकि जिस देश की जनता तर्क और बुद्धि को ताक़ में रखकर अन्धविश्वासों और रूढ़ियों के बल पर विचरण करती है उसकी इसी प्रकार दुर्दशा होती है जैसी कि महाभारत से आज पर्यन्त हमारे प्यारे भारत की हुई।

यदि आर्यसमाज को लोगों की दृष्टि से देखें तो इसका कुछ क्षय हो रहा है यह कहा जा सकता है। वह क्षय एक तो यह कि आर्यसमाज के सदस्य अधिक बढ़ नहीं रहे- दूसरा है आर्यसमाज जैसी देशभक्त और स्वदेश एवं स्वराज्य का अभिमान रखने वाली संस्था देश के शासन सूत्र से वञ्चित है।

अधिक सदस्य न बनने के दो कारण हैं—

१- भिन्न भिन्न संस्थाओं का आर्यसमाज मे बाहुल्य हो जाना, संस्थाओं में स्वत्वाधिकार और पदाधिकार के लिये संघर्ष झगड़ों के हो जाने से आर्यसमाज की अकीर्ति हुई। इससे अन्य लोगों की आर्यसमाज में प्रविष्ट होने मे अरुचि हो गई तथा अपने बहुतेरे सदस्य भी संघर्ष से घबड़ाकर या वैमनस्य से आर्यसमाज को छोड़ अन्य क्षेत्रों में चले गये।

२—आदर्श नेतृत्व के अभाव मे भी आर्य समाज यथेष्ट वृद्धि की ओर नहीं जा रहा है, आज सर्वत्र आर्यसमाज आदर्श नेता के अभाव को अनुभव कर रहा है। स्वामी दयानन्द के पश्चात् आदर्श नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी थे। उनके पोछे महात्मा नारायण स्वामी जी आदर्श नेता माने गये। अब नेता लोग संन्यास की ओर चलना पसन्द नहीं करते परन्तु वैदिक धर्म में सन्यास आश्रम समस्त आश्रमों का गुरु आश्रम है फिर बिना गुरु आश्रम में गये कोई नेता आदर्श कैसे बन सके ? प्रत्येक नेता यही समझता है मैं संन्यासी नहीं बना तो मेरी या आर्यसमाज की क्या हानि ? यह तो दूध से भरे जाने वाले तडाग में दूध के स्थान पर "मेरे एक घड़े जल से क्या हानि ? यह सोचकर" जल डालकर तडाग को दूध से भर देने की भांति आर्यसमाज का इस गुरु आश्रम संन्यास से रहित कर देने का क्रम है। वास्तव में धार्मिक क्षेत्र में तो नेता यह गुरु आश्रम संन्यास हो है। शास्त्र से तो सिद्ध ही है पर इतिहास भी यही बताता रहा है, स्वामी शंकराचार्य, महात्मा बुद्ध, स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द आदि संन्यासी ही नेता माने गये हैं। इस प्रकार आदर्श नेता न मिलने से जनता इस क्षेत्र से पीछे हट जाती है।

आर्यसमाज का शासन सूत्र से वञ्चित रहने का कारण—

प्रथम प्रथम आर्यसमाज ने ही भारतीयों में देशभक्ति और स्वराज्य प्राप्त करने की भावना को भरा और आर्यसमाज राजनैतिक संस्था समझी गई थी। उस समय इसके संचालकों को संदेह की दृष्टि से देखा जाता था तथा उन्हें दण्ड दिया गया परन्तु पश्चात् धीरे धीरे आर्यसमाज राजनैतिक दृष्टि से क्षय होता चला गया। इसका कारण है शासन सत्ता से वैतनिक या अन्य आर्थिक रूप में सम्बद्ध कई महानुभावों का नेता बनना, क्योंकि वे ऐसे नेता शासक सत्ता के विरुद्ध आर्यसमाज की आवाजें उठने नहीं देते थे। परिणामतः आर्यसमाज उस सुवर्ण अवसर को खोकर आज शासन सूत्र से वञ्चित हो गया एवं इस दृष्टि से कुछ क्षय की ओर है यह कहा जा सकता है। वास्तव में धर्म के नेता शासक सत्ता से सम्बन्धित नहीं होने चाहियें किंतु स्वतन्त्र और शास्त्रज्ञ होने चाहिए। इस्लाम की बागडोर मौलवियों के हाथों में है ईसाई मत की पादरियों

के हाथों में और सनातन धर्म की बागडोर भी उसके धर्माचार्य पण्डितों संन्यासियों के हाथों में है अतएव वे यथावत् बने हुए हैं परन्तु आर्यसमाज की बागडोर कई शासक सत्ता से सम्बन्धित लोगों के हाथों में होने से यह क्षय की ओर चल पड़ा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के मार्ग में आर्यसमाज ने न चलने की भूल की अब इसे भी बहुत रटते रहने की आवश्यकता नहीं। भूल हो जाती हैं बड़े बड़े समझदार भी भूल के ग्रास बन जाते हैं कांग्रेस ने भी अनेक भारी भूलें की जिनका परिणाम पाकिस्तान का बनना, काश्मीर की समस्या, हैदराबाद (दक्षिण) स्टेट का नियन्त्रण में न आना आदि हैं। निराश होने की आवश्यकता नहीं आर्यसमाज के सिद्धांत अमर हैं और इसमें कार्यशीलता और प्रगतिशीलता है। जनता आर्यसमाज के नेतृत्व को चाहती है परन्तु इसके नेता आदर्श बन जाये। शासक सत्ता से वैतनिक या आर्थिक रूप में सम्बद्ध न हों तो यह पुनः फूल फल सकता है। यद्यपि आज की सरकार आर्यसमाज को अनभीष्ट नहीं है परन्तु कभी यह सरकार आर्यसमाज पर कोई प्रतिबन्ध लगाये या अन्याय करे तो शासकसत्ता से वैतनिक एवं अन्य आर्थिक रूप में सम्बन्धित हुए आर्यसमाज के नेता यदि अब भी होंगे तो फिर आर्यसमाज को दबायेंगे उसे न उठने रूप क्षय रोग की ओर लेजावेंगे इस दूसरी ठोकर से आर्यसमाज का पुनः उत्थान होना असम्भव ही हो जावेगा अतः आर्यसमाज को अपने भविष्य पर विचार करना चाहिये।

[आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी का यह लेख मननीय है। केवल संन्यासी ही समाज के नेता बन सकते हैं अन्य नहीं इस बात को स्वीकार करना तो कठिन है हाँ, आश्रम मर्यादा के अनुसार जो गृहस्थाश्रम के कर्तव्य भार से निवृत्त होकर वानप्रस्थाश्रम और उसके पश्चात् संन्यास में प्रवेश करेंगे वे अवश्य आदर्श नेता बन सकेंगे यदि वे अपने अन्दर आर्योचित सब गुणों को धारण करने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे। वर्तमान संन्यासियों को भी अपने जीवन को आदर्श वैदिक जीवन बनाते हुए समाज का पथ प्रदर्शन करना चाहिये।

सम्पादक सा० दे०]

दान सूची सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली

दान आर्य समाज स्थापना दिवस

[गताङ्क से आगे]

५) आर्य समाज फतेपुर गयन्द शाहाबाद (हरदोई)

१०) ,, ,, भटपुरा (असमोली जिला-मुरादाबाद

१५) ,, ,, फगवाड़ा (कपूर थला)

१०) ,, ,, अजीतमल कैम्प (इटावा)

८॥।) ,, ,, उन्नाव यू०पी०)

५) दयानन्द जी मन्त्री आर्य समाज

१४) ,, ,, आर्य समाज इलाहाबाद

३) ,, ,, छोटी सादड़ी (मेवाड़)

५) श्री मिहिर चन्द जी द्वारा पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति

१६।) आर्य समाज अलवर (सिटी)

२०) ,, ,, पठान कोट (गुरदासपुर)

५०) नगर आर्य समाज अजमेर

२०) आर्य समाज खुर्जा (बुलन्द शहर)

२०) ,, ,, भड़ौच (बम्बई प्रान्त)

२५) ,, ,, करौल बाग देहली

२७) ,, ,, बहराइच (यू०पी०)

---

२५७)

३६८॥) गत योग

---

६२६) सर्व योग

(क्रमशः)

विविध दान

१०) श्री गजाधर जी आर्य द्वारा आर्य समाज हिन्डौन (जयपुर) अपनी सुपुत्री के विवाहो उपलक्ष में

१२) पं० मंजुनाथ जी उपदेशक सभा कार्कल (दक्षिण कनाडा)

३०) आर्य समाज कोट कपूरा (फरीद कोट स्टेट

६।॥≡) श्रीमती लाजवती देव छगु अनास (ट्रिनिडाड)

३) स्वामी महेश्वर नन्द जी आर्य समाज जमालपुर (मुंगेर)

६४॥≡) १०

२०१) गत योग

२६५॥≡) १० सर्व योग

सार्वदेशिक पत्र के लिये दान

११) श्री ला० रूपचन्द जी कटड़ा बनिया देहली
११) श्रीमती पद्मावतीजी देहली
११) ,, चौधरानी पद्मावती जी
} द्वारा श्री पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति

---

३३)

दान दाताओं को धन्यवाद।

गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०,
मन्त्री
सार्वदेशिक सभा

(शेष पृष्ठ २८७ पर)

आर्य जगत

अखिल भारतीय आर्य सम्मेलन कलकत्ता में होगा

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की २५-४-४८ की साधारण सभा ने अखिल भारतीय आर्य कांग्रेस का अधिवेशन प्रतिवर्ष बुलाने का निश्चय किया था। इस वर्ष के लिए सभा की २५-७-४८ की अन्तरंग सभा ने आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के निमन्त्रण को स्वीकार करते हुए कलकत्ता में आर्य कांग्रेस करने का निश्चय किया है। यह कांग्रेस ११ से १३ अक्टोबर ४८ तक होगी।

समस्त आर्यसमाजों के मन्त्रि महोदयों के नाम

आर्य समाज की वर्तमान प्रचार-प्रणाली में आवश्यक संशोधन की मांग देर से उठती चली आ रही थी। इस सभा ने इस मांग को लक्ष्य में रखते हुए अपने २८-३-४८ के अधिवेशन में आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करने के लिये अन्तरंग सभा द्वारा एक उपसमिति की नियुक्ति कराई थी। इस उपसभा की विस्तृत रिपोर्ट पर इस सभा की अन्तरंग सभा की बैठक तिथि २५-७-४८ में विचार हुआ। सभा ने इस रिपोर्ट पर विचार करके आर्य समाजों के मार्ग प्रदर्शन के लिए संलग्न निर्देश देने स्वीकार किए हैं।

हमें आशा है कि आर्यसमाजें तथा सम्बद्ध संस्थायें इन निर्देशों को पूर्णतया पालन करेंगी।

इन्द्र विद्यावाचस्पति, गंगा प्रसाद उपाध्याय,
प्रधान (मन्त्री)

(२८६ का शेष)

(यह खेद की बात है कि कई बार स्मरण कराने पर भी बहुत सी आर्य समाजों ने आर्य समाज स्थापनापन्न दिवस का दान एकत्रित करके अभी तक सार्वदेशिक सभा कार्यालय में नहीं भेजा। प्रत्येक आर्य समाज का नैतिक कर्तव्य है कि वह सभा के आदेश का पालन करे और वेद प्रचारादि विषयक उसकी योजनाओं को कार्यान्वित करने में सहायक हो। जिन समाजों ने स्थापना दिवस का रुपया नहीं भेजा उन्हें अब भी सदस्यों से एकत्रित करके अथवा अपने कोष से तुरन्त सभा कार्यालय में भेज देना चाहिये। —सम्पादक सा० दे०)

आर्य समाज की प्रचार प्रणाली

सार्व० सभा की अन्तरङ्ग २५-७-४८ की बैठक के आवश्यक निर्देश

कौन प्रचार करेः—

(१) योग्य उपदेशक और प्रचारक तैयार किए जाएं जिनको तुलनात्मक धर्म, संस्कृति, दर्शन और कर्मकाण्ड का परिचय हो।

(२) इसी प्रकार योग्य संगीतज्ञ प्रचारक तैयार किए जाएं जिनको आर्य सिद्धान्त, आर्य भाषा और संगीत कला का अच्छा परिचय हो।

नोट - उपर्युक्त उपदेशकों तथा प्रचारकों को यथोचित प्रमाण-पत्र दिया जाय। सार्वदेशिक सभा अथवा तत्सम्बद्ध प्रान्तीय सभाएँ इस प्रमाण-पत्र को देवें।

क्या प्रचार करें:—

(१) आर्य समाज द्वारा स्वीकृत वैदिक सिद्धान्तों के विषय में विशेष व्याख्यान संगीत, प्रवचन और उपदेश दिए जाएँ। साथ ही तुलनात्मक दृष्टि से किन्तु शिष्ट भाषा में अन्य सिद्धान्तों का भी आलोचनात्मक विवेचन किया जाय।

(२) निश्चित उत्सवों, सम्मेलनों और पर्वो के अवसर पर नियत विषयों पर ही व्याख्यान, उपदेश, प्रवचन और संगीत की व्यवस्था की जाय।

(३) इस प्रकार की नियमन विषयक व्यवस्था सम्बद्ध अधिकारियों को समारोह के पूर्व करके आमंत्रित उपदेशकों अथवा संगीतज्ञों को सूचित करना चाहिए जिससे प्रदत्त विषयों या सिद्धान्तों पर व्याख्यान या संगीत हो सकें।

दैनिक सत्संग:—

आर्य समाज मन्दिरों वा अन्य उपयुक्त स्थानों में दैनिक सन्ध्या, हवन, संगीत, प्रवचन लगभग १ घंटे में हुआ करें।

साप्ताहिक सत्संग:—

साप्ताहिक सत्संग-प्रचलित कार्य-क्रम में कथा व्याख्यान तथा संगीत नियत विषयों और नियत व्यक्तियों द्वारा हुआ करे। इसकी पूर्व सूचना सम्बद्ध व्यक्तियों को दी जाया करे। आवश्यक सूचनाएँ उपदेश से पूर्व दी जाया करें। (सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रचारित सत्संगों के कार्य-क्रम में इस निर्देश को जोड़ दिया जाय।

पारिवारिक सत्संग:—

पारिवारिक सत्सग पूर्णिमा और अमावस्या को भिन्न २ परिवारों में पाक्षिक रूप से हुआ करे। पारिवारिक सत्संगों में आर्य गृहस्थ जीवन सम्बन्धी विषयों पर विवेचन और प्रवचन विशेष रूप से हुआ करे।

पर्वोत्सव:—

पर्वोत्सव समारोह और उत्साह से पूर्व निश्चित कार्यक्रमानुकूल स्वीकृत पर्व पद्धत्यनुसार हुआ करे। संशोधित पर्व पद्धति सभा द्वारा प्रचारित की जायगी। पर्वो के प्रचलित रूप में जो बुराइयां है उनके निवारण और अपनी पद्धति की विशेषता के प्रतिपादन के लिए पर्व तिथि से पर्य्याप्त समय पूर्व अथवा कम से कम १५ दिन पूर्व भाषण तथा कर-पत्रादि द्वारा विशेष रूपसे प्रचार की व्यवस्था की जाय।

नगर कीर्तन:—

नगर कीर्तन में सब से आगे ओ३म् का झंडा रहे। उसके पीछे बाजा रहे और सुविधानुसार सब आर्य नर नारी तथा भजन मंडलियां मिल कर पूर्व से निश्चित भजन गाएँ तथा पूर्व से निश्चित ही जय घोष (नारे) किए वा लगाये जाया करें।

मेला प्रचार:—

मेलों में वैदिक सिद्धान्त का प्रचार विशेष रूपसे किया जाय और सुविधानुसार सम्मेलनों की व्यवस्था की जाय। मेलों की कुरीतियों का संयत भाषा में निराकरण किया जाय।

विद्यार्थियों में प्रचार:—

शिक्षणालयों तथा विद्यार्थियों की विशेष सभा में वैदिक सिद्धान्त सम्बन्धी व्याख्यानों की व्यवस्था का जाय।

वार्षिकोत्सव:—

वार्षिकोत्सव का कार्य क्रम निम्न प्रकार हो

(१) उत्सव ३ दिन हुआ करे।

प्रातः काल:—

यज्ञ, संगीत, प्रवचन हो। यह कार्य क्रम साधारणतया दो घण्टे से अधिक का न हो।

मध्याह्नोत्तर:—

भजन तथा सम्मेलन २ घण्टे रहा करे तथा १ घंटा व्याख्यान हो।

रात्रि:—

रात्रि को भी ३ घंटे का कार्य क्रम रहा करे और भजन व व्याख्यान हुआ करें। भजन व्याख्यान के आरम्भ में हुआ करे बाद में नहीं। तथा यह सब कार्यवाही रात के १० बजे समाप्त कर दी जाय।

नोट—१ उत्सव के साथ यथा सम्भव परिवार सम्मेलन, आर्य वीर दल प्रदर्शन तथा बच्चों के कार्य क्रम रहा करें।

नोट (२)—व्याख्यान नियत विषय व नियत वक्ताओं द्वारा हुआ करें। इसी प्रकार संगीत हुआ करें।

नोट (३) प्रथम दिवस मध्यान्होत्तर में नगरकीर्तन हुआ करे।

नोट (४)—मध्यान्होत्तर में होने वाले सम्मेलनों के विषय, सभापति, प्रस्तावक, अनुमोदक आदि पूर्व निश्चित व्यवस्था के अनुसार रहें।

कौन उपदेश न करे—

अपरिचित, अयोग्य, अवाञ्छनीय तथा अधार्मिक वक्ताओं और संगीतज्ञों के व्याख्यान तथा संगीत आर्यसमाज की वेदी से न हुआ करें।

(५) क्या न करें ?

(१) आर्य समाज द्वारा स्वीकृत वैदिक सिद्धांतों के विरुद्ध व्याख्यान और संगीत न दिये जायँ। आर्य भाषा के अतिरिक्त दूषित हिन्दुस्थानी आदि बोलियों में भाषण और संगीत न हुआ करें।

(२) आर्य समाज के संगठन, विधान, संस्थाओं तथा अधिकारियों के विरुद्ध आलोचनात्मक भाषण न हुआ करें।

(७) संस्कार

संस्कारों के अवसर पर विशेष ध्यान संस्कार विधि में वर्णित पद्धति के अनुसार कार्य करने की ओर दिया जाय और इसलिये योग्य संस्कृतज्ञ आचार्य या पुरोहित द्वारा संस्कार कराये जायँ। संस्कार के साथ होने वाले व्यय बहुल आडम्बरों को महत्त्व न दिया जाय। विधिवत् संस्कार को ही महत्त्व पूर्ण समझा जाय।

उपदेशक विद्यालय:—

सार्वदेशिक सभा की ओर से एक ऐसा उपदेशक विद्यालय व्यवस्थित किया जाय जिसमें उपयुक्त प्रकार से उपदेशकों और संगीतज्ञों की समुचित शिक्षा हो सके। उपदेशकों की योग्यता न्यून से न्यून शास्त्री, स्नातक, संस्कृतज्ञ ग्रेजुएट और संगीतज्ञ संगीत विशारद वा तत्सम योग्यता सम्पन्न हों। इस शिक्षण कार्य में ३ अध्यापक तक रहें और अधिक से अधिक १ वर्ष का पाठ्य क्रम हो।

शिक्षा प्राप्त करने वाले उपदेशकों और संगीतज्ञों को ४०) मासिक छात्रवृत्ति दी जाय।

भूपाल राज्य में सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध विषयक

विशेषरूप से भूपालराज्य में सत्यार्थ प्रकाश के १४ वें समुल्लास पर लगे प्रतिबन्ध के निराकरण का विषय प्रस्तुत हुआ। डि० मजिस्टेट व नाज़िम सीहोर (भूपाल) का १-६-४८ का प्रतिबन्ध विषयक आदेश, भूपाल के प्रधान मन्त्री का ६-६-४८ तथा आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के प्रधान का उत्तर रूप २१-६-४८ का तार पढे गये। श्री कुंवर चाँदकरण जी शारदा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान ने इस विषयक अपनी सभा के यत्नों का वर्णन किया तथा प्रतिबन्ध और भूपाल स्टेट में आर्य समाजों की स्थिति पर भी प्रकाश डाला। निश्चय हुआ कि सभा की ओर से भूपाल की सरकार को एक पत्र लिखा जाय जिसमें उन्हें उनके अन्यायपूर्ण निश्चय के विरुद्ध आर्य समाज के घोर असन्तोष की चर्चा करते हुये सूचना दी जाय कि दो मास के अन्दर २ भूपाल सरकार को सीहोर के डि० मजिस्ट्रेट को सत्यार्थप्रकाश पर प्रतिबन्ध विषयक आज्ञा वापस करा देनी चाहिये अन्यथा सभा इस अन्यायपूर्ण आज्ञा को हटाने के लिये अन्य उपायों का अवलम्बन करने के लिये बाधित होगी। यह भी निश्चय हुआ कि इस सम्बन्ध में आगे आवश्यक कार्यवाही करने का अधिकार सभा प्रधान को दिया जाय।

श्रावणी उपाकर्म उत्सव:—

यह उत्सव श्रावण शुक्ल पूर्णिमा तदनुसार १९ अगस्त को उत्साह पूर्वक सार्वदेशिक सभा द्वारा सब समाजों को प्रेषित विज्ञप्ति पत्र के अनुसार मनाया जाए और वैदिक स्वाध्याय का व्रत विशेष रूप से ग्रहण किया जाए।

आर्य कुमार जगत्

प्रांतीय आर्य कुमार सम्मेलन मुरादाबाद का संक्षिप्त विवरण

संयुक्त प्रांतीय आर्यकुमार सम्मेलन इस वर्ष २६, २७, २८ जून ४८ को मुरादाबाद में समारोह पूर्वक संपन्न हुआ।

२६ जून की सायंकाल सम्मेलन के सभापति श्री उमाशंकर जी ऐडवोकेट् तथा श्री महात्मा खुशहालचन्द जी का शानदार जुलूस निकाला गया। तत्पश्चात् टाउन हाल मैदान में श्रद्धेय सभापति जी द्वारा ध्वजा रोहण तथा श्री गोविन्द सहाय जी सभा सचिव युक्त प्रांतीय सरकार द्वारा उद्घाटन हुआ।

२७ जून को सायंकाल बाबू तोताराम जी काँठ स्वागताध्यक्ष के भाषण के पश्चात् सम्मेलन सभापति जी का भाषण हुआ। तथा राष्ट्र एवं जाति के विभिन्न नेताओं तथा विद्वानों के शुभ संदेश पढ़ कर सुनाये गये।

२८ जून की सायंकाल श्री महात्मा खुशहाल-चन्दजी तथा श्री सम्मेलन सभापति जी के ओजस्वी भाषण हुए तथा प्रोफेसर विश्वेश्वर जी चन्दौसी का मधुर संगीत हुआ।

प्रांतीय आर्यकुमार परिषद् का नैमित्तिक अधिवेशन परिषद् की नियमावली के स्वीकृत्यर्थ हुआ जो प्रजा तन्त्र एवं वैधानिक दृष्टिकोण से कुमारों की उन्नति का सफल प्रतीक था।

प्रांत की समस्त आर्यकुमार सभाओं के प्रधान मन्त्री महानुभावों का सम्मेलन आर्यकुमार सभाओं के लिये रोचक एवं उपयोगी कार्य क्रम बनाने के लिये हुआ एवं इसमें प्रांत की सभाओं के लिए एक अत्यन्त सुन्दर एवं उत्साह वर्धक कार्यक्रम निश्चित किया गया जो शीघ्र ही प्रकाशित किया जायगा।

आर्य जाति के पूज्य नेता श्री महात्मा नारायण स्वामी जी के स्मारक रूप में द्वारा आयोजित महात्मा नारायण स्वामी वाद विवाद प्रतियोगिता अत्यन्त सफल रही। प्रतियोगिता के सभापति एवं आर्य जाति के प्रसिद्ध दानी श्री कुंवर रणञ्जयसिंह जी (अमेठी राज्य) ने हमें प्रतियोगिता के लिए एक चल विजयोपहार चन्दा देने का वचन देकर इस कार्य क्रम को प्रोत्साहित किया है इस प्रतियोगिता में श्री भारत भूषण जी हापुड़ (प्रथम) तथा श्री भृगु प्रकाश जी (अमरोहा) (द्वितीय) विजेता हुए हैं। आगामी सम्मेलन का निश्चय शीघ्र ही किया जायगा। जो सभायें अथवा समाजें सम्मेलन को निमन्त्रित करना चाहें शीघ्र परिषद् कार्यालय नजीबाबाद बिजनौर को सूचित करें। इस सम्मेलन में अनेक आवश्यक प्रस्ताव स्वीकृत हुए जो अगले अङ्क में प्रकाशित किये जायेंगे।

सत्य प्रकाश मंत्री सं० प्रा० आर्य कुमार सम्मेलन

आर्यवीर दलों को आदेश

आर्यवीरदल के सभी अधिकारियों एवं आर्यवीरों को सूचित किया जाता है कि १५ अगस्त को स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर सर्वत्र शाखाओं में विशेष समरोह के साथ दिवस को मनायें। तथा निम्न कार्य क्रमके अनुसार कार्य किया जाये। (शेष २६२ पर)

साहित्य समीक्षा

योग विचार अर्थात् श्री अरविन्दयोग पर अनुभव पूर्ण लेखों का संग्रह–प्रथम भाग सम्पादक–डा० इन्द्रसेनजी एम० ए० पी० एच० डी प्रकाशक—अरविन्दाश्रम पाण्डीचेरी

इस पुस्तक में जीवन और योग, योग का रहस्य, मनो विज्ञान और योग, पूर्ण योग विचार, श्री अरविन्द को योग पद्धति और पातञ्जल योग, श्री अरविन्द की साधन शैली, प्रश्नोत्तरी इत्यादि विषयोंपर सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविन्दजी, श्री नलिनी कांत गुप्त, अनिल वरणराय, डा० इन्द्र सेन जी, श्री शुद्धानन्द भारती, आचार्य अभयदेव जी, श्री नारायण प्रसाद जी आदि के अनुभव पूर्ण लेखों का संग्रह किया गया है जो योग मार्ग के पथिकों के लिये बड़ा उपयोगी है। श्री अरविन्द जी के जीवन और योग विषयक लेख के अतिरिक्त जो उनके पुस्तक रूप में अप्रकाशित महत्वपूर्ण ग्रन्थ The Synthesis of Yoga के आधार पर संकलित किया गया है डा० इन्द्रसेन जी के 'मनोविज्ञान और योग तथा श्री अरविन्द की साधन शैली' विषयक लेख हमें विशेष रूप से मननाय और उपयोगी प्रतीत हुए हैं। मान्य आचार्य अभयदेवजी के "श्री अरविन्द का योग पद्धति और पातञ्जल योग" शीर्षक लेख के दो भाग हैं प्रथम भाग में श्री अरविन्द जी की योग पद्धति की योग दर्शन में निर्दिष्ट विधि के साथ समानता बताई गई है जिससे हम सहमत हैं किंतु उसके दूसरे भाग में श्री अरविन्द की योग पद्धति को कई आवश्यक विषयों में पातञ्जल योग से विभिन्नता दिखाते हुए जो उसकी अधिक श्रेष्ठता सिद्ध करने का यत्न किया गया है हमें खेद है कि हम बार २ विचार करने पर भी उससे सहमत नहीं हो सके। मान्य आचार्य जी ने प्रथम भेद योग के स्वरूप के विषय में बताया है। वे कहते हैं कि "पातञ्जल योग में तो योग है "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" चित्त की वृत्तियों का रुक जाना, यह योग मन से सम्बन्ध रखता है, मानसिक है। पर श्री अरविन्द के योग में मन से भी परे जाने पर सब जोर है। पातञ्जल योग में योग को चित्तवृत्ति निरोध तक ही सीमित कर दिया गया है। पर श्री अरविन्द के योग में सम्पूर्ण जीवन ही योग है केवल चित्तवृत्ति का निरोध नहीं। पर केवल चित्तवृत्ति निरोध का तो वहाँ साधन के तौर पर भी उतना अधिक महत्त्व

(शेष २६१ का)

कार्य क्रमः—

१- प्रातः प्रभात फेरी

२- ओ३म् ध्वजागान

३- आर्य राष्ट्र के महत्त्व पर व्याख्यान

४- नियमावली में लिखित प्रतिज्ञा पाठ

५- कोरस

६- ध्वज गान

"जय घोष– अन्य जय घोषों के साथ— लगातार भारत माता की जय हो" का नारा भी लगाया जावे।

ओमप्रकाश पुरुषार्थी

स० प्र० सेनापति

नहीं है क्योंकि यह योग मानसिक नहीं, आध्यात्मिक है।" इत्यादि। दूसरे स्थान पर मान्य आचार्य जी लिखते हैं कि 'श्री अरविन्द के योग तथा पातञ्जल योग में मौलिक भेद यह है कि श्री अरविन्द का योग क्रियाशील Dynamic है स्थितिशील Static नहीं (पृ० १५५)

हमारे विचार में यह भेद वास्तविक नहीं। पातञ्जल योग में चित्तवृत्ति निरोध पर बल अवश्य है क्योंकि उसके बिना योग में प्रगति असम्भव है किन्तु साथ ही ईश्वर प्रणिधान अर्थात् सब कर्मों को भगवान् के अर्पित करने को वहाँ बड़ी प्रधानता दी गई है उस की गणना नियमों के अतिरिक्त क्रियायोग में भी की गई है। श्री व्यास जी ने अपने भाष्य में किसी प्राचीन योग विषयक ग्रन्थ से

'शय्यासनस्थोऽथपथि व्रजन् वा'
शलगकथित जतव्यक कर्कवेरर
संसारबीजक्षयमीक्षमाणः
स्यान्नित्ययुक्तो ऽ मृतभोगभागी ॥

इत्यादि वचन उद्धृत किये हैं जिन में सम्पूर्ण जीवन के साथ योग का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से वर्णित है। श्री आचार्य जी के इस लेख की विस्तृत आलोचना 'योगप्रदीप' के लेखक स्वामी ओमानन्दजी ने 'पातञ्जल योग और श्री अरविन्द की योग पद्धति' नामक पुस्तक में की है जिसके सब अंशों से हम सहमत नहीं तो भी उसे तुलनात्मक विचारार्थ उपयोगी समझते हैं। सम्पूर्णतया यह "योग विचार" नामक संग्रह योगजिज्ञासुओं के लिये अवश्य विशेष उपादेय है जिसके लिये 'अदिति कार्यालय' पाण्डीचेरी धन्यवाद का पात्र है। ध० दे०

सम्पादकीय

राजस्थान संघ का अनुकरणीय कार्य—

'सार्वदेशिक' के गत अङ्क में हमने 'मैसूर में गोवध निषेध' विषयक टिप्पणी देते हुए मैसूर रियासत के गोवध निषेध विषयक निश्चय का अभिनन्दन किया था। उसके कुछ दिन पश्चात् यह जानकर हमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि 'राजस्थान सङ्घ की सरकार ने अपनी सीमा के अन्दर गोवध का सर्वथा निषेध कर दिया है।' हम राजस्थान सङ्घ के राज प्रमुख तथा अन्य अधिकारियों का इस प्रशंसनीय कार्य के लिये अभिनन्दन करते हुए भारतीय विधान परिषत् के समस्त सदस्यों से पुनः अनुरोध करते हैं कि वे परिषत् के आगामी अधिवेशन में इस विषयक प्रस्ताव को स्वीकृत कराकर भारतीय विधान में उस का समावेश करा दें। समस्त आर्य समाजों, आर्य कुमार सभाओं, सनातन धर्म सभाओं तथा अन्य सब जनहितैषिणी संस्थाओं की ओर से इस विषयक प्रबल आन्दोलन निरन्तर जारी रहना चाहिये जब तक भारतीय विधान परिषत् द्वारा भारत सरकार गोवध का सर्वथा निषेध न कर दे।

माननीय सरदार पटेल की सिंह गर्जना:—

भारत के उप प्रधान मन्त्री माननीय सरदार बल्लभ भाई पटेल परमेश्वर की कृपा से अब स्वस्थ हो गये हैं और उन्होंने अपना कार्य अद्भुत कौशल के साथ प्रारम्भ कर दिया है यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। कुछ दिन पूर्व पटियाला और पूर्वी पंजाब रियासत सङ्घ का उद्घाटन करते हुए सरदार पटेल ने स्फूर्ति दायक सिंह-गर्जन करते हुए हैदराबाद के विषय में ठीक ही कहा कि अब 'हैदराबाद से समझौते का मौका जा चुका। अब उसका वही हाल होगा जो जूनागढ़ का हुआ था। हम पूरी तरह से तय्यार हैं और इस रास्ते की बाधा को काटकर फैंक देंगे। उन्होंने यह भी कहा कि अब फोड़े का आपरेशन करना पड़ेगा।'

सरदार पटेल के इस सिंहगर्जन से जो आन्तरिक शक्ति और भारत सरकार के दृढ़ निश्चय का। परिचायक है हैदराबाद के प्रधान मन्त्री मीर लायक अली बड़े तिलमिलाये हैं। उन्होंने २३ जुलाई को वारंगल में भाषण देते हुए सरदार पटेल के भाषण के उक्त अंशों की कठोर आलोचना करते हुए कहा कि "मुझे यह सोचकर दुःख और आश्चर्य हुआ कि सरदार पटेल ने कैसे इस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया। उन्होंने यह भी कहा कि सरदार पटेल इस बात को भूल जाते हैं कि ऊपर एक बड़ी ताक़त है जो हमारी इच्छाओं का संचालन करती है और जिसे इस तरह की बातें नापसन्द हैं। अगर सरदार पटेल अपनी नई प्राप्त की गई शक्ति पर भरोसा रखना चाहते हैं तो मैं उनसे

स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूं कि हम अपनी नैतिक शक्ति, उद्देश्य की न्यायता और खुदा पर भरोसा रखते हैं। अपने दिमाग की इस दृढ़ता के साथ हम अपने शरीर में भी शक्ति महसूस करते हैं।"

आश्चर्य की बात है कि रजाकारों द्वारा हिन्दू नरनारियों और बालकों पर जो अमानुषिक क्रूर हत्याएं की जा रही हैं, जिनकी भीषणता दिन प्रति दिन बढ़ती चली जा रही है, जिन में से महिलाओं पर अत्याचार के विरोध में प्रो० भंसाली को आमरण अनशन का निश्चय करने को बाध्य होना पड़ा और व्यापार मन्त्री श्री जोशी को अपनी आंखों से इन भीषण अत्याचारों को देख और अत्यन्त विश्वास पात्र व्यक्तियों द्वारा उसका वृत्तान्त जान कर त्याग पत्र देने को विवश होना पड़ा, मीर लायक अली खुदा और अपने उद्देश्य की न्याय की दुहाई देते हुए लज्जित नहीं होते। अब तो भारत सरकार को आर्थिक प्रतिबन्धों से भी आगे बढ़ कर हैदराबाद से युद्ध ही अनिवार्य प्रतीत होता है जैसे कि अखिल भारतीय राष्ट्रिय महासभा के प्रधानमन्त्री श्री शङ्करराव देव जैसे अहिंसा प्रेमी और उत्तरदायित्व पूर्ण महानुभाव ने अपने वक्तव्य में कहा है। हमें विश्वास है कि माननीय सरदार पटेल के शब्द यथार्थ थे और इस भीषण तथा दिन प्रति दिन बिगड़ती हुई परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार कठिनतम कार्यवाही करने में ज़रा भी संकोच न करेगी। यद्यपि रजाकारों के नेता कासिम रज़वी ने २१ जुलाई को रेडियो पर भाषण देते हुए यह कहने की धृष्टता की "इस समय हैदराबाद के भाग्य का निर्णय हो रहा है किन्तु मैं जानता हूं कि भारत हैदराबाद पर चढ़ाई न करेगा क्योंकि उसे भय है कि संघर्ष की ज्वालाएं न केवल समूचे दक्षिण भारत को लपेट लेंगी बल्कि उत्तर तक भी फैल जाएगी।

किन्तु हम समझते हैं कि उसकी यह उक्ति असत्य ही सिद्ध होगी। हमारी सरकार के कर्णधार माननीय श्री पं० जवाहरलाल जी, माननीय सरदार बल्लभ भाई जी पटेल तथा अन्य महानुभाव पुरुष सिंह हैं। वे इस प्रकार भयभीत होने वाले नहीं। वे सारी परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए यथोचित कार्यवाही शीघ्रता पूर्वक अवश्य करेंगे। हमारी उनसे प्रार्थना यही है कि वे अविलम्ब ऐसी कठोर कार्यवाही करके मदोन्मत्त निजाम का मान मर्दन करें।

एक निर्व्यसन वीर का शोक जनक देहावसान—

काश्मीर रियासत में भारतीय सेना के वीर सेना पति ब्रिगेडियर मुहम्मद उस्मान ४ जुलाई को युद्ध क्षेत्र में वीर गति को प्राप्त हुए। वे जहां एक देश भक्त निर्भय वीर थे वहां उनके विषय में यह जानकर पाठकों को आश्चर्य होगा कि वे मांसाहार, मद्यपान, बीड़ी सिग्रेट आदि का सेवन और अन्य सब व्यसनों से सर्वथा दूर और ३४ वर्ष की आयु तक अविवाहित थे। जब मरणासन्न अवस्था में उनको शराब पिलाने का डाक्टरों ने प्रयत्न किया तो भी उन्होंने स्पष्ट इन्कार करते हुए कहा कि ऐसी वस्तुओं का सेवन कर के मैं जीवित रहना नहीं चाहता। जो लोग

मांसादि सेवन को शारीरिक बल वृद्धि के लिये आवश्यक समझते हैं उनको इस वीर सेनानी के अद्भुत जीवन से अवश्य शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। ब्रिगेडियर उस्मान का जन्म से मुसलमान होते हुए भी मांसाहारादि से दूर रह कर ब्रह्मचारी जैसा पवित्र जीवन व्यतीत करना सचमुच आश्चर्यजनक और अत्यन्त अभिनन्दनीय था। ऐसे एक निर्व्यसन वीर सेनापति के देहावसान से सब का दुःखित होना स्वाभाविक था। यदि सभी सैनिक ब्रिगेडियर उस्मान के समान निर्व्यसन शुद्ध जीवन व्यतीत करें तो सर्वत्र शीघ्र विजय लाभ हो।

देश में बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार—

गत ११ जौलाई को प्रथम भारतीय शासक प्रमुख (गवर्नर जनरल) श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य जी को देहली नगर की मनुष्यपालिनी संस्था (म्युनिसिपलिटी) की ओर से डा० युद्धवीर सिंह जी प्रधान ने जो मान पत्र दिया उस के अन्तिम परिच्छेद में ये शब्द थे:—

"म्युनिसिपल कायदे कानूनों की तो बाजारों और गलियों में खुले आम अवहेलना हो रही है परन्तु कानून के प्रति अनादर इतना बढ़ गया है कि नगर में चोरी जारी आदि के अपराधों की संख्या अधिक हो गई है, मदिरा की बिक्री दुगुनी तिगुनी बढ़ गई है, बालिकाओं के अपहरण हो रहे हैं और घूसखोरी का बोलबाला हो रहा है तथा मकानों और जमीनों पर नाजायज कब्जे करने आदि अनिच्छित घटनाओं के समाचार रोज मिलते रहते हैं। इस सम्बन्ध में हम इतना नम्र निवेदन करना उचित समझते हैं कि अब वह समय आगया है कि शासन व्यवस्था को कसा जाए और चूंकि राजधानी की व्यवस्थाओं का असर सारे देश पर पड़ता है इसलिये यहां का प्रबन्ध और व्यवस्था कड़ाई से पूर्ववत् स्थापित की जाए।" इत्यादि। इस परिच्छेद में देहली में जिस भ्रष्टाचार का स्पष्ट चित्रण किया गया है वह अन्यत्र भी वैसे ही भयङ्कर रूप में विद्यमान है यह देखकर हमें अत्यन्त खेद होता है। यह हम सबके लिये लज्जाजनक बात है कि स्वतन्त्र भारत को अपनी प्राचीन आर्य संस्कृति के आदर्श रखते हुए जहां उस अवस्था को पुनः लाने का प्रयत्न करना चाहिये जो अयोध्या केकय इत्यादि के वर्णन में।

कामी वा न कदर्यो वा, नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां, ना विद्वान् नचनास्तिकः ॥८
सर्वे नराश्च नार्यश्च, धर्मशीलाः सुसंयताः।
मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां, महर्षय इवामलाः ॥ ६ ॥
(बाल्मीकि रामायण सर्ग ६)

क्वचिन्न दुष्टस्तत्रासीत्, परदाररतिर्नरः।
प्रशांतं सर्वमेवासीद्, राष्ट्रं पुरवरंच तत् ॥
बा० रामायण १।८।१४

न मे स्तेनो जनपदे, न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्, न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ॥
छान्दोग्य ५।११

इत्यादि श्लोकों द्वारा सूचित होती है वहाँ भ्रष्टाचार की वृद्धि होती जा रही है और उसकी रोकथाम का यत्न सरकार की ओर से यथासम्भव किए जाने पर भी सफलता कम प्राप्त हो रही है। इन श्लोकों में बताया गया है कि अयोध्या में कोई कामी, कृपण, क्रूर, अविद्वान् नास्तिक न था। वहां कोई दुष्ट तथा व्यभिचारी न था। सारा नगर और राष्ट्र सर्वथा शांतिमय अवस्था में था। सब नर नारी धार्मिक, संयमशील उत्तम स्वभाव और सदाचार के कारण प्रसन्न और निर्मल थे। केकय के राजा अश्वपति ने अपने देश के विषय में ऋषियों को बताया कि मेरे

राज्य में कोई चोर नहीं, कोई कृपण और शराबी नहीं, कोई यज्ञ न करने वाला व्यक्ति नहीं, कोई अविद्वान् नहीं, कोई व्यभिचारी नहीं फिर व्यभिचारिणी तो हो ही कैसे सकती है ?

इस उच्च अवस्था तक क्रमशः पहुंचने के स्थान पर जब हम यह देखते है कि अनाचार मांसमद्य सेवन, रिश्वतखोरी तथा भ्रष्टाचार को दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है तो हमें अत्यन्त दुःख होता है । इसका सम्बन्ध राजनैतिक कारणों से उत्पन्न परिस्थिति से भी है क्योंकि 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्' (भूखा क्या नहीं करता ?) इस लोकोक्ति के अनुसार पीड़ित शरणार्थियों में से कई युवकों के अन्दर भी ऐसी अवाञ्छनीय प्रवृत्तियां उत्पन्न हो गई हैं । सरकार शरणार्थियों के लिये पुनर्वासादि की समुचित व्यवस्था शीघ्र करके वर्तमान शोचनीय अवस्था को पर्याप्त मात्रा तक सुधार सकती है और ऐसा करना उसका कर्तव्य हो है। पर इसके साथ साथ समस्त आर्य समाजों और आर्य कुमार सभाओं का भी कर्तव्य है कि वे देशमें बढ़ते हुए इस भ्रष्टाचारको दूर करने का पूर्ण प्रयत्न करें, सम्बद्ध अधिकारियों तक इस भ्रष्टाचार की यथार्थ घटनाओं को पहुंचाए और इसको दूर करने के लिए अन्य समुचित साधनों को काम में लाएं । वर्तमान परिस्थिति में यह कार्य आर्यों के लिये अत्यन्त आवश्यकहै । यदि इस दिशा में अब पूर्ण प्रयत्न न किया गया तो हमें भय है कि हमारे देशवासियों का नैतिक स्तर बहुत नीचे चला जाएगा । शरणार्थी भाई बहिनों के कष्ट निवारणार्थ प्रयत्न करना तो प्रत्येक भारतीय को अपना कर्तव्य समझना ही चाहिये ।

काशी विश्वविद्यालय में अनुचित जातिभेदः–

"सार्वदेशिक के जून अङ्कमें पाठकों ने मेरा 'काशी विश्वविद्यालय में वेदाध्ययन की असन्तोष जनक व्यवस्था' इस शीर्षक का लेख अवश्य पढ़ा होगा। उस में मैंने संस्कृत महाविद्यालय के प्रिन्सिपल पं० कालीप्रसाद जी मिश्र के इस आशय के शब्द जो उन्हों ने ३० अप्रेल को मुझे कहे उद्धृत किये थे कि 'वर्तमान नियमों के अनुसार संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश का अधिकार उन सब को है जो इंजिनीयरिंग कालेज आदि में प्रविष्ट हो सकते हैं । स्त्री पुरुष, जातिभेदादि का उस में कोई स्थान नहीं। आप चाहें तो अछूतों को भी प्रविष्ट करा सकते हैं । मैं पण्डितों को सूचित कर रहा हूं कि सबको बिना भेद भाव के पढ़ाना होगा । जो इसके लिये उद्यत नहीं उन्हें विश्वविद्यालय से त्यागपत्र दे देना चाहिये अन्यथा उन्हें हटा दिया जायगा ।" उसी लेख में विश्व विद्यालय के उप कुलपति (प्रो० वाइस चान्सलर) श्री पं० गोविन्द मालवीय जी के ३० अप्रेल की रात को मेरे साथ भेंट में कहे गये इन शब्दों का उल्लेख किया गया था कि 'काशी विश्वविद्यालय की नीति इस समय वेदाध्ययन के सम्बन्ध में किसी प्रकार का भेद भाव न रखने की है। इत्यादि । लेख के अन्त में मैंने लिखा था कि "आशा है काशी विश्वविद्यालय के अधिकारी उपर्युक्त नीति को क्रियात्मक रूप देकर उदार जनता के धन्यवाद के पात्र बन सकेंगे केवल मौखिक आश्वासनों से असन्तोष दूर नहीं हो सकता । धर्मविज्ञान विभाग में भी पौरोहित्य व कर्म काण्ड सीखने के विषय में जो वर्तमान प्रतिबन्ध हैं, वे भी दूर हो जाने चाहियें ।'

गत १७ से २१ जुलाई तक मुझे पुनः बनारस में रहने का अवसर प्राप्त हुआ। काशी आर्यसमाज में "आर्यसमाज का भविष्य कार्यक्रम" युनिवर्सिटी क्लब में डा० अलतेकर जी एम०ए० डी०लिट् अध्यक्ष प्राचीन इतिहास और संस्कृति की प्रधानता में 'वैदिक संस्कृति' और विश्वविद्यालय के रुइया छात्रावास में 'वेदों के महत्व' पर भाषण

देने के अतिरिक्त संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री पं० कालीप्रसाद जी मिश्र, विश्वविद्यालय के उपकुलपति पं० गोविन्द जी मालवीय, कुलपति डा० अमर नाथ जी झा रजिस्ट्रार श्री गङ्गाप्रसाद जी मेहता आदि से मैं मिला। मुझे यह देख कर अत्यन्त दुःख हुआ कि काशी विश्वविद्यालय में जातिभेदादि मूलक अनेक प्रतिबन्ध अभी तक विद्यमान हैं। १८ जुलाई को श्री रामदयालु जी शास्त्री व्याकरणाचार्य, श्री नन्दकुमार जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, श्री व्रजकुमार जी शास्त्री आदि ५ छात्रों और श्रीमती विद्यावती जी अग्निहोत्री और श्री गायत्री देवी जी नमक मध्यमा परीक्षोत्तीर्ण छात्राओं ने पौरोहित्य कक्षाओं में प्रवेशार्थ प्रार्थना पत्र दिया किन्तु संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक पं० काली प्रसाद जी मिश्र ने उसे यह कह कर अस्वीकृत कर दिया कि केवल जन्म से ब्राह्मण पुरुषों का ही इन कक्षाओं में प्रवेश हो सकता है। मैंने

न जात्या ब्राह्मण स्चात्र, क्षत्रियो वैश्य एव न।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो, भेदिता गुणकर्मभिः॥शु०
न योनिर्नापि संस्कारो,न श्रुतं न च सन्ततिः।
कारणानि द्विजत्वस्य, वृत्तमेव तु कारणम्।
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि,ब्राह्मणत्वं स गच्छति॥
न कुलेन न जात्याश क्रियाभिर्ब्राह्मणो भवेत्॥

इत्यादि कई शास्त्रीय वचन इनके सामने प्रस्तुत किये जिनमें, स्पष्ट कहा गया है कि जन्म से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वा म्लेच्छ नहीं है, यह सब भेद केवल गुण कर्म पर निर्भर है। ब्राह्मण कुल में जन्म तथा संस्कारादि मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं बनता। ब्राह्मणोचित सदाचरादि से ही मनुष्य शूद्रकुलोत्पन्न होने पर भी ब्राह्मण बन जाता है। कुल या जाति से नहीं, क्रियाओं या कर्मों से ही मनुष्य ब्राह्मण बनता है इत्यादि। किंतु इनकी शास्त्रीयता स्वीकार करते हुए भी उन्होंने यह कह कर इन्हें उड़ाने का यत्न किया कि इन में कर्म की प्रशंसा मात्र है यद्यपि मैंने इस विचार की निस्सारता उन्हें दिखाई। अन्त में उन्होंने यही कहा कि विश्वविद्यालय के नियम के अनुसार इनका प्रवेश नहीं हो सकता। मैंने उसी दिन १८ जुलाई को १० बजे के लगभग डा० अमरनाथ जी झा वाइस चान्सलर से मिलकर उनका ध्यान इस अनुचित प्रतिबन्ध की ओर आकर्षित किया उन्होंने कहा कि वे छात्र छात्राएं मुझे मिलें तब मैं अन्तिम आज्ञा इस विषय में निकाल दूंगा। उन्होंने यह भी कहा कि आप जानते हैं मैं तो उदार विचारों का हूं। मैंने तथा श्री पं० वीरेन्द्र जी शास्त्री एम० ए० ने जो मेरे साथ गए थे कहा कि हमने आपके उदार विचारों को जानते हुए ही आपसे इस विषय में निवेदन करना अपना कर्तव्य समझा है। जब उन छात्रछात्राओंने वाइस चान्सलर महोदय के पास,अपने नाम भेजे तो उन्होंने २ दिन बाद मिलने के लिये कहा। २१ जुलाई को प्रातः जब उन्होंने डा० झा से मिलने के लिये पत्र भेजा तो उन्होंने रजिस्ट्रार से मिलने के लिये कहला भेजा। उनके यह लिखने पर कि आज आपने हम लोगों को मिलने की १८ ता० को अनुमति देने की कृपा की थी उन्होंने पुनः कहला भेजा कि प्रो० वाइस चान्सलर पं० गोविन्द मालवीय जी से मिलें। मुझे भी उन्होंने इस सम्बन्ध में उन्हीं से मिलने के लिये कहा। उनकी

इस टालमटोल को देख कर हम सब को बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं २० और २१ जुलाई को श्री गोविन्द जी मालवीय प्रो० वाइस चान्सलर हिंदू युनिवर्सिटी से मिला और उनके सन्मुख यह सारा विषय रक्खा। उन्होंने कहा यह सब कार्य केवल हिंदू विश्वविद्यालय को बदनाम करने के लिए किया जा रहा है।

मैंने निवेदन किया कि आपको इस रूप में इस चीज को नहीं लेना चाहिये। हिंदू विश्वविद्यालय में इस प्रकार का भेद भाव और अनुदार नीति नहीं रहनी चाहिए यही लोग चाहते हैं। अनुदार नीति के कारण इसकी बदनामी होती है जिससे सब उदार व्यक्तियों को दुःख होता है। आपको भी इस प्रकार की अनुदारता को दूर करवाने का विशेष प्रयत्न करना चाहिए। इस पर उन्होंने कहा कि वैयक्तिक रूप से मैं उदार विचारों का हूं और चाहता हूं कि ये प्रतिबन्ध न रहें किंतु जो यह आन्दोलन करते हैं वे तो संस्कृत महाविद्यालय को नष्ट करना चाहते हैं। इस कथन का मैंने पुनः प्रतिवाद करते हुए कहा कि हम लोग इसका खूब विस्तार चाहते हैं और यह चाहते हैं कि इसमें अध्ययन करने के लिये सब जातियों और देशों के लोग आयें। तब श्री पं० गोविन्द जी मालवीय कहने लगे कि आप लोग १५-१६ लाख रुपया इकट्ठा करके मुझे दें तब मैं ऐसा संस्कृत महाविद्यालय स्थापित करवा दूंगा जिसमें कोई भेद भाव न हो और पण्डितों से नियुक्ति के समय शर्त करवाली जाये कि वे सबको पढ़ा देंगे। मैंने कहा कि इस विश्वविद्यालय को ही इन विषयों में आदर्श रखना चाहिये। वे कहने लगे कि जब अन्य सब संस्थाओं में इस भेद भाव को हटा दिया जाएगा तब यहाँ भी हट जाएगा। मैंने निवेदन किया कि आपको तो इस विषय में नेतृत्व करना चाहिये न कि अन्यों का अनुसरण। २१ जुलाई को मध्यान्होत्तर जब हिंदू विश्वविद्यालय के केन्द्रीय कार्यालय में मैं उन्हें फिर मिला तब भी उन्होंने उपयुक्त प्रकार के विचार प्रकट करते हुए कहा कि आपको मुझ पर दया करनी चाहिये जिसे दिन रात इतना कार्य करना पड़ता है। यदि किसी और स्थान पर पौरोहित्य सिखाने का सब के लिये प्रबन्ध हो तो मैं भी आर्थिक सहायता दिलाने की यथासम्भव व्यवस्था करूंगा। इत्यादि मुझे ये बातें टालमटोल की प्रतीत हुईं। काशी विश्व विद्यालय जैसी संस्था में इस प्रकार का जातिभेद सर्वथा अनुचित और निन्दनीय है। ५ योग्य छात्रों और २ छात्राओं का पौरोहित्य कक्षाओं में प्रवेश इस आधार पर अस्वीकृत करना कि वे ब्राह्मण कुलोत्पन्न पुरुष नहीं एक अत्यन्त संकुचित जातिभेद मूलक मनोवृत्ति का सूचक है जिसका प्रतिवाद करना प्रत्येक उदार धर्म प्रेमी का कर्त्तव्य है। समस्त आर्य समाजों, आर्य कुमार सभाओं तथा अन्य उदार संस्थाओं को इस अनुदारता सूचक भेद भाव का विरोध डा० अमरनाथ जी झा वाइस चान्सलर हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस के पते पर भेजना चाहिये और उसकी प्रतिसार्वदेशिक सभा कार्यालय देहली तथा समाचार पत्रों में भेजने के अतिरिक्त माननीय श्री पं० जवाहिरलालजी नेहरू प्रधानमन्त्री और माननीय

सरदार बल्लभभाई जी पटेल उपप्रधान मन्त्री भारत सरकार नई दिल्ली के पास भिजवानी चाहिये जिससे उस विषमता का शीघ्र अन्त हो। केन्द्रीय सरकार से हिन्दू विश्व विद्यालय को कई लाख रु० की वार्षिक सहायता मिलती है।

हिन्दू कोड बिल को स्थगित कराने की आवश्यकता:—

हिन्दू कोड बिल में जो केन्द्रीय विधान सभा के आगामी अधिवेशन में प्रस्तुत किया जाने वाला है अनेक विवादास्पद विषय हैं यथा (१) हिंदू पिता की सम्पत्ति में पुत्री को भी पुत्र का आधा भाग मिलना (२)हिन्दू स्त्रियों को पति की सम्पत्ति का पूर्ण अधिकारहोना(३)कई विशेष अवस्थाओं में पति पत्नी के परस्पर त्याग की अनुमति इत्यादि।

हम अभी तो इतना ही लिखना आवश्यक समझते हैं कि इस हिन्दू कोड बिल के विचार को स्थगित कराने का सब संस्थाओं को पूर्णयत्न करना चाहिये। विशेष यत्न करने पर भी संशोधित रूप में इस बिल की प्रतियां उपलब्ध नहीं हो रहीं। अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में इसका अनुवाद भी अभी तक तय्यार नहीं हुआ जिससे संस्कृतज्ञ विद्वान् तथा अन्य विचार शीलसज्जन इस पर विचार करके निश्चित सम्मति बना सकें जिसके लिये बहुत अधिक समय तथा वेद, स्मृति, गृह्य सूत्रादि के अनुशीलन की आवश्यकता है अतः जनता को विचार का पर्याप्त समय दिये बिना इस विषय में शीघ्रता करना हमारे विचार में सर्वथा अनुचित होगा। अभी इसी आशय के प्रस्ताव सब संस्थाओं और समाजों को श्री मन्त्री जी न्याय (कानून) विभाग भारत सरकार नई देहली के पते पर भेजने चाहियें जिससे विद्वानों को गम्भीर विचारार्थ पर्याप्त समय मिल सके।

प्रेमी सार्वदेशिक परिवार से:—

आपको यह ज्ञात होगा कि भारत के विभाजन से जहां आर्य जगत् को भी अनेक प्रकार की हानि उठानी पड़ी है वहां आपके प्रिय सार्वदेशिक पत्र पर उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। पश्चिमी पंजाब और सिन्ध प्रान्त में अनेक आर्यसमाज तथासज्जन सार्वदेशिक के ग्राहक थे जिन के सहयोग से हमें वञ्चित रहना पड़ा। इस क्षति की पूर्ति इसी तरह हो सकती है कि प्रत्येक वर्तमान सदस्य कम से कम ५ नये ग्राहक बनाने का दृढ़ निश्चय कर ले जो कुछ भी कठिन नहीं।

हम अपने सब प्रेमी सज्जनों से अनुरोध करते हैं कि वे 'सार्वदेशिक' की ग्राहक संख्या बढ़ाने और इसकी आर्थिक स्थिति को उन्नत करने में पूर्ण सहयोग देने की कृपा करें।

व्यवस्थापक सा० दे०

——×※×——

Regd. No. D. 159



भाद्रपद सं० २००५ वि० सितम्बर १९४८ ई०	सम्पादक— श्री पं० धर्मदेव जी सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति	मूल्य स्वदेश ५) विदेश १० शि०

विषय-सूची

संख्या			पृष्ठ
१. वैदिक प्रार्थना—	...	....	३०१
२. अध्यात्मसुधा (कविता)—श्री० पं० आनन्दवर्धन जी विद्यालंकार		...	३०२
३. वेद तथा राजनीति के तत्त्व—श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ	...	...	३०३
४. ऋग्वेदीय अश्वमेघ सूक्त—श्री० ब्र० उषर्बुध जी	...	...	३०६
५. मनु के उपदेश (मनुस्मृति और वेद)—श्री० पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय		....	३१५
६. महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी—श्री० पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति,		...	३२०
७. टर्की के सुधार—श्री० पं० रघुनाथ प्रसाद जी पाठक--	...	....	३२५
८ भारतीय समाजवाद—श्री रघुनाथ राय जी एम० ए०	....	...	३२६
९. जागृति-गान (कविता)—श्री प० रुद्र मित्र जी शास्त्री	...	...	३३३
१०. आर्य जगत् –	...	...	३३५
११ आर्य कुमार जगत्— ...	....	...	३४०
१२ साहित्य समीक्षा – ...	...	...	३४३
१३ सम्पादकीय – ...	...	...	३४५

॥ ओ३म् ॥

सार्वदेशिक

* सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष २८ } सितम्बर १९४८ ई०] भाद्रपद २००५ दयानन्दाब्द १२७ { अङ्क ७

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् पश्चात् पुरस्तादधरादुदक्तात् कविः काव्येन परि पाहि राजन् ।
सखे सखायमजरो जरिम्णेऽग्ने मर्तां अमर्त्यस्त्वं नः ॥ ऋ - १०।८७।२१

शब्दार्थः— हे (राजन्) राजाओं के राजन् प्रकाशपुञ्ज परमेश्वर तू (कविः) सर्वज्ञ (काव्येन) यथार्थ ज्ञान प्रदान के द्वारा (पश्चात्) पीछे (पुरस्तात्) आगे (अधरात्) नीचे (उदक्तात्) ऊपर अथवा पश्चिम, पूर्व, दक्षिण, उत्तर (परि) सब ओर से (नः) हमें (पाहि) बचा। हे (सखे) मित्र तू अजरः अजर वृद्धावस्थारहित (सखायम्) अपने मित्र हम भक्तों को (जरिम्णे) वृद्धावस्था पर्यन्त जीने के लिये बचा। हे (अग्ने) ज्ञान स्वरूप (त्वम्) तू (अमर्त्यः) अमर, मृत्यु रहित (नः) हम (मर्तान्) मरने वालों को (पाहि) बचा।

विनय—हे परमात्मन्! आप सर्वज्ञ, अजर, अमर और इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। हम सब आपकी शरण में आते हैं और आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमें सच्चा ज्ञान देकर हमारी सब दिशाओं में रक्षा कीजिये। अज्ञान के कारण

(शेष पृष्ठ ३०३ पर)

अध्यात्म सुधा

चिन्ते !

पं० आनन्द वर्धन जी विद्यालङ्कार

मत मुझ को प्रभु के चिन्तन से
रख तू अलग थलग चिन्ते !
मेरा मन उस ओर लगा है
मेरी ओर न लग चिन्ते !!
तू कहती है—'मैं तो तुम से भिखमंगों की दासी हूँ;
तुम पतिओं के दर्शन ही को रहती हर दम प्यासी हूँ;
पर सजनी, क्या करूं बता मैं, मैं तो हुआ उदासी हूँ;
तू मुझको भजती, मैं भजता वह अनन्त अविनासी हूँ;
उस ही के रस से अन्वित है,
मेरा यह रग रग चिन्ते !
मेरा मन उस ओर लगा है,
मेरी ओर न लग चिन्ते !
सच है, मैं हूँ पतित युगों का, युग युग का भिखमंगा हूँ;
हूँ कंगाल रूप गुण का, कन कन का भूखा-नंगा हूँ;
फिर भी कितना ज्यादह खुश हूं, मैं प्रसन्न हूँ-चंगा हूँ;
क्यों कि प्रिये, मैं उस महान् पावक का एक पतंगा हूँ;
है एकान्त साध्य 'वह' मेरा
मुझे न कर डगमग चिन्ते !
मेरा मन प्रभु ओर लगा है
मेरी ओर न लग चिन्ते !
आना हो तो आ तेरा भी इस्तकबाल करूंगा मैं,
समझूंगा इकबाल उसी का कुछ न मलाल करूंगा मैं,
पिला मुझे भी भक्ति सुधारस आज निहाल करूंगा मैं,
बाधायें आयें आजायें, किंचित् नहीं डरूंगा मैं !
पकड़ लिये हैं अब तो कस कर
मैंने प्रभु के पग चिन्ते !
मेरा मन उस ओर लगा है,
मेरी ओर न लग चिन्ते !

वेद तथा राजनीति के तत्त्व

[ले०—स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ, अध्यक्ष, सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासिवानप्रस्थ मंडल (हरिद्वार), ज्वालापुर

भारत स्वतन्त्र होगया है। जैसी स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है उसके लिए बहुत बड़ा शुल्क देना पड़ा है। असंख्यात जन शूली पर चढ़े हैं, जेलों में सड़े हैं। सैकड़ों गोली से उड़ा दिए गये। कई ग्रामों का चिन्ह तक मिटा दिया गया। स्वतन्त्रता देवी सचमुच बहुत बड़ी बलि लिया करती है।

स्वतन्त्रता आई, किन्तु भारत माता का अङ्ग भङ्ग कराके। भारतवर्ष का बहुत बड़ा भूभाग भारत से काट दिया गया। लाखों निरीह, निर्दोष मनुष्यबालक युवा वृद्ध स्त्री पुरुष—अकारण, किसी अपराध के बिना मौत के घाट उतार दिये गये। यह क्यों हुआ, और इसकी विवेचना करना उपयुक्त नहीं है। भावी तटस्थ ऐतिहासिक कदाचित् इसका विश्लेषण विवेचन कर सके। किंतु इस बात के कहने में कुछ दोष नहीं कि लगभग एक सहस्र वर्ष से हम एक भयङ्कर भूल करते आ रहे थे। उसका यह परिणाम हुआ है।

यदि वर्तमान काल में भारत से पृथक् किया गया भूभाग यदि पूर्ववत् पुनः भारत का भाग न बनाया जा सका तो आने वाली सन्तान भारत के इस स्वरूप को भूल जायगी। इस खण्डित देश को ही सम्पूर्ण भारत मान लेगी। उसे यह कभी सूझेगा ही नहीं कि भारत इससे कहीं बहुत बड़ा था। जैसे आज के साधारण भारतीय को यह ज्ञान नहीं कि आज से सहस्रों वर्ष पूर्व भारत बहुत अधिक विस्तृत था। रामायण और महाभारत के आलोचन से ज्ञात होता है कि वर्तमान ईरान तथा अफ़ग़ानिस्थान भारत के भाग थे। अरब वालों से भारतीयों के विवाहादि सम्बन्ध होते थे। मिश्र तथा अरब के सम्राट् बाणासुर (बनीपाल असुर) की कन्या उषा का विवाह सम्बन्ध महाभारत युद्ध के विख्यात वीर अर्जुन सारथी भगवान् कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से हुआ था। पौराणिक काल में हमारे भारत की पश्चिमोत्तरीय सीमा कश्यप सागर (Caspean Sea)के पश्चिम तट वर्त्ती बाकूनगर तक अवश्य थी। ज्वालामुखी देश का पुरातन मन्दिर वहां है। उसमें संस्कृत शिला लेख विद्यमान है। सन् १६१४ ई० (वि० सं० १९७१) तक वहाँ भारतीय पुजारी भी रहता था। वह मुलतान जिला का निवासी था। वह ज्वाला-मुखी 'बड़ी माई' कहलाती है और कांगड़ी वाली

(३०१ का शेष)

हमें अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। आप ऐसा यथार्थ ज्ञान प्रदान कीजिए जिससे हम आपका आश्रय पाकर सदा निर्भय और निश्चिन्त रहें। आप हमारे सच्चे मित्र हैं। हमें ऐसी शक्ति दीजिए कि हम अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए सर्व हित करके दीर्घायु को प्राप्त करें।

—:—

छोटी माई कहलाती थी। आज यह बात प्रायः सबको विस्मृत हो चुकी है। हमारे प्रमाद के कारण हम समय २ पर धकेले जाते रहे। आज हमें एक और धक्का लगा है और हम कहां आ पहुंचे हैं ! बलोचिस्तान में की हिंगलाज देवी, पेशावर की पञ्चतीर्थी, बन्नू जिले के भरत तथा कैकेई(लक्की)ग्राम,मुलतान की नृसिंहपुरी, शाहपुर जिला का नरसिंह फोहार, झेलम जिला का कटच (कटास) राजतीर्थ, रावलपिंडी के चोहामगाँ, थोहा ? ाजसा तीर्थ आदि पुण्यस्थान विस्मृति के गर्भ में निगीर्ण हो जाएंगे। यह भूलना शुभ नहीं है। अस्तु।

भारत की पराधीनता पर इस काल में ज्ञात इतिहास में जिस व्यक्ति ने सबसे प्रथम शोकाश्रु बहाए हैं, हृदय की वेदना का परिचय दिया है वह एक संसार त्यागी वीतराग योगी था। विक्रम की उन्नीसवीं शती में उस जैसे सुधारक भारत क्या अन्यत्र भी नहीं दीखता। अंग्रेजों के प्रचण्ड आतङ्क से आतङ्कित होकर भारतीय मूक हो रहे थे। उस विकट समय में उस महामनुष्यने स्वदेशीय राज्य को सर्वोत्तम घोषित किया। उनके पुनीत शब्द इस प्रकार हैं —

"अब अभाग्योदय से और आर्य्यों के आलस्य प्रमाद परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की कल्पना का क्या कहना, किंतु आर्य्यावर्त्त में भी आर्य्यों का अखण्ड स्वतन्त्र स्वाधीन निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है, वह विदेशियों के पादाक्रांत होरहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता माता के समान कृपा न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं होता। परन्तु भिन्न भिन्न भाषा, पृथक् २ शिक्षा अलग व्यवहार का छूटना दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।" (सत्यार्थप्रकाश अष्टम समुल्लास पृ० १४१; ८वां संस्करण।)

पराधीनता पर कितना खेद प्रकट किया है॥ विदेशी राज्य की अनुपयोगिता किस मार्मिक रीति से द्योतित की है। स्वराज्य का महत्त्व कितने भव्य शब्दों में आविष्कृत किया है। यह स्मरण रखना चाहिए कि कांग्रेस का तब जन्म भी नहीं हुआ था। जिस महामनुष्य ने भारतीयों को इस युग में स्वराज्य का नाद सुनाया, उसी महात्मा ने अपने दीर्घ तप, विशाल अनुभव और विस्तृत अध्ययन के आधार पर भारतीय जनता को विशेष रूप से और अन्यों को सामान्य रूप से बताया कि "वेदों की ओर चलो"। आज का विकासवादी भी मानवसमाज का हितकर कोई ऐसा सिद्धांत प्रस्तुत न कर सका, जिसका वेदों में उल्लेख न हो। भारतीय परम्परा के अनुसार 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक माना जाता है'। अतः उस महर्षि ने वेदाभ्यास पर बहुत अधिक बल दिया।

यहाँ उस महामनुष्य के महनीय महोपकारों के परिगणन की आवश्यकता नहीं है किंतु उसके

एक अतीव उपयोगी महोपकार की चर्चा करने के लोभ को हम संवरण नहीं कर सकते। महाराज के कार्य्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने से पूर्व एक भारत के महापुरुष की प्रेरणा पर अंग्रेज शासकों ने एक ऐसी योजना या आयोजन कर उसे कार्य्य में परिणत करना आरम्भ कर दिया था कि जिससे भारतीय अपने अतीत गौरवपूर्ण इतिहास को भूल जाएं। दयानन्द प्रथम महामनुष्य है जिसने भारतीयों में जातीय गौरव को जगाया। इनके अन्दर पाश्चात्य शिक्षा, दीक्षा के कारण उत्पन्न हुई हीन भावना को भगाया और अपने पूर्वजों अपनी सभ्यता तथा संस्कृति पर गर्व करना सिखाकर जातीय गौरव की अनुभूति सिखाई। दयानन्द यदि और कुछ न करते, केवल यही कार्य्य कर जाते तो भी आनेवाली सन्तान के कल्याण के लिये यह पर्य्याप्त था। किंतु दयानन्द ने इससे अधिक वेद की ओर लाने का आदेश करके यह बताया था कि तुम उच्छिष्ट सेवी मत बनो। अपने दृष्टिकोण से सभी वस्तुओं और घटनाओं को देखो, विचारो और अपने दृष्टिकोण तथा अपनी संस्कृति की कसौटी के द्वारा उनका मूल्य आँको। यह इतनी बड़ी देन है कि जिसकी समता और कोई वस्तु नहीं कर सकती।

दयानन्द जब तक जिए, इस कसौटी पर सबको कसते रहे और इसी के अनुसार चलाने का उपदेश करते रहे। वे प्रत्येक समस्या का समाधान वेद से प्राप्त करते थे। आज जब देश स्वतन्त्र हो गया है, तब उस स्वतन्त्रता की रक्षा की विकट समस्या उपस्थित है। स्वतन्त्रता को प्राप्त करना इतना कठिन नहीं जितना कि उसकी रक्षा करना। वेद में स्वराज्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है। अथर्व वेद के बारहवें काण्ड का प्रथम वर्ग (सूक्त) राष्ट्र सूक्त या स्वराज्य सूक्त है। वेद में अध्यात्मप्रकरण से उतर कर दूसरा स्थान राष्ट्र का है। ऋग्वेद प्रथम मण्डल का अस्सीवाँ सूक्त स्वराज्य सूक्त है उसके प्रत्येक मन्त्र के अन्त आता है—अर्चन्ननु स्वराज्यम्। * इस प्रकार चारों वेदों में स्थान २ पर राष्ट्र की बहुत चर्चा है।

स्वराज्य के सम्बन्ध में का एक मन्त्र यहां देना अप्रासङ्गिक न होगा।

> आयद्वामीय चक्षसा मित्र वय चास्तिरय"।
> व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥
>
> (ऋ ५। ६६। ६)

अर्थात्—विशाल दृष्टि वाले, परस्पर स्नेह सूत्र से आबद्ध भद्र मनुष्यो! आओ! तुम और हम सब मिलकर विशाल तथा अनेकों से रक्षणीय स्वराज्य के निमित्त यत्न करें।

स्वराज्य को विशाल तथा बहुपाय्य कहा है। बहुपाय्य शब्द मनन करने योग्य है। स्वराज्य की रक्षा किसी एक की साध्य नहीं है। इसके लिए तो राष्ट्र के सभी मनुष्यों का कर्तव्य है। कोई एक टोली चाहे वह कैसी शक्तिशालिनी क्यों न हो, स्वराज्य तथा स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं कर सकती। राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर राष्ट्र के

*इन दोनों तथा एक और सूक्त की विस्तृत व्याख्या के लिए "वैदिक स्वदेशभक्ति" नामक पुस्तक देखनी चाहिए।

स्वत्व तथा ममत्व का भाव उत्पन्न करके उनका सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

अब जब कि स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है यह आवश्यक है कि हम अपनी पुरानी मर्यादाओं का अवलोकन और आलोचन करें कि क्या वे इस समय भी उपयुक्त हैं या नहीं? जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वेद में राजनीति प्रकरण बहुत विस्तृत है। हम यहां दो एक विषयों के सम्बन्ध में निर्देश देना चाहते हैं। सबसे प्रथम राजा के सम्बन्ध में लीजिए। वेद राजा का प्रजा द्वारा चुना जाना विहित करना है। यथा—

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः
प्रदिशः पञ्च देवीः। (अ० ३। ४।२

अर्थात्—तुझे ये व्यवहार कुशल समस्त प्रदेशों में रहने वाली प्रजाएं राज्य के लिए चुनें।

चुनाव के साथ संकेत से चुनाव करने वालों का निर्देश भी कर दिया है। वह समस्त प्रजा को चुनने का अधिकार दे रहा है। जो कदाचित् संसार में कहीं नहीं है। चुननेवालों का थोड़ा सा परिगणन भी वेद ने कर दिया है—

ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान्
कृण्वभितो जनान्॥ (अ० ३। ५। ६)
ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान्
कृण्वभितो जनान् (अ० ३। ५। ७

अर्थात्—जो धीवान् (धीवर), रथकार, कर्मार (शिल्पी लोहकार आदि), मनीषी—बुद्धिमान् अर्थात् अपनी बुद्धि से कार्य करने वाले हैं, अपनी मति का उपयोग करना जानते हैं। जो राजा सामन्त, राजकृत्=राजा को बनाने वाले, सूत=गाथाएं कहने वाले तथा ग्रामणी=समुदायों के नेता हैं, हे पर्ण! उन सबको मेरे चारों ओर उपस्थित रहने वाला बनाओ।

इन मन्त्रों से प्रतीत होता है कि राजा के चुनाव में सभी का अधिकार है। 'ग्रामणी' पद एक विशेष संकेत करता प्रतीत होता है। इस पद से ऐसा प्रतिभासित होता है कि पहले प्रत्येक व्यवसाय संघ अपना २ मुखिया चुनता है, और वे मुखिया फिर राजा को चुनते हैं। मन्त्रों में आया 'मनीषिणः' पद भी बहुत महत्त्व का है। 'मनीषी' का अर्थ है अपनी मनीषा=मनशा का स्वामी। अर्थात् जो अपनी बुद्धि के अनुसार कार्य कर सकता हो; परप्रत्ययनेयबुद्धि न हो न दूसरों के बहकाने में आने वाला हो।

अ० ३।४ में चुनाव में भाग लेने वालों का परिगणन करके अन्त में कहा है—

तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु—वे सारी प्रजाएं एकमत करके, एकमत होकर तुझे चाहें।

राज्याभिषेक करते समय पुरोहित आदि प्रजा के प्रतिनिधि अमात्यवर्ग से कहते हैं—

इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय
महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्ये
न्द्रियाय॥ (य० ६।४०।,

अर्थात्—हे राजनीति व्यवहार कुशल महामनुष्यो! इस चुने जाते हुए राजा को शत्रु रहित बनाकर महान् क्षत्र, महान् उत्कर्ष, महान्

जानराज्य=जनता राज्य तथा राज्यैश्वर्य्य के लिए प्रेरित करो।

इसमें 'जानराज्य' शब्द विचारने योग्य है। जानराज्य का अर्थ है जनता का राज्य=जनतन्त्र [जन है राजा जिसका ऐसा राज्य]।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि वेद स्वेच्छाचारी निरंकुश शासन का प्रतिपादक नहीं है। वेद तो जानराज्य=जनता के राज्य का पक्षपाती है।

इस तत्त्व की पुष्टि यजुर्वेद १०-२८ के निम्न लिखित वाक्य से और अधिक होती है:— इन्द्रासि विशौजाः—हे राजन् ! तू प्रजा के बल वाला इन्द्र है। अर्थात् राजा का मूल-बल प्रजा है। (King derives his powers from the people) कितना स्पष्ट है। पीछे देखने का विरोध करने-वाले संसार के कल्याणकारी इन व्यावहारिक, उपयोगी तत्त्वों के ज्ञान से अपने को तथा जगत् को वञ्चित रखना चाहते हैं।

राजा को राज्यकार्य में सहायता देने तथा उसको नियन्त्रण में रखने के लिए समिति निर्माण का विधान भी वेद में है। राजा को संबोधन करके कहा गया है—

ध्रुवोऽच्युतः प्रमृणीहि शत्रूञ्छत्रूयतोऽधरान् पादयस्व सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीर्ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह ॥ (अ. ६-८८-३) ॥

तू दृढ़ तथा अडिग रह कर शत्रुओं तथा शत्रु जैसा आचरण करने वालों को मार दे, नीचे गिरा दे। तेरी राज्य के सब प्रदेशों में रहने वाली प्रजाएं एक मन वाली तथा मिल जुल कर कार्य्य करने वाली हों। इस राज्य में तुझे दृढ़ रखने के लिए समिति समर्थ हो, शक्ति शालिनी होवे।

ऐसा प्रतीत होता है कि दो सभाएं राजा को परामर्श देने के लिए होनी चाहिए। एक का नाम सभा है दूसरी का नाम समिति है। यथा:—

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने। येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु ॥ (अ ७-१२-१) ॥

अर्थात् प्रजापति की कन्याओं के समान ये सभा तथा समिति एक मत होकर मेरे कार्य को सिद्ध करें, जिसके साथ मेरा मेल हो, वह मुझे शिक्षा दे (अर्थात् राष्ट्र की यथार्थ स्थिति का बोध कराए।) हे राष्ट्रपालको ! जिससे मैं संमेलनों में सुन्दर=ठीक २ बोल सकूं।

क्या यह आजकल की भांति दो धारासभाओं निर्देश है अथवा धारासभा Legislature और समिति Executive का संकेत है, अथवा सभा Civil और समिति Military Council का इशारा है। दो बातें इस मन्त्र में विशेष ध्यान देने योग्य हैं। एक तो सभाओं को प्रजापति की कन्याएं बनाया है। कन्या माननीय होती है। दूसरी यह कि इन दोनों में ऐकमत्य होना चाहिए।

सभाके सम्बन्ध में एक मन्त्र और भी यहां देखना चाहिए:—

विद्मते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि। ये ते के च सभासदस्ते मेसन्तु सवाचसः॥(अ.७।१२

अर्थात्—हे सभे! तेरा नाम हम जानते हैं। तू सचमुच नरिष्टा=जनहितकारणी है। जो कोई तेरे सभासद् हों, वे सब बोलने वाले हों—यथार्थ बोलने वाले हों। गूंगे न हों।

मनु महाराज ने मानो इसी का अनुवाद करते हुए कहा है:—

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम्।
अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्विषी॥
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः॥(८-१३,१४)

धार्मिक मनुष्य को योग्य है कि वह सभा में प्रवेश न करे और जो प्रवेश किया हो तो सत्य ही बोले। जो कोई सभा में अन्याय होते हुए को देखकर मौन रहे अथवा सत्य न्याय के विरुद्ध बोले, वह पापी होता है। जिस सभा में अधर्म से धर्म, असत्य से सत्य सब सभासदों के देखते मारा जाता है, उस सभा में सब मृतक के समान हैं, मानो उसमें कोई भी नहीं जीता।

इसी प्रकार ऋग्वेद ३-३८-६ में तीन सदः=सभाएं=विभाग departments बनाने का विधान है—

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि-
विश्वानि भूषथः सदांसि।

राजा और प्रजाजन मिलकर सुखप्राप्ति के लिए तीन सभाएं बनाएं। जो सब सदः=विभागों का संस्कार करें।

ऋषियों ने इन तीन सभाओं का नाम विद्यार्य्य सभा, धर्म्मार्य सभा, राजार्यसभा बताया है। इस प्रकार वेद में राज्यकार्य्य के सम्बन्ध में मनन करने योग्य अनेक निर्देश हैं। मनुस्मृति में इसके सम्बन्ध में कई अध्याय हैं। जो विषय को विस्तार से देखना चाहें, वे सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठ समुल्लास को ध्यान से पढ़ें। हम ऊपर बता चुके हैं कि राष्ट्ररक्षा के साधनों का भी वेद में वर्णन है। अथर्ववेद के १२। १। १। मन्त्र में राष्ट्रधारण के आठ उपायों का उल्लेख हुआ है। अगली पंक्तियों में उन उपायों की विशद किन्तु संक्षिप्त व्याख्यां है।

वेद सनातन सत्य का उपदेशक है। इस विषय में भी वेद का उपदेश नितान्त और सभी जातियों और देशों एवं राष्ट्रों के लिये हित कर है। लेखक का पूर्ण विश्वास है जो इसका मनन पूर्वक अध्ययन कर इसके अनुसार अनुष्ठान करेगा, अवश्य उसका कल्याण होगा।

हमारे पुरातन नीतिकार भी वेद की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं। यथा—

व्यवस्थितार्य्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः।
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति॥
(कौटिल्य अर्थ शास्त्र विन० ३। २७) अर्थात्—जिस देश में आर्य्य मर्य्यादा सुव्यवस्थित है, वर्णाश्रम की मर्यादा का उचित पालन होता है तथा जिस देश में वेद की रक्षा होती है जहां वेदानुसार व्यवहार होता है वह देश फलता फूलता है, उसका विनाश कभी नहीं होता॥ ✻

✻ लेखक की 'राष्ट्र रक्षा के वैदिक उपाय' नामक अप्रकाशित पुस्तक का आमुख।

ऋग्वेदीय अश्वमेध सूक्त
क्या यज्ञों में पशु हिंसा वेदविहित है

[ले०—ब्रह्मचारी उषर्बुध जी आर्य]

(क्रमागत)

॥१८॥ चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धो-
र्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत,
परुष्परुरनुघुष्या विशस्त ॥ १८ ॥

अनर्थ—(देवबन्धोः) देवताओं के प्रिय (वाजिनोऽश्वस्य) उत्तम बलवान् घोड़े की (चतुस्त्रिंशद्वङ्क्रोः) दोनों ओर की चौंतीस अस्थियों पर (स्वधितिः) तीक्ष्ण शस्त्र (समेति) काटने के लिये आता है, हे यज्ञ कर्त्ताओ ! (अनुघुष्य) अश्व के प्रत्येक अंग २ के काटने की घोषणा करते हुए परुष्परु) उसके प्रत्येक पोरू २, अंग २ को (विशस्त) काटो अर्थात् प्रत्येक हृदय आदि अंग को पृथक् २ काटो, उन अंगों को मध्य २ में से अस्तव्यस्तता से न काटो ।

सत्यार्थः—(देवबन्धोः) विद्वानों के प्रिय (वाजिनोऽश्वस्य) बलवान् अश्व को (स्वधितिः) अपनी, ग्रहण वा धारणशक्ति (चतुस्त्रिंशद्वङ्क्रिः) चौंतीस प्रकार का 'अपनी' स्वाभाविक गति से विशेष' कृत्रिम कुटिल गतियों को (समेति) प्राप्त होती है । अतः उसको गति में कृत्रिमता आने के लिये, (गात्राणि) उसके शरीर के अंगों का (अच्छिद्राणि) छिद्र अर्थात् ऊनता रहित कर (वयुनानि) प्रशस्त वा उत्तम कर्मों, गतियों से युक्त (कृणोत) करो । (परुष्परुरनुघुष्याविशस्त) उसके प्रत्येक अंग २ के विशेष विन्यास के लिये, उसे सिधाने के लिये, (अनुघोष) शब्द सङ्केत पूर्वक आदेश करते हुए, उसको ताड़ना करो ।

/ कार्योपयोग में, अश्वों के, विशेष पादादि विन्यास की आवश्यकता होती है, जिसको कि मन्त्र में कृत्रिम, कुटिल गति=वङ्क्रि शब्द से कहा गया है अश्वों के शरीरों को शक्तिशाला बना कर, उन्हें उस विशेष गति का अभ्यास कराना चाहिये, कि अश्व सञ्चालक के, शब्द सङ्केतमात्र से भी अव यथोचित विन्यास करने लगे । ऐसी Drill करानी चाहिये ।

(प्र०) "वङ्क्रि" शब्द का अर्थ "कृत्रिम, कुटिल किस प्रकार किया जा सकता है ?

(उ०) कृत्रिम वान वङ्क्रिः । वा+म+कृ+त्रि, व+म्+क्+रि इति वर्णलोपे, विपर्यये च निरुक्त्या, वङ्क्रिर्वै कृत्रिमा गतिः । इस प्रकार वङ्क्रिशब्द का अर्थ कृत्रिम 'पदविन्यासादि पूर्वक' कुटिल "सीधी टेढ़ी, ऊंची, नीची" गति है । तथा इस मन्त्र के ऋषि दयानन्द कृत वेदभाष्य में (वङ्क्रि) कुटिला गतिः ।] वङ्क्रि शब्द

का अर्थ कुटिल गति किया गया है।

(प्र०) अश्व के ३४ प्रकार के गतिविन्यासों की कल्पना किस आधार पर है ?

(उ०) देखिये ! महर्षि कृत वेदभाष्य ("चतुस्त्रिंशत्) एतत्संख्याकाः······ (वङ्क्रीः) कुटिला गतीः। में अश्व की चौन्तीस प्रकार की गतियों का वर्णन किया गया है।

(प्र०) वे चौन्तीस प्रकार के गतिविन्यास कौन २ से हैं ?

(उ०) तेषां तीक्ष्णभद्रमन्दवशेन सान्नाह्यमौपवाह्यकं वा कर्म प्रयोजयेत्। चतुरस्रं कर्मश्वस्य सान्नाह्यम्। वल्गनो नीचैर्गतो लङ्घनो धोरणो नारोष्ट्रश्चौपवाह्याः। तत्रौपवेणुको वर्धमानको यमक आलीढप्लुतः पूर्वगस्त्रिकचाली च वल्गनः। स एव शिरः कर्ण विशुद्धो नीचैर्गतः षोडशमार्गो वा। प्रकीर्णकः प्रकीर्णोत्तरो निषण्णः पार्श्वानुवृत्त ऊर्मिमार्गः शरभक्रीडितः शरभप्लुतस्त्रितालो बाह्यानुवृत्तः पञ्चपाणिः सिंहायतः स्वाधूतः, क्लिष्ट श्लिंगितो बृंहितः पुष्पाभिकीर्णश्चेति नीचैर्गतमार्गाः। कपिप्लुतो भेकप्लुतः एकप्लुतः एकपादप्लुतः कोकिलसंचार्युरस्यो बकचारी च लङ्घनः। काङ्को वारिकाङ्को मयूरोऽर्धमायूरो नाकुलोऽर्धनाकुलो वाराहोऽर्धवाराहश्चेति धोरणः। सञ्ज्ञाप्रतिकारो नारोष्ट्र इति॥ कौटलीय अर्थशास्त्र। अध्यक्ष प्रचार, द्वितीयाधिकरण। अध्याय ३०। सूत्र ३५-४२

अर्थात् अश्वों की, तीक्ष्ण, भद्र (मध्यम) तथा मन्दगति के अनुसार, इन्हें सान्नाह्य और औपवाह्य कर्मों में नियुक्त करे, अश्व को शिक्षा देने पर, युद्ध सम्बन्धी प्रत्येक कार्य को सुगमता से करना सान्नाह्य कर्म कहलाता है। औपवाह्य के वल्गन, नीचैर्गत, लङ्घन, धोरण, नारोष्ट्र ये ५ भेद हैं। औपवेणुक, वर्धमानक, यमक, आलीढप्लुत, पूर्वग और त्रिकचाली ये ६ वल्गन के भेद हैं। गति में शिर और कान में किसी प्रकार का कम्पन न हो उस गति को नीचैर्गत कहते हैं, उसके प्रकीर्णक, प्रकीर्णोत्तर, निषण्ण, पार्श्वानुवृत्त, ऊर्मिमार्ग, शरभक्रीडित, शरभप्लुत, त्रिताल, बाह्यानुवृत्त, पञ्चपाणि, सिंहायत, स्वाधूत, क्लिष्ट, श्लिङ्गित, बृंहित, पुष्पाभिकीर्ण ये १६ भेद हैं। लङ्घन के, कपिप्लुत, भेकप्लुत, एणप्लुत एकपादप्लुत, कोकिल सञ्चारी, उरस्य और बकचारी ये सात भेद हैं। धोरण के काङ्क, वारिकाङ्क, मायूर, अर्धमायूर, नाकुल, अर्धनाकुल, वाराह और अर्धवाराह, ये ८ भेद हैं, शिक्षा किये हुए अश्व का, सङ्केतों के अनुसार चलना नारोष्ट्र कहलाता है।

इन आचार्य चाणक्योक्त अश्वगतियों में (१) प्रकीर्णक (२) प्रकीर्णोत्तर (३) शरभक्रीडित (४) शरभप्लुत (५) मायूर (६) अर्धमायूर (७) नाकुल (८) अर्धनाकुल (९) वराह (१०) अर्धवाराह, इस गति भेदों में परस्पर समान दो दो गतिभेदों को परस्पर सम्मिलित कर ५ भेद होकर अश्व के गतिभेद मुख्यतया चौन्तीस है॥

(प्र०) वयुन शब्द का अर्थ, कर्म, गतियों का अभ्यास तथा प्रशस्त किस प्रकार हो सकता है ?

(उ०) वेयुन कस्मात् वेते विपूर्वो गतिविधाय वा नित्या वीतिर्विशेषेण वयुनन्तदुदाहृतम् नित्य यानं विशेषेणेतिवा॥ इस निरुक्ति से वयुनशब्द का अर्थ विशेष गतियों का अभ्यास है। तथा महर्षि दयानन्द

कृत भाष्य के अनुसार ॥ वयुनानि प्रज्ञानानि कर्माणि वा" वयुन शब्द का अर्थ कर्म है। तथा वयुनमिति प्रशस्तनामसु पठितम् । निघण्टौ ३।१६।८।" यास्कनिघण्टु के अनुसार वयुन शब्द प्रशस्त अर्थ का वाची है ॥ १८ ॥

॥ १६ ॥ एकस्त्वष्टुरश्वस्याविशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः। या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ता ता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ १६ ॥

अन्वयः— (एकः) एक (त्वष्टुः) कान्तिमान् (अश्वस्य) घोड़े का (अविशस्ता) काटने हारा है, (द्वौ) दो मनुष्य (यन्तारौ) काटते समय सहायता के लिये, अश्व को पकड़ कर उसे बन्धन में रखने वाले होते हैं, (तथा) और (ऋतुः) ६ व्यक्ति अन्य कार्यों के लिये होते हैं। हे अश्व मैं (ते) तेरे (गात्राणां) शरीर के अंगों में से (ऋतुथा) समयानुसार (यानि) जिन २ अंगों को (कृणोमि) काट कर सम्पादित करता जाता हूं, (पिण्डानान्तानि) शरीर के उन २ अङ्गों की (अग्नौ प्रजुहोमि) साथ ही साथ अग्नि में आहुति देता जाता हूं ॥

सत्यार्थः—(एक) एक व्यक्ति (त्वष्टुरश्वस्य) उत्तम अश्वों का (अविशस्ता) शिक्षक, अश्वों की ताड़ना कर उन्हें सुशिक्षित करने वाला हो, (द्वो यन्तारौ भवतः) दो व्यक्ति अश्व विभाग के नियन्ता हों। (तथा) और (ऋतुः) ६—व्यक्ति अश्व कार्यों के अधिपति हों, हे अश्व, मैं (ते) तेरे (गात्राणां) शरीर क (यानि) जिन २ भागों को (ऋतुथा कृणोमि) गति वा कार्यविशेष के योग्य करता जाता हूं, (पिण्डानान्तानि २) उन्हीं २ को (अग्नौ प्रजुहोमि) कार्यों में दानादान करता हूं, लगाता हूं ॥ अर्थात् वे अश्व जिस २ कार्य के योग्य होते जावें उनको अश्वाध्यक्ष, उसी कार्य में नियुक्त करता जावे। अश्वमेध विभाग के ६ मुख्य अध्यक्ष होने चाहियें, उनका कर्तव्य है कि जो २ अश्व जिस २ अभ्यास के द्वारा, जिस २ कार्य के योग्य हो उसे उसी २ कार्य में विचार पूर्वक नियुक्त कर दिया जावे। योग्यतानुसार कार्य की नियुक्ति की विशेष व्याख्या भी कौटिलीय अर्थ शास्त्र अश्वाध्यक्ष प्रकरण में देखिये। मन्त्र में अग्नि शब्द, धात्वर्थ के आधारपर गति वा कार्य अर्थ का अभिधायक है।

(५०) 'ऋतुथा' शब्द का अर्थ "गति वा कार्यविशेष की योग्यता से युक्त, किस प्रकार हो सकता है।

(उ०) ऋ गतौ। तु वृद्धौ। इत्याभ्यान्धातुभ्यान्निरुक्त्या, ऋशागेर्वोणादिके तद्वृतुः। सवृद्धा गतिः, कार्य प्राप्तिर्वा तिष्ठत्यत्रेति ऋतुथा। ऋतवो वै वाजिनः। शतपथ २-४-४-२२॥ ऋतवो वै गतिमन्तः वाजी वाजाद् वाजो वजतेर्गत्यर्थात् ॥ इस प्रकार "ऋतुथा" शब्द का अर्थ "गति वा कार्य विशेष की योग्यता से युक्त" है ॥१६॥

॥२०॥ मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं
मा स्वधितिस्तन्व आतिष्ठिपत्ते ।
मा ते गृध्नु रविशस्तातिहाय छिद्रा
गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ २० ॥

अन्वयः—हे अश्व ! (त्वा) तुझ (अपियन्तं) स्वर्ग लोक को जाते हुए को (प्रिय आत्मा) तेरा प्रिय आत्मा (मा तपत्) सन्तप्त न करे। तुझे मृत्यु का कोई दुःख न हो, (स्वधितिः) शस्त्र (ते तन्वः) तेरे शरीर पर (मा अतिष्ठिपत्)

ठहरे तेरा शरीर शीघ्र ही छिन्न होता रहे, कोई कठिनता न हो, (गृघ्नुः) कोई मांस का लोभी (अविशस्ता) काटने में अकुशल व्यक्ति (अति हाय) न्यूनाधिकता से (मिथू) व्यर्थ ही (बीच २ में से अनियम पूर्वक) (असिना) तलवार से (छिद्राणि मा कः) न काटे ॥

सत्यार्थः—हे अश्व ! (अपियन्तं) अश्वमेधों में गमन वा कार्य करते हुए, (त्वा) तुझको (ते प्रिय आत्मा) तेरा प्रिय आत्मा (मा तपत्) सन्तप्त न करे, अर्थात् तेरे आत्मा को कोई कष्ट न हो, (ते तन्वः) तेरे शरीर पर कोई (स्वधितिः) शस्त्र (नतिष्ठिपयत्) न स्थित हो, कोई(अविशस्ता) [अविनाशस्ता] भेड़ बकरी आदि पशुओं का मारने वाला हिंस्र व्यक्ति (गृघ्नुः) तेरे मांस का लोभी होकर, अथवा (अविशस्ता) [न विशस्ता] अहिंसक पुरुष भी (अतिहाय) अपने धर्माधिकार का अतिक्रमण वा परित्याग कर (मिथु व्यर्थ (असिना) शस्त्र से तेरे अङ्गों को काट कर (छिद्राणि मा कः) छिन्न भिन्न न कर देवे ॥ अर्थात् पूर्व मन्त्रोक्त अधिकारियों के लिये आवश्यक है, कि वे अश्वों की सुरक्षा का विशेष प्रबन्ध करें, किसी व्यक्ति से उनको हानि न होने पावे, साथ ही इस मन्त्र में पशुहिंसा का निषेध भी कर दिया गया है। कोई हिंसक उनकी हिंसा न करे इसके लिए सुरक्षा का प्रबन्ध आवश्यक है, तथा कोई अहिंसक भी यज्ञ का विशेष कर्म समझ कर "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" के अनर्थ के समान भी हिंसा न करे। मन्त्र के शब्दों की व्युत्पत्ति स्पष्ट है ॥२०॥

॥२१॥ न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि
देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूता
मुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥२१॥

अनर्थः—हे अश्व ! (एतत्) यह " यज्ञ के बलिदान में" (न वा उ म्रियसे) तू न तो मरता ही है, (न रिष्यसि) और न ही तेरी हिंसा होती है, तू तो (सुगेभिः पथिभिः) उत्तम सुगम्य मार्गों से (देवानिदेषि) दिव्यरूप होकर स्वर्ग में देवताओं के समीप जाता है, (पृषती हरी) मरुतों के, तथा इन्द्र वाहन अश्व (युञ्जा ते अभूतां) तेरे रथ में युक्त हुए हैं, (रासभस्य धुरि) कुमारों के वाहक अश्व के स्थान पर भी तेरे रथ में (वाजी) अश्व (उपा-स्थात्) उपस्थित होकर युक्त हुआ है।

सत्यार्थः—हे अश्व ! (न वा उ म्रियसे) न ही तुझे मारा जाता है, (न रिष्यसि) न तेरी हिंसा होती है, न ही तेरा कोई अनिष्ट होने दिया जाता है, (पृषती हरी) [पृषत्यो मरुतां, इन्द्रस्य हरी नित्यएतावादिष्टोपयोजननामसु । अन्तरिक्ष-लोको वै मरुतः । शत०प० । ६ ।४१ । ६ आदित्यस्य हरयः सुपर्णा आदित्यरश्मयस्ते यदामुतो ऽर्वाञ्चः पर्यावर्तन्ते सहस्थानादुदकस्यादित्यादथ पृथिवी व्युद्यते । निरुक्त दैवतकाण्ड । ७ । २४ । इन्द्र... इन्दे द्रवतीतिवा, इन्दौ रमत इति वा, इन्धे भूता-नित्रा, इदं करणादित्याग्रयणः, इदं दर्शनादित्यौ पमन्यवः, इन्दतेरैश्वर्यकर्मणः इन्दञ्छत्रूणां दारयिता वा द्रावयिता वा, आदरयिता वा यज्वनाम् निरुक्त दै० का। १० । ८ । पृषत्यो मरुतान्तावत् अन्तरिक्षे पृषां निषीदन्ति, यावस्ते पृषत्यो रुताम् ।] अन्तरिक्षस्थ वायु, तथा सूर्य की आगमन और परिवर्तन शील द्विविध रश्मियां तेरी तीव्रगति के कारण, मानो (ते युञ्जाव-

भूतां) तेरी जाड़ी की हो गई हैं, तथा (वाजी) ऐसा अश्व (रासभस्य धुरि) सञ्चालक के शब्द सङ्केतमात्र के आधार पर [शब्दार्थोऽसुधातो रासभः ।] (उपास्थात्) उपस्थित अर्थात् कार्य के लिये उद्यत हो जाता है। (उपतिष्ठति व्यत्ययः।)

अश्वों की गति वायु और सूर्य किरणों के समान तीक्ष्ण हो, वे इतनी उत्तमता से सिखाये गये हों, कि उनके लिये सञ्चालक का शब्द सङ्केत मात्र ही पर्याप्त हो । साथ ही इस मन्त्र में भी पूर्व मन्त्रवत्, पशु-हिंसा का निषेध किया गया है ॥ २१ ॥

॥२॥ सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः
पुत्रानुत विश्वापुषं रयिं ।
अनागास्त्वन्नो अदितिः कृणोतु क्षत्रन्नो
अश्वो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥

सत्यार्थः—इस प्रकार (अदितिर्विगता) जीवित, न काटा गया अश्व, 'अश्वमेध का मूल साधन होने से" (नः) हम (पुंसः) मनुष्यों को (सुगव्यं) उत्तम गौवें (स्वश्व्यं) उत्तम पशु (पुत्रान् पुत्रादि तथा (विश्वापुषं रयिं) उत्तम पोषक शक्ति (उत) और (अनागास्त्व) पापरहितता (कृणोतु) करे। (हविष्मानश्वः) [सम्बन्धे मतुप् ।०] यह अश्वमेध सम्बन्धी अश्व (नः) हमारे (क्षत्र वनतां क्षत्रिय धर्म को उत्पन्न करे ।

इस मन्त्र का अनर्थ विशेष नहीं है ॥

सङ्गतिकरण भावार्थ;

॥१८॥ १८वें मन्त्र के प्रसङ्गानुसार सूक्त के १८वें मन्त्र में अश्व की कार्योपयोगिता का वर्णन किया गया है, अश्वों को कार्यों के उपयोगी बनाने के लिए उन्हें विशेष प्रकार का गति विन्यास Drill कराना आवश्यक है। उसके मुख्यतया चौन्तीस भेद हैं, जिनके अभ्यास के बिना, वे अश्व सभी कार्यों के लिये अनुपयुक्त होते हैं, उनके प्रयोग से युद्धों में पराजय की सम्भावना रहती है। अतः अश्वों का ताड़न कर, तथा अन्य विधियों से उनका अभ्यास इतना परिपक्व कर देना चाहिये कि वे अपने सञ्चालक के शब्द सङ्केत मात्र से ही यथोचित विन्यास करने लगें, अश्वों की यह शिक्षा भी अश्वमेध का एक मुख्य अङ्ग है ॥१६॥ राजा अश्वमेध कार्यों के लिये भिन्न २ अधिपति नियुक्त करे। उन अश्वाध्यक्षों का कर्त्तव्य है, कि जो २ अश्व, उत्तम, मध्यम, निकृष्ट भेद से, जिस २ योग्यता तथा शिक्षा का हो, उसे विचार कर कार्यों में नियुक्त करें ॥ २०, २१ ॥ नियुक्त अधिकारियों के लिये आवश्यक है कि वे अश्वों की सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करें, किसी व्यक्ति से उनको किसी प्रकार की हानि न होने पावे, साथ ही मन्त्रों में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है, कि कोई व्यक्ति अश्वमेध के तात्पर्य के भ्रम में आ कर यज्ञ में पशुहिंसा न करने लगे। अतः यज्ञों में पशुबलि का निषेध कर दिया गया है, ॥ २२ ॥ सूक्त के अन्तिम मन्त्र में, अश्वमेध का मुख्य लक्ष्य, तथा अन्तिम परिणाम वर्णित है ॥ इति ॥

[टिप्पणी] पूर्वगत अङ्कों में इस लेख के तीन भाग पाठकों के समक्ष उपस्थित किये जा चुके हैं, सूक्त के शेष ४ मन्त्र प्रस्तुत लेख में उपस्थित हैं, और यह अश्वमेध सूक्त यहां समाप्त होता है, यह अश्वमेध सत्य वेद के बहुत अधिक विवादास्पद सूक्तों में से है, अतः

पूर्व लेखों में, जिन विवादास्पद शब्दों की निरुक्ति तथा अर्थ प्रदर्शित किये गये हैं, उनके विषय में कुछ वेद के विद्वान् कुछ अधिक प्रमाणों की आवश्यकता का अनुभव कर रहे हैं. ऐसा मुझे ज्ञात हुआ है, जैसा कि इससे पूर्व अर्थात तृतीय लेख पर श्री पू० सम्पादक जी की टिप्पणी से स्पष्ट है, वस्तुतः उन शब्दों की व्याख्या के लिये, कुछ अन्य प्रमाणों की आवश्यकता है ही, तथा सूक्त के विषय में अन्य भी स्पष्टीकरणों को आवश्यकता है. तथा कुछ अन्यविद्वानों के (जिनके, कि ऋषि-सिद्धान्त के सर्वथा विपरीत विचार के अनुसार वेदार्थ के लिये निरुक्त का सर्वथा अप्रामाण्य है) लिये सन्तोष जनक व्याख्या आवश्यक है. अतः ये सभी स्पष्टीकरण इससे अग्रिम दो लेखों में उपस्थित कर दिये जावेंगे । वेद के विद्वानों से प्रार्थना है, कि वे इसकी प्रतीक्षा करें। तथा साथ ही यह भी प्रार्थना है, कि जिन विद्वानों को मेरे इन लेखों पर, वा अश्व मेध सूक्त के महर्षि दयानन्द कृत भाष्य पर कोई आपत्ति हो, तो कृपया, इस प्रस्तुत चतुर्थ लेख के प्रकाशन के पश्चात् दो सप्ताह के भीतर ही "सार्वदेशिक" के श्री सम्पादक जी के पास अथवा (श्री प गुरुदत्त जी शर्मा वैद्य, आर्य्य औषधालय पो० विजयगढ़ जि० अलीगढ़) मेरे नाम रजिस्ट्री पत्र द्वारा सूचित करने का कष्ट करें। उनका समाधान भी साथ ही कर दिया जावेगा ॥

(क्रमशः)

मनु के उपदेश
[२]
मनुस्मृति और वेद

(लेखक:— श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय एम. ए.)

मनुस्मृति की सब से बड़ी विशेषता यह है कि वह न केवल वेदों के अनुकूल ही है अपितु वेदों को समस्त धर्मों का आधार मानती है। महाकवि कालीदास ने उपमा देते हुये कहा था—

'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्'

अर्थात् स्मृति को श्रुति के अर्थों का अनुगामी होना चाहिये। यह बात जितनी मनुस्मृति पर घटित होती है अन्य किसी स्मृति पर नहीं। इसके कई कारण हैं। मनुस्मृति प्राचीनतम स्मृति है, और इसका वर्तमान उपलब्ध श्लोक बद्ध रूप भी मनु के उन सूत्रों के आधार पर है जो अत्यन्त प्राचीनकाल में लिखे गये होंगे। वह समय वास्तविक वैदिक युग के अत्यन्त निकट रहा होगा। उस समय वेदों का मान जाति के मध्य में अधिक होगा। कहते हैं कि जैसे जैसे युग बदलता है स्मृति भी बदलती रहती है। यह स्वाभाविक है। नेता लोग समय की प्रगति को देखकर स्मृतियों में परिवर्तन कर लेते हैं। पिछली स्मृतियों की भी यही गति हुई। परन्तु इनमें से बहुत सी स्मृतियां ऐसे समय बनाई गईं जब वैदिक धर्म का सर्वथा लोप हो चुका था और उसके स्थान पर पौराणिक भेद भाव ने अपना आधिपत्य कर रक्खा था। वेदों का पढ़ना, उनके अर्थों को समझना और उनके अनुकूल आचरण करना सर्वथा लुप्त हो चुका था। यह वह युग था जब लोग समझते थे कि वेद सतयुग के लिये बने थे, इस समय उनका उपयोग नहीं। या वेद उन लोगों के लिये बने थे जो करामाती पुरुष थे। वे बिना अग्नि के साधनों के यज्ञों के लिये अग्नि जला सकते थे। पशु को मारकर जिला सकते थे। स्वर्ग को जा सकते थे या देवताओं को बुला सकते थे। यह वह युग रहा होगा जब स्वर्ग और मर्त्य लोक के मध्य का मार्ग अवरुद्ध नहीं हुआ था और देवगण स्वच्छन्द रीति से यहां आया जाया करते थे। अब कलियुगी लोगों में यह सामर्थ्य नहीं कि वेदों के अर्थों को समझ सकें। इन मिथ्या विचारों के प्रचार ने वेदों और वैदिक संस्कृति का महत्त्व घटा दिया। परन्तु मनुस्मृति को देखने से ज्ञात होता है कि मनु वेद को ही अपने उपदेश का आधार मानते हैं। देखिये—

यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥
(२।७)

अर्थात् मनुने जो कुछ और जिस किसी का धर्म बताया है वह वेद में दिया हुआ है। वेद तो सर्व ज्ञान का भण्डार ही है। इसका यह भी अर्थ हो सकता है।

कि मनुजी वेदों के ज्ञाता थे। उनको सब धर्मों का ज्ञान था। वह जानते थे कि वेद ही धर्म का मूल है अतः उन्होंने वेद के आधार पर ही अपने उपदेश दिये।

इससे पहले श्लोक में कहा गया है—
वेदोऽखिलो धर्ममूलम् स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचार श्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥
अर्थात् धर्म का मूल वेद हैं, या वेद के जानने वालों की स्मृति तथा शील भी, इस के अनुसार साधुओं का आचार और अपनी आत्म संतुष्टि।

यहां वेद को धर्म का मूल कहा। उन्हीं की स्मृति तथा शील को धर्म बताया जो वेदज्ञ हैं वही साधु हैं। अतः उन्हीं का आचार ठीक धर्म कहा जा सकता है। आत्म-तुष्टि की कसौटी भी उन्हीं लोगों को ठीक हो सकती है जो वेदज्ञ हैं, क्योंकि आत्म-तुष्टियां के प्रकार तो भिन्न भिन्न हैं। वेद-मर्यादा द्वारा सुशिक्षित और संयत आत्मा की तुष्टि ही लोगों के लिये धर्म के विषय में प्रामाणिक हो सकती है। मनुष्य की मनोवृत्तियाँ भिन्न भिन्न हैं। कोई एक वस्तु से सन्तुष्ट है कोई दूसरी से। सन्तोष वास्तविक और दिखावटी दोनों प्रकार के हो सकते हैं। इसलिये इस श्लोक का मूलाधार भी वेद को ही समझना चाहिये।

आगे के श्लोकों में इसी बात पर बल दिया है:-
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् (२।९)
अर्थात् जो श्रुति और स्मृति के अनुकूल आचरण करता है वह इस लोक में कीर्ति वो अवश्य पाता है और मरकर मोक्षसुख को लाभ करता है।

श्रुति क्या है ? इसके लिये स्पष्ट उत्तर है:—
श्रुतिस्तु वेदः विज्ञेयो......(२।१०)

मनु महाराज को वेद की अवहेलना सह्य नहीं है। वह इस अवहेलना को समाज के पतन का हेतु समझते । अतः उन्होंने लिखा है:—

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥(२।११)

अर्थात् जो कुतर्क का सहारा लेकर वेद और स्मृति धर्म के मूलों की अवहेलना करता है वह साधुओं अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों के समाज के योग्य नहीं हैं। क्यों कि वह नास्तिक और वेदों का निन्दक है। वह समाज को भ्रष्ट करेगा।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि वेदों की अवहेलना करके विद्वानों ने समाज को कितना भ्रष्ट किया। चारवाक आदि अच्छे तार्किक थे। परन्तु उनकी सबसे बड़ी गलती यह थी कि उन्होंने धर्म के मूल वेद को काटने का यत्न किया और वेदों के विषय में अनेक प्रकार के भ्रम फैलाये जिससे लोगों को वेदों से उपरति हो गई। परन्तु इसके बदले में मिला क्या ? केवल शुष्क तर्क। लोगों ने अदृष्ट और परोक्ष आत्म-तत्व को भुला दिया। इससे आचार-अनाचार का भी भेद मिट गया। इन्द्रिय जन्य स्थूल सुख को ही सुख समझा जाने लगा। ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् की दुन्दभि बजने लगी। जिससे इन्द्रियों को सुख मिले वही काम करना चाहिये। आत्म तत्त्व और आत्म ज्ञान ढोंग हैं। इस शिक्षा से भोगवाद बढ़ गया। वर्तमान युग का भी यही हाल है। अब भी भोगवाद ही प्रधान है इसी लिये संसार में शांति होने नहीं पाती। लोग प्रायः मनु पर असहिष्णुता का दोष देते हैं कि वेद के निन्दक को बहिष्कार्य कहा। परन्तु लोग यह नहीं सोचते कि आचार और अनाचार के

मूलका प्रसङ्ग है। बिना आचार के कोई समाज चल ही नहीं सकता। जिसने आचार को नष्ट कर दिया वह समाज कैसे चलेगा? जिस समाज में यह चलन हो कि यदि अच्छा लगे तो सच बोलो। यदि सुविधा हो तो चोरी मत करो। यदि ऋण बिना चुकाये मौज कर सकते हो तो करो, यदि धोखा देने से उपभोगों की सामग्री प्राप्त हो सकती है तो करो, उस समाज की नय्या आज न डूबी तो कल अवश्य ही डूबेगी। इस लिये मनु महाराज ने जो उपदेश दिया वह ठीक ही है। जिस को आप आज वेदनिन्दक कहकर नहीं अलग करते उसे आप कल चोर जारी या अन्य अपराध में अलग करेंगे। आप किसी को शराब से न रोके परन्तु जब वह नशे में आपका ही सिर फोड़ने लगेगा तब तो आप की सहिष्णुता भी पलायमान हो जायगी।

आगे जो धर्म के चार लक्षण बताये उन में वेद को सब से पहला दर्जा दिया:—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच् चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।
(२।१२)

अर्थात् वेद, स्मृति, सदाचार और आत्म-तुष्टि-यह चार धर्म के साक्षात् लक्षण हैं। इस सम्बन्ध में अगला श्लोक तो अपूर्व महत्त्व का है। इससे मानव जाति की मनोवैज्ञानिक निर्बलताओं का पूरा पूरा विश्लेषण होता है। मनु महाराज ने यह ऐसी गजब की बात कही है कि इसकी प्रशंसा वर्णनातीत है। वह लिखते हैं:—

अर्थ कामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥ (२।१३)

अर्थात् धर्म का ज्ञान उन्हीं को होता है जो अर्थ और काम में फंसे हुये नहीं हैं जो अर्थ अर्थात् धन के लालच में फस जाता है या जो कामान्ध है उसे धर्म का मार्ग सूझता ही नहीं। कहा भी है कि 'कामान्धो न पश्यति' अर्थी दोषं न पश्यति। संसार में जितने अधर्म हुये हैं वे इन्हीं दोनों कारणों से हुये हैं। अधर्म-युक्त सिद्धान्तों का प्रचार भी इन्हीं कारणों से हुआ है। बड़े बड़े विद्वान् अर्थ के लोभ में अशुद्ध व्यवस्थायें दे बैठते हैं जिससे लोगों को भविष्य में भी अधर्म करने की प्रवृत्ति हो जाती है। संसार का और विशेष कर धर्म संस्थापकों का इतिहास बताता है कि काम के जाल में फंस कर उन्होंने अनेक कुरीतियों को धर्मानुकूल बता दिया और वे दीर्घकाल के लिये संसार में प्रचलित हो गईं। मनुजी कहते हैं कि धर्म की जिज्ञासा करने वालों के लिये वेद परम प्रमाण है। परन्तु है उन्हीं के लिये जो धर्म के जिज्ञासु है। अर्थ और काम में फंसा हुआ तो धर्म का जिज्ञासु नहीं हैं। उसे तो अधर्म का जिज्ञासु कहना चाहिये। जैसे एक अपराधी उसी वकील के पास दौड़ता है जो झूठ सच बोलकर उसे दण्ड से छुड़ा सके, इसी प्रकार लोभी या कामी ऐसे धर्म को ही पसन्द करता है जिस में उन जैसे मनुष्यों का गुजारा हो सके। जो अधर्म का जिज्ञासु है उस के लिये वेद कभी परम प्रमाण नहीं हो सकते। अर्थ लोलुप और काम लोलुप तो धर्म के नाम से डरता है। उस के

मन में धर्म के लिये कोई आदर नहीं। वह वेद को पढ़ कर क्या करेगा। हां शायद ढोंग करके किसी को धोखा देने के लिये बगलाभगत भले ही बन जावे।

वेद के धर्म होने पर कितना बल दिया है उसके लिये नीचे का श्लोक देखियेः—

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना।
यस्तर्केणानुसुधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥१२।१०६॥

अर्थात् जो वेद का अविरोधी और तर्क से सिद्ध है वही धर्म है अन्य नहीं। पाठकगण (नेतरः) पर ध्यान देवें। कितनी प्रबल तथा महत्त्वपूर्ण बात है।

इसी लिये तो कहा—

वेदमेव सदाभ्यस्येत् तप स्तप्स्यन् द्विजोत्तमः।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते।
(२। १६६)

अर्थात् ब्राह्मण का कर्तव्य है कि तप करता हुआ वेदों का अभ्यास करे। तप की शर्त इसलिये लगाई कि लोभी और कामी को धर्म आवेगा ही नहीं। वह तो धर्म में प्रवृत्ति ही नहीं रखता। यदि वह वेद पढ़ेगा भी तो सांप के मुख में दूध के समान विष ही बनायेगा। केवल तोते के समान वेद पढ़ने से तो काम नहीं चलता। इस भाव को स्पष्ट करते हुए कहते हैं:—

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥
(२। ६७)

जो दुष्ट स्वभाव का मनुष्य है वह तो वेद को सफलता पूर्वक पढ़ नहीं सकता।

मनु जी की वेदों पर इतनी श्रद्धा थी कि जब तक कम से कम एक वेद न पढ़ले, वह नर या नारी को विवाह का अधिकारी नहीं समझते थे। वे लिखते हैं:—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्॥ (३।२)

अर्थात् चारों वेदों, दो वेदों या कम से कम एक वेद को अवश्य ही ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर के समाप्त करे तभी वह मनुष्य विवाह का अधिकारी हो सकता है।

इतना ही नहीं। आगे का श्लोक और भी आगे जाता है:—

वेदयज्ञै रहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु।
ब्रह्मचार्याहरेद् भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतो ऽन्वहम्॥
(२। १८३)

अर्थात् ब्रह्मचारी उन घरों से भिक्षा मांगे जहां वेद जानने और यज्ञ करने वाले रहते हों। ब्रह्मचारी को धर्मात्मा बनना है, यदि वह निन्दनीय स्थानों का अन्न खायगा तो उसके आचार पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इस बात को वह लोग नहीं समझ सकते जो परोक्ष और अदृष्ट आत्मतत्त्व पर विश्वास नहीं रखते। वे रासायनिक नियमों द्वारा यह तो देख सकते हैं कि जिस खाने में कृमि न मिले हों जिसमें उचित विटेमिन की मात्रा पर्याप्त हो वह अन्न पुष्टिकर होता है। परन्तु रासायनिक और आयुर्वेदिक दृष्टि से जो अन्न सर्वथा शुद्ध है परन्तु जो चोरी रिश्वत आदि से प्राप्त हुआ है उसके अहितकर होने में किसी को विश्वास नहीं होता। यदि कोई चोर हलवा चुराकर लावे और मुझे खिलावे तो मैं समझता हूं कि उसकी चोरी तो हलवे में

चिपटी नहीं है फिर उसको खाने में क्या हानि। परन्तु सत्य यह है कि अशुद्ध रीति से उपार्जित अन्न भी अनाचार उत्पन्न करता है। ब्रिटिश राज्य के युग में एकसाइज अर्थात् शराब आदि के कर से शिक्षा विभाग का व्यय दिया जाता था। शायद यही कारण हो कि भारतीय शिक्षा विभाग ने कभी उन्नति नहीं की। और हमारे बहुत से धार्मिक कार्य्य इसलिए नहीं चलते कि उनमें खोटी कमाई का रुपया लगा है।

आगे का लेख देखियेः—

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महा यज्ञक्रिया क्षमा।
नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि॥
(११। २४५)

अर्थात् शक्ति, अनुसार वेदाभ्यास तथा महायज्ञ और क्षमा महापातकों को भी नष्ट कर देते हैंः—

यथैधस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात्।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं हन्ति वेदवित्॥१२।२४६

अर्थात् जैसे आग फूंस को जला देती है वैसे ही वेद का जानने वाला अपने ज्ञान से पाप को भस्म कर देता है।

इसीलिये कहा किः—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः।२।१६८॥

जो वेद न पढ़कर अन्य बातों में श्रम करता रहता है वह इसी जन्म में शूद्र होजाता है। अपने परिवार के साथ भी।

इसका तात्पर्य यह है कि वेद का पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। वेद पढ़कर मनुष्य और जो चाहे पढ़े। उस के परिपक्व मन पर कुछ बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा। परन्तु जिसने वेद को न पढ़ा वह तो कच्चा लोहा है। इस लिये

वेद मेवाभ्यसेन् नित्यं यथाकालमतन्द्रितः।
तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते॥४।१४७॥

अर्थात् ब्राह्मण का धर्म यही है कि आलस्य को छोड़कर सावधानी के साथ वेद पढ़े अन्य सब तो गौण धर्म है।

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रा ञ्जिघांसति॥
(५।४)

वेद को न पढ़ने, आचार को छोड़ने, आलस्य तथा अन्न के दोष से मौत मनुष्य को खा जाती है अर्थात् उसका सर्वनाश होजाता है।

मनु के इन उपदेशों से स्पष्ट हो गया कि मानव धर्म शास्त्र का मूलाधार वेद है। मनुस्मृति का प्रचार वैदिक संस्कृति को पुनर्जीवित करेगा। अतः मनुस्मृति का पाठ लोगों को अवश्य करना चाहिए।

(क्रमशः)

महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी

(स्वराज्यादि विषयक विचारों का तुलनात्मक अनुशीलन)

(लेखक— पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति सं० मन्त्री सार्वदेशिक सभा, प्रधान भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद्, देहली)

महर्षि दयानन्द को साधारणतया लोग एक धार्मिक नेता व समाज सुधारक के रूप में देखते हैं किन्तु वस्तुतः वे जिस सत्य सनातन वैदिक धर्म का उद्धार करना चाहते थे उसके अन्दर राजनीति का भी समावेश होने के कारण स्वराज्य का महत्त्व उस की प्राप्ति के साधन स्वरूपादि विषयों पर उन्होंने जितना प्रकाश अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश तथा आर्याभिविनय में डाला उतना अन्य विद्वानों के ग्रन्थों में कहीं भी मिलना बड़ा कठिन है उदाहरणार्थ स्वराज्य की आवश्यकता, महत्त्व तथा विदेशी राज्य के दूर करने के उपाय इत्यादि विषयक निम्न उद्धरण में उनके ग्रन्थों से देना यहां पर्याप्त समझता हूं। सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने बड़े दुःख के साथ लिखा:—

'अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या करनी, किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र स्वाधीन निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्ष पात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न २ भाषा पृथक् २ शिक्षा, अलग २ व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इस के छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।" (सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास)।

उपर्युक्त उद्धरण में स्वराज्य का महत्त्व जितने प्रबल शब्दों में बताया गया है उसकी उपमा कहीं भी मिलनी असम्भवप्राय है। ऐसे समय में जब कि श्री दादा भाई नौरौजी जैसे देशभक्त भी अंग्रेजों के राज्य को ईश्वरीय देन मानते थे महर्षि दयानन्द ने सन् १८७५ में न केवल वे स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य वाक्य लिखे थे बल्कि यह भी लिखा था कि:—"जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, तभी आर्यावर्त वा अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणी वर्तते थे क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई से अन्न, रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं

के मारने वाले अल्पज्ञानी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है।"

(सत्यार्थ प्रकाश दशम समुल्लास)

महर्षि दयानन्द स्वराज्य के लिये इतने अधिक आतुर थे कि आर्याभिविनय नामक प्रार्थना ग्रन्थ में 'इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व' इस यजु ३८ । १४ के आधार पर प्रार्थना करते हुए उन्हों ने लिखा:— 'हे महाराजाधिराज परब्रह्मन् ! अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धर्म, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुण युक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर। अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।' (आर्याभिविनय । २ । ३)

"ऋजुनीती नो वरुणः" इस ऋ० ११६ । १७।१ आधार पर प्रार्थना करते हुवे महर्षि दयानन्द ने लिखा:—

'हे महाराजाधिराज परमेश्वर ! आप हमको सरल कोमलत्वादिगुणविशिष्ट चक्रवर्ती राजाओं की नीति को कृपादृष्टि से प्राप्त कराओ। हम को भी सत्य विद्या से युक्त सुनीति दे के साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिए। हे कृपासिन्धो भगवन् ! हम पर सहाय करो जिससे सुनीति युक्त हो के हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े। (आर्याभिविनय कपूर ट्रस्ट संस्करण पृ०५३)

जिस स्वराज्य शब्द के विषय में यह समझा जाता था कि इसका राजनैतिक अर्थ में प्रयोग सबसे पूर्व श्री दादा भाई नौरोजी ने सन् १९०६ में कांग्रेस मञ्च से किया वस्तुतः सन् १८७५ के लगभग उसका प्रयोग महर्षि ने किया था।

विदेशी राज्य होने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए महर्षि ने लिखा--"विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मत भेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण वेद विद्या का अप्रचारादि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई २ लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पञ्च बन बैठता है। आपस की फूट से कौरव पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो हो गया परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयङ्कर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ा कर दुःखसागर में डुबा मारेगा। उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे स्वदेश विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चल कर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राज रोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाए।" (सत्यार्थ प्रकाश समु १०)

इन शब्दों में परस्पर विरोध को दूर कर के सच्ची एकता स्थापित करने के लिये जो मार्मिक अपील की गई है उसे और मान्य लेखक की हार्दिक वेदना को सहृदय पाठक स्वयम् अनुभव कर सकते हैं। महर्षि दयानन्द प्रजातन्त्रवादी थे। वे राजा की सभापति के रूप में वैधानिक स्थिति को मानते थे। सत्यार्थप्रकाश के षष्ठ समुल्लास में राज धर्म और प्रजा धर्म पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा कि 'एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिये किन्तु राजा जो सभापति तदधीन सभा, सभाधीन राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे। यदि ऐसा न करोगे तो प्रजा से

स्वतन्त्र राज वर्ग राज्य में प्रवेश कर के प्रजा का नाश किया करेगा।' महर्षि दयानन्द ने वेदादि सत्य शास्त्रों के आधार पर राजा के चुनाव की विधान किया है उसे आनुवंशिक नहीं माना।

महात्मा गांधी जी के विचारः—

पूज्य महात्मा गांधी जी के विचार भी इन विषयों में महर्षि दयानन्द जी से बहुत अधिक समानता रखते हैं।

महात्मा गांधी जी ने यङ्ग इण्डिया के २३ जनवरी १९३० के अङ्क में महर्षि दयानन्द के ८ म समुल्लास के शब्दों का ही मानों अनुवाद करते हुए लिखा था कि 'Good government is no substitute for self-government'' अर्थात् अच्छा राज्य स्वराज्य का स्थान नहीं ले सकता। एक दूसरे लेख में उन्होंने लिखा था कि 'अब हमारे भाई समझ जायेंगे कि स्वराज्य क्या वस्तु है तो कौन माई का लाल है जो उसे रोक सके?' स्वराज्य के बिना अब भारत में शान्ति आना असम्भव है। जिस जाति में स्वराज्य की लहर पैदा हो जाती है उस जाति में जीवन के सभी कार्यों में एक प्रकार की जागृति हो जाती है। स्वराज्य की पहली सीढ़ी आपके भीतर है। कहावत है कि 'भीतर जगे तो सब जगे।' यदि हम अन्तःकरण से व्यस्त हैं, यदि हम अपनी कामना पर शासन नहीं कर सकते, यदि हम भटक रहे हैं, यदि हम दूसरों को ही अपना शासक बनाये बैठे हैं तो ऐसी अवस्था में स्वराज्य हमारे लिये निरर्थक है। स्वराज्य की पाठशाला में आत्म संयम, आत्म-निर्भरता, आत्मसुधार और आत्म निरीक्षण पहला पाठ है। (महात्मा गांधी के व्याख्यानादि, संग्राहक-श्री रामचन्द्रवर्मा गान्धी हिन्दी पुस्तक भंडार बम्बई पृष्ठ १०६)

महात्मा गांधी जी के स्वराज्य के आदर्शादि विषयक विचारों को संक्षेप से 'गान्धी विचार-दोहन- श्री किशोरलाल मशरूवाला कृत' के अनुसार जो अधिकतर महात्माजी के अपने शब्दों में हैं यों कह सकते हैं। अंग्रेजी उद्धरणों से बचने के लिये ये वाक्य दिये जा रहे हैं।

१. रामराज्य स्वराज्य का आदर्श है इसका अर्थ है धर्म का राज्य अथवा न्याय और प्रेम का राज्य अथवा अहिंसक स्वराज्य या जनता का स्वराज्य।

२. जनता के स्वराज्य का अर्थ है—प्रत्येक व्यक्ति के स्वराज्य से उत्पन्न जनसत्तात्मक राज्य। ऐसा राज्य केवल प्रत्येक व्यक्ति के नागरिकता के नाते उसका जो धर्म है उसका पालन करने से ही उत्पन्न होता है।

३. वह करोड़ों का और करोड़ों के सुख के लिये चलने वाला राज्य होता है उसके विधान में जिसे मुख्य अधिकारी की जगह मिली होगी वह राजा कहलाता हो, अध्यक्ष कहलाता हो या कुछ और कहलाता हो, वह प्रजा का सच्चा सेवक होने के नाते ही उस पद पर होगा। प्रजा के प्रेम से वहां टिकेगा और उसके कल्याण के लिये ही प्रयत्न करता रहेगा।

४. उस में सब धर्म, सब वर्ण और सब वर्ग समान भाव से मिल जुलकर रहेंगे और धार्मिक झगड़े या क्षुद्र स्पर्धा, अथवा विरोधी स्वार्थ सरीखी चीज ही न होगी।

५. उस राज्य में स्त्री का पद पुरुष के समान ही होगा।

६, उस में लोग केवल लिख पढ़ सकने वाले ही न होंगे बल्कि बल्कि सच्चे अर्थ में शिक्षा पाये हुये होंगे— अर्थात् उन्हें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये जो मुक्ति देने वाली और मुक्ति में स्थिर रखने वाली हो।

(गांधी विचार दोहन पृ. ६४—६५)

६. स्वराज्य में मर्यादा और बन्धन के अन्दर हर योग्य आदमी को हथियार रखने की इजाजत रहेगी। दूसरों के आक्रमण के खतरे में ही इसका कारोबार नहीं चलेगा। अतः वह सेना और साधन तैयार रखेगा कि अकल्पित आक्रमण या वैसी परिस्थिति में हुये पहले हमले को रोक सके और पीछे आवश्यक हो ही जाय तो देश को तेजी के साथ तैयार कर लेने की आशा रक्खेगा।

७. स्वराज्य में अगर देश की सेना से जनता को खुद ही भयभीत रहना पड़े और उसी पर सैनिकों की गोलियां चलें तो वह स्वराज्य या रामराज्य नहीं बल्कि शैतान का राज्य होगा। सत्याग्रही का धर्म उस राज्य का भी विरोध करना होगा।

८. देश का सिपाही प्रजा का मित्र हो, प्रजा की आपत्ति के समय के लिये प्राण देने वाला हो तो वह क्षत्रिय है, पर यदि वह प्रजा को डराने वाला और शरीर या शस्त्र के बल से उसे पीड़ित करने वाला हो तो वह लुटेरा है। यदि राज्य की ओर से उसे आश्रय मिलता हो तो वह लुटेरों का राज्य है।" इत्यादि

("गान्धी विचार दोहन" पृ. ७४)

विचार शील पाठक महात्मा गांधी जी के इन विचारों की महर्षि दयानन्द के विचारोंसे अद्भुत समानता का स्वयम् अनुभव कर सकते हैं।

जिस प्रकार महर्षि दयानन्द ने राष्ट्र की उन्नति तथा समस्त देशवासियों में परस्पर प्रेम और ऐक्य उत्पन्न करने के लिये आर्य भाषा (संस्कृत-निष्ठहिंदी) की आवश्यकता को अनुभव किया था वैसे ही गांधी जी ने किया था। दिसम्बर सन् १६१६ में लखनऊ में राष्ट्रीय महा सभा (कांग्रेस) के अधिवेशन के अवसर पर काशी के एक महाराष्ट्रीय सज्जन ने महात्मागांधीजी से भेंट करते हुए यह प्रश्न पूछा था कि 'क्या आप यह आवश्यक समझते हैं कि राष्ट्रीय सभा का कार्य राष्ट्र भाषा हिन्दी में ही हुआ करे ?' महात्माजी ने उत्तर दिया— जरूर। हिन्दी भाषा में जब तक सब सार्व जनिक कार्य नहीं होगा तब तक देश की उन्नति नहीं हो सकती। राष्ट्रीय सभा में जब तक राष्ट्रभाषा द्वारा ही सब काम न हों तब तक स्वराज्य नहीं मिल सकता।"

(महात्मा गांधी के व्याख्यानादि पृ. ११०)

महर्षि दयानन्द के समान ही महात्मा गांधीजी ने भी अनुभव किया था कि हमें स्वराज्य की सच्चे अर्थ में प्राप्ति के लिये सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक, शिक्षा विषयक सर्वतोमुखी जागृति की आवश्यकता है। इस विषय में महात्मागांधी जी ने एक भाषण में कहा था कि "Fight for Swaraj means, not mere political awakening, but an allround awakening—social, educational, moral, economic and political."

(Quoted in Teachings of Mahatma Gandhi Edited by Jog Prvaesh Chandra P. S. 541)

अर्थात् स्वराज्य के लिये युद्ध का अर्थ केवल राजनैतिक जागृति नहीं किन्तु सर्वतोमुखी जागृति है सामाजिक शैक्षणिक, नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक। महर्षि दयानन्द ने शुद्ध स्वदेशी को पूर्णतया अपनाया और उसको न केवल सत्यार्थ प्रकाश अपितु अपने शिष्य राजाओं को आदेश द्वारा पूर्ण प्रचार किया था। महात्मा गांधी ने यंग इन्डिया के २ अप्रेल १६२५ के अङ्क में लिखा था कि

'Hindu Muslim Unity and Khaddar and removal of un-touchability are to me the foundation for Swaraj.

अर्थात् हिन्दू मुस्लिम एकता, खद्दर और अस्पृश्यता निवारण ये मेरे विचार में स्वराज्य के मूलाधार हैं। इनमें खद्दर और अस्पृश्यता निवारण के विषय में महर्षिदयानन्द के विचार महात्मा गांधी के समान थे। वे भी समस्त देशवासियों में एकता चाहते थे। सर सय्याद अहमद खान जैसे मुसलमान नेताओं और पादरी स्कॉट आदि ईसाइयों से उनकी घनिष्ठ मित्रता थी किन्तु उनकी एकता का मार्ग कुछ पृथक् था। सबसे प्रथम ऐक्य सम्मेलन देहली में सन् १८७७ में उन्होंने ही करवाया था। वे सच्ची हार्दिक एकता मनोवृत्ति में परिवर्तन कराकर उत्पन्न करना चाहते थे जिस किसी तरह से उनको मांगों को पूरा करके नहीं। यही दोनों महात्माओं के राजनैतिक विचारों में विशेष अन्तर था। शेष फिर)

टर्की के सुधार

(लेखक— श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक)

टर्की उन देशों में से है जिनका काया-पलट राजनैतिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से वर्तमान पीढ़ी के कौतूहल और आश्चर्य का विषय रहा है। टर्की उन्नत कहे जाने वाले यूरोपीय राष्ट्रों का पड़ौसी है। अब से लगभग २५ वर्ष पूर्व यूरोप के सभ्य राष्ट्र उसको यूरोप का रोगी व्यक्ति कह कर उसके पिछड़ेपन का परिचय दिया करते थे। परन्तु आज वही रोगी पडौसी अभिमान से अपना मस्तक ऊंचा किये हुए है। उसके वही पडौसी राष्ट्र उसकी मित्रता सम्पादन करने के लिये लालायित और यत्नशील देख पड़ते हैं।

टर्की को अज्ञानांधकार से निकाल कर प्रकाश में और उसको शक्तिशाली राष्ट्र बनाने वाला कौन था? वह था कमाल पाशा, जिसका नाम और यश भूमडल में व्याप्त है। टर्की में क्या २ राजनैतिक और सामाजिक सुधार हुए हैं यह बड़ा विस्तृत विषय है। और इन सुधारों के सम्बन्ध में समय २ पर समाचार पत्रों में बहुत कुछ प्रकाशित होता रहा है फिर भी उनकी चर्चा करना मनोरंजक होगा।

शासनारूढ होने पर "कमाल" ने सब से पहले लोगों की शिक्षा पर ध्यान किया। उसके लिये यह कार्य बड़ा परिश्रमसाध्य और दुरूह था। उन दिनों राज्य स्थित जैसी वस्तु को कोई जानता न था। शिक्षा का समस्त कार्य रूढ़िवादी मौलवियों के हाथ में था और 'कुरान' की आयतों की शिक्षा देना ही उनका एक मात्र कार्य था। अतः कमालपाशा के सामने दो समस्याएं उपस्थित हुईं। एक तो जन सधारण को शिक्षित बनाना और दूसरा यथासंभव अधिक से अधिक शिक्षित तैयार करना। इन दोनों समस्याओं के साथ साथ भाषा की बाधा भी उग्र और जटिल रूप में उसके सामने उपस्थित हुई। उन दिनों तुर्की भाषा अरबी लिपि में लिखी जाती थी। कमाल ने इस बाधा के निराकरण का दृढ़ संकल्प करके इस पुरानी लिपि को रद्द करने की घोषणा की और उसके स्थान में रोमन वर्णमाला का सूत्रपात किया (१६२८ ई० । इस घोषणा के उपरान्त वह स्वयं देश भर में घूमा। "चाक" उसके हाथ में रहती थी और वह लोगों को नई वर्णमाला का प्रयोग सिखाता फिरता था। बात की बात में लोगों के जोवन में अपूर्व काया पलट हो गयी। समस्त नागरिक, स्कूलों में पढ़ने भेजे गये और उन्हें नई लिपि में अभ्यस्त किया गया। यद्यपि आज भी बड़ी आयु के तुर्क नई लिपि को सुचारु रूप में पढ़ने में कठिनाई अनुभव करते और पुराने अक्षरों का प्राइवेट रूपसे प्रयोग करते हैं। इतना होने पर भी भाषा को सरल बनाने का कार्य कमाल को करना शेष रह गया था जो उसकी दृष्टि में नितान्त आवश्यक था। इसके दो कारण थे। एक तो वह कि सुल्तानों के शासन

काल में पढ़े लिखे लोगों की भाषा अरबी फारसी और तुर्की इन तीन भाषाओं का संमिश्रण थी जब कि जन साधारण की बोल चाल की भाषा नितान्त भिन्न और बेढंगी थी। दूसरा कारण यह था, कि पढ़े लिखे लोगों के संबोधन के ढंग, लच्छेदार वाक्य और कठिन व्याकरण ये सब कमाल को वर्तमान युग में अनुपयोगी देख पड़ते थे। उसने भाषा की शुद्धि के लिये एक समिति बनाई और जिन शब्दों का मूल अरबी फारसी थी उनके स्थान में प्रामाणिक अरबी शब्द रखने का कार्य उस समिति के सुपुर्द किया गया यह समिति अब भी अंकारा में अपना कार्य कर रही है। इस समिति के यत्नों के फल स्वरूप भाषा बहुत सरल हो गई है और नई तुर्की भाषा का जन्म होकर उसमें साहित्य भी तैयार हो गया है। इसी नयी भाषा में राज्य विधान परिवर्तित रूप में प्रकाशित हुआ है और लगभग ५० या ६० नये शब्द सरकारी व्यवहार में प्रचलित हो गये हैं। इस शिक्षा प्रसार के कारण साधारण कोटि के तुर्कों में केवल अपने देश के मामलों में अपितु विदेश के मामलों में भी दिलचस्पी उत्पन्न हो गई है। वहाँ का साधारण किसान भी वर्तमान तुर्की की उन्नति गामिनी भावना से प्रभावित हो उठा है। वह लिखने पढ़ने में आशातीत उन्नति करता हुआ अपने व्यवसाय से सम्बद्ध नये २ आविष्कारों और सुधारों को जानने और उनसे लाभ उठाने आगे रहता है। वहाँ स्थान २ पर बिना पढ़े लिखे परन्तु उत्सुक लोगों के समूह दृष्टि गोचर होते हैं जिन्हें स्कूल के बच्चे अखबार पढ़ कर सुनाया करते हैं। यदि आप मोटर या रेलगाड़ी में सुनसान देहातों में से गुजरें तो आपको छोटे २ बच्चे भीख माँगते देख पड़ेंगे। परन्तु आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि वे बच्चे पैसे अथवा खाने की चीज नहीं माँगते प्रत्युत दैनिक समाचार पत्रों के ताजे अङ्क मांगते हैं। यहां तक कि वे पुराने अङ्कों को भी स्वीकार कर लेते हैं।

खिलाफत का अन्त

कमाल के शासनारूढ होने से पूर्व राज्यसत्ता और धार्मिक सत्ता ये दोनों सुल्तान के हाथ में रहती थीं। सुल्तान राजा होने के साथ २ लोगों का धर्म गुरु (खलीफा) भी था। समस्त मुस्लिम जगत् खलीफा के सम्मानित पद 'खिलाफत' का सम्मान करता था। कमाल ने सुल्तान के पतन के साथ २ इस "पद" का भी अन्त कर दिया था। उपयुक्त समय जानकर वह एक कदम और आगे बढ़ा। उसका सदैव यह विश्वास रहा था कि "इस्लाम" उन्नति का शत्रु है और वास्तव में उसने बहुत कुछ सिद्ध कर दिखाया था। उसके सुधारों का मतान्धों द्वारा विरोध होना स्वाभाविक था और हुआ भी। अत्याचार करने से उसे जितनी घृणा थी उससे अधिक घृणा अन्ध विश्वास से थी। इसलिये उसने इस्लाम को राज धर्म के पद से च्युत करके राज्य को साम्प्रदायिकता के विष से शुद्ध करके राज के अधार्मिक स्वरूप को अपनाया था। उसने मुसलमानों के शरियत कानून का पहले से ही अन्त करके (१९२६) उसके स्थान पर स्विटजरलैंड के कानून को प्रतिष्ठित कर दिया

था। इस प्रकार राज्य द्वारा समस्त धर्मों के प्रति सहिष्णुता की गारंटी उपस्थित की गई।

पर्दे का अन्त

टर्की की महिला शताब्दियों से पर्दे में, पहरे में और एकाकी जीवन व्यतीत करती चली आ रही थी। कमालने उसे इस अपमान जनक पतित स्थिति से निकालकर प्रकाश और स्वतन्त्रता की ज्योति दिखाई, और समाज में उसे समानता का अधिकार दिलाया। १६२३ में ही बहु-विवाह की प्रथा नष्ट कर दी गई थी। १६३४ में उसे राष्ट्र सभा की सदस्यता का अधिकार दिया गया। आज टर्की की महिलायें राज्य में एक बड़ी शक्ति सिद्ध हो रही हैं।

शासन सुधार

आजका तुर्की उस शासन प्रणाली से शासित हो रहा है जो स्वरूप में तो जनतन्त्रीय है परन्तु व्यवहार में एक बड़ी सीमातक एकतन्त्रीय है। इस तथ्य के बावजूद हमें उन परिस्थितियों को सामने रखना चाहिए, जिनके कारण 'तानाशाही' का उद्भव हुआ। टर्की पुराने रीति रिवाजों और अयोग्य शासन के भार से इतना अधिक दब गया था कि बिना क्रान्ति के उसकी मुक्ति का कोई उपाय रह नहीं गया था। मुस्तफा कमाल शारीरिक शक्ति का प्रयोग करने के लिये बाधित हुआ और इसमें सन्देह नहीं इसी शक्ति के बल पर उसने अपनी शक्ति को स्थिर रक्खा। अपनी प्रजा को शासन के कार्य में शिक्षित करने के लिये उसने कई बार प्रजातन्त्र देशों की पार्टी प्रणाली पर अपना विरोधीदल कायम करने की चेष्टा की। वह कहा करता था कि "मैं तानाशाह हूं" परन्तु इसलिए कि टर्की को दूसरे ताकाशाहों की आवश्यकता न पड़े परन्तु उसकी यह योजना सफल न हुई। विरोधी दल ने विरोध करने के स्थान में बाधायें उपस्थित कीं। काम रोका गया, झगड़े खड़े किये गये, और उपद्रव कराये गये।

टर्की के बहु सख्यक लोग यह न जानते थे कि 'विरोधी दल' कितना ही प्रभावशाली क्यों न हो, सहायक सिद्ध हुआ करता है। अतः कमाल को 'प्रजा पार्टी' के द्वारा ही शासन चलाना पड़ा। यह पार्टी १६४५ तक टर्की की एक मात्र राजनैतिक पार्टी रही। अपने परीक्षण की असफलता पर बोलते हुये, कमाल ने घोषणा की, "जब तक मेरी प्रजा अपने पैरों पर खड़ी होकर रास्ता न पहचानेगी तब तक मैं उसका हाथ पकड़कर रास्ता दिखलाता रहूंगा। जब लोग अपना नेता चुन कर अपना शासन स्वयं कर सकेंगे। उस समय मेरा काम समाप्त होजायगा।

प्रजा पार्टी ने प्रत्येक कस्बे में "प्रजागृह" स्थापित किये हैं जहां राजनैतिक शिक्षण साथ २ लोगों को संगीत, कला, प्रारम्भिक चिकित्सा (First Aid) भाषाओं की शिक्षा दी जाती है, और बिना पढ़े लिखे लोगों को पढ़ना लिखना सिखलाया जाता है। इन गृहों में बड़े २ सभा-भवन और पुस्तकालय भी होते हैं। प्रत्येक प्रजा-गृह का सभापति होता है। जो कस्बे का प्रभावशाली व्यक्ति तथा डाक्टर इत्यादि होता है।

शासन की दृष्टि से टर्की "विलायतों" में विभाजित है। इस समय वहाँ ६३ विलायतें हैं

और प्रत्येक विलायत एक गवर्नर के आधीन है जिसका प्रजा पर बहुत अधिकार होता है। ये विलायतें ४४४ काजाज में बटी हुई हैं काजाज महियस में। एक शक्तिशालिनी सुसज्जित सेना के संचालन के कारण केन्द्रीय सरकार ने प्रजा पर बड़े भारी कर लगाये हुए हैं इसके कारण प्रजा का जीवन मंहगा होगया है। देश में वर्दी और सफेद पोश पुलिस की भी अच्छी व्यवस्था है। टर्की में विदेशी जासूसों की प्रगतियों का बहुत भय रहता है इसलिये वहां एक अच्छी पुलिस की व्यवस्था अत्यन्तावश्यक समझी जाती है। २० वर्ष की आयु के प्रत्येक नागरिक को अनिवार्य सैनिक शिक्षण प्राप्त करना होता है जो साधारणतः ३ वर्ष तक चलता है। सैनिक शिक्षण के साथ २ बौद्धिक शिक्षण भी दिया जाता है तथा उद्योग धन्धे भी सिखाये जाते हैं। यदि सैनिक अल्प संख्यक वर्ग अर्थात् असुरिअम होता है तो उसको मजदूरों की पलटन में भर्ती होने के लिए विवश होना पड़ता है और उसको हथियार नहीं दिये जाते।

इस सामाजिक नियन्त्रण के साथ २ टर्की के नागरिकों को स्वतन्त्र भाषण और प्रेस के अधिकार प्राप्त हैं। इन अधिकारों को प्राप्त करके भ उसको राज्य को उलटने का न तो साहस ही होता है और न इच्छा। क्योंकि वे अनुभव करते हैं कि राज्य ने उन्हें आत्म सम्मान प्रकाश और उन्नति के असीम अवसर प्रदान किये हैं। टर्की की साधारणतया समस्त और विशेषतः अङ्गोरा और इस्तम्बोल को संवाद समितियाँ पत्रकार कला की उच्चतम मर्यादाओं का पालन करने के लिये प्रसिद्ध हैं। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि टर्की के प्रत्येक कस्बे में अपने २ छोटे २ समाचार पत्र प्रकाशित होते हैं। टर्की की पुस्तकें सस्ती होती हैं और विदेशी पुस्तकों की बड़ी मांग रहती है। यद्यपि नई लिपि को जारी हुए २० वर्ष से कम हुए हैं, तथापि इस लिपि में पुरानी पुस्तकों, हस्त लेखों, इत्यादि के प्रकाशन का आश्चर्यजनक कार्य हो चुका है।

यह स्वीकार करना होगा कि इन सुधारों को पृष्ठ भूमि और प्रेरणा स्रोत पश्चिम की संस्कृति है और न जाने इसमें स्थायित्व की क्षमता है या नहीं फिर भी यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि शताब्दियों से अविद्यान्धकार में पड़े और सदियों से बिछड़े हुए टर्की के उत्थान के लिये 'कमाल' ने कमाल ही कर दिखाया है। इसके लिये उसे जितना साधुवाद दिया जावे दिया थोड़ा ही है।

हम भारत वासी राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के पुण्य वेला में राष्ट्र निर्माण के कार्य में उस महानुभाव के जीवन से, उसके कार्य से, और टर्की के उत्थान से बहुत कुछ अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं परन्तु हमें अन्ध अनुकरण से बचना होगा। राजनैतिक और आर्थिक विकास के साथ २ हमारा नैतिक एवं सामाजिक विकास कुंठित न हो यह सावधानी बर्तनी होगी। सदाचार जाति का आभूषण होता है। भारतवासी अपने चरित्र बल के लिये जगद्-विख्यात हैं। अतः नव निर्माण की प्रत्येक योजना में इस बल की रक्षा और उसमें वृद्धि करना हमारा एवं हमारे नेताओं का सर्वोपरि कर्तव्य होगा।

भारतीय-समाजवाद

(लेखक—श्री रघुनाथ राय जी एम० ए०)
(बौद्धिक नगर नायक, आर्य वीर दल कानपुर)

—:०:—

आधुनिक युग वादों का युग समझा जाता है जहाँ अनेक प्रकार के समाजवादी सिद्धान्तों पर वाद विवाद शुरू होता है, भारतीय-समाजवाद भी एक विषय बन जाता है। भारतवर्ष विशेष रूप से इन "वादों" का क्षेत्र बनता जा रहा है। क्या इस पवित्र भूमि में भारतीय समाजवाद टिक सकेगा, एक विकट प्रश्न है। वर्तमान शिक्षित समाज के अध्ययन का विषय बाह्य देशों के समाजवादी सिद्धान्त हैं। उन्हीं के अनुकूल भारतीय समाज की रचना भी करना चाहते हैं। भारतीय संस्कृति की प्रेमी जनता तीव्रगति से बदलते युग को देखकर निराश है। किन्तु, क्या निराशा से इसका समाधान हो जायगा ?

भारतीय समाजवाद क्या है? संसार के अन्य प्रचलित समाजवादी सिद्धान्तों से इसमें क्या विशेषता है। भारतीय समाजवाद कैसे स्थापित होगा? ये प्रश्न स्वाभाविक रूप से मस्तिष्क में आते हैं। उनका समाधान करना प्रत्येक भारतवासी का परम कर्तव्य है।

भारतीय समाजवाद का सूक्ष्म स्वरूप वर्णाश्रम धर्म है। भारतीय संस्कृति एवं इतिहास से सम्बन्धित प्रत्येक भारतवासी जानता है कि व्यक्तिगत जीवन के चार प्रमुख अङ्ग हैं। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास। आश्रम धर्म के व्यावहारिक सिद्धान्तों से भारतीय साहित्य भरा पड़ा है। इसके अनुसरण करने वाले ऐतिहासिक पुरुषों की कमी नहीं है।

भारतीय-समाजवाद के अन्तर्गत, सामाजिक-जीवन के अर्थात् गृहस्थ जीवन के चार प्रमुख अङ्ग माने गये हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र। इन चारों वर्णों को मिलाकर समाज का शरीर बनता है। भगवान् वेद के शब्दों में—ब्राह्मण, समाज के उस विराट् स्वरूप का मुख है, क्षत्रिय भुजा, वैश्य उदर और और शूद्र पैर है। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में इन चार प्रमुख अङ्गों का बराबर महत्व है, कोई किसी से नीच ऊंच नहीं है। उसी प्रकार समाज के ये चार अङ्ग बराबर महत्त्व रखते हैं। इनमें एक में भी त्रुटि होने से समाज बलहीन हो जायगा। समाजरूपी भवन की ये चार दीवारें हैं जिन पर वैदिक समाजवाद—भारतीय समाजवाद का भव्य भवन खड़ा होगा। इस प्रकार का वर्ण-भेद केवल भारतीय समाज में ही नहीं पाया जाता बल्कि संसार के अन्य राष्ट्रों में भी वर्तमान है। भारत वर्ष में तो पशु, पक्षी एवं वनस्पति जगत् में भी वर्ण-भेद की तथा कथित चर्चा होती है। सत्य तो यह है कि गुण कर्म स्वभाव से वर्ण-भेद का सार्वभौम होना अनिवार्य है।

वर्णाश्रम धर्म केवल कल्पना की वस्तु नहीं है। प्राचीन भारत के इतिहास में वर्णाश्रम धर्म

को कार्यरूप में परिणत करने का प्रयास किया गया था। भारतीय इतिहास का उज्वल-युग वैदिक युग-सत्य युग उसी युग की स्मृति है। आज भी करोड़ों नर नारियों को उस युग के प्रति आदर है। उस युग के आदर्शों को पूर्ण करना भारतीय इतिहास का एक मात्र लक्ष्य रहा है। भारतीय संस्कृति के अनन्य भक्त महात्मा तुलसीदास ने भी लिखा:—

वर्ण धर्म नहिं आश्रम चारी।
श्रुति विरोध रत सब नर नारी॥

आधुनिक युग में महर्षि दयानन्द जी ने भारतीय-समाजवाद के सिद्धान्त का पुनः वैज्ञानिक रूप से प्रतिपादन किया। बुद्धि की कसौटी पर वर्णाश्रम धर्म को व्यक्ति तथा समाज के लिये इतना लाभ प्रद सिद्ध करना महर्षि के तप और त्याग का परिणाम है।

महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की। समाज स्थापित करने में महर्षि का क्या उद्देश्य था? क्या वे चाहते थे कि आर्य समाज एक संस्था बने और एक साधारण संस्था की भांति कार्य करते हुए पतनावस्था को प्राप्त हो जाय? नहीं, महर्षि की सात्विक अभिलाषा थी कि आर्य समाज, वैदिक समाजवाद की व्यवस्था में विलीन होकर एक आदर्श समाज बन जाये।

प्रत्येक जाति अपने कार्य के अनुकूल आचरण कर केवल भारत वर्ष में ही नहीं किंतु समस्त भू मण्डल में आर्य समाज की स्थापना हो। भगवान् वेद के शब्दों में—कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का भी यही अभिप्राय है।

आज से ७३ वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द जी ने उस समाज की स्थापना की। किंतु आज भारत वर्ष में सर्वत्र आर्य समाज नहीं बना। राजा से लेकर श्रमिक तक भारतीय समाजवाद के अनुकूल नहीं चलते हैं। यह गुरुतर कार्य भार वर्तमान भारत के समस्त नर नारियों के कन्धों पर है।

भारतीय-समाजवाद की स्थापना के साधन क्या हैं?

१—महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य-समाज युग के कार्य को अपने हाथ में ले। आर्य समाज की सदस्यता केवल उन व्यक्तियों की हो जो अपने व्यक्तिगत जीवन में आश्रम धर्म मानने का दृढ़ संकल्प कर चुके हों।

आश्रम के अनुकूल समाज में सत्य और सेवा के आधार पर अपना कार्य करते हों। इस प्रकार संख्या में थोड़े आर्य व्यक्तियों के अनुभव के आधार पर भारतीय समाजवाद का संगठन होगा। वर्ण धर्म का भेद स्वयं स्पष्ट हो जायगा। यह कार्य विवाद से ऊपर उठकर कर्मशील व्यक्तियों के द्वारा ही सुलभ है।

२—भारतीय-समाजवाद के सिद्धान्तों के अनुकूल समाज को वर्तमान आर्थिक समस्याओं को सुलझाना चाहिये। केवल लेखनी या वाणी से कार्य नहीं होगा, बल्कि समाज के श्रमजीवी वर्ग से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ेगा।

३—समाज को शिक्षा-प्रणाली, शासन-प्रणाली एवं समाज की विभिन्न समस्याओं पर अपना निश्चित मत स्थापित करना चाहिये।

४—देश एवं विदेश में प्रचलित अनेक समाजवादी सिद्धान्तों का निष्पक्ष तुलनात्मक अध्ययन,

करना चाहिये। देश-विदेश में प्रचार का सुलभ प्रबन्ध होना चाहिये।

४—आर्य समाज को समस्त शक्ति भारत के ग्रामों में लगा देनी चाहिये। भारतीय समाज-वाद का शुद्ध स्वरूप ग्रामों में ही मिलता है।

आशा है भारतीय-समाजवाद को कार्यरूप में लाने के लिये सहस्र नर-नारी अपना सर्वस्व बलिदान कर देंगे। भारतवर्ष में स्थापित होने के पश्चात् समस्त संसार में स्थापित करने की स्थापना हो सकती है।

———

स्वतन्त्रता दिवस की पुण्य स्मृति में:—

जागृति गान

(रचयिता— पं० रुद्र मित्र जी शास्त्री विद्यावारिधि 'कमलेश')

जागा, आज भारत जागा !
जागा, आज मानव जागा !
जाग उठा भारत जननी का सुख सौभाग्य सुहागा ॥

(१)

जागी मानव की मानवता, मानव-मन में आयी ।
जागी ज्योति जुगों के पीछे जीवन की छवि छायी ॥
जाग उठी है भव्य भावना, मन में प्रीति समाई ।
जाग उठी नन्दन वन में मुरली लतिका हरषाई ॥
जाग उठा नव राष्ट्र विधाता, जगा स्वराज्य सुरागा ॥

(२)

दीख रही प्राची में सुन्दर, ऊषा की प्रिय झाँकी ।
सुख सौरभ मय नव प्रभात ने, जिसकी कीमत आँकी ॥
हुआ प्रात उस घनी रात के पीछे मधुमय वेला !
आज खेलती है आंगन में स्वतन्त्रता अठखेला ॥
बिखर रहा है सुरभित जग में पावन प्रेम-परागा ॥

(३)

अमर साधना आज मनुज की हुई तपस्या पूरी ।
"कर्मवीर की क्रिया शीलता होती नहीं अधूरी" ॥
हुवे स्वतन्त्र सुमन्त्र सिद्धि से स्वतन्त्रता है पायी ।
भारत की जय जय ध्वनि नभ से देती आज सुनायी ॥
मिटा देश का दैन्य भाव, दारुण दुख दानव भागा ॥

(४)

जुग जुग की जकड़ी जीवन की सबल श्रृंखला टूटी।
सदियों की कृत्रिम मानस की बाँधी मेखला टूटी॥
"जन्म सिद्ध अधिकार हमारा है स्वराज्य" का नारा।
हुवे आज उन्मुक्त, तोड़ कर बन्धन टूटी कारा॥
जय जयकार हुआ भारत का, बहा प्रेम-अनुरागा॥

(५)

धन्य धन्य "पन्द्रह अगस्त" का सुन्दर दिवस सुहाता।
धन्य राष्ट्र, तू धन्य देश है धन्य हमारी माता॥
धन्य धन्य जनता पुकारती कोटि कण्ठ ने बोला।
धन्य वन्द्य बापू! जिसने जननी का बन्धन खोला॥
धन्य धन्य 'कमलेश" शहीदों का बलिदान सुजागा॥

....

आर्य जगत्

हा बन्शीलाल जी !

आर्यजगत् को यह जानकर घोर दुःख होगा कि हैदराबाद सत्याग्रह के नेता और आर्यसमाज हैद्राबाद के प्राण श्री पं० वंशीलाल जी का हैजे से ७।८।३८ को बार्शी से अहमद नगर जाते हुए मार्ग में देहांत होगया।

श्री पं० जी और उनका परिवार वैदिक धर्म की सेवा में सदा तत्पर रहते थे। इनके भाई श्यामलालजी का १९३८ दिसम्बर में हैद्राबाद की जेल में अति संदिग्धावस्था में देहान्त हुआ था। श्री बन्शीलालजीके अधिक परिश्रम का फल था कि आर्यसमाज का सत्याग्रह हैद्राबाद में तीव्र गति से चला और सफल हुआ। श्री पं० बन्शीलाल जी की मृत्यु ऐसी नहीं है कि जिसको आर्यसमाज शीघ्र भूल सके। श्री प० जी ४ लड़कियां और ३ लड़के छोड़ें हैं। उनमें से विवाह केवल १ कन्या का हुआ है। हम श्री भाईजी की पत्नी जी तथा परिवार से गहरी समवेदना प्रकट करते हैं।

गङ्गाप्रसाद उपाध्याय
मन्त्री सार्वदेशिक सभा।



श्री० बन्शीलाल जी

श्री वंशीलाल जी की मृत्यु पर शोक प्रस्ताव

आर्य समाज दीवानहाल, देहली का यह अधिवेशन हैदराबाद के प्रसिद्ध आर्य नेता, हैदराबाद सत्याग्रह के मुख्य संचालक, बार्शी गुरुकुल के अधिष्ठाता श्री० बन्शीलालजी भूतपूर्व वकील हैदराबाद की सर्वथा असामयिक मृत्यु पर, जो विशूचका से ७ अगस्त को हुई। अत्यन्त शोक प्रकट करता है और आर्य नर नारियों से अपील करता है कि ऐसे अनथक आत्मत्यागी आर्य वीर के परिवार के साथ क्रियात्मक समवेदना प्रकट करें, और सार्वदेशिक सभा के पूज्य प्रधान श्री० प्रो० इन्द्रजी की अपील पर जो उन्होंने श्री० बन्शीलाल जी के असहाय परिवार की सहायतार्थ निकाली है धन देकर भ्रातृत्व का परिचय दें। भवदीय:—

विश्वम्भर दयाल मन्त्री

ऐसे प्रस्ताव अन्य आर्य समाजों में भी स्वीकृत हुए हैं। स्वर्गीयभाई वंशीलालजी के विचार कितने उदात्त थे और उन में आर्य जाति के संगठन की भावना कितनी प्रबल थी यह उनके उल्लेख से ज्ञात हो सकता है जो उन्होंने ६-७ ४८ को अहमद नगर में लिखा और 'सार्व देशिक' में प्रकाशनार्थ भेजा था। खेद है कि स्थानाभाव से वह गतअङ्क में प्रकाशित न हो सका था। उसे हम यहां अब प्रकाशित कर रहे हैं ऐसे ऐसे एक अत्यन्त उत्साही और योग्य आर्य कार्य कर्ता के निधन से आर्य समाज को सचमुच बड़ी क्षति पहुची है।

सं० सा० दे०

आवश्यक निवेदन

आदरणीय आर्य्यो ! सम्प्रति देश की दशा को दृष्टि में रखकर अपनी जाति के कल्याणार्थ कुछ बातें लिखने के लिये उद्यत हुआ हूँ। आशा करता हूँ कि इनको तत्काल जीवन में धारण कर लिया जावेगा। ये वे बातें हैं जिनके लिये किसी व्यक्ति को भी विरोध नहीं करना चाहिये। इसके बिना हमारी जाति हानि उठाये बिना रह नहीं सकती। प्रत्येक आर्य्य समाज को चाहिये कि यह पढ़ते ही इसपर आचरण आरंभ करदे और उसकी सूचना पत्र द्वारा देने की कृपा करें ताकि अगला कार्य्य-क्रम प्रकाशित कर सकूं।

१—इस देश में जितने भी श्रीरामचन्द्र जी को अपना मानने वाली जातियां बसती हों उन सब को अपने अपने आपको एक नाम से पुकारना चाहिये और वह नाम श्रेष्ठ "आर्य्य" है।

२—अपने देश का नाम भी अपने नाम पर प्रचलित करना चाहिये। "आर्य्यावर्त"

३—हम अपने आपको भाई समझें और सबका दुःख अपना दुःख तथा सबका सुख अपना सुख समझें। परस्पर के दुःखों को दूर करने में अपने तनमन धनको अर्पण करदें।

४:—अपना परस्पर आदर सूचक वाक्य एक ही हो 'नमस्ते'।

५:—हमारी भाषा और लिपि एक हो और वह हो आर्य्यभाषा (हिन्दी) और लिपि देवनागरी। हम आज से ही सारे पत्रव्यवहार इसी लिपिव भाषा में करें।

ये वे बातें हैं जिनकी अवहेलना करोगे तो अब यह जाति बच नहीं सकती। बिना किसी सोच विचार करके इनको धारण करना चाहिये तब ही हम अपने शत्रुओं के दॉव पेंच से बचकर जाति व देश का कल्याण कर सकते हैं।

सारे उपदेशक, व्याख्यान दाता इसीका प्रचार करें।

आपका भाई
वन्शीलाल आर्य्य वकील
अहमद नगर

आवश्यक सूचना

आर्य जनता को विदित ही है कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के निश्चयानुसार ११ से १३ अक्टोबर ४८ तक कलकत्ता में आर्य महा-सम्मेलन होगा। इस सम्मेलन में अधिक से अधिक प्रतिनिधि सम्मिलित होकर सम्मेलन सफल हो इसके लिए आवश्यक है कि आर्य समाजें इन तिथियों में या इनके आसपास अपने उत्सव इत्यादि न रक्खें। आशा है आर्य समाजें इस ओर उचित ध्यान देंगी और सम्मेलन को

सफल बनाने में अपना हर प्रकार का सहयोग देंगी।

गंगाप्रसाद मन्त्री
सार्वदेशिक सभा

हैदराबाद के आर्यों पर संकट

सहायता निधि के लिये अभ्यर्थना

कई महीनों से दक्षिण हैदराबाद के निवासियों पर वहां की रियासती सरकार और रजाकारों की ओर से जो अमानुषिक अत्याचार किये जा रहे हैं, वे सर्वविदित हैं। हैदराबाद की अधिकांश प्रजा हिन्दू है। हिन्दुओं पर सामान्यरूप से और आर्य समाज के सदस्यों पर विशेष रूप से हर प्रकार की कठोरताएं प्रयोग में लाई जा रही हैं। जब से आर्य समाज ने धार्मिक अधिकारों की रक्षा के लिये सत्याग्रह करके विजय प्राप्त की है तब से हैदराबाद के शासक उससे बहुत चिढ़े हुए हैं। इस समय की राजनैतिक परिस्थिति से लाभ उठाकर वे लोग रियासत से आर्य-समाज को उन्मूलित कर देना चाहते हैं। अब तक पहुंचे हुए समाचारों से प्रतीत होता है कि एक हैदराबाद के शहर को छोड़कर अन्य स्थानों के आर्य समाज मन्दिर या तो नष्ट किये जा चुके हैं अथवा बन्द पड़े हैं। रियासत के आर्य नर-नारी बहुत से मारे गये। उनसे अधिक जेलों में डाल दिये गये और शेष को घरों से बाहर कर दिया गया है। वे सब रियासत की सीमाओं से बाहर भिन्न २ प्रान्तों में निराश्रित पड़े हुए हैं। इस प्रकार दक्षिण हैदराबाद के आर्य-समाजों और आर्य जनों पर भयंकर संकट आया हुआ है। रियासत के हिन्दुओं पर भयंकर संकट आया हुआ है। रियासत के हिन्दुओं पर सामान्यरूप से जो संकट है उसके निवारण के लिये हर प्रकार की सहायता करना देशवासियों का कर्तव्य है। साथ ही आर्य समाजी लोगों पर विशेष सकट आया है उनकी विशेष रूप से सहायता करना प्रत्येक नर नारी का विशेष कर्तव्य है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने निश्चय किया है कि इस उद्देश्य से एक "हैदराबाद पीड़ित सहायता निधि" आयोजित की जाय। उस निधि में यथाशक्ति धन राशि का भाग डाल कर विपद्-ग्रस्त भाई बहिनों की सेवा करना प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है। मेरा आर्य प्रतिनिधि सभाओं, आर्य समाजों और आर्य पुरुषों से निवेदन है कि वे यथा संभव शीघ्र अपने २ प्रभाव क्षेत्र में से धन-राशि एकत्र करके सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के पास भेज दें जिससे पीड़ित आर्य परिवारों को तुरन्त सहायता भेजी जा सके।

इस सम्बन्ध में एक और दुःखदायक दुर्घटना का उल्लेख आवश्यक है। श्री भाई वंशीलाल जी वकील, हैदराबाद आर्य समाज के परम भक्त, अथवा सेवक, तथा हैदराबाद सत्याग्रह के प्राण थे। उन्होंने बहुत बड़ा त्याग करके हैदराबाद सत्याग्रह को तीव्र प्रगति दी थी। उस समय उनको वकालत छोड़ कर हैदराबाद से बाहर रहना पड़ा और सत्याग्रह के सफल होने के पश्चात् उन्होंने अपना सब समय आर्य समाज के अर्पण कर दिया। ७ अगस्त १६४८ को अचानक हैजे से उनका देहावसान हो गया। उन्होंने ४ लड़कियां और ३ लड़के छोड़े हैं जिनमें से केवल एक लड़की का विवाह हो गया है शेष सब बच्चे छोटे हैं। उनके पास कुछ धन नहीं था। आर्य समाज का कर्तव्य है कि ऐसे त्यागी सेवक के

परिवार के पालन पोषण का भार अपने ऊपर लेवे। आशा है कि दानी महाशय इस परिवार को सहायतार्थ खुले दिल से आगे आवेंगे।

इन्द्र विद्यावाचस्पति
प्रधान
सार्वदेशिक सभा देहली।

विद्यार्य सभा का संगठन

२५-७-४८ की सार्व० अन्तरङ्ग सभा द्वारा स्वीकृत आर्य सम्मेलन देहली का निम्न लिखित प्रस्ताव पढ़ा गया।

आर्य समाज के विस्तृत और बहुविध शिक्षा सम्बन्धी कार्य को दृष्टि में रखते हुए यह सम्मेलन सार्वदेशिक सभा का ध्यान इस ओर आकृष्ट करता है कि वह विद्यार्य सभा संगठित करने की योजना करे जो आर्य समाज के शिक्षा सम्बन्धी कार्य में यथा सम्भव पारस्पारिक सहयोग, समानता और आवश्यक सुधार लाने की चेष्टा करे और यत्न किया जाय कि वह विद्यार्य सभा भी विश्व में अखिल भारतीय दयानन्द पीठ का रूप धारण कर सके!

निश्चय हुआ कि तदनुसार विद्यार्य सभा का संगठन किया जाय।

१. इस सभा का नाम विद्यार्य सभा होगा।

२. क उद्देश्य, आर्य समाज की शिक्षण संस्थाओं में पारस्परिक सहयोग, समानता लाना और आवश्यक सुधार करना।

ख आर्य विश्व विद्यालय की स्थापना करना।

ग उपयुक्त उद्देश्यों कीपूर्तिके लिये देश कालिक अवस्था अनुसार आवश्यक प्रयत्न करना।

३ निर्माण:—इस सभा के निम्न प्रकार सदस्य होंगे।=

१ सार्वदेशिक सभा के प्रतिनिधि ७
२ संयुक्त प्रान्त " २
३ पंजाब प्रान्त " २ अन्य सब-प्रान्त अथवा प्रदेश १-१

स्वीकृत शिक्षा संस्थाओं के

क स्नातक परीक्षा तक शिक्षा देने वाले गुरुकुल के प्रत्येक महाविद्यालय के २

ख अधिकारी परीक्षा तक देने वाले गुरुकुल के प्रत्येक महाविद्यालय का १

ग प्रत्येक डिगरी कालेज का १

घ १० हाई स्कूलों के समुदाय का १

छ विद्यार्य सभा के उपर्युक्त सदस्यों द्वारा निर्वाचित ५

गुरुकुलों के रजिस्टर्ड स्नातक कालिजों के रजिस्टर्ड ग्रेजुएट २

नोट:—प्रत्येक प्रतिनिधि ५)को वार्षिक शुल्क देना होगा।—

अधिकारी

४ इस सभा के निम्न लिखित अधिकारी होंगे।

१ प्रमुख (सार्वदेशिक सभा का प्रधान अपने पदाधिकार से) २ संचालक ३ प्रस्तोता

४ कोषाध्यक्ष।

ये अधिकारी निज अधिकार से कार्य कारिणी के सदस्य समझे जावेंगे।

कार्य कारिणी

५ अधिकारियों के अतिरिक्त कार्य कारिणी के ११ सदस्य होंगे जिन में से कम से कम ८ शिक्षा विशेषज्ञ होंगे।

विविध

६ इस सभा के सदस्यों, अधिकारियों, तथा

कार्य कारिणी के सदस्यों का चुनाव प्रति तीसरे वर्ष हुआ करेगा।

७ कार्य कारिणी का कोरम ५ और साधारण सभा का ११ होगा।

८ इस सभा का मुख्य कार्यालय देहली होगा।

९ उपर्युक्त वैधानिक नियमों को संशोधन, परिवर्तन वा परिवर्धन तथा निर्माण करने का अधिकार विद्या सभा को होगा।

मन्त्री:—सार्वदेदिक सभा

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली

दान सूची

दान स्थापना दिवस

२५)	आ० सं०	नाना पेट पूना
२॥=)	,, ,,	छोटी सादड़ी (मेवाड़)
२५)	,, ,,	कैथल (करनाल)
२५)	,, ,,	अहमदाबाद
२५)	,, ,,	बुढ़ाना गेट मेरठ सदर
३०)	,, ,,	नारनौल (पटियाला)
१३।)		श्रीज्वाला प्रसाद जी मन्त्री
५)	आ० स०	मवाना कलां
१०)	,, ,,	मेरठ
१६०॥=)		
६२६)		गत योग
७८६॥=)		

(क्रमशः)

दान दाताओं को धन्यवाद— अन्य समाजों को भी अपना भाग तुरन्त भेजना चाहिये।

गंगाप्रसाद उपाध्याय
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्र० सभा

आर्य कुमार जगत्

धार्मिक परीक्षायें

भारत वर्षीय आर्य कुमार परिषद् की ओर से सिद्धान्त सरोज, सिद्धान्त भास्कर, सिद्धान्त शास्त्री की परीक्षायें प्रतिवर्ष लगभग २०० केन्द्रों में जनवरी मास के अन्तिम सप्ताह में हुआ करती हैं। गत वर्ष की परीक्षाओं के प्रमाण पत्र सब केन्द्रों को भेजे जा चुके हैं। यदि किसी को प्राप्त न हुये हों तो कृपया पत्र लिखकर मंगालें जो सज्जन अपने यहाँ परीक्षाओं का नवीन केन्द्र स्थापित करना चाहें वे भी कृपया नवीन संशोधित पाठविधि तथा आवेदन पत्र निम्न लिखित पते से मुफ्त मगालें।

डा० सूर्य देव शर्मा एम० ए० डी० लिट्

परीक्षा मंत्री:—

भारत वर्षीय आर्य कुमार परिषद् (अजमेर)

आवश्यक सूचना—

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की परीक्षाओं की पाठविधि में जुलाई सन् १९४८ से निम्न लिखित संशोधन हुए हैं। कृपया नोट करलें:—

(१) सिद्धान्त भास्कर परीक्षा के द्वितीय प्रश्न पत्र में "जीवन ज्योति" अथवा "प्रगति शील आर्य' (प्रेमी प्रेस मेरठ) पुस्तक रहेगी।

(२) सिद्धान्त शास्त्री परीक्षा के द्वितीय प्रश्न पत्र में "दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह" (पूर्वार्द्ध) अथवा "सन्मार्ग दर्शन" (स्वा० सर्वदानन्दजी कृत) अथवा "स्त्रियों का वेदाधिकार" (पं० धर्मदेवजी वि० वा० कृत)

(३) सि० शास्त्री के तृतीय प्रश्न पत्र में ४ उपनिषदों के स्थान पर ५ उपनिषदें (ईश, केन, कठ, प्रश्न,मुंडक)

नोट:—उपर्युक्त संशोधनों के अतिरिक्त शेष सब पाठ विधि वही है जो जुलाई १९४७ से प्रचलित हुई थी।

परिषद् की परीक्षाओं की पुस्तकें मिलने के पते:—

(१) मैनेजर आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर
(२) गोविंद ब्रदर्स, पुस्तक विक्रेता, अलीगढ़।
(३) शारदा मंदिर, नई सड़क, देहली।
(४) राजपाल एण्ड सन्स, नई सड़क देहली।
(५) गोविंदराम हासानन्द, नई सड़क, देहली,

निवेदक:—

सूर्यदेव शर्मा एम० ए०

परीक्षा मंत्री। अजमेर

अखिल भारतीय आर्य कुमार सम्मेलन

यह सम्मेलन इस वर्ष १२, १३, १४ नवम्बर को संयुक्तप्रांत के शिकोहाबाद नगर में देहली म्युनिसिपालिटी के प्रधान श्री डा० युद्धवीरसिंह जी की अध्यक्षता में होगा। आर्यकुमारों को अधिक से अधिक सख्या में वहां पहुंच कर उसे सफल बनाना चाहिए।

राममोहन सि० शास्त्री
मन्त्री आर्यकुमार परिषद्

जाति भेद निवारक आर्य परिवार सङ्घ

आर्य जनता से अपील

इस संघ की स्थापना श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्र० सभा की अध्यक्षता में इस उद्देश्य से

की गई थी कि अन्तर्जातीय विवाहों का जिनके बिना जन्मगत जाति भेद की कुप्रथा दूर नहीं हो सकती अधिकाधिक प्रचार किया जाय और उनके लिये सब प्रकार की सुविधायें जनता के लिए प्रस्तुत की जांय।

(२) लगभग २ वर्ष से यह सङ्घ अपनी सामर्थ्यानुसार काम कर रहा है और उसमें पर्य्याप्त सफलता प्राप्त करली है। परन्तु मुख्यतः धनाभाव के कारण पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सका। सङ्घ को कम से कम तीन अपने स्वतन्त्र उपदेशक चाहिए, एक मासिक वा साप्ताहिक पत्र की भी आवश्यकता है जिस में सङ्घ की ओर से विवाह सम्बन्धी विवरण छप सकें और उसके उद्देश्यों के समर्थन में उपयोगी लेख भी प्रकाशित होते रहें। भिन्न भिन्न भाषाओं में जाति भेद के हानि प्रदर्शन साहित्य के प्रकाशन भी की आवश्यकता है।

(३) सार्वदेशिक आ० प्र० सभा ने सङ्घ की प्रार्थना पर अपने बजट में २५००) सङ्घ की सहायता के लिए स्वीकार कर रक्खे हैं, परन्तु सभा ने (उसके फंड में ऐसे कार्य के लिए कोई विशेष निधि न होने के कारण यह शर्त लगाई है कि इस कार्य्य के लिये जितना धन प्राप्त हो उससे अधिक व्यय न किया जाय।

(४) इसलिये आर्यसमाज के सब हितैच्छुओं से निवेदन किया जाता है कि इस कार्य के लिए उदारता पूर्वक दान करके इस महत्त्वपूर्ण कार्य की सफलता में सहायक होकर पुण्य के भागी हों। दान संघ के सचालक या कोषाध्यक्ष श्री राम प्रताप आर्य (सांभर झील राजपुताना) के पते पर भेजा जाय अथवा इस कार्य्य के लिये नामांकित करके सार्वदेशिक सभा के मन्त्री के पास देहली भेज दिया जाय।

गंगा प्रसाद एम० ए०	धर्मदेव विद्यावाचस्पति
अध्यक्ष	उपाध्यक्ष
इन्द्र विद्यावाचस्पति	भद्रसेन
प्रधान सा० दे० सभा।	सचालक

जाति भेद निवारक आर्य परिवार संघ द्वारा

आन्ध्र-प्रान्त में एक अन्तर्जातीय विवाह

श्री पं० मदन मोहन जी विद्यासागर वेदालङ्कार जो कि आर्य सार्वदेशिक सभा के सुयोग्य प्रचारक तथा "जाति भेद निवारक आर्य परिवार संघ" की कार्यकारिणी सभा के सदस्य हैं, के प्रयत्न से श्री नन्दलाल जी आर्य (भूतपूर्व उपमन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब) के ज्येष्ठ पुत्र श्री बा० ज्ञानप्रकाश जी (भूतपूर्व मैनेजर फर्स्ट नेशनल बैंक लाहौर) का पुनर्विवाह कट्टर पौराणिकता के गढ़ आन्ध्र प्रान्त की एक सुयोग्य विधवा महिला श्रीमती राजेश्वरी देवी से ता ३० जुलाई को सानन्द सम्पन्न हुआ।

वर जहां पंजाब - प्रांतीय है वहां वधू आन्ध्र प्रान्तीय महिला है, वर के पिता पंजाब के उन आर्य पुरुषों मे से हैं जिन्होंने अपने सब पुत्र पुत्रियों के विवाह जन्मगत जात पात को छोड़ कर तथा दहेज प्रथा को तोड़कर किए हैं। इस प्रशसनीय कार्य के लिये जहां वर महोदय धन्य वाद के पात्र हैं। वहां श्रीमान् पं० मदन मोहन जी विद्यासागर भी सब के धन्यवाद के पात्र हैं जिन के पुरुषार्थ से यह न केवल अन्तर्जातीय प्रत्युत अन्तः प्रान्तीय विवाह सम्पन्न हुआ है।

परमेश्वर वर-वधू को दीर्घायु यशस्वी तथा वैदिक धर्म के सच्चे सेवक बनाये।

पटना में आदर्श अन्तर्जातीय विवाह

आर्य कुमार परिषत् के प्रचार मन्त्री और विहार आर्य-प्रतिनिधि सभा के उत्साही तथा योग्य प्रचारक श्री प० राम नारायण जी शास्त्री का श्री ईश्वरी देवी जी के साथ गत ११ जुलाई को पटना में पूर्ण वैदिक रीति से जाति-बन्धन तथा दहेज इत्यादि की कुप्रथाओं को तोड़ कर हुआ जिस का जनता पर बड़ा प्रभाव हुआ। ऐसे आदर्श अन्तर्जातीय विवाह का आदर्श स्थापित करने पर हम श्री पं० रामनारायण जी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

धर्मदेव वि० वा० (आचार्य) भद्र सेन
उपाध्याय संचालक
जातिभेद निवारक आ० प० सङ्घ (अजमेर)

आर्य वीर दल की प्रगति

स्वतन्त्रता दिवस पर :—

१५ अगस्त को स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर सर्वत्र दल ने विशेष कार्यक्रम के अनुसार कार्य करते हुवे राष्ट्र की सेवा का व्रत लिया, एवं प्रतिज्ञायें दुहराईं।

इस अवसर पर १३ अगस्त को अलवर तथा तथा १५ अगस्त को जोधपुर में दल के विशाल प्रदर्शन हुवे इन स्थानों पर श्री पुरुषार्थी जी का भाषण हुआ तथा भाषण में आर्य वीरों को कर्त्तव्य भावना से राष्ट्र की सेवा करने का संदेश दिया। अलवर में अलवर स्टेट के...मन्त्री श्रीभोलानाथ जी तथा जोधपुर में श्री मथुरादास जी माथुर शिक्षा मन्त्री और अर्थ मंत्री महोदय ने भिन्न भिन्न प्रदर्शन का सभापतित्व करते हुवे सभापति पद से दल कार्य की प्रशंसा की, एवं दल के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुवे उन्होंने कहा कि आर्य वीर दल जैसी राष्ट्रीय भावनाओं वाली संस्थाओं को हम पूरा २ सहयोग देंगे।

२. देहली में प्रातः दल ने प्रभात फेरी के अतिरिक्त अपना शानदार कार्यक्रम प्रारम्भ किया श्री रामगोपाल जी अधिष्ठाता ने ध्वजा फहराई, तथा व्याख्यान आदि हुवे। विशेषतः 'हिन्दी' को राष्ट्र भाषा बनाने के लिये प्रबल आन्दोलन किया गया। सर्वत्र चौराहों पर आर्य वीरों तथा वीराङ्गनाओं ने विशेष निर्मित प्रतीक (बैज) लगाये। यह सम्पूर्ण कार्यक्रम श्री 'हंस' जी सेनापति देहली के अनथक परिश्रम व प्रयत्न से पूर्ण प्रभावोत्पादक एवं सफल रहा।

रुद्रमित्र शास्त्री
का० मन्त्री
प्र० भा० आर्य वीर दल देहली

प्राप्ति स्वीकार

सर्वदर्शन मीमांसा

लेखक—दर्शन, गीता, उपनिषदादि के भाष्यकार श्री पं० गोपाल जी मूल्य २)

मिलने का पता—मैनेजर चन्द्र प्रिन्टिंग प्रेस श्रद्धानन्द बाजार देहली

योगदीक्षा—सम्पादक डा० इन्द्रसेन जी श्री अरविन्दाश्रम पाण्डीचेरी

सर्वहितकारी—मासिक पत्र लखनऊ वार्षिक मूल्य ५) समालोचना अगले अङ्क में

साहित्य समिक्षा

"स्त्रियों का वेदाध्ययन और वैदिक कर्म-काण्ड में अधिकार" लेखक— पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति-सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित मूल्य १।)

पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय पुस्तक के नाम से ही सुस्पष्ट है। इसमें गुरुकुल कांगड़ी के प्रतिष्ठित स्नातक विद्वान, लखक ने योग्यतापूर्वक वेद, ब्राह्मण, सूत्र, स्मृति तथा अन्य साहित्य से पुष्कल प्रमाण देकर स्त्रियों का अधिकार अच्छी तरह प्रमाणित किया है। वर्तमान काल में जिस सत्य के प्रवाह की ओर साधारणतया हमारा समाज उन्मुख हो रहा है, उसमें स्त्रियों को पुरुष जैसे अधिकार देने जैसी बातों के लिये स्वयं ही प्रवृत्ति है तो भी बहुत से रूढ़ि प्रिय तथा शास्त्र वचन का सहारा लेने वाले लोग उस सत्य का दबाव अनुभव करते हुवे भी उसे मान लेने को ऐसे ही उद्यत नहीं होते हैं। ऐसे लोगों को मानसिक बाधा दूर करने का कार्य यह पुस्तक कर सकती है और करेगी। इस दृष्टि से यह पुस्तक बहुत समयोपयोगी है। वास्तव में भारत के प्राचीन धर्म ने तो कभी भी स्त्रियों को किसी प्रकार नीचा नहीं माना था। वहाँ शक्ति रूपिणी स्त्री को बराबर का ही नहीं, किन्तु एक विशिष्ट स्थान दिया गया था। आज कल दिखायी देने वाला स्त्रियों के प्रति अवगणना का भाव हमारे इस देश में बहुत पीछे की उपज है, जो कि भारत की प्राचीन और मुख्य धारा के प्रतिकूल है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की तरफ से ऐसी पुस्तक का प्रकाशन होना ठीक उसके अनुरूप ही कार्य है।

(आचार्य) अभयदेव विद्यालङ्कार
("अदिति" अगस्त १६४८)

राष्ट्र सन्देश— मासिकपत्र, सम्पादक श्री राममोहनजी वार्षिक मूल्य ६) १ प्रति का ।॥) पता-श्री दयालजी व्यवस्थापक "राष्ट्र सन्देश" बिजनौर यू० पी०

यह एक नवीन मासिक पत्र है जिस का प्रथम अङ्क भाद्रपद सम्वत् २००५ विक्रमी का हमारे सन्मुख है। इसमें आर्य संस्कृति, व्यक्ति और समाज, गुजरात के दो सन्त इत्यादि विषयों पर श्री राम निवास जी शर्मा, प० वैद्यनाथ जी शास्त्री, प्रो० मुन्शीरामजी एम० ए० इत्यादि के उत्तम लेख हैं। प्रारम्भ में 'बढ़े चलो' इस शीर्षक से आर्यवीर दल के प्रधान सेनापति श्री पं० धुरेन्द्रजी शास्त्री का स्फूर्तिदायक सन्देश है। श्रीमती प्रभाकुमारी जी की 'कर्तव्य-पथ' शीर्षक की महाभारत के आधार पर लिखित एक कहानी है जिसमें कई पौराणिक अंश प्रतीत होते हैं। हम इस नवीन सहयोगी का अभिनन्दन करते हुए आशा करते हैं कि यह आर्य धर्म, संस्कृति तथा सभ्यता के प्रचार में सहायक होगा तथा राष्ट्र को वैदिक सन्देश देकर उन्नत करेगा।

श्री दशमेश काव्य प्रदीप-लेखक ज्ञानी हर-नामसिंह 'वल्लभ' सम्पादक 'सिखवीर' हिन्दी मासिक प्रकाशक सिखवीर कार्यालय नई दहली। मूल्य २)

इसमें श्री हरनामसिंह जी ने श्री गुरु गोविन्दसिंह जी के जीवनचरित्र, उनकी वाणी, काव्यकला, तथा उन द्वारा रचित साहित्यिक ग्रन्थों का दिग्दर्शन कराया है। श्री गुरु गोविन्दसिंह जी वीर होने के अतिरिक्त अच्छे कवि भी थे यह इस संग्रह के पढ़ने से ज्ञात होता है। 'प्राक्कथन' में लेखक महोदय ने अपने मन्तव्यानुसार लिखा है कि 'इसी पंजाब नदी के निर्जन तटों पर वैदिक ऋषियों ने वेदों की रचना की।" यह हमारी दृष्टि से ठीक नहीं। वेद मन्त्रों का गान किया वा प्रचार किया

यह लिखना अधिक उपयुक्त होता। श्रीगु० गोविन्द सिंहजी की जा वाणियां उद्धृत की गई हैं उनमें कई आजकल की भाषा की दृष्टि से कठिन व अप्रचलित शब्द आते हैं यदि उनका अर्थ नीचे टिप्पणियों के रूप में अथवा अन्त में दे दिया जाता तो पजाबियों के अतिरिक्त अन्य भी इस संग्रह से अधिक लाभ उठा सकते। तथापि यह संग्रह कविता प्रेमियों के लिये उपयोगी है।

सफल प्रार्थना—लेखक—पं० फूलचंद जी शर्मा 'निडर' संचालक यथार्थ चिकित्सालय भिवानी (पू० पञ्जाब)

मूल्य ।।

इस पुस्तक में लेखक ने प्रार्थना का वैदिक स्वरूप बताते हुए उसे किस प्रकार सफल और अधिक लाभदायक बनाया जा सकता है इस पर उत्तम प्रकाश डाला है। इच्छाशक्ति के प्रयोग और मन को शान्त बनाने पर अधिक बल दिया गया है। पुस्तिका समस्त आस्तिकों के लिए लाभदायिनी है। ध० दे०

ऋषि प्रवचनामृत—संग्रहीता प० मुनीश्वरदेव जी सिद्धान्त शिरोमणि प्रकाशक-प० यशःपालजी सिद्धान्तालङ्कार अधिष्ठाता वेद प्रचार विभाग-पजाब आर्य प्रतिनिधि सभा जालन्धर मूल्य ॥)

इस छोटी सी पुस्तक में महर्षि दयानन्दजी के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के प्रत्येक समुल्लास से सरल और स्पष्ट उद्धरण देकर उनके सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराया गया है। इससे सत्यार्थ-प्रकाश को सम्पूर्णतया पढ़ने में रुचि उत्पन्न होगी और उसको समझने में भी सहायता मिलेगी। प्रारम्भ में सत्यार्थ प्रकाश और अन्त में ऋषि दयानन्द विषयक अनेक सुप्रसिद्ध विद्वानों की सम्मतियों का संग्रह है। यदि प्रतीक दिया होता तो यह संग्रह अधिक प्रामाणिक और उपयोगी बन जाता। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी औरउपादेय है।

वेद सन्देश (कर्णाटक मासिक पत्र अप्रेल मई-जून अङ्क) सम्पादक पं० सुधाकरजी सिद्धान्त विशारद और प० मञ्जुनाथजी शास्त्री सिद्धान्त भूषण वार्षिक चन्दा ३) 'वेद संदेश' कार्यालय श्री रामपुर बंगलोर।

हमें इस बात की प्रसन्नता है कि 'वेद सन्देश नामक कर्णाटक भाषा के जिस मासिक पत्र को हमने सन् १९२७ में प्रारम्भ किया था और जो कई वर्ष निकलने के पश्चात् अनिवार्य कारणों से बन्द हो गया था उसे पुनः अप्रेल सन् १९४८ से प्रारम्भ कर दिया गया है। इसके दोनों सम्पादक हमारे सुपरिचित योग्य सज्जन हैं जो उपदेशक विद्यालय लाहौर में शिक्षा पाते रहे हैं। इन अङ्कों में श्री आचार्य अभयदेवजी श्री प० गङ्गाप्रसादजी उपाध्याय एम ए., पं० शिवकुमारजी शास्त्री, श्री प० मदनमोहनजी विद्या सागर वेदालङ्कार, प० केशव देवजी सिद्धान्तालङ्कार, श्रीमती ब्राह्मीदेवी जी विदुषी, प० सुधाकर जी आदि के निष्पाप जीवन, गुरुकुल शिक्षा, वैदिक समाज रचना पद्धति, आर्य समाज, भारतीय दाम्पत्य, मनोबल और सदाचार आदि विषयक उत्तम लेख हैं। हम इस पत्र का हार्दिक स्वागत करते हुए कर्णाटक वासी समस्त आर्य बन्धुओं से विशेष रूप में अनुरोध करते हैं कि वे इस को अधिक से अधिक संख्या में अपना कर इसे चिरस्थायी करें जिससे इसके द्वारा दक्षिण भारत में वैदिक धर्म और संस्कृति का भली भांति प्रचार हो सके। यदि इस पत्र में कुछ पृष्ठ देवनागरी लिपि में (कर्णाटक भाषा के लेख) हुआ करें और एक दो लेख आर्य भाषा (हिन्दी) में तो भी विशेष लाभ हो सकता है। ध० दे०



माननीय प्रधान मन्त्री जी का राष्ट्र भाषा विषयक अशुद्ध विचार:—

भारत के प्रधान मन्त्री माननीय श्री पंडित जवाहिरलालजी ने २७ जुलाई को मद्रास में दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा (जिसका पूर्वनाम द० भा० हिन्दी प्रचार सभा था) के भवन का उद्घाटन करते हुए राष्ट्र भाषा के विषय में कई ऐसी अशुद्ध बातें कह डाली हैं जिनका प्रतिवाद करना हमें आवश्यक प्रतीत होता है। उन्होंने हिन्दुस्तानी को भारत की राष्ट्रभाषा मानते हुए कहा है कि इसका उद्देश्य तामिल, तिलगू, कर्णाटक, मलयालम आदि प्रादेशिक भाषाओं के बीच एक सामान्य माध्यम के रूप में कार्य करना है अभी तक अंग्रेजी यह कार्य कर रही थी। अब हमें अंग्रेजी के स्थान पर अपनी भाषा की आवश्यकता है"

उनका यह कथन तो ठीक है कि हमारी एक अपनी भाषा होनी चाहिये जो अन्तःप्रान्तीय व राष्ट्र भाषा का कार्य कर सके किन्तु यह अशुद्ध है कि अंग्रेजी वह कार्य करती रही है अथवा उनकी उर्दू बहुल कल्पित हिन्दुस्तानी राष्ट्र भाषा बन सकती है। दक्षिण भारत में हमें भी लगभग २० वर्ष तक रहने तथा वहां की कर्णाटक [कन्नड़] आदि कुछ भाषाओं को सीखने का अवसर प्राप्त हो चुका है। इन सब भाषाओं में संस्कृत के शब्दों की बहुत अधिक प्रधानता है। हमारा अनुभव सिद्ध विचार है कि संस्कृत निष्ठ हिन्दी को मद्रास संस्थान के चारों प्रान्तों के निवासी पर्याप्त सुगमता से समझ सकते हैं किन्तु उर्दू मिश्रित हिंदुस्तानी को नहीं। अरबी फारसी और संस्कृत भाषा को एक कोटि में रखते हुए प० जवाहर लाल जी ने कहा है कि "भाषा को संस्कृतमय बनाना भी बुरा और निन्दनीय है। इस तरह के कदम से देश में विनाश फैलेगा। उन्होंने यह भी कहा है कि वे विधान परिषद् के आगामी अधिवेशन में राष्ट्रभाषा के विषय में महात्मागांधी जी के द्वारा निर्धारित नीति से हटाने वाले मार्ग का विरोध करेंगे।" इत्यादि। वास्तविक तथ्य यह है कि बंगाली, गुजराती, उड़िया, मराठी, पञ्जाबी, मारवाड़ी इत्यादि सभी प्रान्तीय भाषाओं का संस्कृत से विशेष संबन्ध है। सब अपना शब्द कोष संस्कृत से ही लेती हैं जिसके बिना वैज्ञानिक तथा अन्य उच्च साहित्योपयोगी शब्दों का निर्माण नहीं किया जा सकता। अतः संस्कृत निष्ठ हिन्दी का [illegible] रोध करना अपनी संस्कृति और प्राचीन [illegible] से विमुख होना है। कल्पित, [illegible] ढ़ी हुई अस्तित्व हीन, दोगली हिन्दुस्तानी हमारी

साहित्यक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सर्वथा असमर्थ है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना पूज्य महात्मा गान्धी जी ने ही की थी किन्तु जब इसे द० भा० हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का नाम दिया गया तो इस के विरुद्ध जनता तथा प्रचारकों में पर्याप्त असन्तोष फैला और अब भी फैल रहा है क्यों कि जहां संस्कृत निष्ठ हिन्दी को सीखना दक्षिणवासी भाई बहिनों के लिये बहुत सुगम था वहां उर्दू बहुल हिन्दुस्तानी को सीखने में उन्हें बड़ी कठिनाई होती है। इस वस्तुस्थिति की उपेक्षा कर विधान परिषत् की कांग्रेस पार्टी के बहुमत द्वारा स्वीकृत इस प्रस्ताव कि हिन्दी और देवनागरी को राष्ट्र भाषा और राष्ट्र लिपि के रूप में माना जाए यदि श्री पं० जवाहिरलाल जी विरोध करना चाहते हैं तो अन्य सदस्यों का आवश्यक कर्तव्य है कि वे प्रधान मन्त्री जी के व्यक्तित्व अथवा महात्मा गान्धी के नाम से प्रभावित न होते हुए दृढ़ता से काम ले कर संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को राष्ट्र भाषा और देवनागरी लिपि को राष्ट्र लिपि घोषित करवाएं। पूज्य महात्मा गान्धी जी की पूर्ण अहिंसात्मक नीति मन्त्रियों आदि को कम वेतन देना, मितव्ययिता से शासन कार्य चलाना, महायन्त्रों का प्रयोग यथा सम्भव कम करके गृहोद्योगों पर अधिक बल देना, दूतावासों का काम सादगी से चलाना, शिक्षा का माध्यम तत्काल देशभाषा को बनाना इत्यादि तत्त्वों पर वर्तमान सरकार कहां तक चल रही है यह सब जानते हैं। केवल भाषा और एकता के विषय में उनके नाम का उल्लेख करके जनता को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न हमें प्रशंसनीय नहीं प्रतीत होता। विचार शील सदस्यों को निष्पक्षपात हो कर दृढ़ता से अपना मत प्रकट करना चाहिए चाहे पं० जवाहिरलाल जी और मौलाना आज़ाद जैसे कुछ प्रभावशाली महानुभाव विरुद्ध पक्ष में ही रहें। यह प्रसन्नता की बात है कि श्री० पं० बालकृष्ण जी शर्मा 'नवीन' श्री महावीर जी त्यागी आदि विधान परिषत् के अनेक सदस्यों ने पं० जवाहिर लाल जी के इन विचारों की खुली आलोचना समाचार पत्रों में कर के साहस का परिचय दिया है। शासक प्रमुख श्री चक्रवर्ती-राजगोपालाचार्य जी के भी हिन्दुस्तानी समर्थक और अंग्रेजी से मोह सूचक मैसूर में दिये भाषण का प्रतिवाद करना सब हिन्दी प्रेमियों का कर्तव्य है।

सीहोर में आर्य समाज की प्रारम्भिक विजय

पाठकों ने 'सार्वदेशिक' के गत अङ्क में सीहोर (भूपाल रि०) में सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्दश समुल्लास पर अनुचित प्रतिबन्ध के सम्बन्ध में सार्वदेशिक सभा का निर्णय अवश्य पढ़ा होगा। उस निर्णय के पश्चात् प्र० सभा की ओर से भूपाल सरकार को पत्र लिखे गये कि शीघ्र से शीघ्र इस अत्यन्त अनुचित प्रतिबन्ध को हटा कर वह जनता के असन्तोष को दूर करे। इस पर वहां की सरकार की ओर से पत्र आया कि इस विषय पर विचार किया जा रहा है और उस से सभा को सूचित किया जा जाएगा। अभी सूचना प्राप्त हुई है कि सीहोर के जिला मैजिस्ट्रेट ने

आर्य समाज के मन्त्री के नाम पत्र लिखा है कि सत्यार्थ प्रकाश के बाब १४ पर जो पाबन्दी जरिये हुक्म दफ्तरी हाजा मुवर्रखा यकम जून १९४८ आइद की गई थी वह सिलसिला जलसा २ जून लुगायता ४ जून ४८ आर्जी तौर पर वक्त जरूरत के पेशेनजर को गई थी जिस की मियाद खतम हो चुकी है और अब किताब या बाब मजकूर पर कोई पाबन्दी नहीं है लिहाजा आप उस किताब या बाब का दर्सेहस्ब सवाब दीद दे सकते हैं (पुस्तक या अध्याय का पाठ अच्छी तरह कर सकते हैं) मरासला हाजा जवाबन इरसाल है।"

यह उत्तर सन्तोष जनक नहीं है।

जब तक वे यह विश्वास न दिलाएं कि वे भविष्य में आर्यों के धर्म ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगायेंगे तब तक केवल इस उत्तर से आर्य जनता का असन्तोष दूर होना असम्भव है।

आर्य जगत् के आन्दोलन के परिणाम स्वरूप जिला मजिस्ट्रेट ने जो ऊपर उद्धृत पत्र लिख कर सत्यार्थ प्रकाश विषयक प्रतिबन्ध को हटा लिया है यह आर्य समाज के तात्कालिक विजय का सूचक है। हम आशा करते हैं कि भविष्य में वे कभी सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाने का अनुचित और अविवेकपूर्ण कार्य न करेंगे।

यज्ञों द्वारा प्रचार—हम समस्त समाजों का ध्यान 'सार्वदेशिक' के गत अङ्क में प्रकाशित 'आर्य समाज की प्रचार-प्रणाली' विषयक सार्वदेशिक सभा के अत्यन्त उपयोगी निर्देशों की ओर आकृष्ट करते हुए उनसे अनुरोध करते हैं कि वे उन्हें क्रियात्मक रूप देकर जनता को लाभ पहुचाएं। वर्तमान प्रचार शैली में किस प्रकार के परिवर्तनों की विशेष आवश्यकता है तथा समाजों के दैनिक,साप्ताहिक और पाक्षिक सत्सङ्गों को (जो विशेष रूप पारिवारिक सत्सङ्ग के रूप में हो) तथा उत्सवों को कैसे अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है इस विषय का स्पष्ट निर्देश उन प्रस्तावों में है जिन्हें भ्रमण पत्रिका के रूप में भी सब आर्य समाजों को भेजा जा चुका है। उनके अतिरिक्त जहां और जब २ सम्भव हो बिना विशेष बाह्याडम्बर के किन्तु श्रद्धापूर्वक सुविधानुसार ब्रह्मपरायण यज्ञों का आयोजन वेदज्ञ सदाचारी विद्वानों द्वारा कराया जा सकता है जिन में सम्मिलित नर नारी वेदोपदेशों से लाभ उठाएं तथा भक्ति पूर्वक भगवान् का भजन कीर्तन करें। इस प्रकार के यज्ञों में सर्व साधारण नर नारियों में श्रद्धा होने के कारण यदि उन्हें बाह्याडम्बर के बिना किन्तु नियमित और सरल रूप में किया जाए तो वे धर्म प्रचार का अत्युत्तम साधन बन सकते हैं यह हमारा अनुभवसिद्ध विश्वास है। किन्तु यह तभी सम्भव है जब वेदज्ञ सदाचारी विद्वानों का पूर्ण सहयोग इस के लिये प्राप्त हो अन्यथा नहीं।

गोरक्षा उपसमिति का यह अविश्वय क्यों ?

१ अगस्त के समाचार पत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ है कि भारतीय विधान-परिषद् द्वारा नियुक्त गोरक्षा उपसमिति का अधिवेशन ३ दिन हुआ जिस में गोवन्श वृद्धि तथा गोवध निषेध विषयक प्रस्तावों पर विचार विनिमय हुआ और आवश्यक सिफारिशें भारतीय सरकार को की गईं। यह जान कर हमें अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि इस उपसमिति के सदस्यों में भी गोवध निषेध विधान बनाने के सम्बन्ध में कुछ मतभेद है। जहां कुछ सदस्य इस विधान बनवाने के पक्ष में हैं वहां कुछ इस के विरुद्ध में हैं। हमारा इस उपसमिति के उन सदस्यों से जो गोवध विधान के पक्ष में नहीं है यह सानुरोध निवेदन है कि वे गोवंश वृद्धि की आवश्यकता तथा गोवध के कारण दुग्ध घृतादि पदार्थों के शुद्ध रूप में प्राप्ति की दुर्लभता को ध्यान में रखते हुए स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से गोवध निषेध विधान

बनवाने में अणु मात्र भी संकोच न करें। स्वयं विचार शील अनेक मुसलमान भी जब गोरक्षा और गोवध निषेध की आवश्यकता को इतनी तीव्रता से अनुभव करने लग गये हैं कि मौलाना काबिल प्रधान हिन्दू मुस्लिम गोरक्षा सभा आदि अनेक मुस्लिम सज्जन सितम्बर मास के अन्तिम सप्ताह में भारत पाकिस्तान गोरक्षा सम्मेलन का आयोजन कर रहे हैं जैसे कि १६ अगस्त के इन्डियन न्यूज़ क्रानिकल देहली इत्यादि पत्रों में असोशियेटेड प्रेस का समाचार है तो फिर इस विषय में अनिश्चय और संकोच का कारण ही क्या है? यह गोवध निषेध विधान का प्रश्न धार्मिक नहीं किन्तु आर्थिक और स्वास्थ्य विषयक है अतः यदि गोरक्षा उपसमिति कुछ मुसलमानों की अप्रसन्नतादि के भय से ऐसे विधान का समर्थन करने में संकोच भी करे तो भी भारतीय विधान परिषत् के सदस्यों का कर्तव्य है कि वे इस प्रस्ताव का अवश्य ही प्रबल समर्थन करके पुण्य और कीर्ति के भागी बनें।

सेवा जन गणना और जाति भेदः—

पिछले दिनों भारतीय धारासभा में जातपात के सम्बन्ध में पर्याप्त विचार हुआ श्री दिवाकर जी के प्रस्ताव पर भी और जन संख्या के बिल पर भी। श्री दिवाकर जी का प्रस्ताव था कि सरकारी नौकरियां से सम्बद्ध कार्यों के लिये भारत सरकार किसी जाति, उप जाति, मत या धर्म को स्वीकार न करेगी और न सरकारी रजिस्टरों या रिकार्डों में जाति, उपजाति मत या धर्म का उल्लेख किया जायगा। जनसंख्या बिल में जातपात न लिखने का संशोधन श्री बसन्त कुमार दास ने प्रस्तुत किया जिसका श्रीमती दुर्गाबाई जी, श्री रेणुकाराय तथा श्रीमती अम्मुस्वामीनाथन् इत्यादि महिलाओं और श्री महावीर त्यागी आदि अन्य सदस्यों ने प्रबल समर्थन किया किन्तु माननीय सरदार पटेल ने श्री दिवाकरजी के प्रस्ताव और श्री बसन्त कुमार दास के संशोधन के उद्देश्य या मूल सिद्धान्त से सरकार की सहानुभूति तथा सहमति प्रकट करते हुए भी उन्हें स्वीकार करने से इनकार कर दिया और उनके आश्वासन पर श्री दिवाकर जी को अपना प्रस्ताव वापस लेना पड़ा जन तथा संख्या बिल पर संशोधन गिर गया माननीय सरदार पटेल की इस युक्ति से हम सह-मत नहीं कि क्योंकि विधान बनने पर भी अस्पृश्यता निवारण पूर्णतया नहीं हो सका इस लिये इन विषयों में केवल जनता को ही शिक्षित करने से काम चल सकता है। तब तो बाल्यविवाह निषेध, मद्यपाननिषेधादि विषयक कोई भी कानून न बनना चाहिये। अतः जहाँ जनता में जातिभेद की अत्यन्त घातकप्रथा के विरुद्ध आन्दोलन आवश्यक है वहां राष्ट्रीय सरकार का भी यह कर्तव्य है कि वह राष्ट्रीयभावना के विकास में बाधक तथा साम्प्रदायिकता वर्धक इस जातिभेद की प्रथा का अन्त करने में सहायक हो। माननीय सरदार पटेल की इस घोषणा से कुछ सन्तोष हुआ कि ऐसे निर्देश कि किसी को अपनी जाति के लिखने के लिये बाधित न किया जाए जन गणना करने वालों को दिये जाएंगे किन्तु हम तो श्री महावीर त्यागी आदि के इस प्रस्ताव से ही सहमत हैं कि 'जाति' के स्तम्भ को ही जनगणना में से निकाल दिया जाए। इस विषयक आन्दोलन सब सुधारक व्यक्तियों और संस्थाओं को निरन्तर जारी रखने की आवश्यकता है। किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया गामिनी अराष्ट्रीय प्रवृत्तियों का राष्ट्रीय सरकार द्वारा समर्थन हमें उचित नहीं प्रतीत होता।

ध० दे०

Regd. No. D. 159

* ओ३म् *

मासिक सार्वदेशिक पत्र



श्री महात्मा नारायण स्वामी जी

(जिनका गतवर्ष १५ अक्टूबर को देहावसान हुआ)

आश्विन स० २००५ | अक्टूबर १९४८ ई०

सम्पादक—
श्री पं० धर्मदेव जी सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति

मूल्य स्वदेश ५)
एक प्रति ।।)
विदेश १०) शि०

विषय-सूची

संख्या— पृष्ठ

१. वैदिक प्रार्थना—	... .	३४९
२. अध्यात्म-सुधा— म० प्रभु आश्रित जी	... ...	३५०
३. महात्माओं के कल्याणकारी उपदेश—श्री लब्भूराम जी लुधियाना	....	३५४
४. हमारा सर्वस्व (कविता)—श्री डा० सूर्य देव जी एम० ए० ...	....	३५५
५. मनुस्मृति और भारतवर्ष—श्री० पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम. ए.	...	३५६
६. नम्र निवेदन—श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्द जो	... ...	३६१
७. ग्रयन्त इम आत्मा के विषय में स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी के नम्र निवेदन पर मेरा वक्तव्य श्री—प० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय		३६५
८. महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी—श्री० पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति,	...	३७१
९. विजय गान (कविता)—श्री कवि कमल जी साहित्यालङ्कार ..	...	३८०
१०. विजय दशमी (कविता)—श्री रुद्र मित्र जी शास्त्री	....	३८२
११ राम राज्य	... ...	३८३
१२ दान सूची—	... ...	३८५
१३ साहित्य समीक्षा —	... ...	३८७
१४. ईश्वर प्रेम का नशा —श्री पं० रघुनाथ प्रसाद जी पाठक	... ...	३८९
१५ सम्पादकीय—	....	३९०

॥ ओ३म् ॥

सार्वदेशिक

❋ सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र ❋

वर्ष २८ } अक्टूबर १९४८ ई०] अश्विन २००५ दयानन्दाब्द १२८ { अङ्क ८

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानडुत्सु नः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥ ऋग्वेद ३।५३।१८॥

अर्थः— हे (इन्द्र) परमेश्वर (नः) हमारे (तनूषु) शरीरों में (बलं धेहि) बल स्थापित कर । (नः) हमारे (अनडुत्सु) बैल आदि पशुओं में (बलम्) बल धारण करा (जीवसे) उत्तम जीवन व्यतीत करने के लिये हमारी [तोकाय तनयाय,] सन्तान की (बलम् धेहि) बल दे [त्वं] तू [हि] निश्चय से [बलदा असि] बल देने वाला है ।

विनय—हे परम पिता परमात्मन् ! आप सारे बल के भण्डार और सबको बल देने वाले हैं । बल के विना हम किसी भी कार्य को ठीक प्रकार से नहीं कर सकते । परिवार, समाज और राष्ट्र की रक्षा के लिये भी हम सब को शारीरिक बल की बड़ी आवश्यकता है । बल हीन मनुष्य, जीवन का आनन्द नहीं ले सकता । इसलिये आप से जो सर्वशक्तिमान् और बलदाता हैं हम सब बल की प्रार्थना करते हैं । आप हमें, हमारी सन्तानों तथा हमारे पशुओं को भी बलशाली बनाओ जिस से सब अपने कर्त्तव्यों का उत्तमता से पालन कर सकें ।

अध्यात्म सुधा

- :x✻x:—

(हमारी प्रार्थना पर 'गायत्री रहस्य' 'संध्या सोपान" "देवयज्ञ रहस्य" आदि उत्तम, ग्रन्थों के लेखक और उच्च कोटि के महात्मा श्री 'प्रभु आश्रित' जी ने जो पूर्वाश्रम में महात्मा टेकचन्द्र जी के नाम से प्रसिद्ध थे। वेद मन्त्रों के आधार पर जनता के आध्यात्मिक लाभार्थ यह लेख लिखने की कृपा की है। भविष्य में भी उनकी कृपा दृष्टि 'सार्वदेशिक' परिवार पर बनी रहेगी ऐसी हमें पूर्ण आशा है। पाठक इससे पूर्ण लाभ उठाएं और अपने जीवन को पवित्र तथा भक्तिमय बनाने का पूर्ण प्रयत्न करें। पूज्यपाद महात्मा जी की इस कृपा के लिये हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

—सम्पादक सा० दे०]

ओ३म् अश्मन्वती रीयते संरभध्वम् उत्तिष्ठत प्रतरता सखायः। अत्रा जहीमोऽशिवा ये असन् शिवान् वयमुत्तरेमाभिवाजान्॥ यजु० ३५। १०

शब्दार्थः—संसार रूपी (अश्मन्वती) पथरीली नदी (रीयते) बह रही है। हे (सखायः) मित्रो! (संरभध्वम्) मिल कर उद्योग करो (उत्तिष्ठत) उठो, आलस्य का परित्याग करो और (प्रतरत) अच्छी प्रकार तैर जाओ। (ये अशिवा असन्) जो दुर्गुण या बुरी वस्तुएं हैं उन को (अत्र) यहीं (वयम्) (जहीमः हम छोड़ देते हैं और (शिवान्) कल्याणकारी (वाजान् अभि) ज्ञान और बल आदि की प्राप्ति का उद्देश्य बना कर (उत्तरेम) इस नदी को हम तैर जाएं।

सब मनुष्य संसार रूपी नदीके इस ओर खड़े हुए हैं। स्वभाव से इसके पार जाना अर्थात् मोक्ष पाना चाहते हैं। किंतु सिर पर बुराइयों की गठड़ी का बोझ उठाये हैं और दरिया के किनारे वाली रेत की तरह ससार के सुखों में लिप्त हैं। जैसे मृग रेत को पानी समझ कर दौड़ २ के मर जाता है ऐसे ही जीवन को नाशवान् सुखों के लिये नष्ट कर रहे हैं। यदि दरिया के किनारे पर पैदल यात्रा करते हैं तो पांव फिसलते हैं। फिर ऊंट की सवारी का सहारा लेकर चलते हैं तो किनारे पहुंच कर नदी में उतरने की कोशिश करते हैं। सबसे पहले बुराइयों वाली गठड़ी को नदी में बहा देना चाहिये ताकि हम बोझ से दब न जावें। सर्व साधारण लोग तो अभी किनारे पर पहुंचे ही नहीं। अभी तो भयानक जङ्गल रूपी संसार में पशु की तरह विचर रहे हैं। जो भी कोई भाग्यवान नदी से पार होना चाहता है तो वह अपनी यात्रा आरम्भ करता है। इस भयानक जङ्गल से आगे इस नदी से उछाली हुई रेत है जिस पर मनुष्य पैदल चले तो पांव फिसलता है। गधे घोड़े पर चढ़े तो पीछे को कदम जाता है। वहां एक ऊंट है जो कदम जमा २ के रखता है और उसकी चाल भी धीमी २ होती है। उसका नाम है तप, धैर्य। जैसे एक बहती नदी के पूर्व किनारे वाले लोग भी यही कहते हैं हम इस ओर हैं। पश्चिम किनारे वाले

भी कहते हैं हम इस ओर हैं। ऐसे समस्त संसार सागर के रहने वाले मनुष्य प्राणी इस ओर ही इस ओर हैं। जो तप और धैर्य से किनारे पर पहुंच जाता है। शास्त्रों में तप और स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान को क्रिया योग कहा जाता है। ईश्वर अर्पण होने वाला मनुष्य तो कोई विरला होता है जो नौका में बैठता है। अपनी गठड़ी को भी उतार कर उसी में रख देता है और अपने आपको मल्लाह के हवाले करता हुआ निश्चित पार हो जाता है। किन्तु जो लोग तप और स्वाध्याय अर्थात् कर्म और ज्ञान के द्वारा अपने बल के आश्रय पर इस नदी को पार करना चाहते हैं उनके कदम रखते ही पानी के बीच ऐसे काम रूपी चिकने पत्थर पड़े हुए हैं जिन पर कदम पड़ते ही पांव फिसल जाता है और वहीं डूब जाता है। यदि कोई बड़ी सावधानी और युक्ति के साथ इन काम रूपी पत्थरों को लांघ भी जाये तो आगे क्रोध रूपी धारा इस वेग से बह रही है कि वह यात्री को नीचे की ओर बहा लेजाती है बस फिर ऊपर को आना तो असम्भव सा हो जाता है। इससे भी कोई सावधान हो अपने बल से चीरती हुआ सीधा जाता है तो लोभ रूपी मगर मच्छ मुंह खोले हड़प कर जाता है। अगर कोई ज्ञानी ज्ञान युक्ति से इस से भी बच जाए तो इससे आगे बहुत कम गहरा पानी आता है जिसकी सत्ता का समतल होने से पता नहीं लगता और नीचे जो वास्तव में मोह रूपी दल दल है उसमें पांव रखते ही फँस जाता है। इस से तो बड़े बहादुर का भी निकलना कठिन हो जाता है। यदि कोई ज्ञान शील मनुष्य तुरन्त सावधान हो जाये तथा और आगे चल निकले तो अहङ्कार रूपी भँवर की घुमर घेरी में खिंचा हुआ पकड़ा जाता है और वही भंवर उसे नीचे डुबा देता है।

मनुष्य जिस भी किसी वस्तु को प्राप्त करना चाहे जब तक उसके स्वरूप को न जाने तब तक उसकी प्राप्ति के साधनों में उस से भूल होती रहेगी जैसे एक मनुष्य किसी बुराई को छोड़ना चाहता है। चाहना तो उस को है, परन्तु बुराई के स्वरूप को नहीं समझा इस लिये उससे नहीं छूटता। एक आदमी नित्य परमेश्वर के गुणों की स्तुति करता है किन्तु किसी गुण को भी धारण नहीं कर पाता। कारण यही है कि उसके किसी गुण के स्वरूप को समझा ही नहीं। अब इस बात को समझिये कि मनुष्य सुख, शान्ति, और आनन्द चाहता है और यह सुख इस ओर के किनारे भी मौजूद है। परन्तु वह सदा दुःखमें मस्त रहता है। मनुष्य को इस लोक में पुत्र से, परिवार से, स्त्री से, माता पिता से, धन दौलत से सुख मिलता है किन्तु इन्हीं से वह सदा दुःख उठाता है। इसका बस एक मात्र यह कारण है कि उसने सुख के स्वरूप को नहीं जाना। जब हम नदी के पार पहुंच कर शान्ति और आनन्द को प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें उसके स्वरूप को पहले जानना चाहिये जहां से शान्ति और आनन्द मिलता है। वह परमेश्वर जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं उस का क्या स्वरूप है, और किस साधन से हम उस प्रभु की, आराधना करें। परमेश्वर के गुण अनन्त हैं। उसके स्वरूप अनन्त हैं पर भक्त को उस स्वरूप से आराधन करने पर जिसकी उपमा पूरी या हीन हम दे सकते हैं, आनन्द और शान्ति प्राप्त नहीं होगी।

परमेश्वर का वह स्वरूप शाश्वत शान्ति और आनन्द के देने वाला हो सकता है जिसकी उपमा संसार में, और न हो सके। वह स्वरूप है परमेश्वर का सत्। वह एक है अनेक नहीं जो न कम हो सकता न बढ़ सकता है और सदा एक रस रहता है वेद ने भी कहा है [एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति] गीता में भी कहा गया है [ॐ तत्सत्] गुरु नानक देव ने भी इसके स्वरूप को "एक ओंकार सतनाम" आदि सच जुगादि सच, है भो सच नानक होसी भी सच" कहा है। सत् स्वरूप को जानने के लिये सत्य ही उसका साधन है। सत्य चोटी की चीज है सिर है और उसके पांव तप हैं। तप ही इसकी सवारी है। जैसे ऊंट का उदाहरण दिया गया था कि वह रेतीले सफ़र में जमा २ कर धीमा २ कदम रखता है। कोई भी पशु आसन लगाकर नहीं बैठ सकता किंतु अपनी टांगों के बल खड़ा तो हो सकता है पर बैठ नहीं सकता। परन्तु ऊंट आसन जमा कर घंटों सीधा बैठा रहता है। यहां तक कि उस पर भार भी बैठे २ लादते हैं। यह उसकी आसन सिद्धि है। सर्दी गर्मी और भूख प्यास आदि द्वन्द्वों का सहन करना भी एक तप है। यह ऊंट में पाया जाता है, और पशुओं में नहीं। हानि लाभ, मान, अपमान, सहन करना यह तप मनुष्य ही कर सकता है मगर जिसने सत्य को जाना हो। बहुत से मनुष्य भक्ति करते हैं किन्तु प्रभु के सत् रूप को अपने में रखे बिना। इस लिये वे शान्ति, और आनन्द को नहीं प्राप्त कर सकते, और कई साधक सत् प्राप्ति करने के लिये तप का व्रत करते हैं परन्तु तप के भंग होने से वे भी पार नहीं पहुंच सकते। तप या व्रत दो कारणों से भंग होता है (प्रलोभन या भय से) प्रलोभन से तो मनुष्य तप से गिर जाता है और भय से कुछ नहीं करने पाता अथवा उन्नति नहीं कर सकता। हर एक प्राणी की उत्पत्ति जैसे माता पिता से होती है ऐसे ही पापवृत्तियों की भी उत्पत्ति होती है। पाप की मां मोह है, पिता पिता लोभ है। यहां एक दृष्टान्त है। एक विद्वान् ब्राह्मण बड़ा तेजस्वी तपस्वी ब्रह्मचारी काशी से विद्या प्राप्त कर के घर को चला। रास्ते में एक जाट उसे मिला। जाट ने पूछा आप कौन हैं ब्राह्मण बोला मैं विद्या पढ़ कर काशी से आ रहा हूं। जाट बोला विद्या क्यों पढ़ी जाती है? ब्राह्मण ने कहा पाप से बचने, ज्ञान प्राप्त करने और आत्मा का साक्षात्कार करने के लिये पढ़ी जाती है। जाटने पूछा मुझे यह बताओ कि पाप का बाप कौन है! ब्राह्मण यह सुन कर बड़ा अचम्भे में पड़ गया कि इतनी विद्या पढ़ी पर मुझे पाप के बाप का पता नहीं लगा। उसे बड़ा सोच है। अगर पीछे वापिस जाता हूं तो सफर बहुत लम्बा है घर जाता हूं शायद फिर किसी ने यह प्रश्न पूछ लिया तो कहीं लज्जित न होना पड़े। सारा विद्या का अभिमान वहीं दूर हो गया। अब जाट ने कहा सोचते क्यों हो। यहां थोड़ी दूर पर एक वेश्या रहती है वह इस प्रश्न का उत्तर तुम्हें देगी वहीं चले जाओ। बहुत सोच विचार करने के बाद अन्त में वेश्या के घरभी जाना स्वीकार किया। बिन इसके उत्तर लिये तो घर जाना ही नहीं। वहां जाकर दरवाजा खटखटाया। किवाड़ खुलते ही

अन्दर जब गया तो वेश्या ने देखा बड़ा तेजस्वी मनुष्य आया हुआ है। वेश्या ने प्रणाम किया, बैठने को आसन दिया। ब्राह्मण ने कहा मैं यहाँ ठहरना नहीं चाहता तू पतिता है। तेरा सब कुछ अपवित्र है। मैं एक प्रश्न का उत्तर लेने आया हूँ मुझे जल्दी २ उसका उत्तर दो [प्रश्न] मुझे यह बताओ पाप का बाप कौन है? वेश्या ने कहा आप ठहरें अभी उत्तर मिल जाता है। इतने में वेश्या एक थाली में हीरे जवाहर या ऐसी सुन्दर २ चीजें सजा कर ऊपर बड़ा सुन्दर सा रूमाल डाल कर ले आई। अब थाली ढकी हुई है। हाथ से तो वह थाली का रूमाल थोर २ ऊँचा कर रही है मुह से बड़ी श्रद्धा की बातें कर रही है। महाराज आपने मेरे घर को पवित्र किया। आप ऐसे महान विद्वान और पवित्र। मुझ अभागी पापिन के घर आ कर मेरे भाग्य जगाए। अगर आप मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार कर लें तो मेरा जन्म सफल हो जाए। अब धीरे २ ब्राह्मण देवता की बुद्धि कुछ पलटने लगी। पाप का बाप सिर पै सवार होने लगा। मन में सोचा सारी आयु भी अगर कमाता रहूँ तो इतना धन न कमा सकूँगा। अब इस थाली को ले लूँ फिर घर जा कर कोई प्रायश्चित्त या कोई व्रत कर लूँगा। कहां वह ब्राह्मण जो एक क्षण के लिये भी वेश्या के घर ठहरने को तय्यार न था अब वही ब्राह्मण वेश्या का धन लेने को तय्यार हो गया है। बस भगवान् कृपा करे सब को सद्‌बुद्धि प्रदान करे। ऐसे विद्वान् और तेजस्वी मनुष्य पर भी लोभ रूपी विषय सवार हो गया। ब्राह्मण ने कहा अगर मेरे भेंट लेने से तेरा जन्म सफल होता है तो मैं लेता हूँ। हाथ बढ़ाया वे चीजें लेने को तो झट वेश्या ने ब्राह्मण को कलाई पकड़ कर कहा बस अब जाओ तुम्हें उत्तर मिल गया। ब्राह्मण बोला मेरी समझ में नहीं आया तो वेश्या ने कहा यही है पाप का बाप लोभ। इस लोभ महाराज की ही कृपा है जिसने तुम्हें अधर्म और धर्म की पहिचान में असावधान कर दिया। इस लिये कहा है। पाप का पिता लोभ है।

इन काम क्रोध लोभ मोहादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर के ही मनुष्य संसार नदी से तर सकता है और उसका कल्याण हो सकता है अन्यथा नहीं। [शेष फिर]

महात्माओं के कल्याणकारी उपदेश

केवल धर्म ही सुखों का मूल है:—

(लेखक—श्री लब्भू राम जी आनन्द आश्रम, लुध्याना)

अविद्या में फसे हुए आत्मा धर्म के तत्व को भूल अन्धकार में पड़े हुए हैं। संसार में इस समय क्या मिथ्या विचार फैल रहे हैं। इस लोक और परलोक के सुखों में भेद समझा जाता है और दोनों के साधन पृथक् बतलाए जाते हैं। कणाद मुनि बड़ी गम्भीरता से क्या दर्शा रहे हैं कि जिससे व्यवहार और मुक्ति दोनों का सुख प्राप्त हो, उसे धर्म कहते हैं। फिर यह विरोध क्यों? इसलिये कि सुख के असल अभिप्राय को भूल गए। अधर्मी पुरुष कदाचित् सुख प्राप्त नहीं कर सकता। जो सुख हमें प्रतीत होता है वह वस्तुतः सुख नहीं। जिस प्रकार संसार के पदार्थों के पीछे हम दौड़ते हैं इसी प्रकार वह हम से भागते हैं और जिस कदर हम उनसे लापरवाह होते हैं उसी कदर वे हमारा पीछा करते हैं। जिस प्रकार नदियां समुद्र में जाती हैं, समुद्र को उनकी इच्छा नहीं क्योंकि समुद्र जल से पहले ही भरपूर है। इस तरह सब सुख के सामान बिना कामना के धार्मिक पुरुषों को स्वयं मिल जाते हैं। यदि सांसारिक सच्चे सुखों की अभिलाषा है तो केवल धर्म का ही सेवन करना चाहिए। इसी में हमारा कल्याण है।

शुद्ध स्वरूप प्रभु के दर्शन के लिये स्वयं शुद्ध बनोः—

(२) प्रभु के दर्शन की किसको अभिलाषा नहीं? यदि आस्तिक पुरुष दयामय परम पुरुष की प्राप्ति के लिये दिन रात यत्न करने में लगे हैं तो क्या नास्तिक लोगों की मनः कामना यह नहीं है कि 'नेचर' अपने ऊपर का परदा उतार कर इन्हें अपने असली रूप में दर्शन देवे। नाम के परिवर्तन से किसी वस्तु के गौरव में अन्तर नहीं आ सकता। हे कोई नाम रखो परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि किसी महाशक्ति के दर्शनों की अभिलाषा प्रत्येक मन के अन्दर लगी हुई है। किंतु आश्चर्य यह है कि इस प्रकार अभिलाषियों में से दर्शन किसी को ही प्राप्त होते हैं। यह क्यों? जिस महाशक्ति जिस परम पुरुष का तुम दर्शन करना चाहते हो वह शुद्ध स्वरूप है, उसके अन्दर अपवित्रता का कोई अंश तक नहीं और अपने भीतर जरा दृष्टि डालकर देखो तो किस प्रकार अपवित्रताओं से भरा यह हृदय है। केवल शरीर को धोने से क्या लाभ? जब कि अन्दर अपवित्रता की तह पर तह जम रही है। असत्य, छल, कुटिलता, भीरुता और व्यभिचार आदि बुराइयों से जब अन्दर सड़ रहा है तो परमात्मा के समीप पहुँचने की इच्छा कैसी निरर्थक है। हमारा कर्त्तव्य है कि इन्द्रियों की शुद्धि करते हुए मन को पवित्र करें ताकि हमारा आत्मा स्वयं पवित्र होकर शुद्ध स्वरूप प्रभु के दर्शन के अधिकारी बन सके। इसी में हमारा कल्याण है। ओ३म् शम्

हमारा सर्वस्व

(ले०—डा० सूर्य देव शर्मा सिद्धान्त शास्त्री साहित्यालंकार, एम० ए०, एल० टी०, डी० लिट्, अजमेर)

(दिक्पाल छन्द)

परमेश का पसारा, संसार का सहारा।
वर वेद धर्म प्यारा, सर्वस्व हो हमारा ॥ टेक ॥
करते सदा रहे थे, योगी गान जिसका।
तरते सदा रहे थे, ले गेय ज्ञान जिसका॥
सुरलोक का सहारा
सर्वस्व हो हमारा ॥१॥
ऋषि विश्व से पृथक् हो, वन में निवास करते।
स्वाध्याय से अथक हो, परमार्थ आस करते ॥
प्रभु प्रेम का पिटारा।
सर्वस्व हो हमारा ॥ ॥
बहु बाल ब्रह्मचारी, बन ज्ञान के भिखारी।
श्रुतिदेवता पुजारी, थे पीत वस्त्र धारी ॥
व्रत वेद हेतु धारा।
सर्वस्व हो हमारा ॥३॥
वर्चस्वि ब्राह्मणों को, सुरतेजमान दाता।
वर वीर क्षत्रियों को बल ओज का प्रदाता ॥
विट् शूद्र का सहारा।
सर्वस्व हो हमारा ॥४॥
भगवान् ! यदि मरें हम तो वेद वेद रटते।
बलिदान सब करें हम, पीछे कभी न हटते ॥
मन प्राण का अधारा।
सर्वस्व हो हमारा ॥५॥
प्राचीन आर्यजन का, बस प्राण वेद ही था।
जीवन तथा मरन का, श्रुतिहित अभेद ही था ॥
श्रुति "सूर्य" का उजारा।
सर्वस्व हो हमारा ॥६॥

———

यौगिक दृष्टि से सरस्वती और दृषद्वती दोनों नाम नदी के पर्याय हैं। सरस्वती इस लिये कहा कि उस में जल का प्रवाह बहता है और दृषद्वती इस लिये कि उस के किनारे पथरीले होते हैं। उस में दृषद् या पत्थर बहुत पाये जाते हैं। नदियां प्रायः पत्थरों को काटकर ही अपना मार्ग बनाती हैं। ज्ञानधारा के प्रवाह के कारण विद्या को भी सरस्वती कहते हैं। ऋग्वेद मण्डल ३, सूक्त २३ के मंत्र ४ में दृषद्वती और सरस्वती दोनों शब्द आये हैं और वह यज्ञ का प्रकरण प्रतीत होता है। अग्नि को सम्बोधन करके कहते हैं 'अग्ने दिदीहि' अर्थात् हे अग्नि तू दीप्तिमान् हो। मंत्र यह है।

नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम्। दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि॥ (ऋ० ३।२३।४)

सम्भव है कि इस मन्त्र की प्रेरणा से ही आदिम ऋषियों ने यज्ञ की स्थापना कर ब्रह्मावर्त्त देश की नींव डाली हो। मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में जहां इन देशों का वर्णन है यज्ञ का ही प्रकरण है। इसके पूर्व और अपर के लेख ये हैं:—

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।
तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिञ्ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित्॥

(२।१६)

अर्थात्—मंत्र की विधि के अनुसार जिस पुरुष के लिये गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक सोलह संस्कारों का उपदेश है उसका इस यज्ञ शास्त्र में अधिकार जानना चाहिये।

एष धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्तिता।
संभवश्चास्य सर्वस्य वर्णधर्मान् निबोधत॥

(२।२५)

अर्थात् यह आपसे धर्म के निवास का उल्लेख किया गया। अब आगे वर्ण धर्मों को सुनिये।

ब्रह्मावर्त्त को बसाने के पश्चात् समयान्तर में आर्य लोग आगे बढ़ होंगे। यह बढ़ोतरी का युग था। ह्रास का नहीं। वैदिक संस्कृति उन्नतिशील थी। ब्रह्मावर्त के पश्चात् जो देश बसा उसका नाम ब्रह्मर्षि देश हुआ। मनुस्मृति में इसका उल्लेख इस प्रकार है:—

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरः॥

(२।१६)

अर्थात् कुरुक्षेत्र, मत्स्यराज्य, पंचाल देश तथा शूरसेनी देश यह सब मिल कर ब्रह्मर्षि देश हुआ जो ब्रह्मावर्त्त से मिला जुला था।

जब देश के विस्तार तथा आकार में वृद्धि हुई तो आवश्यक हुआ होगा कि नाम में भी कुछ भेद किया जाय। आदिम देश का नाम ब्रह्म अर्थात् प्रभु के नाम पर ब्रह्मावर्त्त हुआ। अब आगे संस्कृति के उद्धारक प्रभु के भक्त ऋषि हुये, अतः इस देश का नाम 'ब्रह्मर्षि देश' हुआ। इसीके आगे का श्लोक 'एतद्देश' इत्यादि है जिससे ऋषियों द्वारा स्थापित वेद प्रचार का केन्द्र इसको समझना चाहिये यहां से लोग प्रचारार्थ दूसरे देशों को जाते और वहाँ से शिष्य वर्ग गुरुओं के उपदेश के लिये ब्रह्मर्षि देश में आते होंगे।

ब्रह्मर्षि देश के पश्चात् मध्य देश और फिर अन्त में आर्यावर्त्त की बारी आई:—

हिमवद् विन्ध्ययोर्मध्ये यत प्राग् विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥
(२-२१)

हिमालय और विन्ध्य के बीच सरस्वती से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम मध्य प्रदेश हुआ।

मध्यदेश की सभ्यता बड़ी रही होगी। इस समय तक विकृति के चिह्न प्रतीत नहीं होते। प्रयाग गङ्गा तट पर है। प्रयाग का नाम ही 'याग' अर्थात् यज्ञ के ऊपर पड़ा है।

मध्यदेश का कलेवर जब बढ़ा तो उसी का नाम आर्यावर्त्त हो गया:—

आ समुद्रात्तु वै पूर्वा दासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्यो रार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः॥
(२-२२)

अर्थात् समुद्र से समुद्र तक जो पहाड़ों के बीच में आर्यावर्त्त देश हुआ। ब्रह्मावर्त्त से लेकर आर्यावर्त्त तक इस प्रकार चार परिवर्तन हुए। यह वृद्धि और विस्तार के कारण थे। आर्यों ने प्राचीन देशों की सीमा तथा नामों में परिवर्तन नहीं किया। वह इनकी उन्नति के इतिहास का एक अच्छा, उत्साहप्रद और उपयोगी संस्मरण था। यह नाम यौगिक भी है और योग रूढि भी। यह आर्यों के स्वदेश प्रेम तथा प्राचीन गौरव के साक्षी रूप हैं। इस विकास में कितने दिन लग गये यह कहना कठिन है। हजारों लगे हों, लाखों लगे हों। उन्नति और विकास समवेग से नहीं चलते। समय समय पर विलम्ब और समय समय पर तीव्रता सुघटित होती रहती है।

यह भी नैसर्गिक नियम है कि केन्द्र से दूर होने पर गति की शक्ति कम हो जाती है। यही आर्य्य जाति का भी हाल रहा होगा। उन्नति के साथ साथ विकृति स्वाभाविक ही है। लड़ाई, झगड़े, ईर्ष्या, द्वेष इनको सर्वथा कभी निर्मूल नहीं किया जा सकता। प्रतीत होता है कि केन्द्र से दूर होने के कारण आर्य्य सन्तान को अपनी भाषा तथा चलन से उतना प्रेम नहीं रह गया। सबसे पहला परिवर्त्तन जिसका आर्य्यों ने अनुभव किया बोली का था। और बोली में भी विशेष कर उच्चारण का। जब हमारे लड़के कुछ दिनों किसी परदेश में रह आते हैं तो उनके उच्चारण (लहजा या एक्सेंट) में परिवर्तन हो जाता है। उदात्त अनुदात्त और अनुदात्त उदात्त होजाते हैं। आजकल एक ही भाषा बोलने वाले मेरठ और पटना के रहने वाले दो व्यक्तियों के शब्दों में आप इस स्वरभेद का अनुभव भली प्रकार करेंगे। इस में देश, काल, जल,वायु, परिस्थिति सभी शामिल हैं। इसी लिये आर्य्यावर्त्त की सीमा के बाहर के प्रदेश 'म्लेच्छ देश' कहलाये।

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेश स्त्वतः परः॥
(२।२३)

अर्थात् जहाँ काला मृग स्वच्छन्दता से विचरता है उसको यज्ञ प्रदेश कहना चाहिये। इसके आगे म्लेच्छ देश है।

यहां एक बात याद रखनी चाहिये। आजकल म्लेच्छ शब्द गन्दे, नापाक, घृणित पुरुष के लिए आता है। म्लेच्छ शब्द का मौलिक अर्थ यह नहीं है। इसका वास्तविक अर्थ है 'अपरिचित स्वर वाला' जिसे अंगरेजी में फौरेन एक्सेएट (foreign accent) कहते हैं। शनैः शनैः इन के विचारों और रीति नीति में अधिक भेद होने से म्लेच्छ शब्द के अर्थ भी विस्तृत हो गये ऐसा प्रतीत होता है। आज कल प्रायः हिन्दु घरों में मुसलमान आदि को जो मांस सेवन करते हैं म्लेच्छ कहते हैं। परन्तु म्लेच्छ शब्द मुसलमानों से बहुत पुराना है और और उसका सम्बन्ध बोली से है न कि आचार से।

दूसरी विशेष बात इस श्लोक में यह बताई गई है कि जहाँ काला मृग स्वच्छन्दता से विचरता हो वह यज्ञ-प्रदेश है। इस से यज्ञ-करने वालों की अहिंसक वृत्ति का पता लगता है। स्वछन्दता वहीं आती है, जहां भय न हो। जहाँ शिकारी बहुत हों वहाँ पशु विचार नहीं सकते। मध्य कालीन साहित्य में बहुधा ऐसा उल्लेख मिलता है कि वैखानसों के घरों में हिरण बिना किसी भय के चरा करते थे क्योंकि प्रेम के कारण कोई उनको मारता नहीं था।

भारत वर्ष के प्राचीन गौरव और देश प्रेम का परिचय जितना मनुस्मृति से मिलता है उतना अन्यत्र दृष्टि-गोचर नहीं होता। भारतीय प्राचीन संस्कृति को विकृत न होने देने में मनुस्मृति का बड़ा हाथ है। दुर्भाग्य का विषय है कि हमने इसको भुला दिया है। मनुस्मृति का अगला श्लोक बड़े महत्त्व का है:—

एतान् द्विजातयो देशानाश्रयेरन् प्रयत्नतः।
शूद्रस्तु यस्मिन् कस्मिन् वा निवसेद् वृत्तिकर्षितः॥
(२—२४)

(शेष अगले अङ्क में)

नम्र निवेदन

[लेखक—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज मठाधीश दीनानगर]

पण्डित गंगाप्रसादजी उपाध्याय ने सार्वदेशिक पत्र के किसी अङ्क में एक लेख लिखा था, जिस में संस्कारविधि के विषय में भ्रमोत्पन्न होता था। मैंने वह लेख पढ़ा था। मेरा विचार था आर्य समाज का पण्डित वर्ग जो ऋषिकृत ग्रन्थों में बिन्दु विसर्ग का भी परिवर्तन नहीं मानता, इसका उत्तर देगा। लम्बी प्रतीक्षा में भी मुझे उसका उत्तर दृष्टि गोचर नहीं हुआ, अतः मेरा विचार है, किसी ने उसका उत्तर लिखा ही नहीं होगा।

पं० गङ्गाप्रसाद जी आर्य समाज के उत्तम लेखक हैं, आपने आर्य समाज पर अनेक पुस्तक लिखी है, पण्डित जी आर्य समाज प्रयाग के मुख्य कार्य कर्ताओं में से है. पंडित गंगाप्रसाद जी संयुक्त प्रांतीय आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान पद को सुशोभित कर चुके हैं। उपाध्याय जी वर्षों से सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री पद का कार्य कर रहे हैं। इस लिये आप आर्य समाज की मर्यादा के मर्मज्ञ हैं। संस्कार विधि ग्रन्थ आर्य समाज का मुख्य ग्रन्थ है, उसके लेखक महर्षि जी ही हैं, इस लिये पंडित जी ने जो कुछ लिखा है, उसका दोष लेखक पर डाला है। यह उनकी ऋषि पर श्रद्धा प्रकट करने के लिये पर्याप्त प्रमाण है। वह लेख मैंने पढ़ा था, परन्तु उत्तर लिखते समय यत्न करने पर भी मुझे वह अङ्क नहीं मिला। मेरे पास सार्वदेशिक पत्र आता है, मैं फायल भी यथाशक्ति रखता हूं। परन्तु अब देखने से पता लगा, कुछ अङ्क नहीं हैं, उन में वह अङ्क भी गुम है। अतः मैं पण्डित जी का पाठ न लिख कर जो कुछ स्मरण है, वही लिखूंगा पाठ न लिखने के लिये पंडित जी क्षमा करेंगे।

पंडित जी ने दो प्रश्न किये हैं।

(१) ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व' सामान्य प्रकरण का मंत्र

(२) ओं भूर्भुवः स्वः। सा नः पूषा शिवतमा मैरय सा न उरू उशति विहर। यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफं यस्यामु कामा बहवो निविष्ट्यै। विवाह प्रकरण।

अजमेर में संस्कार विधि का आधार दो प्रतियां हैं। वैदिक यंत्रालय में एक को प्रूफ कापी दूसरी को प्रेस कापी कहते हैं। प्रेस कापी प्रूफ कापी से लिखी गई है, प्रेस कापी वानप्रस्थाश्रम के अन्त तक ही है।

संन्यास, अन्त्येष्टि प्रेस कापी में नहीं हैं, यह दोनों संस्कार प्रूफ कापी से छापे हैं। पंडित जी ने यह दोनों प्रतियां देखी हैं, तभी आपने दृढ़ निश्चय होकर सार्वदेशिक में लेख लिखा है।

१ प्रथम मंत्र पर पंडित जी के आक्षेप का भाव यह है।

(क) प्रूफ कापी में 'अयन्त इध्म आत्मा' मन्त्र नहीं है।

(ख) समिधा की लकड़ी तीन हैं।

(ग) संस्कार विधि में यह पाठ है। "तीन लकड़ी आठ २ अंगुल की घृत में डुबो उनमें से नीचे लिखे एक मन्त्र से समिधा को अग्नि में चढ़ावें, वे मन्त्र ये हैं।"

ओं समिधाग्निं ''। आदि तीन मन्त्र

(घ) वेद में ३ मन्त्र हैं, 'अयन्त' इध्म वाला मन्त्र नहीं है।

(ङ) शतपथ में तीन मन्त्रों से तीन समिधा लिखी हैं

(च) प्रेस कापी में भी भाषा पाठ तीन मंत्र, तीन समिधा ही हैं

(छ) प्रेस कापी में यह किसी ने पीछे से लिखा है, क्योंकि पहिले तीन ही मंत्र लिख कर फिर बीच में अयन्त इध्म, मंत्र लिखना आरंभ कर के सफेदे पर समाप्त किया है।

(ज) इस लिए अयंत इध्म मंत्र किसी ने पीछे लिख दिया है। अब संस्कार विधि सेनि काल देना चाहिये।

उत्तर—

(क) प्रूफ कापी में नहीं है। यह ठीक है।

(ख) समिधा की लकड़ी ठीक तीन ही हैं।

(ग) संस्कार विधि में यही पाठ है ठीक है

(घ) यह वेद मंत्र नहीं, यह भी ठीक है। परन्तु सोम मंत्र है। ऐसे संस्कार विधि में और भी मंत्र हैं।

(ङ) शतपथ का वह प्रकरण अग्निहोत्र का नहीं न शतपथ गृह कृत्यों में प्रमाण है। अतः यह आपका पोषक नहीं।

(च) प्रेस कापी में भाषा ठीक यही है। (छ) यह किसी के पिछे नहीं मिलाया ऋषि ने स्वयं लिखवाया है।

यह सत्य है प्रथम समिधाग्नि मंत्र को लिखना आरंभ किया और क्रम से तीन मंत्र लिखे हैं, और 'अयन्त इध्म' मंत्र बाद से आरंभ करके सफेदे पर समाप्त किया है। परन्तु मन्त्र संख्या अयन्त मन्त्र पर १ है समिधाग्नि पर २ है सुसमिद्धाय पर ३ है और तंत्वा पर ४ है। अङ्क दो को ३ बनाना सहल है परन्तु ३ का ४ सहल नहीं है. प्रेस कापी में अङ्क ४ साफ है वह विगाड़ कर वा तोड़ कर नहीं बनाया गया। अतः जिस समय प्रेस कापी लिखा रहे थे, उस समय महर्षि को यह मन्त्र लिखवाना स्मरण हुआ, तब बीच से आरम्भ करके सफेदे पर समाप्त किया और क्रम से अङ्क लिखवाये। यह मानना चाहिये न कि किसी ने पीछे लिख दिया माना जाय।

(ज) यदि पंडित जी के विचारानुसार यह पीछे किसी और ने लिखा होता तो पंडित जी बतायें, प्रूफ कापी प्रेस कापी दोनों में विवाह संस्कार की उत्तर विधि में 'ओम् अयन्त इध्म०' कैसे लिखा गया पुनः वानप्रस्थाश्रम संस्कार में अयन्त इध्म० किसने लिख दिया इन दोनों में बिना कटे, बिना विगाड़े साफ साफ शब्दों में यह पाठ लिखा मिलता है। अतः यह ऋषि ने स्वयं लिखवाया है। पीछे से किसी ने नहीं लिखा है। अतः संस्कार विधि में रहना चाहिये।

२ ओं भूर्भुवः स्वः। सा नः पूषा, वाला मंत्र हैं। पंडित जी के आक्षेप का भाव है।

(क) प्रूफ कापी में पारस्कर सूत्र के आधार पर चार मन्त्र लिखे गये ।

(ख) पुनः विचार करके तीन मन्त्र काट दिये ।

(ग काटने में 'ओं भूर्भुवः स्वः सा नः' सारा मंत्र न काटा गया । असावधानी से कुछ हिस्सा रह गया ।

(घ) प्रैस कापी के लेखक ने उसे कटा न जान कर लिख दिया ।

(ङ) यह मंत्र अश्लील है ।

(च) यह मंत्र विवाह में पढ़ने के योग्य नहीं है ।

(छ इस लिये इस मंत्र को संस्कार विधि से निकाल देना चाहिये ।

उत्तर—

(क) प्रूफ कापी में ठीक चार मंत्र लिखे गये हैं ।

(ख) पुनः विचार करके दो काटे हैं तीन नहीं। दोनों मंत्रों को ऋषि नियोग परक मानते हैं, अतः निकाल दिये, इस मंत्र को नियोग परक नहीं मानते हैं इस लिये इस मंत्र को नहीं काटा है ।

(ग) काटने में कुछ रहा नहीं, अपितु भूल से कट गया था, जिसे ऋषि ने स्वयं ठीक किया, वहां यह मंत्र चौथा है, तीसरे का अन्तिम भाग और चौथे का आरंभिक भाग एक ही पंक्ति में है, उस पंक्ति में चौथे मंत्र का ओं भूर्भुवः स्वः पाठ है, जब यह कट गया तो पैन्सिल से सीधी रेखा खैंच कर अन्त में विशेष चिन्ह दिया। जिस का आकार :-यह है ।

ओं भूर्भुवः स्वः

काटने की आड़ी लकीरों पर सीधी रेखा और अन्तिम चिह्न प्रकट करता है कि यह पाठ कटा नहीं है, यह पाठ ठीक है और प्रैस कापी में लिखते समय प्रूफ कापी में लिखे 'शेषं' को सेषं लिखा, जब ऋषि ने उसे देखा, तो अपनी लेखनी तथा लाल मसि से काट कर 'शेषं' बनाया, अतः यह पाठ रहने योग्य ही है ।

[घ] प्रैस कापी के लेखक ने ठीक समझा यही ठीक है ।

[ङ] यह मंत्र अश्लील है । वेद मंत्र अश्लील नहीं होते पण्डित जी पुनः विचार करें ।

[च] विवाह में पढ़ने योग्य नहीं, वेद में विवाह प्रकरण में ही आया है ।

[छ] यह मंत्र रहना ही चाहिये ।

पंडित जी आर्य समाज में असाधारण व्यक्ति हैं । और जिन स्थानों पर रहे हैं और अब हैं, वह विशेष स्थान है । मेरी सम्मति में पंडित जी को समाचार पत्र में न लिख कर प्रथम परोपकारिणी सभा से व्यवस्था लेनी चाहिये थी । जब उसे का निर्णय हो जाता, तो लिख देते । प्रतीत होता है, पंडित जी के विचार प्रथम बने हुवे थे, उन्होंने साधारण रूप से प्रूफ कापी तथा प्रैस कापी को देख कर झट अपना लेख लिख दिया और आर्य जनता में भ्रमोत्पन्न करने का निमित्त हो गये, जो पंडित जी जैसे अनुभवी आर्य के लिये उचित नहीं था । इसी कारण मैं पंडित जी की सेवा में नम्र निवेदन करता हूं वह स्वयं इस भ्रम को दूर करें ।

संस्कार विधि में यह पाठ ऋषि सम्मत है, यदि कोई नहीं मानना चाहता, वह यह लिखे,

कहे कि यह न हों, यह न कहे, संस्कार विधि से निकाल दो । संस्कार विधि से निकालने को कहना किसी व्यक्ति का काम नहीं है ।

[श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने जो पत्र छपवा कर सर्कुलर के रूप में आर्य समाजों में भेजा उस में संलग्न लेख में प्रदत्त युक्ति तथा आलोचना के अतिरिक्त ये शब्द भी थे कि यह अश्लील है इस का उत्तर यही पर्याप्त है कि वेद मन्त्र को अश्लील आगे पं० अखिलानन्द जी कहा करते थे, अब पंडित गंगाप्रसाद जी भी वेद का अश्लील लिखते हैं यह उन्नति अच्छी नहीं है । मान्य उपाध्याय जी ने अपने लेख में इस का निर्देश किया है यद्यपि श्री स्वामी जी के सार्वदेशिकार्थ प्रेषित लेख में ये वाक्य नहीं हैं

—सम्पादक सा० दे०]

—:X❋X:—

आर्य विद्वानों के विचारार्थ—

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के उत्तर पर मेरा वक्तव्य

(अयन्त इध्म आदि के विषय में)

अगस्त १९४६ ई० में मैंने असली कापी और प्रेस कापी के मिलान के पश्चात् संस्कारविधि के कुछ संशोधन करने के निमित्त परोपकारिणी सभा को एक पत्र लिखा था और कई मास के सतत प्रतीक्षण के पश्चात् उसे सार्वदेशिक में छपवा दिया था। तत्पश्चात् परोपकारिणी सभा ने इस विषय को एक समिति के हवाले किया। कुछ मास हुये श्री प० जयदेव जी ने मेरे पत्र की समालोचना लिख कर भेजी। उसके मध्यकालीन पाण्डित्य पूर्ण होने के कारण मैं ने केवल यही उचित समझा कि सभा से प्रार्थना करूं कि असली कापी और प्रेस कापी के उन स्थलों का फोटो लेकर प्रकाशित कर देवें जिससे वर्तमान तथा भविष्य के विद्वानों को पक्षपात रहित होकर अपना मत निर्धारित करने में सहायता मिले। हर एक के लिये असली कापी और प्रेस कापी का देखना और मिलान करना कठिन होता है और अधिकतर बिना देखे ही लोग अनुमान लगा लेते हैं। मेरा उद्देश्य केवल इतना था कि जो भूलें लेखक आदि के द्वारा हो गईं उन को ऋषि के माथे मंढ़ने से ऋषिवर का अपमान होता है।

अभी श्री पूज्य स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने अपना अमूल्य समय लगाकर गंभीरता पूर्वक उन कापियों का अवलोकन किया और अपना प्रत्युत्तर लिख कर मेरे पास भेजा है इसे अन्त में दिया है।

श्री स्वामी जी ने गाम्भीर्य पूर्ण अध्ययन तथा सन्तोलन किया है। भाषा शिष्ट और युक्तियां सुसंगत हैं। यदि अध्ययन काल में वे मुझे भी बुला लेते तो मैं अपनी युक्तियां और दृष्टिकोण को उनके समक्ष रख सकता। परिणाम कुछ भी हो। यदि सभा फोटो लेकर दे तो सभी विद्वान् कुछ सम्मति बना सकें। ऐसा न करने से बात अधूरी रह जाती है और मुझे मानने में आपत्ति है। इतनी बातें विचारणीय हैं:—

(१) असली कापी में "अयन्त" मन्त्र समिधाओं की आहुतियों के सम्बन्ध में नहीं है।

(२) असली कापी में अन्य संशोधन हैं। यह मन्त्र बढ़ाया नहीं गया।

(३) प्रेस कापी में केवल हाशिये पर है और यद्यपि उसी लेखक के हाथ का है फिर भी पीछे से लिखा गया है।

(४) उसी ने १, २, ३, ४ संख्या भी डाली होगी अतः यह युक्ति मेरे विपक्ष को सिद्ध नहीं करती।

(५) "एक २ मन्त्र से एक २ समिधा को अग्नि में चढ़ावें" यह असली कापी का संशोधित रूप है और वर्तमान संस्कार विधि में भी वैसा ही छपा है' इससे चार मन्त्रों का समन्वय नहीं होता है। तीन का ही होता है।

(६) ऋषि दयानन्द की शैली यह है कि वह गृह्य-सूत्र आदि में दी गई प्राचीन विधि को तद्वद् स्वीकार करते हैं और परिवर्तन केवल उसी समय करते हैं जब सिद्धान्त का विरोध होता हो। उन्होंने स्वयं भी लिखा है :—

वेदादिशास्त्रसिद्धान्त माध्याय परमादरात् ।
आर्यैतिह्यं पुरस्कृत्य शरीरात्मविशुद्धये ॥
(संस्कार विधि की प्रस्तावना)

यह एक मौलिक बात है जो स्वामी दयानन्द जी महाराज के दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है और जब कभी जहाँ कहीं यह प्रश्न उपस्थित हो कि अमुक वाक्य ऋषि वर के हैं या नहीं तो यही कसौटी सब से उत्कृष्ट है। इस को भूल नहीं जाना चाहिये।

(७) तीन ही मन्त्रों से एक एक करके समिधा चढ़ाने का विधान शतपथ ब्राह्मण, कात्यायन सूत्र आदि में स्पष्ट है। चार मन्त्रों से तीन समिधा चढ़ाने का विधान कहीं नहीं। और ऋषि की असली कापी में भी नहीं। असली कापी का इसस्थल पर अन्य संशोधन विद्यमान है यह नहीं। ऐसा करना सिद्धन्त विरुद्ध भी नहीं। 'समिधाग्निं...... इत्यादि तीन मंत्र यजुर्वेद के अध्याय ३ के लगातार १, २, ३ मन्त्र हैं। अयन्त इध्म... वेद-मंत्र भी नहीं।

(८) फिर ऋषिवर को क्या पड़ी थी कि वह प्राचीन सूत्रकारों के वेद के अविरोधी भाग को छोड़ कर हस्तक्षेप करते।

(९) अभी किसी विद्वान् ने यह बताने की कृपा नहीं की कि ऋषि दयानन्द ने अमुक पद्धति का अनुकरण किया है। और उस में चार मंत्रों से तीन समिधायें देने का विधान है। परिवर्तन के लिये विशेष कारण होना चाहिये। अकारण परिवर्तन ऋषि दयानन्द के मन्तव्य और स्वभाव के विरुद्ध है।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की एक युक्ति बड़ी प्रबल है और वस्तुतः बिना मौलिक कागजों को देखे उनका उत्तर देना मेरे लिये बड़ा कठिन है। वह युक्ति यह है कि 'अयन्त इध्म' इति मन्त्र असली कापी में विवाह आदि प्रकरण में समिदाधान के सम्बन्ध में ही है। इससे प्रकट होता है कि प्रेस कापी तैय्यार करने पर ही यह मन्त्र नहीं सूझ पड़ा। पहले भी उसका विनियोग उसी प्रकार का रहा होगा। यह युक्ति बड़ी प्रबल है। परन्तु इसका प्राबल्य कम हो जाता है यदि ऊपर की प्रतिपत्तियों का निराकरण न हो सके। इसके सम्बन्ध में कई प्रश्न हैं।

(१) क्या जब असली कापी पूर्ण होगई उस समय प्रेस कापी तैयार की गई ?

(२) अथवा दोनों कापियां लगभग साथ २ तैयार की जाती रहीं ?

(३) प्रेस कापी ऋषि दयानन्द की आँख से कहाँ तक गुजर गई ?

संस्कार विधि की भूमिका में यह शब्द लिखे हैं:—

"श्रीयुक्त महाराजे विक्रमादित्य के सम्वत् १९४० आषाढ़बदी १३, रविवार के दिन पुनः संशोधन करके छपवाने के लिये विचार किया"।

ऋषि का देहावसान, कार्तिक वदि १५, १९४० को हुआ। अर्थात् ४ मास दो दिन पश्चात्। इसमें लगभग १ मास उनके रुग्ण होने में लगे। केवल तीन मास रह जाते हैं। इस समय ऋषिवर निरन्तर राजपूताने में प्रचार करते रहे। उन्होंने कब २ कितना २ संस्कार विधि की असली कापी का भाग संशोधित किया और कितना 'प्रेसकापी' का यह प्रश्न वही हल कर सकते हैं जो मिलावट परीक्षण शास्त्र के विद्वान् हैं। मिलावट की परीक्षा स्वयं एक विद्या है। उसका प्रयोग यहाँ भी आवश्यक है।

अब लीजिये विवाह प्रकरण के 'प्रहराम' इत्यादि मन्त्र को यह ऋग्वेद में भी है और अथर्व वेद में भी। इसमें तो मत भेद हो ही नहीं सकता। इसके साथ के चार मन्त्र पारस्कर ने इस स्थान पर दिये हैं। वे चारों ऋग्वेद और अथर्व वेद में हैं। फिर भी ऋषि दयानन्द ने औचित्य और अनौचित्य की दृष्टि से इन में काट छाँट की है। होना भी चाहिये था। यह काट छाँट असली कापी में है। दो मन्त्र तो स्पष्ट कटे हैं। अर्थात् 'सोमः प्रथमः' इत्यादि। यह स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को भी स्वीकार है। 'प्रहराम' वाले मन्त्र का केवल कुछ भाग कटा है। मेरा कहना है कि यह भी पूरा कटा समझना चाहिये। इसकी सब से प्रबल और अकाट्य युक्ति यह है कि जहां पहले मन्त्र का अर्थ फुटनोट में है वहाँ इस चौथे मन्त्र का नहीं। श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने इस युक्ति पर विचार नहीं किया। इनके प्रत्युत्तर का वह भाग जो इस स्थल से सम्बन्ध रखता है उस गांभीर्य को प्रकट नहीं करता जो पहले भाग में है। शायद स्वामी जी ने यह सोचा हो कि जब पहला भाग गलत सिद्ध हो गया तो दूसरा भी खिचड़ी के एक चावल की परीक्षा के न्याय से गलत ही हो गया। इस स्थल को स्वामी जी ने अधिक ध्यान से देखा भी नहीं। जब मैंने इस स्थल को असली कापी और प्रेस कापी से मिलाया तो मुझे प्रतीत हुआ कि लेखक स्वयं झमेले में पड़ गया था। मन्त्र तो कटे हैं परन्तु अङ्क कटे नहीं। अतः उसकी समझ में नहीं आया कि कितना रक्खूं कितना न रक्खू। सम्भव है कि यह भाग प्रेस कापी में उस समय लिखा गया हो जब ऋषिवर इस जगत में न थे। अन्यथा वह उनसे पूछ लेता। यही नहीं। एक और बात है जिसको श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी ने शायद नहीं देखा। इन मन्त्रों के ठीक आगे की लाइन में संस्कार विधि के पहले और दूसरे संस्करण में भी भेद है। आगे चलकर पाठ निश्चित हुआ है। वह न प्रेस कापी के अनुकूल है न असली कापी के। यन्त्रालय के पण्डितों ने किसी प्रकार इसका "समन्वय" करने का विफल प्रयास किया है।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के हाथ से इस स्थल का प्रत्युत्तर लिखते हुये (जो समाजों के नाम भेजे छपे हुए सर्क्युलर में विद्यमान है) गाम्भीर्य भी कुछ छूट सा गया है।

वस्तुतः गाम्भीर्य एक गैस भरी बोतल के समान है। तनिक ही हिलाने से गैस उड़ जाती है। इसी लिये तो स्वामी जी ने मुझे और पं० अखिलानन्द को एक ही कोटि में रख दिया है। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की युक्ति यह है कि 'प्रहराम' इत्यादि वेद मन्त्र है अतः अश्लील नहीं। मेरा आक्षेप वेद मंत्र की सत्यता पर नहीं परन्तु उसके विनियोग पर है। जहां संस्कृतज्ञ वधू, संस्कृतज्ञ वर और संस्कृतज्ञ सभ्य बैठे हों वहां किस वर की ऐसी छाती है जो बिना संकोच के इस मंत्र को पढ़ सके। मेरी समझ में तो स्वामी जी यदि विवाह अवसर पर उपस्थित हों और उनसे इस मन्त्र का ठीक ठीक शब्दार्थ कराया जाय तो सभा में वह भी संकोच करेंगे। मुझे आश्चर्य है कि स्वामी जी ने मंत्र विनियोग की अश्लीलता को मन्त्र की अश्लीलता कैसे समझ लिया। एक मन्त्र अपने स्थान पर ठीक हो सकता है परन्तु उसका विनियोग अनुचित। ऋषि वर ने जो दो मन्त्र काटे वह भी इसी लिये। वेद मन्त्र होते हुये भी उनका विवाह संस्कार के समय सभा में पढ़ना अनुचित समझा गया। इसी लिये फुटनोट में अर्थ भी नहीं दिये गये।

स्वामी जी लिखते हैं कि वेद में यह मंत्र विवाह प्रकरण में है अतः संस्कार के समय भी पढ़े जाने चाहियें। 'सोमः प्रथमो' आदि भी तो उसी प्रकरण में है। फिर ऋषि ने उसको क्यों काटा? प्रजानन शास्त्र में बहुत सी रहस्य की बातें कही जा सकती हैं जिनका सभा में वर्णन करना अनुचित और अश्लील समझा जायेगा यह तो साधारण सी बात है।

मेरे साथ प० अखिलानन्द की उपमा कैसे घटती है यह मेरी समझ में नहीं आया। न्याय दर्शन में उपमान का यह लक्षण किया है:—

प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधन मुपमानम्।

यहां पर "प्रसिद्ध साधर्म्य" क्या है? यह सोचने की बात है। मेरा परोपकारिणी सभा से फिर भी अनुरोध है कि वे इन दोनों स्थलों से सम्बन्ध रखने वाले दोनों कापियों के भागों का फोटो लिवा कर प्रकाशित कर देवें जिस से हर विद्वान् अपने लिये कुछ निश्चय कर सके। असली कापी और प्रैस कापी हर एक को देखने को नहीं मिलती। और वह समयान्तर में नष्ट भी हो सकती है। 'फोटो' जनता की प्रौपर्टी होंगे और भविष्य में आने वाले विद्वान् भी उनके विषय में सोच सकेंगे प्रत्येक अनुसन्धान कर्त्ता को अखिलानन्द की उपाधि देना तो आर्य्य समाज के चौथे नियम की हत्या करना है। किमधिकम्।

पुनः —

मैंने यह लेख श्री स्वामी जी के छपे हुए सर्क्युलर के साथ अगस्त मास के सार्वदेशिक में छपने के लिये दिया था जो स्थानाभाव से उस अङ्क में न छप सका। स्वामी जी का छपा सर्क्युलर तो समाजों में खुल्लमखुल्ला बंटा है जिन में से कइयों ने उसे सार्वदेशिक सभा कार्यालय में भेजा। अब स्वामी जी ने नया लेख 'सार्वदेशिक' में प्रकाशनार्थ भेजा है [जो "नम्र निवेदन" शीर्षक से इस अङ्क में छपा है] जिसमें युक्तियां तो प्रायः वही हैं केवल शब्दों का भेद है। मैं ने अपना उत्तर वही रक्खा है जो पहले था। केवल इतना बढ़ा देना चाहता हूँ कि मैंने अपना

पत्र परोपकारिणी सभा को हूँ भेजा था। जब परोपकारिणी सभा ने उसका कुछ नोटिस नहीं लिया तो मैंने परोपकारिणी सभा के प्रधान महाराज शाहपुराधीश जी से शिकायत की। इस पर परोपकारिणी सभा ने एक उपसमिति बना दी जिसका मैंने ऊपर उल्लेख किया है। मैंने थक कर कई मास की प्रतीक्षा के पश्चात् वह लेख 'सार्वदेशिक' में इस लिये छपवाया कि मेरी युक्तियां जनता के सामने आ जाएं। इस से अधिक मेरा कोई अभिप्राय नहीं है।

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के इस लेख में एक बड़ी आश्चर्य जनक बात यह है जिस से मेरा माथा ठनक गया। अगस्त सन् १६४६ में जब मैंने वैदिक यन्त्रालय में कापियां देखीं तो उनके दो नाम थे असली कापी और प्रेस कापी। इन्हीं शब्दों का मैंने अपने लेख में प्रयोग किया। वहां प्रेस वालों ने मुझे बताया था और यही नाम कवर पर थे। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने भी अपने छपे सर्क्युलर में इन्हीं नामों का प्रयोग किया है परन्तु स्वामी जी के इस लेख में असली कापी का नाम प्रूफ कापी रख दिया गया है। यह नाम परिवर्तन किस ने कब और क्यों किया? असली कापी का अर्थ है मुख्य कापी। उस की तुलना में प्रेस कापी गौण है और यही मेरे पक्ष की साधक बात है। प्रूफ कापी छापे का होता है और गौण समझा जाता है। प्रेस कापी असली कापी के अनुकूल होनी चाहिये। यदि भारतवर्ष में कोई ऐसी एजेन्सी विद्यमान है जो ऋषि वर की असली कापी का नाम परिवर्तन कर के प्रूफ कापी कह सके तो.. क्या कहूं? जिस कापी को स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने प्रूफ कापी कहा है वह छपे की प्रूफ कापी नहीं है बल्कि हस्त लिखित प्रति है। इस को प्रूफ कापी कहना कहां तक उचित है यह पाठक स्वयं विचार करें। मेरा अनुमान है कि असली कापी के लिये (जिस का श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने अपने छपे सर्क्युलर में १२ वार प्रयोग किया है) प्रूफ कापी शब्द का प्रयोग छपे सर्क्युलर के बाद की सूझ है क्यों कि इस प्रूफ कापी शब्द का प्रयोग सारे सर्क्युलर में एक बार भी नहीं है।

गं० प्र०

इस विषय का एक आवश्यक पत्र

इस सम्बन्ध में श्री ठा० खमान सिंह जी का मान्य उपाध्याय जी को निम्न लिखित पत्र औरंगाबाद से प्राप्त हुआ है जिसे प्रकाशित किया जाता है। इस की यथार्थता का निश्चय कर लिया गया है।

श्रीमान् उपाध्याय जी सादर नमस्ते। "आज कल जो संस्कार विधि के दो स्थलों पर आपने अपना मंडव्य प्रकाशित किया है तथा आपका भ्रम स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने मिटाने का प्रयत्न किया है उसे देखकर आश्चर्य हुआ। क्यों कि स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी ने संस्कार विधि का विधि भाग छपाया है जिसमें पुराना असली संस्कार विधि के कई स्थलों में कुछ भिन्न छपाया है तथा उस के पृष्ठ १८ सामान्य प्रकरण में तीन ही मंत्रों में से ३ आहुतियों का आहुति दिया छपा है ४ मंत्रों से नहीं। यह पुस्तक मेरे पास है और दिल्ली में भी मिल जायगी आप मंगा के अवश्य देखें।

(२) उस संस्कार विधि के विवाह प्रकरण में 'अघोर चक्षुरपतिघ्न्येधि' यह तथा दूसरा 'मङ्गलम्' शेष, ये दोनों मंत्र नहीं दिये हैं अर्थात् छोड़ दिये हैं। किंतु आश्चर्य की बात है कि जो काम स्वयं स्वामी जी ने किया है अब उसके विपरीत दूसरा का समाधान करते हैं। आप उनकी छपाई पुस्तक को अवश्य देखें।

आपका चिर परिचित ठा० खमान सिंह
औरंगाबाद, पो० हरदुआगंज, जिला अलीगढ़।

महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी

[६]

[ईश्वर का स्वरूप, अवतारवाद, मूर्तिपूजादि धार्मिक विषयों पर तुलनात्मक विचार]

(लेखक—प० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा, दिल्ली)

—:✽:—

'सार्वदेशिक' के गत अङ्क में मैंने महर्षि दयानन्द और महात्मा गान्धी के स्वराज्यादि विषयक विचारों का अनुशीलन पाठकों के सम्मुख रक्खा था। इस लेख में ईश्वर का स्वरूप, मूर्ति-पूजादि धार्मिक विषयों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करना चाहता हूं। महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी दोनों ही पूर्ण ईश्वर विश्वासी और ईश्वर भक्त थे यह दोनों के वचनामृतों को संकलित कर के मैं पहले दिखा चुका हूं। महर्षि दयानन्द ने ईश्वर के स्वरूप विषयक अपने मन्तव्य को निम्न स्पष्ट शब्दों में वेद के आधार पर आर्य समाज के द्वितीय नियम में प्रकट किया:—

"ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टि कर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।"

सत्यार्थप्रकाश के स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में महर्षि दयानन्द ने ईश्वर के विषय में अपना मन्तव्य निम्न शब्दों में लिखा 'ईश्वर कि जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त हैं, जिस के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फल दाता आदि लक्षण युक्त है उसी को परमेश्वर मानता हूं।"

महात्मा गान्धी जी का ईश्वर विषयक मन्तव्यः—

पूज्य महात्मा गान्धी जी के ईश्वर विषयक मन्तव्य को उनके लेखों और भाष्यों के आधार पर श्री किशोरीलाल मशरूवाला द्वारा संकलित और महात्मा जी द्वारा सशोधित 'गान्धी विचार-दोहन' में निम्न शब्दों में प्रकट किया गया है।

१. परमेश्वर का साक्षात्कार करना ही जीवन का एक मात्र उचित ध्येय है। जीवन के दूसरे सब कार्य यह ध्येय सिद्ध करने के लिये होने चाहिये।

२. जो प्रवृत्तियां इस ध्येय की विरोधी मालूम हो स्थूल दृष्टि से उनका फल कितना ही लुभाने वाला और लाभदायक जान पड़े तो भी उन प्रवृत्तियों को त्याज्य समझना चाहिये।

३. जो प्रवृत्ति इस ध्येय की साधन भूत जान पड़े वह कितनी ही कठिन जोखिम भरी और स्थूल दृष्टि से हानिकारक प्रतीत हो तो भी अवश्य कर्तव्य है।

४. परमेश्वर का स्वरूप मन और वाणी से परे है। उसके विषय में हम इतना ही कह सकते हैं कि परमेश्वर अनन्त, अनादि, सदा एक रूप रहने वाला, विश्व का आत्मा रूप अथवा आधार रूप और विश्व का कारण है। वह चैतन्य अथवा ज्ञान स्वरूप है। एकमात्र उसी का सनातन अस्तित्व है। शेष सब नाशवान् है। अतः एक छोटे से शब्द से समझने के लिये हम उसे 'सत्य' कह सकते हैं।

५. इस प्रकार परमेश्वर ही सत्य है और सत्य परमेश्वर है।

६. यह ज्ञान सत्यरूपी परमेश्वर की निर्गुण भावना है।

७. जो कुछ मुझे आज ऐसा धैर्य, न्याय और योग्य प्रतीत होता है कि उसे करते, स्वीकार करने या प्रकट करते मुझे शर्म नहीं लगती जो मुझे करना ही चाहिये और जिसे न करूं तो इज्जत के साथ जी ही न सकूं, वह मेरे लिये सत्य है। वही मेरे लिये परमेश्वर का सगुण रूप है।

८ सत्य की अविश्रान्त खोज किये जाना, तथा जैसा और जितना सत्य जान पड़ा हो उसका लगन के साथ आचरण करना--इसी का नाम सत्याग्रह है और यह परमेश्वर के साक्षात्कार का साधन मार्ग है।"

(गांधी विचार दोहन पृष्ठ १-२)

महात्मा गांधी जी के ईश्वर विषयक जो मन्तव्य ऊपर के वाक्यों में प्रकट किये गये हैं उनकी महर्षि दयानन्द के मन्तव्य के साथ अद्भुत समानता है। महर्षि दयानन्द के समान ही महात्मा गांधी जी ईश्वर को सर्व व्यापक, सर्वज्ञ और जगत् का कर्ता मानते थे। सत्य का मन वचन कर्म से पालन सत्य स्वरूप ईश्वर की प्राप्ति का मुख्य साधन है इस बात को महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाशादि में अनेक स्थानों पर बताया और लिखा कि "विद्वान् आप्तों का यही मुख्य कार्य है कि उपदेश लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयम् अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।...इनमें से जो कोई सार्वजनिक हित लक्ष्य में धर प्रवृत्त होता है उस से स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर होकर अनेक प्रकार विघ्न करते हैं परन्तु 'सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।' अर्थात् सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है, इस दृढ़ निश्चय के अवलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन हो कर कभी सत्यार्थ प्रकाश करने से नहीं हटते।" (सत्यार्थ प्रकाश-प्रारम्भिक भूमिका) इसी प्रकार महात्मा गांधी जीने लिखा कि:—

'अपने आस पास प्रवर्तित असत्य, अन्याय या अधर्म के प्रति उदासीन भावना रखने वाला व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकता। सत्य के शोधक को इस असत्य अन्याय और अधर्म के उच्छेद के लिए तीव्र पुरुषार्थ करना होता है और जब तक इनका सत्यादि साधनों से

उच्छेद करने में वह सफल नहीं होता तब तक अपनी सत्य की साधना को अपूर्ण ही समझता है। अतः असत्य, अन्याय और अधर्म का प्रतिकार भी सत्याग्रह का आवश्यक अङ्ग है।

("गान्धी विचार दोहन" पृष्ठ -२

"जिन सत्य और सनातन नियमों द्वारा विश्व का जड़चेतन विधान चलता है उस को अविश्रान्त खोज करते तथा उन के अनुसार अपना जीवन बनाते रहना और असत्य का सत्याग्रह साधनों द्वारा प्रतिकार करना सत्याग्रह है।"

(गान्धी विचार दोहन पृ० ३) महात्मा गान्धी जी के इन महत्त्व पूर्ण शब्दों के द्वारा महर्षि दयानन्द के एक सच्चे सत्याग्रही के रूप में असत्य और अधर्म निवारणार्थ किये गये कार्य का महत्त्व स्पष्टतया ज्ञात हो सकता है। अन्याय के निवारणार्थ महात्मा गान्धी जी ने राजनैतिक क्षेत्र में सत्याग्रह का प्रयोग किया और जनता से करवाया जो अत्यन्त प्रशंसनीय था। किन्तु धार्मिक क्षेत्र में जो असत्य और अधर्म प्रचलित था उस के निवारण में महर्षि दयानन्द जी उन की अपेक्षा अधिक तत्परता से लगे रहे और उस धर्म वेदी पर ही उन का बलिदान हुआ यह निस्संकोच कहा जा सकता है।

महर्षि दयानन्द ने पूर्णयोगी होने के कारण ईश्वर का यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया था। और उसका योगदृष्टि से साक्षात्कार किया था। महात्मा गान्धी जी सरलता पूर्वक स्वीकार करते थे कि वे उस उच्च अवस्था तक न पहुंच सके थे उन्होंने आत्म कथा में लिखा था कि:—

I have not yet found Him, but I am seeking after Him. I am prepared to sacrifice the things dearest to me in pursuit of this quest. Even if the sacrifice demanded be very life, I hope, I may be prepared to give it. (My Experiments with Truth, by Mahatma Gandhi P.4.)

मैं उस की खोज कर रहा हूँ किन्तु मैं ने उसे अभी तक पाया नहीं। इस खोज में मैं प्रियतम वस्तुओं को भी परित्याग करने के लिये उद्यत हूँ। यदि इस के लिये मेरे जीवन की बलि की आवश्यकता हो तो आशा है मैं इसे देने के लिये भी तैयार होऊंगा।

(७ अक्तूबर १९३६ के 'हरिजन' (अंग्रेजी) मे प्रकाशित एक लेख में पूज्य महात्मा जी ने लिखा कि:—

Of course, I have the experience of listening, not merely of trying to listen to God. The more I listen, the more I discover that I am still far away from God."

(Quoted from "The Unseen Power" by Mahatma Gandhi P. 9)

अर्थात् निश्चय से मुझे न केवल ईश्वरीय आदेश को सुनने के लिये यत्न करने का बल्कि उसे सुनने का अनुभव है। मैं जितना

ही ईश्वरीय आदेश को सुनता हूँ मैं अपने को अभी ईश्वर से उतना ही दूर होने का अनुभव करता हूँ।

किन्तु ईश्वर पर दृढ़ और अचल विश्वास के अतिरिक्त महात्मा गान्धी जी उस की सर्वव्यापकता को स्पष्टतया अनुभव करते थे। २५ मई सन् १९२१ में 'यङ्ग-इण्डिया' में उन्होंने स्पष्ट लिखा था कि

I realise His (God's) Omnipresence.".

अर्थात् मैं ईश्वर की सर्व व्यापकता का अनुभव करता हूँ। १३ जून १९४० के 'हरिजन' में पूज्य महात्मा जी ने किसी सज्जन के पत्र का उल्लेख करते हुए जिसने उनसे ईश्वर के अस्तित्व का निर्विवाद प्रमाण मांगा था लिखा:—

" The writer supposes that I might have realised the existence of a living God. I can lay no such claim. But I do have a living faith in a living God."

(Quoted here form "The Teachings of Mahatma Gandhi" P. 271)

अर्थात् इस पत्र का लेखक यह कल्पना करता है कि मैंने जीवित जागृत परमेश्वर की सत्ता का अनुभव किया होगा। मैं ऐसा कोई दावा नहीं करता किन्तु ईश्वर में मेरा दृढ़ विश्वास है।

जिस प्रकार महर्षि दयानन्द जी ने वैदिक सत्य शास्त्रों के आधार पर लिखा था कि एक ही ईश्वर के ब्रह्म, परमात्मा, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शङ्कर, शम्भु इत्यादि अनेक नाम हैं। ऐसे ही महात्मा गांधी जी ने 'यंग इण्डिया' के २५ नवम्बर १९२६ के अंक में लिखा था कि

'Though we may know Him by a thousand names, He is one and the same to us all."

(Young India Nov. 25. 1926)

अर्थात् यद्यपि हम उसे हजारों नामों से जान सकते हैं पर वह हमारे लिये एक ही है। जिस प्रकार महर्षि दयानन्द जी ने परमेश्वर को दयालु और न्यायकारी बताते हुए इन दोनों का अविरोध सिद्ध करते हुए लिखा कि:—

'न्याय और दया का नाम मात्र ही भेद है क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्द होकर दुःखों को प्राप्त न हों। वही दया कहलाती है जो पराये दुःखों को छुड़ाना'।

[सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास]

इसी प्रकार महात्मा गांधी जी ने २३ जनवरी सन् १९२२ के यंग इण्डिया में लिखा कि

A man who has the least faith in God and *His mercy which is His Justice*, Can not hate men, though he must hate their evil ways".

("Teachings of Mahatma Gandhi" P. 265)

अर्थात् एक व्यक्ति जिसका ईश्वर में और उसकी दया में जो उसका न्याय है, कुछ भी विश्वास है मनुष्यों से घृणा नहीं कर सकता यद्यपि उनकी बुराइयों से उसे घृणा अवश्य करनी चाहिए।

इस प्रकार न्याय और दया के अविरोध को महात्मा गांधी जी ने स्पष्ट शब्दों से प्रकट किया।

अवतार वाद

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में यह प्रश्न उठाया है कि "जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस रावण आदि दुष्टों का नाश कैसे हो सके?" और इसका निम्न शब्दों में युक्ति युक्त उत्तर दिया है:—

"प्रथम जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये विना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है उसके सामने कंस रावणादि एक कीड़ा के समान भी नहीं। वह सर्व व्यापक होने से कंस रावणादि के शरीर में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला इस अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव युक्त परमेश्वर को एक क्षुद्र जीव के मारने के लिए जन्म मरण युक्त कहने वाले को मूर्ख पन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है? और जो कोई कहे कि भक्तजनों के उद्धार करने के लिए जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं क्योंकि जो भक्त जन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने के सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर के पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् को बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से रावणादि का बध और गोवर्धनादि पर्वतों का उठाना बड़े कर्म हैं? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो 'न भूतो न भविष्यति' ईश्वर के सदृश कोई न है, न होगा। और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में व मूठी में धर लिया, ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है। इससे आकाश न बाहर आता न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। आना वा जाना वहाँ हो सकता है जहाँ न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक न था जो कहीं से आया? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला? ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्या हीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा? इसलिये परमेश्वर का आना जाना, जन्म मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता।"

(सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास पृ० ११७)

इससे पूर्व भाग में 'ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं' यह प्रश्न उठाकर महर्षि ने उत्तर दिया कि 'नहीं' क्योंकि 'अज एकपात्' (यजु. ३। ५३) सपर्यगाच्छुक्रमकायम् (यजु. ४०।८) ये यजुर्वेद के वचन हैं। इत्यादि वचनों से सिद्ध है कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता।

उसके पश्चात् अवतारवादियों की ओर से यह प्रश्न उठवा कर कि

'यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानि भंवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
(गीता ४।७)

श्री कृष्ण जी कहते हैं कि जब २ धर्म का लोप होता है तब २ मैं शरीर धारण करता हूं। महर्षि दयानन्द जी स्पष्ट शब्दों में उत्तर देते हैं कि:—

'यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं। और ऐसा तो हो सकता है कि श्री कृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग २ जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूं तो कुछ दोष नहीं क्योंकि परोपकाराय सतां विभूतयः परोपकार के लिये सत्पुरुषों का तन मन धन होता है। तथापि इससे श्री कृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

(सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास)

इस प्रकार महर्षि दयानन्द जी की 'अवतार वाद विषयक स्थिति' वैदिक प्रमाणों और युक्तियों की दृष्टि से स्पष्ट है। वे भगवद्गीता को परतः प्रमाण मानते थे, अतः उनका उसके सम्बन्ध में उत्तर भी स्पष्ट है। श्री कृष्ण को ईश्वर का अवतार न मानते हुये भी महर्षि दयानन्द उनके लिए कितने आदर का भाव रखते थे यह सत्यार्थ प्रकाश के ११वें समुल्लास के निम्न शब्दों से स्पष्ट है।

देखो! श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उस का गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिस में कोई अधर्म का आचरण, श्री कृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा कर्म कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से समागम, पर स्त्रियों से रास-मण्डल, क्रीडादि मिथ्या दोष श्री कृष्ण जी में लगाये हैं। इस को पढ़ पढ़ा सुन सुना के अन्य मत वाले श्री कृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं जो यह भागवत न होता तो श्री कृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों होती?

(सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास पृ० २१५)

अब महात्मा गान्धी जी के अवतार वाद तथा श्री कृष्ण के जीवन विषयक विचारों को देखिये।

महात्मा गांधी और अवतार वाद

२५ सितम्बर सन् १९२४ के यंग इन्डिया में महात्मा गान्धी जी ने लिखा कि 'ईश्वर निश्चित रूप से एक है. वह अद्वितीय है। वह अथाह और अगोचर है। मनुष्यों का अधिक भाग उस को नहीं जान सका। वह सर्व व्यापक है नेत्रों के बिना देखता और कानों के बिना सुनता है। निराकार निरवयव है। वह अजन्मा है। उसका कोई पिता माता या पुत्र नहीं है तो भी लोग उसे पिता, माता, स्त्री और पुत्र बना कर पूजते हैं। तथापि उन में से कोई वस्तु नहीं है।....वेदों में बहुत से देवता हैं जिन को अन्य धार्मिक पुस्तकों में फरिश्ता कहा गया है परन्तु वेदों में केवल एक ही ईश्वर की महिमा गाई गई है।" (यंग इन्डिया२५सितम्बर १९२४के लेखका अनुवाद)

१ अक्तूबर, १९२५ के यंग इन्डिया में महात्मा

गान्धी जी ने लिखा—'मुझे इस बातका कोई ज्ञान नहीं है कि महाभारत के श्री कृष्ण कभी इस भूमण्डल पर हुए हैं। मैं तो ऐसे श्री कृष्ण के सामने सिर झुकाने से इन्कार करूंगा जो हत्या का दोषी हो। क्यों कि इस से उसके गौरव को हानि पहुँचती है या उस कृष्ण के आगे कि जिस का अहिन्दू एक विषयी युवक के रूप में चित्र खींचते . । मैं तो भगवान् श्री कृष्ण को अपने विचार के अनुसार पूर्ण अवतार, एक निर्दोष सत्ता, गीता की वन्शी बजाने वाला और करोड़ों मनुष्यों में जीवन तरङ्ग को उत्तेजित करने वाला समझता हूं, परन्तु मेरे सामने यह सिद्ध कर दिया जाए कि अन्य वर्तमान ऐतिहासिक पुस्तकों की भांति महाभारत भी एक इतिहास है और महाभारत के कृष्ण से वे कई कार्य सम्पन्न हुए जो उनके माथे मढ़े जा रहे हैं तो इस बात का जोखम उठाते हुए भी कि मुझे हिन्दू-धर्म से निकाल दिया जाए मैं बिना संकोच के कहूंगा कि मैं श्री कृष्ण को भगवान का अवतार नहीं मानता, परन्तु मेरे विचार में महाभारत एक गम्भीर धार्मिक पुस्तक है और इसका अधिकांश कल्पित है।"। (यंग इण्डिया १ अक्तूर १६२५ के लेख का अनुवाद)

१० अप्रैल १६२८ के एक लेख में महात्मा गान्धी जी ने लिखा:—'हम राम के गुण गाते हैं। वे वाल्मीकि के राम नहीं। तुलसी रामायण के भी राम नहीं हैं। तुलसी दास की रामायण मुझे पसन्द है। इसे मैं अद्वितीय पुस्तक मानता हूं तथा एक बार पढ़ना आरम्भ करने पर उकताता नहीं, तो भी हम आज तुलसीदास जी के राम को याद नहीं करते। रामायण के राम वे राम नहीं हैं जिन का नाम ले कर हम भवसागर से पार हो सकें या जिन का नाम दुःख के अवसर पर लिया करें। असह्य दुःख से दुःखी मनुष्य को मैं कहता हूँ कि राम नाम लो।

यदि नींद न आती हो तो भी कहता हूं कि लो राम नाम, लेकिन यह राम तो दशरथ के पुत्र और सीता के पति नहीं; यह तो देह धारी राम नहीं हो सकते। अंगूठे की तरह छोटा सा तो हमारा हृदय और उस में समाये हुए राम देहधारी कैसे हो सकते हैं? यह तो न जन्मते और न मरते हैं। इस हेतु स्मरण करने के योग्य देहधारी या अन्य किसी प्रकार के राम नहीं है। अनेक बार प्रश्न होता है कि बाली का वध करने वाले राम पूर्ण पुरुष कैसे होंगे। मेरे पास भी ऐसे २ प्रश्न बहुत बार आते हैं, इस लिये मैं मन ही मन हँसता हूँ। किसी ने यदि छल से या सीधे तौर पर किसी को मारा, जो दस सिर का शरीरधारी रावण हो तो कौन सा भारी काम कर लिया। आज का जमाना तो ऐसा है कि बीस क्या असंख्य भुजाओं का भी कोई रावण पै . हो तो एक लड़का तोप के गोले से उस रावण के असख्य हाथों और सिरों को उड़ा दे। उसे हम असाधारण बच्चा न कहेंगे। उसे हम बड़ा राक्षस मानेंगे। हमें तो अन्तर्यामी की पूजा करनी है, जो सब के भीतर सब का स्वामी है। इस के साथ ही वह सब से पृथक् है। उन्हीं के सम्बन्ध में हमने गाया कि निर्बल के बल राम" जो सब के लिये एक समान है।"

देह धारी मनुष्य परमेश्वर को अन्य रीति से शीघ्र नहीं पहचान सकता, उसकी कल्पना व्याप

दूर नहीं दौड़ सकती। इस हेतु वह मानता है कि परमेश्वर ने मनुष्य रूप में अवतार लिया था। हिन्दू धर्म में उदारता की सीमा नहीं, इस लिये मत्स्य, वराह (शूकर) और नृसिंह को परमेश्वर का अवतार माना गया है। लिखते हैं कि जब धर्म की ग्लानि हो और अधर्म बहुत बढ़ जाए तो धर्म की रक्षा करने के निमित्त ईश्वर अवतार लेता है। यह बात भी उसी सीमा तक सत्य है, जितनी मैंने कही है। जन्म और मरण से रहित का अवतार लेना क्या है? यह बात मानने योग्य नहीं है कि कोई ऐतिहासिक पुरुष ईश्वर के रूप में या ईश्वर किसी ऐतिहासिक पुरुष के रूप में अवतार था॥"

(यंग इण्डिया के लेख का अनुवाद प्रताप १० अप्रेल सन् १६४८ के अङ्क से उद्धृत)

इस उद्धरण में पाठक देखेंगे कि महात्मा गान्धी जी ने ईश्वर के देहधारी होने और श्री राम, श्री कृष्ण आदि के रूप में अवतार ग्रहण करने का स्पष्ट खण्डन किया है। राम से तात्पर्य उन्होंने सर्वान्तर्यामी परमेश्वर का लिया है दशरथ पुत्र रामचन्द्र जी का नहीं।

गीता की 'अनासक्ति योग' के नाम से की अपनी व्याख्या की भूमिका में महात्मा गान्धी जी ने लिखा:—

'गीता के कृष्ण मूर्तिमान् शुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान ज्ञान हैं। परन्तु काल्पनिक हैं। यहां कृष्ण नाम के अवतारी पुरुष का निषेध नहीं है। केवल सम्पूर्ण कृष्ण काल्पनिक हैं सम्पूर्णावतार का आरोपण पीछे से हुआ है। अवतार से तात्पर्य है शरीर धारी पुरुष विशेष। जीवमात्र ईश्वर के अवतार हैं, परन्तु लौकिक भाषा में सब को हम अवतार नहीं कहते। जो पुरुष अपने युग में सब से श्रेष्ठ धर्मवान् है उसे भावी प्रजा अवतार रूप से पूजती है। इस में मुझे कोई दोष नहीं जान पड़ता। इस में न तो ईश्वर के बड़प्पन में कमी आती है, न उस में सत्य को आघात पहुँचता है। "आदम खुदा नहीं लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नहीं।" जिस में धर्म जागृति अपने युग में सब से अधिक है वह विशेषावतार है। इस विचारश्रेणी से कृष्णरूपी सम्पूर्णावतार आज हिन्दू धर्म में साम्राज्य भोग रहा है।" ('अनासक्ति-योग' की भूमिका २४—६—१६२६ को लिखी)

इस उद्धरण में अवतार शब्द का प्रयोग श्री कृष्णादि के लिये एक विशेष अर्थ में किया गया है पौराणिक सम्मत अर्थ में नहीं। तथापि एक विरोध इस में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। एक ओर तो पूज्य महात्मा जी श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता के विषय में सन्देह प्रकट करते हैं और दूसरी ओर इस अर्थ में कि जो पुरुष अपने युग में सब से श्रेष्ठ धर्मवान् होता है उसे भावी प्रजा अवताररूप से पूजती है।" अथवा 'जिस में धर्म जागृति अपने युग में सब से अधिक है वह विशेषावतार है।" श्रीकृष्ण को सम्पूर्णावतार मानते हैं। इन दोनों स्थितियों का तर्क की दृष्टि से समन्वय करना बड़ा कठिन है। महर्षि दयानन्द जी की श्री कृष्ण-विषयक धारणा सर्वथा स्पष्ट और युक्ति युक्त है जैसे कि पहले दिखाया जा चुका है। महात्मा गांधी जी के अवतार के

उपर्युक्त लक्षण के अनुसार भी मत्स्य, कच्छप, वराह (शूकर) आदि को अवतार मानना सर्वथा अशुद्ध ठहरता है। उसे उनका हिंदुओं की उदारता बताना वस्तुतः यथार्थ नहीं। इसे तो केवल मिथ्या विश्वास का ही नाम दिया जा सकता है। पौराणिक अवतार वाद के खण्डन में महात्मा गांधी जी ने प्रायः उन्हीं युक्तियों का आश्रय लिया जिनका महर्षि दयानन्द जी ने लिया। किंतु बाल्यावस्था के प्रबल संस्कारवश वे कई अशुद्ध कल्पनाओं का स्पष्ट निराकरण नहीं कर सके ऐसा प्रतीत होता है। भागवत, ब्रह्मवैवर्तादि पुराणों में योगिराज श्री कृष्ण के जीवन को जिस गर्हित रूप में चित्रित किया गया है अधिकतर उसको निन्दनीय समझकर ही उन्होंने श्री कृष्ण की ऐतिहासिकता से इन्कार किया तथा कुछ अहिंसा के प्रबल पक्षपाती होने के कारण, यह भी पाठकों को ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट ज्ञात होगा। गीता के "यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्" इत्यादि श्लोकों के विषय में महर्षि दयानन्द जी के विचार को सत्यार्थ-प्रकाश ७ म समुल्लास के एक उद्धरण द्वारा मैं पहले दिखा चुका हूँ। महात्मा गान्धी जी की इन श्लोकों पर (गीता ४।७-८) निम्न टिप्पणी अवलोकनीय है। 'यह श्रद्धालु को आश्वासन है और सत्य की, धर्म की-अविचलता की प्रतिज्ञा है। इस संसार में उतार-चढ़ाव हुआ ही करता है, परन्तु अन्त में धर्म की ही जय होती है। सन्तों का नाश नहीं होता क्योंकि सत्यका नाश नहीं होता। दुष्टों का नाश ही है क्यों कि असत्य का अस्तित्व नहीं है। मनुष्य को चाहिये कि इसका ख्याल रख कर अपने कर्ता पन के अभिमान के कारण हिंसा न करे, दुराचार न करे। ईश्वर की गहन माया अपना काम करती ही रहती है। यही अवतार या ईश्वर का जन्म है। वस्तुतः तो ईश्वर का जन्म होता ही नहीं। (अनासक्ति योग--गीता बोध सहित पृ० ६१)

(क्रमशः)

विजय गीत

(कवयिता—कवि कमल जी साहित्यालङ्कार)

—:—

विश्व वीना के स्वरों में देश जय जयहिन्द गाता ।

सरित लहरा मलय चलता
विटप पल्लव गीत गाते,
जय तिरंगे उड़ रहे हैं
वायु में तबले बजाते ॥

दश दिशों के कोटि कंठों से बधाई राष्ट्र पाता ॥

क्यों न पाये वह विजय
जिस राष्ट्र के नेता सफल हों
चरित में, तप त्याग में बलि-
दान में खिलते कमल हों ॥

बाल रवि जिस देश को हो, प्रथम किरणों से सजाता ।

शौर्य साहस का धनी यह
देश भारत संयमी है
रिपु विनाशक दीन रक्षक
सेव्य सेवक उद्यमी है ॥

इस लिये ही दिशि पलों से ईश का वरदान पाता ॥

हृदय के सम्राट (नेहरू)
राष्ट्र नेता हैं हमारे ।
पूज्य राजाजी विवेकी
दूर दर्शि पटेल प्यारे ॥

बलदेव सिंह समान नर सिंह गर्जन है सुनाता ॥

सैनिक सचेष्ट सुपुष्ट हैं
सद्भावना से पूर्ण हैं

रणबाँकुरों के हाथ से
रिपुकाल होते चूर्ण हैं
आज भारत का तराना विश्व दिशि दिशि से बजाता ॥
रजसे उठे रजभी अहो
रज में मिले रजकार हैं ।
ठहर क्या सकते भला
यों दानवो आचार हैं ॥
देख लाल किला यहां आ फूल रजभी ना समाता ॥
जय देश के प्रण पाल जय
जय वीर सैनिक रण जयी
धन्य तुम से हो रही है
यह पुण्य भारत की मही ॥
कर्म नव इतिहास उज्वल है तुम्हारा रवि लिखाता ॥
विश्व वेणु के स्वरों में देश जय जयहिन्द गाता ॥

विशेषतः आर्य वीरों के सामूहिक दल के लिये:—

विजय दशमी

—:o:—

विजय का है पर्व यह वरवीर रण प्रस्थान कर दो।
दिग्विजय के हेतु विजयी वीर नव अभियान कर दो॥

(१)

"विजय दशमी" पर्व वीरों का परम त्योहार आया।
वीरता से पूर्ण वीरोचित प्रणय उपहार लाया॥
युग युगों से सुप्त सारे अस्त्र शस्त्र सम्हाल लो अब।
दृढ़ करों में काल व्याल कराल-सम करवाल लो अब॥
आर्य वीरों का अतुल बल सैन्य नव निर्माण कर दो॥

(२)

आज देश स्वतन्त्र भारत धन्यवाद मना रहा है।
उच्च स्वर से नील नभ उन्मुक्त तब गुन गा रहा है॥
देश के नेता! उठो, ऐ कर्णधार!! सिपाहियो!!! तुम।
देश के रक्षार्थ सज धज कर चलो शैदाइयो! तुम॥
देश भक्तो! आर्य वीरो! देश का उत्थान कर दो॥

(३)

रण निमन्त्रण का दिवस है आज रण भेरी बजा दो।
वीर बाँके सैनिकों की आज फिर सेना सजादो॥
शत्रुओं से राष्ट्र की रक्षा करो ऐ आर्य वीरो!
राष्ट्रपति, राजा प्रजा, 'नायक' उठो दीनो अमीरो!!
ले अमर वरदान फिर "कमलेश" जग कल्यान कर दो॥

रुद्र मित्र शास्त्री विद्यावारिधि "कमलेश"
श्रद्धानन्द बलिदान भवन, देहली।

राम राज्य

—:X:X:—

पूज्य महात्मा जी का यही परम लक्ष्य था कि हम अपने देश में राम राज्य लायेंगे। परन्तु जिस का सुख स्वप्न हम देखना चाहते हैं—दुःख है कि बहुतों को उसके स्वरूप का कुछ ज्ञान नहीं है।

मैं आपके सम्मुख बाल्मिकि रामायण के आधार पर रामराज्य का स्वरूप उपस्थित करने का प्रयत्न करूंगा। इससे रामराज्य क्या था और पूज्य महात्मा जी क्या चाहते थे-इसका स्पष्टीकरण हो जायेगा, और आप वर्त्तमान काल की प्रगति से सहज ही अनुमान लगा लेंगे कि हमारा देश किधर जा रहा है। और हमें क्या करना है!

रामराज्य

युद्ध काण्ड, १३१ सर्ग-श्लोक ६४ से आगे-

१. राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम्।
ईजे बहुविधै र्यज्ञैः ससुहृज्ज्ञातिबान्धवः॥

अर्थ—धर्मात्मा श्री रामचन्द्र जी ने राजसिंहासन पर बैठ कर अपने सुहृदों तथा भाइयों के साथ २ अथवा उनकी सहायता से विविध प्रकार के यज्ञ किये।

२. न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम्।
न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति॥

अर्थ—जब तक रामचन्द्र जी ने राज्य किया, तब तक उनके राज्य काल में न तो कोई स्त्री विधवा हुई, न किसी को रोग ने सताया, और न किसी को सांप ने काटा ही। ६४

३. निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत्।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते॥

अर्थ—डाकू चोरों का तो राम राज्य में नाम तक नहीं था। दूसरे के धनको लेना तो जहां तहां, उसे कोई छूता तक न था। रामराज्य में ऐसा भी कभी नहीं हुवा कि किसी बूढ़े ने किसी बालक का अन्त्येष्टि क्रिया की हो। ६६

४. सर्वं मुदितमेवासीत् सर्वो धर्मपरोऽभवत्।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन् परस्परम्॥

अर्थ—रामराज्य में, सब अपने २ वर्णानुसार धर्म कार्य में तत्पर रहते थे, इसी लिये सब प्रसन्न थे। रामचन्द्र जी उदास या दुखी होंगे-इसी विचार से आपस में लोग किसी का जी तक न दुखाते थे। ६७

५. नित्यपुष्पा नित्यफलास्तरवः स्कन्ध विस्तृताः
काले वर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः॥

अर्थ—वृक्षों में सदा फूल लगे रहते थे, वे सदा फला करते थे। उनके गुद्दे और डालियां विस्तृत हुआ करती थीं। यथा समय वर्षा होती थी और सुखस्पर्शी हवा चला करती थी। १००

६. ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वै रेव कर्मभिः॥

अर्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सब लोभ से रहित थे-लालची नहीं थे। सब लोग अपना २ काम करते हुवे अपने २ कार्य्य से सन्तुष्ट थे। १०१

७. आसन् प्रजा धर्मरता रामे शासति नानृताः।
सर्वे लक्षणसम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः ॥

अर्थः -सारी प्रजा धर्मरत और झूठ से दूर रहती थी सब लोग शुभ लक्षणों से युक्त पाये जाते थे, और सब के सब धर्म परायण थे। १०२

अब आप तुलसी कृत रामायण में देखें कि श्री गोस्वामी जी ने रामराज्य का कितना सुन्दर वर्णन किया है।

रघुपति चरित देखि पुर वासी,
पुनि पुनि कहहिं धन्य सुख रासी॥

राम राज्य बैठे त्रय लोका।
हर्षित भयेउ गयेउ सब शोका॥
बैर न कर काहू सन कोई।
राम प्रताप विषमता खोई॥

वर्णाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय शोक न रोग॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज्य काहुहिं नहिं व्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं सुधर्म निरत श्रुति नीती॥
चारिउ चरण धरम जग माहीं।
पूरि रहा सपनेहु अघ नाहीं॥
राम भक्ति रत नर अरु नारी।
सकल परमगति के अधिकारी॥

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा।
सब सुन्दर सब विरुज शरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लक्षण हीना॥
सब निर्दम्भ धर्मरत धुनी।
नर अरु नारि चतुर शुभ गुनी॥
सब गुणज्ञ सब पण्डित ज्ञानी।
सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी॥

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

दान सूची

श्री स्व० बंशीलाल जी के परिवार तथा हैदराबाद पंडित सहायता निधि

हैदराबाद में आर्यसमाज की प्रगतियों के प्राण स्व० श्री बन्शीलाल जी के परिवार को सम्प्रति तीन वर्ष के लिए १००) मासिक सहायता देने का सार्वदेशिक सभा ने अपनी १९।९।४८ की अन्तरग सभा में निश्चय किया है। सभा के पास ऐसी कोई निधि नहीं है जिससे यह सहायता दी जा सके। अतः सभा ने सम्प्रति विशेष रूप से सम्पन्न आर्य पुरुषों तथा आर्य समाजों से ४०००) रुपया इकट्ठा करने का निश्चय किया है। हैदराबाद में पीड़ितों की सहायता के लिए भी सभा को आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद को सहायता देनी है। अतः धनी-मानी आर्य पुरुषों एवं आर्य्य समाजों से प्रार्थना है कि वे उदारता पूर्वक शीघ्र से शीघ्र अपना भाग भेजें। इस समय तक प्राप्त सहायता का विवरण इस प्रकार है :--

१००)	श्री ला० नारायणदत्त जी नई देहली
१००)	श्री ला० रलाराम जी नई देहली
१००)	श्री ला० हंसराज जी गुप्त नई देहली
१००)	श्री ला० ज्ञानचन्द्र जी नई देहली
१०१)	आर्य्य रक्षा समिति प्रयाग।
५४)	आर्य्य समाज हिन्डौन (जयपुर)
१२॥=)	आर्य्य समाज देवास
१०)	आर्य्य समाज पुरवा (उन्नाव)
२१)	आर्य्य समाज दीवान हाल देहली
१००)	आर्य्य समाज नैनीताल
१६)	आर्य्य समाज रामा मण्डी (पटियाला)
७१४॥=)	कुल योग।

इस समय तक ३००) श्री वंशीलाल जी के परिवार को तथा ४००) हैदराबाद पीडितों के लिये आर्य्य समिति शोलापुर को दियागया है।

दान दाताओं को धन्यवाद।

गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०
मंत्री सार्व देशिक सभा देहली।

दान आर्य समाज स्थापना दिवस

६।।)	मंत्री आर्य्य समाज दानापुर (पटना)	
७॥=)	,,	सिटी आर्यसमाज लखनऊ
१०)	श्री राजेश्वर प्रसाद आर्य	
२५)	आर्य समाज संयोगिता गंज इन्दौर	
२०)	,,	,, बीसलपुर (पीलीभीत)
६)	,,	,, बिलासपुर
२१)	,,	,, सरदारपुरा जोधपुर
२०)	,,	,, पीलीभीत
१२)	स्त्री	,, मेरठ
१०)	आर्य	,, जाम नगर काठियावाड़
१०)	,,	, फलावाडा (मेरठ)
१०)	,,	,, दुर्ग (मध्यप्रदेश)

१८)	,,	,, बह जोई (मुरादाबाद)
१२५)	,,	,, दारा सलीम (ईस्ट अफ्रीका)
२१)	,,	,, हल्दौर (बिजनौर)
१६॥)	,,	,, कोटा
१५)	,,	,, ...
३५७॥=)		

७८६॥।=) गतयोग

११४४॥) सर्वयोग

जिन समाजों का भाग अभी तक अप्राप्त है उन्हें शीघ्र से शीघ्र अपना भाग भेज देना चाहिए।

गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०
सार्वदेशिक सभा, देहली

सार्वदेशिक के ग्राहकों के लिए आवश्यक सूचना

निम्न लिखित ग्राहकों का सार्वदेशिक पत्र का चन्दा अक्टूबर मास के साथ समाप्त हो रहा है। अतः प्रार्थना है कि वे अपना चन्दा मनीआर्डर से तत्काल भेज देवें। अन्यथा १५ अक्टूबर के बाद उन की सेवा में पत्र वी० पी० द्वारा पहुँचेगा।

व्यवस्थापक 'सार्वदेशिक'
बलिदान भवन, श्रद्धानन्द बाजार, देहली

ग्राहक नं०

१४ आ. स. लश्कर ग्वालियर
२० पं० रामस्वरूप जी अवस्थी रायचूर
२२ श्री भगवतशरण जी खेमरिया झाँसी
४२ श्री कमला प्रसाद जी आर्य सतना
६० श्री राजेन्द्र जी अतरौली
६१ श्री आत्माराम जी परिहार जोधपुर
६२ ,, भीका जी कृष्णा जी पाऊसेमल
६३ ,, अमरनाथ जी उज्जैन
६६ ,, प्रेमसुखजी तोष्णीवाल निकलीदमपाड़ा
११६ ,, वीरसेन जी दोसज गुना ग्वालियर
१४२ ,, आ० स० जगन्नाथ भवन बादली
१८२ ,, मन्त्रीजी आर्य पाठशाला चहड़ छोटी
१८३ ,, नारायणराव शान्ताराम जी उज्जैन
१८४ ,, बी.एल. ओझा नयापुरा देवास सीनियर
१८५ ,, आशुतोषपाल जी आ. स. हवेली
१८६ ,, वैद्यनाथ वेदव्रती जी शास्त्री मोतीहारी
१८७ ,, महा० गजबराय जी हमीरपुर
१८८ ,, बहादुर राम जी रामगढ़ नैनीताल
१८६ ,, राजेन्द्रप्रसादसिंह जी आरा
१६० ,, मन्त्री जी आर्य कुमार सभा देवास सीनियर
१६१ ,, आ० स० कुल्टी
१६२ ,, ,, ,, महदावल
१६३ ,, दत्तात्रिरावजी लातुर
१६४ ,, श्यामलाल जी द्विवेदी बुरहानपुर
१६५ ,, आ० स० पूरनपुर पीलीभीत
१६६ ,, देवचन्द्रप्राग जी लखानीजाम भनवाद
१६७ ,, आ० स० कैंथल जि० करनाल
१६८ ,, हरिसिंह जी आर्य तुलसीपुर
१६६ ,, राष्ट्रीय धर्म्म पुस्तकालय मवाना कलां
२०० ,, मन्त्री जी आ० स० राजोरा देवास जूनियर
२०१ ,, रामलाल जी सिंगल दरेसी
२०३ श्रीमती प्रकाशवती देवी जी मिर्जापुर
२०४ वैदिक पुस्तकालय आ० स० कांकीनारा
२०५ आ० स० बहराइच
२०६ आ० स० लालगंज
२०७ पुस्तकाध्यक्ष जी आ० स० मेस्टनरोड कानपुर
२०८ श्री पांडुरंग तेरकर दाजी भीकाजी मठ शोलापुर
२०६ श्री राजेश्वर प्रसाद जी कांठ मुरादाबाद
२१२ ,, राजा साहब नगेन्द्र सिंह जी नरवर भवन जयपुर
२१३ श्री प्रीतिसिंह जी सिद्धिपुरा देहली
२१४ ,, आ० स० भूड़ बरेली
३६६ ,, कश्मीरी लाल गुप्त

साहित्य समीक्षा

[समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तकादि की २ प्रति आनी चाहिये]

सर्वदर्शन मीमांसा—लेखक-श्रीयुत गोपाल जी अध्यक्ष प्राच्य साहित्य सेवा मण्डल नई देहली। मिलने का पता—चन्द्र प्रिन्टिंग प्रेस, श्रद्धानन्द बाजार, देहली मूल्य २)

इस पुस्तक में—दर्शन शास्त्र, गीता, उपनिषदादि के भाष्यकार श्रीयुत गोपाल जी ने ६ आस्तिक दर्शनों के अतिरिक्त चार्वाक, जैन और बौद्ध दर्शनों के सिद्धान्तों का सरल शैली से उत्तम विवेचन किया है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तर मीमांसा वा वेदान्त इन ६ दर्शनों के सिद्धान्तों को भी प्रायः मध्यकालीन भाष्यकारों ने परस्पर विरुद्ध माना है किन्तु महर्षि दयानन्द जी के युक्ति युक्त मन्तव्यानुसार इस पुस्तक के सुयोग्य लेखक महोदय ने प्राक्कथन में ही इस भ्रम का निराकरण स्पष्ट शब्दों में किया है। महर्षि दयानन्दजी की युक्ति युक्त आलोचना को भी सत्यार्थप्रकाशसे उद्धृत किया गया है। वेदान्त दर्शन पर श्री शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्कादि भाष्यकारों के सिद्धान्तों को दिखा कर अद्वैतवाद मायावादादि का युक्ति युक्त निराकरण किया गया है। इस ग्रन्थ के पढ़ने से न केवल भारतीय दर्शनों के सिद्धान्तों का ज्ञान होगा प्रत्युत पाश्चात्य दर्शन शैली का भी सामान्य परिचय मिलेगा। हम इस अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ के सुयोग्य लेखक श्री पं० गोपाल जी का आर्य भाषा के साहित्य में इस पुस्तक के द्वारा प्रशस्त वृद्धि करने पर हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं कि इस पुस्तक का यथेष्ट प्रचार होगा।

योग दीक्षा—सम्पादक डा० इन्द्रसेन जी एम. ए. पी. एच. डी. प्रकाशक—अदिति कार्यालय श्री अरविन्दाश्रम पाण्डिचेरी। मूल्य ।।।)

इस पुस्तक में बङ्गाल के प्रमुख राजनैतिक कार्यकर्ता श्री अनिल वरण राय का श्री अरविन्द जी के साथ सन् १६२४-१६२५ में जो पत्र व्यवहार योग दीक्षा के विषय में हुआ उसे संगृहीत किया गया है। योग मार्ग के पथिकों के लिये यह पत्र-व्यवहार अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा क्यों कि श्री अनिल वरण राय ने ऐसे ही प्रश्न किये थे जो सभी राजनैतिक व सामाजिक कार्यकर्ताओं के मन में जिनकी योग की ओर प्रवृत्ति हो, उठते रहते हैं। सच्ची योग साधना के लिये किस प्रकार के जीवन को व्यतीत करने की आवश्यकता है, कौन उस साधना में सफल हो सकता है इत्यादि विषयों पर इस पत्रव्यवहार से उत्तम प्रकाश पड़ता है।

इस पत्र व्यवहार में एक विषय है जिस से हम सहमत नहीं हो सके। २५-८-२५ के पत्र में श्री अनिल वरण राय ने पूछा था 'आध्यात्मिक साधन के पथ पर चलने के लिये खाद्याखाद्य का कोई नियम आवश्यक है या नहीं? श्री अरविन्द का योग विशेष रूप से आन्तरिक योग है। मैं भी खाद्याखाद्य के नियम से कोई विशेष लाभ नहीं समझता तथापि इस सम्बन्ध में आप लोगों की राय जानने से लाभ होगा।"

इस के उत्तर में ६ सित० १९२५ को श्री नलिनी कान्त गुप्त ने श्री अरविन्द जी की ओर से लिखा कि "खाद्य के सम्बन्ध में श्री अरविन्द का कोई विधि निषेध नहीं है। शरीर के लिये जब जैसी आवश्यकता हो उस प्रकार का आहार कीजियेगा। खाद्या खाद्य पर साधना निर्भर नहीं करती किन्तु यदि कोई भीतर की किसी विशेष अवस्था के अनुसार किसी विशेष नियम में रहने की आवश्यकता अनुभव करे तो दूसरी बात है।'

यह उत्तर सन् १९२५ में दिया गया था किन्तु हमारा विश्वास है कि श्री अरविन्द जी के इस विषयक विचार में उसके पश्चात् अन्तर आया है। हमें विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि श्री अरविन्दाश्रम में मांस, मद्य, प्याज, लालमिर्च आदि राजस तामस पदार्थों का सेवन साधकों के लिये सर्वथा निषिद्ध है। इससे हमारे उपर्युक्त विश्वास की पुष्टि होती है। यदि हमारा यह विचार ठीक हो तो अच्छा होता कि सम्पादक महोदय इस आशय की टिप्पणी किसी स्थान पर दे देते। सम्पूर्णतया यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

हमारे सहयोगी

वेदवाणी—(मासिक पत्रिका अवैतनिक सम्पादक-श्री प्रो महेश प्रसाद जी मौलवी आलिम फाजिल, हिन्दू विश्व-विद्यालय। स. सम्पादक-श्री भानुचरण जी आर्षेय सिद्धांत शास्त्री आदर्श साहित्य मण्डल, जगमबाड़ी, बनारस।

वार्षिक मूल्य ४॥)

वेदवाणी नामक मासिक पत्रिका आदर्श साहित्य मण्डल बनारस की ओर से गत श्रीकृष्ण जन्माष्टमी से निकलनी प्रारम्भ हुई है जिसका प्रथम अङ्क हमारे सन्मुख है। इसका उद्देश्य तो नाम से ही स्पष्ट है। इस प्रथम अङ्क में श्री पं० वीरेन्द्र जी शास्त्री एम. ए. काव्यतीर्थ, पंडित वैद्यनाथ जी शास्त्री, श्री पं० देवदत्त जी शर्मा आचार्य, श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ आदि विद्वानों के वेद और गोरक्षा, ज्ञान और भाषा, कृष्ण के शुद्ध चरित्र पर वाम मार्ग का प्रभाव, वेद तथा वैदिक वाङ्मय इत्यादि विषयों पर उत्तम विद्वत्ता पूर्ण लेख हैं। भारत का शूद्रवर्ण नशा निवारण, आर्य महिलाओं का कर्तव्य आदि पर भी उत्तम लेख और कविता हैं हम इस पत्रिका का हार्दिक स्वागत करते हुए यह आशा करते हैं कि इसके द्वारा वैदिक शिक्षाओं का विशुद्ध रूप में प्रचार विद्वन्मण्डली और सर्व साधारण जनता में होगा। ध० दे०

भारतवर्षीय आर्य कुमार सम्मेलन

इस वर्ष भारतवर्षीय आर्य कुमार सम्मेलन शिकोहाबाद में १०, ११ तथा १२ नवम्बर १९४८ में धूमधाम से होना निश्चित हुवा है। इस अवसर पर देश के आर्य तथा अन्य नेताओं को बुलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। देश की समस्त आर्य कुमार सभाओं के प्रतिनिधि सम्मेलन में भाग लेंगे।

उमेशचन्द्र विद्यार्थी
कार्यालय मन्त्री
भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद्, मुरादाबाद।

सुमन-संचय—

ईश्वर प्रेम का नशा

[लेखक—श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक]

बाबर ने भारत-विजय के अपने सुख स्वप्न को मूर्त्त रूप देने के लिए भारत में प्रवेश किया। उस समय विजय श्री उसके पीछे पीछे फिरती थी और सौभाग्य उस पर हसता था। भारत पर दुर्भाग्य की वक्र दृष्टि थी। देश के अधिकांश रक्षकों की सद्वृत्तियं को दुष्प्रवृत्तियां मनचाहा नाच नचा रहीं थीं। वे निजी स्वार्थों के सामने जाति हित की चिन्ता न करते थे। उनकी कर्त्तव्या-कर्त्तव्य की निश्चयात्मक बुद्धि का दिवाला निकल चुका था। उनकी दूर दृष्टि मानसिक संकीर्णता के गहरे आवरण में छिप गई थी। उन्होंने कभी यह नहीं सोचा प्रतीत होता कि भावी-सन्तान हमारे राष्ट्रीय अपराधों और अवहेलनाओं के लिए क्या सोचेगी? उन दिनों आज कल की परिभाषा में 'झूठी शान' ही रक्षा वीरता की कसौटी बना दी गई थी। पारस्परिक फूट और ईर्ष्या द्वेष हिन्दू जाति को पतित और अपमानित करने के लिए अपना कुचक्र चला रहे थे। एक राजा दूसरे राजा की मान मर्यादा को धूल में मिलाने और उसका सर्वनाश तक करने में आगा पाछा न सोचता था ईर्ष्या द्वेष की प्रचंड ज्वालाए विदेशी लुटेरों को निमन्त्रण दे रही थी कि वे आएं और दिल खोल कर लूट मार करें। इसी ईर्ष्या ने बाबर के लिए देश में मुगल साम्राज्य की नींव जमाने का काम किया, उस पर विशाल मुगल-साम्राज्य का दृढ़ भवन खड़ा हुआ और इस प्रकार बाबर का सुख-स्वप्न पूरा हुआ।

उन दिनों पश्चिमी पंजाब के 'एमनाबाद' नगर पर अफगान हाकिम का अधिकार था। बाबर के सैनिकों ने इस हाकिम को मार कर नगर को लूटा और नाना प्रकार के उत्पात और अत्याचार किए। बहुत से व्यक्तियों को बन्दी बनाया गया। उन्हीं के साथ गुरु नानक भी बन्दी बनाए गए।

जब बाबर को गुरु नानक की प्रभु-भक्ति का पता लगा तो उसने गुरु जी का बहुत सम्मान किया और प्रसन्न होकर उन्हें शराब का एक प्याला भेंट किया। परन्तु गुरु जी ने उसे स्वीकार न किया। कहा "मैंने वह नशा पिया है जो चढ़ कर कभी उतरता नहीं। मुझे शराब की आवश्यकता नहीं है।"

इस उत्तर से बाबर का आश्चर्य चकित होना स्वाभाविक था हुआ भी ऐसा ही। बाबर को इस उत्तर में गुरु नानक की आभ्यन्तरिक आभा और भारतीय चरित्र की पवित्रता के दर्शन हुए। उसने उसी समय सम्मान सहित गुरु जी को कैद से मुक्त कर दिया।

—————

श्री महात्मा नारायण स्वामी स्मारक प्रथम पुण्य स्मृति महोत्सव

तारीख १४, १५, १६ अक्टूबर सन् १६४८ ई०

श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज का स्वर्गवास १५ अक्तूबर सन १६४७ को बरेली नगर में हुआ था। उसकी स्मृति में प्रथम पुण्य स्मृति महोत्सव १४ अक्टूबर तक इस वर्ष बड़े समारोह से मनाया जायगा जिसमें अनेक सम्मेलन आदि होंगे। भारतवर्ष के लगभग सब आर्य नेता इस अवसर पर पधार रहे हैं। बाहर से आने वाले महानुभाव शीघ्र अपनी सूचना स्वागत समिति को देवें जिससे उनके ठहरने का समुचित प्रबन्ध हो सके। इस अवसर पर आर्य सम्मेलन, वेद सम्मेलन, राष्ट्र भाषा सम्मेलन, महिला सम्मेलन, आर्य वीरदल सम्मेलन, आर्य कुमार सम्मेलन, अछूतोद्धार सम्मेलन, विदेश प्रचार सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। निवेदक:—

डा० श्यामस्वरूप सत्यव्रत एम० एम० एस०
प्रधान

(आचार्य) विश्वश्रवाः रिसर्च स्कालर
प्रधान मन्त्री



मदोन्मत्तों का मानमर्दनः

'सार्वदेशिक' के अगस्त अङ्क में 'माननीय सरदार पटेल का सिंह गर्जन' इस शीर्षक से टिप्पणी देते हुए हमने अन्त में लिखा था "हमें विश्वास है कि माननीय सरदार पटेल के ये शब्द कि 'हैदराबाद से समझौते का मौका जा चुका। अब उसका वही हाल होगा जो जूनागढ़ का हुआ था। हम पूरी तरह से तयार हैं और इस रास्ते की बाधा को काटकर फैंक देंगे। अब इस फोड़े का आपरेशन करना पड़ेगा।' यथार्थ ये और इस भीषण तथा दिन प्रतिदिन बिगड़ती हुई परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार कठिनतम कार्यवाही करने में जरा भी संकोच न करेगी। यद्यपि रजाकारों के नेता कासिम रज़वी ने २१ जुलाई को रेडियो पर भाषण देते हुये यह कहने की धृष्टता की 'इस समय हैदराबाद के भाग्य का निर्णय हो रहा है किन्तु मैं जानता हूं कि भारत हैदराबाद पर चढ़ाई न करेगा क्योंकि उसे भय है कि संघर्ष की ज्वालायें न केवल समूचे दक्षिण भारत को लपेट लेंगी। बल्कि उत्तर तक भी फैल जायेंगी।' किन्तु हम समझते हैं कि उसकी यह उक्ति असत्य ही सिद्ध होगी। हमारी सरकार के कर्णधार माननीय श्री प० जवाहरलाल जी, माननीय सरदार बल्लभ भाई जी पटेल तथा अन्य महानुभाव पुरुष-सिंह हैं। वे इस प्रकार भयभीत होने वाले नहीं। वे सारी परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए यथोचित कार्यवाही उग्रता पूर्वक अवश्य करेंगे। हमारी उनसे प्रार्थना यही है कि वे अविलम्ब ऐसी कठोर कार्यवाही करके मदोन्मत्त निजाम का मान मर्दन करें।"

हमें बड़ी प्रसन्नता है कि हमारे ये शब्द भगवान् की कृपा से सर्वथा यथार्थ सिद्ध हुए हैं और मदोन्मत्त निजाम और उसके अयोग्य मन्त्रियों तथा पामर रजाकारों का भारतीय सेना के वीर सेना नायक श्री राजेन्द्रसिंह जी, श्री चौधरी आदि ने ५ दिन के अन्दर ऐसा मान-मर्दन कर दिया है कि जो भारतीय इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। भारत के शासक प्रमुख महामहिम श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के इस निर्देश के उत्तर में कि हैदराबाद में जो अव्यवस्था असुरक्षा इस समय फैल रही है उसका अन्त करने के लिये रजाकारों के संगठन का भङ्ग करना और सिकन्दराबाद में भारतीय सेना का पुनः संनिवेशन अत्यावश्यक है निजाम ने ५ सित० के तार में लिखा था कि 'Let me state that the matter of allowing Indian troops to

remain in my territory is out of question.

अर्थात् भारतीय सेनाओं को अपने राज में रहने की आज्ञा देना तो विचार सीमा से ही बाहर है। ऐसे ही रजाकारों के संगठन को भङ्ग करने से उसने साफ इन्कार कर दिया था पर १८ सित० को भारत सरकार के आगे घुटने टेकने को उसे विवश होना पड़ा और ये दोनों शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं। १६ सित० को हैदराबाद के सेनापति ने दक्षिण भारतीय सेनापति के सन्मुख आत्म-समर्पण कर दिया। भारतीय सेना ने सिकन्दराबाद में बिना प्रतिरोध और निज़ाम के निमन्त्रण पर सहर्ष प्रवेश किया और श्री चौधरी को हैदराबाद का सैनिक-शासक बना दिया गया। २३ सितम्बर को रेडियो पर भाषण देते हुए निज़ाम ने रजाकारों और लायकअली मन्त्रि मण्डल के ८ मास के आतङ्क राज्य की निन्दा की और कहा कि यह आतङ्क राज्य मुझ पर जबर्दस्ती लादा गया था और उसने मुझे सर्वथा असहाय बना दिया था। उसने कहा, कि इस गुट्ट ने जिसका नेता कासिम रिज़वी था हिटलर के जमाने की याद दिलाने वाले तरीकों से रियासत पर कब्जा कर लिया और क्या मुसलमान और क्या ग़ैर मुसलमान, सभी पर जो कि उसके आगे घुटने टेकने को तय्यार न थे अपना आतङ्क जमाया। इस दल ने बड़े पैमाने पर खास तौर से हिन्दुओं पर आगज़नी और लूटमार की और मुझे पूरे तौर पर असहाय और निश्शक्त बना दिया। निज़ाम ने बताया कि इस गुट्ट की हैदराबाद में एक ऐसे इस्लामी राज्य की स्थापना की महत्त्वाकांक्षा थी जिस में कि सिर्फ मुसलमानों को ही नागरिकता का अधिकार दिया जाना था। किन्तु हैदराबाद जिसकी ८६ प्रतिशतक आबादी हिन्दू है स्वभावतः ही इस्लामी राज्य नहीं बन सकता। हैदराबाद भारत का ही एक अङ्ग है। निज़ाम ने यह भी बताया कि किस किस प्रकार भारत के साथ उसकी सन्मानपूर्ण समझौते की इच्छा रखते हुए भी इस गुट्ट ने जबर्दस्ती उस से भारत सरकार के प्रस्ताव ठुकरवाये और किस प्रकार भारतीय सेना के हैदराबाद से ४० मील दूर रह जाने पर इस गुट ने उसे धत्ता बता दी। अन्त में निज़ाम ने हैदराबाद की जनता से अपील की कि वह सैनिक गवर्नर को जिन के हाथों में स्टेट का शासन है शान्तिस्थापना में पूर्ण सहयोग दें।"

इन शब्दों को पढ़ते हुए हमें उस सुप्रसिद्ध कहावत का स्मरण हो उठा कि "जादू वह जो सर पर चढ़ कर बोले।" यही बातें जब भारत सरकार के अधिकारियों और शासक प्रमुख श्री राजगोपालाचार्य जी ने निज़ाम को कही थीं तो उन पर वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ होने का दोष लगाया पर सचाई देर तक छिप नहीं सकती। वह भारतीय सेना का दण्डा पड़ते ही ऐसी प्रकट हुई कि निज़ाम को अपने मुख से ये ऊपर की बातें कहने, भारतीय सेना के आगे अपनी सेना का आत्म समर्पण करने, लायकअली मन्त्रिमण्डल का त्यागपत्र स्वीकार करने, संयुक्त राष्ट्र संघ मे भेजे प्रतिनिधि मण्डल को रद्द करने और अपनी शिकायत को वापिस लेने को बाधित होना पड़ा है। पिछले दस मासों

की निरन्तर सन्धिचर्चा तथा अनुनय विनय से जो प्रयोजन सिद्ध न हुआ था वह वीर भारतीय सेना की ५ दिन की उग्र पोलीस कार्यवाही से सिद्ध हो गया। पर इतने से ही सन्तोष न कर लेना चाहिये। निज़ाम छोटा बच्चा न था जिसको रज़ाकारों ने फुसला लिया हो। उस को अपने धन और बल का बड़ा गर्व था और इसी लिये वह भारत सरकार को आंख दिखा कर उसके अत्यन्त युक्ति युक्त तथा नर्म प्रस्तावों को भी बार २ ठुकरा रहा था। किंग जार्ज, ब्रिटिश प्रधान मन्त्री एटली, अमरीका के राष्ट्र पति ट्रूमैन आदि के आगे हाथ जोड़ने और इस मामले को उलझाने की भीख मांगने में उसे कोई संकोच न था पर भारत सरकार की बात मानना वह अपनी शान के नीचे समझता था। अब अपना बुरी तरह से मान मर्दन होता देख कर वह झुका अवश्य है पर उसे हार्दिक अनुताप है ऐसा मानना कठिन है। कुछ भी हो, यह आवश्यक है कि इस समय बड़ी सावधानी से काम लिया जाए। रज़ाकारों, उन गुण्डों के कासिम रज़वी जैसे दुष्ट अधिकारियों तथा लायक अली के मन्त्रि मण्डल को कठोर दण्ड देने के अतिरिक्त निज़ाम को गद्दी से च्युत करना भी हमारे विचार में अत्यन्त आवश्यक है। इस समय दया और उदारता दिखाने से काम न चलेगा। उग्रता से काम लेना आवश्यक है जिस से पुनः स्थिति बिगड़ने न पाए। हम भारत-सरकार के प्रधान मन्त्री माननीय जवाहर लाल जी, उपप्रधान पुरुषसिंह माननीय सरदार बल्लभ भाई जी पटेल, दक्षिण भारतीय सेनाध्यक्ष वीरवर श्री राजेन्द्रसिंह जी, श्री चौधरी, सुयोग्य राजनीतिज्ञ श्री कन्हैया लाल जी मुन्शी इत्यादि सबका आर्य जगत् की ओर से हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। श्री पं० विनायक राव जी विद्यालङ्कार, पं० नरेन्द्र जी और अन्य सब आर्य वीरों का अभिनन्दन करते हुए हम उन्हें बधाई देते हैं।

मि० जिन्ना का देहावसानः—

११ सितम्बर की रात को पाकिस्तान के गवर्नर जनरल मि० मुहम्मद अली जिन्ना का क्वेटा से करांची पहुँचने के कुछ घण्टों बाद 'हार्टफेल' से देहान्त हो गया यह समाचार पाठकों को ज्ञात ही है। नीति शास्त्रकारों की 'कथापि खलु पापानाम् अलमश्रेयसे यतः' इस उक्ति के अनुसार ऐसे अधम व्यक्तियों की चर्चा भी अकल्याण का कारण हो सकती है अतः हमें इस विषय पर अपने विचार प्रकट करना अप्रिय और अरुचिकर प्रतीत होता है। तथापि यह कहने में हमें संकोच नहीं कि मि० जिन्ना का स्थान कूट राजनीतिज्ञों और दृढ़ निश्चयी पुरुषों में बहुत ऊंचा था। हमें अ० भा० हिन्दू महासभा के प्रधान श्री भोपटकर जी के ये शब्द पढ़ कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि 'मि० जिन्ना चरित्र बल से पाकिस्तान बनाने में समर्थ हुए।' जिन्ना के दृढ़ निश्चय और दुराग्रह से तो किसी को इन्कार नहीं हो सकता, अपनी कूट नीतिज्ञता और कुछ धूर्त अंग्रेजों की सहायता से वह उस पाकिस्तान को मूर्त रूप देने में समर्थ हो सके जिसे असम्भव प्राय समझा जाता था। पर उसका श्रेय उनके 'चरित्र बल' को (जिस का उन में नितान्त अभाव था) देना हमें सर्वथा अशुद्ध—और असत्य प्रतीत होता है। हमें आश्चर्य है कि श्री भोपटकर जैसे उत्तरदायित्व पूर्ण व्यक्ति ने क्यों और कैसे इस प्रकार का असत्य वक्तव्य दिया जब कि यह बात निश्चित है कि मि० जिन्ना के ऊपर लाखों व्यक्तियों की हत्या और अमानुषिक अत्याचारों का उत्तरदायित्व था क्यों कि उनकी सीधी कार्यवाही व पाकिस्तान योजना का ही ऐसा भयंकर परिणाम हुआ। इस में सन्देह नहीं कि पाकिस्तान कूट राजनीतिज्ञ अपने विधाता के देहावसान से अनाथ सा हो गया है क्यों कि पाकिस्तान के अन्य स्वार्थी नेता उस की बुद्धि तथा कार्य कुशलता में तुलना

नहीं कर सकते। इसे भारत का दुर्भाग्य ही कहना चाहिये कि जो मुहम्मद अली जिन्ना अपनी युवावस्था में एक पक्के राष्ट्रीयतावादी नेता समझे जाते थे, जो भारत पितामह श्री दादा भाई नौरोजी जी के मन्त्री रहे थे और जिन्हें श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने सन् १६०६ की कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर ("The finest ambassador of Hindu-Muslim Unity") अर्थात् हिन्दू मुस्लिम एकता का सर्वोत्तम दूत पुकारा था वे साम्प्रदायिक विद्वेष के सब से अधिक प्रचारक बन गये और अन्त तक वे इसी रूप में रहे।

मद्रास संस्थान में मद्यनिषेधः—

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि मद्रास संस्थान की सरकार ने १ अक्टूबर १६४८ से संस्थान के सभी प्रान्तों में मद्यनिषेध विधान को लागू करने का निश्चय किया है। हम इस निश्चय पर मद्रास सरकार का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और अन्य प्रान्तीय सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार से भी अनुरोध करते हैं कि वे मद्रास सरकार का इस विषय में अनुसरण करें। युक्त-प्रान्त सरकार, संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा आदि के क्रियात्मक सहयोग से इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य कर रही है। आर्थिक दृष्टि से हानि सह कर भी मद्य निषेध विषयक उत्तम योजना को अतिशीघ्र कार्य रूप में परिणत करना प्रत्येक जन हित चिन्तक सरकार का नैतिक कर्तव्य है।

प्रान्तीयता का अभिशापः—

गत कुछ मासों से साम्प्रदायिकता के विरुद्ध प्रबल युद्ध की घोषणा सरकार की ओर से हो चुकी है और जनता भी इस विषय में पर्याप्त प्रयत्न शील है यद्यपि यह खेद की बात है कि 'साम्प्रदायिकता' की कोई ठीक परिभाषा अभीतक निर्धारित नहीं की गई और उसका विशुद्ध धर्म व धार्मिकता से भेद स्पष्टतया समझा नहीं गया। साम्प्रदायिकता के नाम पर धर्म या धार्मिकता की भी उपेक्षा सर्वथा हानिकारक है। संकुचित साम्प्रदायिकता के समान, प्रत्युत कई अंशों में उस से भी अधिक हानिकारक प्रान्तीयता है। यह मनुष्यों की मनोवृत्ति और दृष्टिकोण को अत्यन्त संकीर्ण बना देती है। यह दुःख की बात है कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति के साथ हमें इस प्रान्तीयता का अभिशाप बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है। प्रायः प्रत्येक स्थान पर वर्तमान प्रान्तों को भाषा संस्कृति, सभ्यतादि के नाम पर पृथक् २ अनेक भागों में विभाजन के आन्दोलन चल रहे हैं। कर्णाटक, मलयालम, आंध्र, तामिल, पञ्जाबी, मराठी इत्यादि भाषाओं के आधार पर पृथक् २ प्रान्त बनाने की मांगें प्रस्तुत की जा रही हैं। कहीं २ बम्बई कलकत्ता, मद्रास इत्यादि बड़े नगरों को पृथक प्रान्त रूप में बनाने के प्रस्ताव हो रहे हैं। पाकिस्तान की विनाशक योजना के कारण पञ्जाब पूर्वी और पश्चिमी दो भागों में तो विभक्त हो ही गया अब उसको पञ्जाबी तथा हिन्दी भाषा के आधार पर विभक्त करने की असंगत मांग की जा रही है। ऐसी मांगें प्रस्तुत करने वाले शासन के व्यय की अनावश्यक वृद्धि, संकीर्ण दृष्टि की वृद्धि आदि का कोई ध्यान नहीं करते। हमें यह सारी प्रवृत्ति अत्यन्त हानिकारिणी प्रतीत होती है। इस समय हमें भारतीयता की भावना को परिपुष्ट करने और अपनी मनोवृत्ति तथा दृष्टिकोण को विशाल बनाने की विशेष आवश्यकता है। इस प्रकार खण्ड २ करने की प्रवृत्ति को हम सर्वथा अवाञ्छनीय समझते हैं। प्रान्तीयता का अभिशाप शीघ्र पूरा होना चाहिये।

माननीय शिक्षा मन्त्री का इतना अज्ञान?

भारतीय संस्कृति के आधार पर अपने स्वतन्त्र देश का निर्माण और विकास होना चाहिये इस विषय में किसी भी सच्चे देशभक्त

का मत भेद नहीं हो सकता। राष्ट्र के निर्माण में सब से अधिक भाग शिक्षा का होता है अतः हमारे विचार में यह अत्यन्त आवश्यक है कि शिक्षा मन्त्री का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण पद ऐसे सुयोग्य महानुभाव के हाथों में देना चाहिये जो विदेशीय भाषाओं के ज्ञान के साथ २ संस्कृत हिन्दी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञाता और भारतीय संस्कृति के मर्म को समझने वाला हो। जिस ने देश के लिये त्याग किया हो तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया हो ऐसे महानुभाव को भी उसकी अन्य योग्यता के साथ मन्त्रिमण्डल में वही स्थान मिलना चाहिये जिस के लिये वह सब से अधिक उपयुक्त हो। मौ० अब्दुल कलाम आजाद ने देश के स्वाधीनता आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया तथा त्याग किया अतः उनका मान करते हुए मन्त्रिमण्डल में उन्हें लेना उचित ही था किन्तु भारतीय लोकसभा के गत अधिवेशन में 'इम्पीरियल लाइब्रेरी' नाम के स्थान पर नैशनल लाइब्रेरी नाम रखने का प्रस्ताव जब उन्होंने प्रस्तुत किया और इस पर 'राष्ट्रीय पुस्तकालय" के नाम का सुझाव किया गया तो सदस्यों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब भारत सरकार के शिक्षा मन्त्री मौलाना आजाद ने कहा कि नैशनल के लिये राष्ट्रीय शब्द का प्रयोग ठीक नहीं है। ये दो पृथक् २ चीजें हैं। क्या हमारे शिक्षा मन्त्री जी का प्रचलित हिन्दी विषयक इतना अज्ञान सचमुच उपहासजनक नहीं? स्वभावतः प्रश्न उठता है कि भारतीय आदर्शों पर शिक्षा को दृष्टि से क्या उपर्युक्त गुण सम्पन्न किसी सुयोग्य महानुभाव को इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करना और मौलाना आजाद को उनकी योग्यतानुरूप अन्य किसी पद को देना अधिक उचित न होगा? क्या अरबी, फ़ारसी, उर्दू की असाधारण योग्यता को ही शिक्षा मन्त्रित्व के लिये पर्याप्त समझा जाना चाहिये? हम आशा करते हैं कि भारत सरकार के मान्य कर्णधार इस टिप्पणी को वैयक्तिक रूप में न ले कर उसी दृष्टि से लेंगे जिस से प्रेरित हो कर यह लिखी गई है।

भारतीय विधान परिषत् और राष्ट्र भाषा का प्रश्नः—

भारतीय विधान परिषत् का आगामी अधिवेशन ४ नवम्बर को प्रारम्भ होगा जिस में प्रस्तुत भारतीय विधान पर विशेष रूप से विचार होगा। इस अधिवेशन में राष्ट्र भाषा के प्रश्न पर भी निर्णय किया जाएगा। भारत की राष्ट्र भाषा संस्कृत निष्ठ हिन्दी ही हो सकती है जिसको समझने और बोलने वालों की संख्या इस देश में सब से अधिक है इस विषय को हम 'सार्वदेशिक' में अनेक बार स्पष्ट कर चुके हैं। गुजराती, बङ्गाली, मराठी, उड़िया, आसामी, पंजाबी, कर्णाटक, मलायालम, तिलगु, तामिल इत्यादि सभी प्रान्तीय भाषाओं में संस्कृत के शब्द बहुत बड़ी संख्या में (६० से ६० प्रतिशत तक) पाये जाते हैं अतः संस्कृत निष्ठ हिन्दी ही राष्ट्र भाषा का पद ग्रहण करने के सब से अधिक योग्य है यह बात निस्सन्दिग्ध है। 'हिन्दुस्तानी' नाम की जिस कल्पित, व्याकरण हीन भाषा को राष्ट्र भाषा के नाम पर थोपने का कुछ थोड़े से किन्तु प्रभावशाली महानुभाव प्रयत्न कर रहे हैं उसका वस्तुतः अस्तित्व ही नहीं। मुसलमान बन्धु जब हिन्दुस्तानी को राष्ट्र भाषा बनाने की बात करते हैं तो उनका तात्पर्य उर्दू से ही होता है यह जुलाई सन् १६३७ में हुई आल इन्डिया मुस्लिम एजुकेशनल कान्फ्रेन्स अलीगढ़ में स्वीकृत प्रस्ताव से स्पष्ट है जिस में कहा गया था कि उर्दू की जगह हिन्दुस्तानी नाम चालू किया जाए। इसका स्पष्टीकरण करते हुए उस में कहा गया था कि 'यह समझना भी दुरुस्त नहीं कि इस तजवीज के पेश करने वालों का यह मकसद है कि हम अपनी जबान में कोई ऐसी

तबदीली कर लें जिस से वह हिन्दी या हिन्दवी के करीब बन जाए। हाशाव कला इस किस्म की कोई बात नहीं है बल्कि बयीनः उसी उर्दू, उसी जबान उसी बोल चाल को जो हम बोलते हैं हम हिन्दुस्तानी कहते हैं।" (अलीगढ़ मैगज़ीन जुलाई सन् १९३७)

अतः ऐसे भ्रम जनक शब्द का प्रयोग करना ही सर्वथा अनुचित है। हमारा विधान परिषत् के समस्त सदस्यों से अनुरोध है कि वे कुछ थोड़े से प्रभावशाली व्यक्तियों के विरोध की चिन्ता न करते हुए और उनके व्यक्तित्व की भी इस सिद्धान्त विषयक प्रश्न के सम्बन्ध में उपेक्षा करते हुए संस्कृत निष्ठ हिन्दी और देवनागरी लिपि को ही राष्ट्रभाषा और राष्ट्र लिपि के रूप में घोषित कराएं। यह उनकी बड़ी भारी जन सेवा होगी। इस के विरुद्ध करना जनतन्त्रवाद का गला घोंटना होगा। हमें निश्चय है कि विधान परिषत् के सदस्य अपने इस विषयक कर्तव्य का निर्भीकता से पालन कर के पुण्य और कीर्ति के भागी होंगे। समस्त आर्य समाजों, आर्य कुमार सभाओं, आर्य संस्थाओं और अन्य सब भारतीय संस्कृति के प्रेमियों को सम्पूर्ण यत्न कि इस समय इस राष्ट्र भाषा, राष्ट्र लिपि और गोवध निषेध विषयक प्रस्तावों के विधान परिषत् द्वारा स्वीकृत कराने में लग जाना चाहिये। विधान परिषत् के अध्यक्ष महानुभाव के नाम पत्रों और तारों द्वारा सब संस्कृत प्रेमी व्यक्तियों और संस्थाओं को अपने इस विषयक अभिप्राय को प्रबल रूप में व्यक्त करना चाहिये। ऐसा स्वर्णीय अवसर जिस में भावी राष्ट्र के कल्याण का बीज निहित है फिर आना असम्भव होगा। 'फिर पछताये होत क्या जब चिड़ियां चुग गई खेत' वाली कहावत को इस सम्बन्ध में स्मरण करते हुए तत्परता तथा सचेष्टता से सम्पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।

दक्षिण अफ्रीका सरकार की निन्दनीय नीति

डा० मलान के प्रधान मन्त्रित्व में जब दक्षिण अफ्रीका की नई राष्ट्रीय सरकार बनी तो प्रवासी भारतीयों ने आशा की थी कि उनके प्रति उत्तम व्यवहार किया जायेगा तथा पृथक्करण की नीति में परिवर्तन हो जाएगा। इसी आशा से नेटाल इन्डियन कांग्रेस ने डा० मलान की विजय पर बधाई का तार भेजा था। पर भारतीयों की सब आशाओं पर तुषार पात हो गया जब उन्हों ने देखा कि यह राष्ट्रीयता का दम भरने वाली सरकार जेनरल स्मट्स से भी कई कदम आगे बढ़ कर भारतीयों को विदेशी बता कर अफ्रीका से निकालने पर कटिबद्ध है (जेनरल स्मट्स ने संसारकी आँखों में धूल डालने के लिये जो नाम मात्र का प्रतिनिधित्व प्रवासी भारतीयों को दिया हुआ था जिस के अनुसार वे १५० सदस्यों की पार्लियामेन्ट में अपने ३ अंग्रेज प्रतिनिधि (भारतीय नहीं) भेज सकते थे उसे भी डा० मलान ने संशोधन के द्वारा समाप्त करने का निश्चय किया है। यूनियन ऐसम्बली, सीनेट तथा नैटाल प्रान्तीय कौंसिल में प्रवासी भारतीयों को प्रतिनिधित्व से सर्वथा वञ्चित कर दिया गया है। गत २२ सितम्बर को डा० मलान ने यूनियन ऐसम्बली में भाषण देते हुए कहा कि 'भारतीय लोग एक अन्य देश से कुछ समय के लिये ही आये थे और दक्षिण अफ्रीका के लोग उन्हें अपने लिये एक खतरा समझते हैं तथा भारतीयों ने भी अपनी शिकायतें अपनी सरकार के आगे न रख कर एक अन्य देश की सरकार के आगे रक्खी। भारतीयों को दक्षिण अफ्रीका में पाबन्दियों के भीतर रहने में सन्तुष्ट हो जाना चाहिये। वर्तमान अवस्थाओं में उन पर पाबन्दी लगाना सर्वथा उचित है।" इत्यादि। यह स्पष्ट है कि डा० मलान की सरकार भारतीयों को दक्षिण अफ्रीका से निकालने पर तुली हुई है।

प्रवासी भारतीयों ने द० अफ्रीका सरकार के आगे अपनी शिकायतें कई बार रक्खीं पर जब उन्हें बिल्कुल अनसुना कर दिया गया तभी विवश हो कर उन्हें भारत सरकार तक अपनी शिकायत पहुंचानी पड़ी इस में उन का कोई दोष नहीं। यूनियन असेम्बली में वहां के गृहमन्त्री डोंगस ने कहा कि 'यदि भारतीयों को एक बार मताधिकार दे दिया तो उन्हें लौटाने की नीति पर अमल करना सरकार के लिये कठिन हो जायगा।' जेनरल स्मट्स ने एशियाई क़ानून संशोधन बिल के दूसरे वाचन के अवसर पर ठीक ही कहा कि 'इस मामले में अनुचित जल्द बाजी से काम लिया जा रहा है। दक्षिण अफ्रीका के भारतीय हमारी आबादी के स्थायी अङ्ग हैं क्यों कि वे यहाँ बस चुके हैं। बहुत से भारतीय यहाँ से नहीं जाना चाहेंगे। उन्हें जबर्दस्ती नहीं निकाला जा सकता। इस पर भारत व मित्रराष्ट्र संघ से भी चर्चा करनी होगी अतः इस बिल के दूसरे वाचन को रोक कर इस बिल को सेलेक्ट कमेटी के सुपुर्द कर देना उचित होगा।" इस पर भी ७४ के विरुद्ध ६२ वोटों से बिल के द्वितीय वाचन को स्वीकृत कर लिया गया।

हम दक्षिण अफ्रीका सरकार की इस नीति को अत्यन्त निन्दनीय समझते हैं। द० अफ्रीका मे इस समय लगभग ढाई लाख भारतीय बसते हैं, जिन में ६५ प्रतिशत का जन्म वहीं हुआ है। वे वहां के ही वातावरण में पले हैं। उनको विदेशी समझ कर जबर्दस्ती भारत भेजना सर्वथा अनुचित और अन्याय होगा। इस पृथक् करण और वर्ण विद्वेष की निन्दनीय नीति को दूर करने के स्थान में केवल यूरोपियनों के लिये पृथक् रेल के डिब्बे इत्यादि द्वारा और बढ़ाया जा रहा है और संयुक्त राष्ट्र सङ्घ के आदेश की जान बूझ कर अवहेलना की जा रही है जिसका घोर विरोध करना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है। भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ के पेरिस अधिवेशन में इस अत्यावश्यक विषय को रखवा कर प्रशंसनीय कार्य किया है। संयुक्त राष्ट्र सङ्घ को बड़ी कठोरता के साथ दक्षिण अफ्रीका की सरकार की इस अनुचित नीति का दमन करके उसे उग्र दण्ड देना चाहिये अन्यथा उसका अस्तित्व निरर्थक सिद्ध होगा। इस विषय में टालमटोल से काम न चलेगा। ध० दे०

—●—

आर्य कुमार परिषत् की धार्मिक परीक्षाएं:—

भारत वर्षीय आर्य कुमार परिषत् की धार्मिक परीक्षाओं में सम्मिलित हो कर लाभ उठाना प्रत्येक आर्य कुमार-कुमारी और युवक-युवति का कर्तव्य है। ऐसा करने से जहां स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ेगी वहां उन्हें आर्य धर्म और संस्कृति का भी यथार्थ ज्ञान प्राप्त होगा। प्रत्येक आर्य समाज और आर्य कुमार सभा के सदस्य को इन परीक्षाओं की पाठ विधि परिषत् के परीक्षा मन्त्र डा० सूर्य देव जी एम० ए० डी० लिट् से मंगवा कर उन में सम्मिलित होना चाहिये। प्रत्येक आर्य-संस्था में इन धार्मिक परीक्षाओं का केन्द्र अवश्य होना चाहिये।

धर्मदेव विद्यावाचस्पति
प्रधान आर्य कुमार परिषत्

———

आर्य महा सम्मेलन स्थगित

अनिवार्य कारणों से कलकत्ता में जो आर्य महा सम्मेलन अक्टूबर में होना था वह स्थगित कर दिया गया है। ठीक तिथियों से पुनः सूचित किया जायगा।

Books To Be Had From Sarvadeshik Sabha, Delhi

1. In Defence of Satyarth Prakash ≥)
2. Rishi Dayanand and Satyarth Prakash |≥)
3. We and our Critics -)||
4. Universality of Satyarth Prakash -)
5. Voice of Arya Varta ≥)
6. Truth and Vedas By Late Rai Thakur Datta Dhavan |≥)
7. Truth Bed Rock of Aryan Culture ||)
8. Vedic Teachings (Atma) १)
9. Kenopnishat (English) (Pt. Ganga Prasadji, M. A.) ।)
10. Hindu Philosophy and Modern Science (Ram Chandra M.A. P. E. S.) ≈||)
11. The Case of Satyarth Prakash (By S. Chandra) १||)
12. Agnihotra (Bound) (Dr Satya Prakash D. Sc.) २||)
3. The Scope & Mission of Aryasamaj by Pt. Ganga Prasadji Upadhyaya) ||
14. Ecclesia Divina (Swami Bhumanand Saraswati) ५)
15. Aryasmaj and Theosophica Society (Shri Shyam Sundarlal Vakil) ≡)
16. Daily Prayer of an Arya (Shri Narayan Swamiji) ||)
17. Glimpses af Swami Daya- nand Bound (Late Pt. Chamu pati M. A) १||)
18. Principles and Bye-laws of the Aryasamaj -)
19. The Aryasamaj & International Aryan League -)
20. Landmarks of Swami Dayanand Bound (Pt. Ganga Prasadji Upadhyaya M. A.) १)

श्री पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा
“चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस” श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित